सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) का इतिहास

दुनिया के मज़दूरों, एक हो!

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) का इतिहास

संक्षिप्त कोर्स

*

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) की केन्द्रीय समिति
के कमीशन द्वारा सम्पादित

*

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) की केन्द्रीय समिति
द्वारा अनुमोदित, 1938

लोक आवाज़ पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, सितंबर 2010

प्रकाशक की टिप्पणी

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) के इतिहास का यह संस्करण, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली द्वारा दिसंबर 1943 में प्रकाशित किये गये संस्करण का पुनः प्रकाशन है।

लोक आवाज़ पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स
सितंबर, 2010

मूल्य : 500 रुपये

प्रकाशक : **लोक आवाज़ पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स**
ई– 392, संजय कालोनी, ओखला फेस – 2,
नई दिल्ली 110020
फोन नं. : 011 – 20281990

विषय–सूची

भूमिका 15

पहला अध्याय

रूस में सोशल–डेमोक्रेटिक लेबर पार्टी के निर्माण के लिए संघर्ष (1883–1901)

1. भूदास प्रथा का ख़ात्मा और रूस में औद्योगिक पूंजीवाद का विकास। आधुनिक औद्योगिक सर्वहारा वर्ग का उत्थान। मजदूर आन्दोलन के पहले कदम। 17

2. रूस में नरोद्वाद (लोकवाद) और मार्क्सवाद। प्लेखानोव और उसका 'मजदूर उद्धारक' गुट। लोकवाद के खिलाफ़ प्लेखानोव का संघर्ष। रूस में मार्क्सवाद का फैलना। 23

3. लेनिन की क्रांतिकारी कार्यवाही की शुरुआत। मजदूर वर्ग के मुक्ति–संग्राम का सेंट पीटर्सबर्ग (पीतरबुर्ग) संघ। 32

4. लोकवाद और 'कानूनी मार्क्सवाद' के खिलाफ़ लेनिन का संघर्ष। मजदूर वर्ग और किसानों की मैत्री के बारे में लेनिन का विचार। रूसी सोशल–डेमोक्रेटिक लेबर पार्टी की पहली कांग्रेस। 35

5. 'अर्थवाद' के खिलाफ़ लेनिन का संघर्ष। लेनिन के अख़बार 'इस्क्रा' का प्रकाशन। 39

सारांश 43

दूसरा अध्याय

रूसी सोशल–डेमोक्रेटिक लेबर पार्टी का निर्माण। पार्टी के भीतर बोल्शेविक और मेन्शेविक गुटों का जन्म। (1901–1904)

1. 1901–'04 में रूस में क्रांतिकारी आन्दोलन की उठान। 45

2. मार्क्सवादी पार्टी बनाने के लिये लेनिन की योजना। 'अर्थवादियों' का 49

अवसरवाद। लेनिन की योजना के लिये 'इस्क्रा' का संघर्ष। लेनिन की पुस्तक 'क्या करें' – मार्क्सवादी पार्टी का सैद्धान्तिक आधार।

3. रूसी सोशल–डेमोक्रेटिक लेबर पार्टी की दूसरी कांग्रेस। कार्यक्रम और नियमों की स्वीकृति और एक ही पार्टी का निर्माण। कांग्रेस में मतभेद और पार्टी के अन्दर दो प्रवृत्तियों का प्रकट होना : बोल्शेविक और मेन्शेविक। 60

4. मेन्शेविक नेताओं का फूट का काम और दूसरी कांग्रेस के बाद पार्टी के भीतर संघर्ष का तेज होना। मेन्शेविकों का अवसरवाद। लेनिन की पुस्तक 'एक कदम आगे तो दो कदम पीछे'। मार्क्सवादी पार्टी के संगठन के सिद्धान्त। 65

सारांश 75

तीसरा अध्याय

रूस–जापान युद्ध और पहली रूसी क्रान्ति के समय बोल्शेविक और मेन्शेविक

(1904–1907)

1. रूस–जापान युद्ध। रूस में क्रान्तिकारी आन्दोलन की और प्रगति। पीतरबुर्ग में हड़तालें। 9 जनवरी, 1905 को शरद् प्रासाद के सामने मजदूरों का प्रदर्शन। प्रदर्शन पर गोलियों की बौछार। क्रान्ति का आरम्भ। 76

2. मजदूरों की राजनीतिक हड़तालें और प्रदर्शन। किसनों में क्रान्तिकारी आन्दोलन की बढ़ती। युद्ध–पोत 'पोतेमकिन' पर बगावत। 82

3. बोल्शेविकों और मेन्शेविकों के कार्यनीति सम्बन्धी मतभेद। तीसरी पार्टी कांग्रेस। लेनिन की पुस्तक 'जनवादी क्रान्ति में सोशल–डेमोक्रेसी की दो कार्यनीतियां'। मार्क्सवादी पार्टी की कार्यनीति सम्बन्धी बुनियाद। 86

4. क्रान्ति की उठान में प्रगति। अक्तूबर 1905 की अखिल रूसी राजनीतिक हड़ताल। ज़ारशाही का पीछे हटना। ज़ार का घोषणापत्र। मजदूर प्रतिनिधियों की सोवियतों का जन्म। 103

5. दिसम्बर का सशस्त्र विद्रोह। विद्रोह की पराजय। क्रान्ति का पीछे हटना। पहली राज्य दूमा। चौथी (एकता) पार्टी कांग्रेस। 107

6. पहली राज्य दूमा का भंग होना। दूसरी राज्य दूमा का अधिवेशन। पांचवीं पार्टी कांग्रेस। दूसरी राज्य दूमा का भंग होना। पहली रूसी क्रांति की हार के कारण 115

सारांश 123

चौथा अध्याय

स्तोलिपिन प्रतिक्रियावाद के दौर में मेन्शेविक और बोल्शेविक। बोल्शेविकों द्वारा स्वतंत्र मार्क्सवादी पार्टी का निर्माण।

(1908–1912)

1. स्तोलिपिन प्रतिक्रियावाद। विरोधी बद्धिजीवियों में फूट। पतन। पार्टी के बुद्धिजीवियों के एक हिस्से का मार्क्सवाद के दुश्मनों से जाकर मिलना और मार्क्सवाद के सिद्धांत में संशोधन करने के प्रयत्न। लेनिन द्वारा अपनी पुस्तक 'भौतिकवाद और अनुभवसिद्ध आलोचना' में संशोधनवादियों का खण्डन और मार्क्सवादी पार्टी के सैद्धांतिक आधारों का समर्थन। 126

2. द्वन्द्वात्मक और ऐतिहासिक भौतिकवाद। 136

3. स्तोलिपिन प्रतिक्रियावाद के दौर में बोल्शेविक और मेन्शेविक। विसर्जनवादियों और बहिष्कारवादियों (ओत्जोविस्ट) के खिलाफ़ बोल्शेविकों का संघर्ष। 169

4. त्रात्स्कीवाद के खिलाफ़ बोल्शेविकों का संघर्ष। पार्टी–विरोधी अगस्त गुट। 174

5. प्राग पार्टी कान्फ्रेन्स, 1912। बोल्शेविकों द्वारा अपनी स्वतंत्र मार्क्सवादी पार्टी का निर्माण। 177

सारांश 183

पांचवा अध्याय

प्रथम साम्राज्यवादी युद्ध के पहले मजदूर आन्दोलन की नयी उठान के दौर में बोल्शेविक पार्टी।

(1912–1914)

1. 1912–'14 के दौर में क्रांतिकारी आन्दोलन की उठान। 185

2. बोल्शेविक अखबार 'प्राव्दा'। चौथी राज्य दूमा में बोल्शेविक गुट। 189

3. क़ानूनी तौर से चलने वाले संगठनों में बोल्शेविकों की जीत। क्रान्तिकारी आन्दोलन की लगातार उठान। साम्राज्यवादी युद्ध से पहले। 197

सारांश 201

छठा अध्याय

साम्राज्यवादी युद्ध में बोल्शेविक पार्टी। रूस में दूसरी क्रान्ति।

(1914–मार्च 1917)

1. साम्राज्यवादी युद्ध का आरंभ और उसके कारण। 202

2. दूसरी इन्टरनेशनल की पार्टियां अपनी साम्राज्यवादी हुकूमतों का साथ देती हैं। दूसरी इन्टरनेशनल टूट कर अलग–अलग अंधराष्ट्रवादी पार्टियों में बंट जाती है। 206

3. युद्ध, शान्ति और क्रान्ति के सवालों पर बोल्शेविक पार्टी के सिद्धांत और उसकी कार्यनीति। 210

4. ज़ारशाही फ़ौज की हार। आर्थिक विघटन। ज़ारशाही का संकट। 217

5. फ़रवरी क्रान्ति। ज़ारशाही का पतन। मजदूर और सैनिक प्रतिनिधियों की सोवियतों का निर्माण। अस्थायी सरकार का निर्माण। दुहरी सत्ता। 219

सारांश 225

सातवां अध्याय

अक्तूबर समाजवादी क्रान्ति की तैयारी और विजय के दौर में बोल्शेविक पार्टी

(अप्रैल 1917–1918)

1. फ़रवरी क्रान्ति के बाद देश की परिस्थिति। गुप्त जीवन से पार्टी का निकलना और खुला राजनीतिक काम करना। लेनिन का पेत्रोग्राद आना। लेनिन की अप्रैल–थीसिस (सैद्धांतिक निबंध)। समाजवादी क्रान्ति की ओर आगे बढ़ने की पार्टी नीति। 227

2. अस्थायी सरकार के संकट की शुरुआत। बोल्शेविक पार्टी की अप्रैल कान्फ्रेन्स। 234

3. राजधानी में बोल्शेविक पार्टी की सफलता। अस्थायी सरकार की फ़ौजों का असफल हमला। मजदूरों और सैनिकों के जुलाई प्रदर्शन का दमन। 204

4. बोल्शेविक पार्टी सशस्त्र विद्रोह की तैयारी का रास्ता अपनाती है। छठी पार्टी कांग्रेस। 244

5. क्रान्ति के खिलाफ़ जनरल कॉर्निलोव का षड्यंत्र। षड्यंत्र का दमन। पेत्रोग्राद और मास्को सोवियतों का बोल्शेविकों से जा मिलना। 249

6. पेत्रोग्राद में अक्तूबर विद्रोह और अस्थायी सरकार की गिरफ्तारी। सोवियतों की दूसरी कांग्रेस और सोवियत सरकार का निर्माण। शान्ति और जमीन पर सोवियतों की दूसरी कांग्रेस के आज्ञा–पत्र। समाजवादी क्रांन्ति की विजय। समाजवादी क्रान्ति की विजय के कारण। 255

7. सोवियत सत्ता को मजबूत करने के लिये बोल्शेविक पार्टी का संघर्ष। ब्रेस्ट–लिटोवस्क की शान्ति। सातवीं पार्टी कांग्रेस। 265

8. समाजवादी निर्माण के प्रारंभिक क़दम उठाने के लिये लेनिन की योजना। ग़रीब किसानों की समितियां और कुलकों पर नियंत्रण। 'वामपंथी' समाजवादी क्रान्तिकारियों का विद्रोह और उसका दमन। सोवियतों की पांचवीं कांग्रेस और रूसी सोवियत समाजवादी प्रजातंत्र संघ के विधान की स्वीकृति। 273

सारांश 277

आठवां अध्याय

विदेशी फ़ौजी हस्तक्षेप और गृह–युद्ध के दौर में बोल्शेविक पार्टी।

(1918–1920)

1. विदेशी फ़ौजी हस्तक्षेप की शुरूआत। गृह–युद्ध का पहला दौर। 279

2. युद्ध में जर्मनी की हार। जर्मनी में क्रान्ति। तीसरी इन्टरनेशनल की स्थापना। आठवीं पार्टी कांग्रेस। 285

3. हस्तक्षेप का विस्तार। सोवियत देश की नाकेबन्दी। कोल्चक की मुहीम और उसकी हार। देनीकिन की मुहीम और उसकी हार। तीन महीने का अवकाश। नवीं पार्टी कांग्रेस। 291

4. सोवियत रूस पर पोलैंड के ज़मींदारों का हमला। जनरल व्रांग्रेल की मुहीम। पोलिस योजना की असफलता। व्रांग्रेल की हार। हस्तक्षेप का अंत। 297

5. सोवियत प्रजातंत्र ने अंग्रेज–फ्रांसीसी–जापानी–पोल हस्तक्षेप की मिली–जुली शक्तियों और रूस के पूंजीवादी–ज़मींदार–गद्दार क्रान्ति विरोध की ताक़तों को क्यों और कैसे हराया? 300

सारांश 304

नवां अध्याय

आर्थिक पुनर्संगठन की शान्तिमय कार्यवाही की ओर संक्रमण के दौर में बोल्शेविक पार्टी

(1921–1925)

1. हस्तक्षेप की हार और गृह–युद्ध के खात्मे के बाद सोवियत प्रजातंत्र। पुनर्संगठन के दौर की कठिनाइयां। 305

2. ट्रेड यूनियनों पर पार्टी में बहस। 10वीं पार्टी कांग्रेस। विरोधी दल की हार। नयी आर्थिक नीति (नेप) की स्वीकृति। 308

3. नेप के प्रथम फल। ग्यारहवीं पार्टी कांग्रेस। सोवियत समाजवादी प्रजातंत्र संघ का निर्माण। लेनिन की बीमारी। लेनिन की सहकार योजना। बारहवीं पार्टी कांग्रेस। 317

4. आर्थिक पुनर्संगठन की कठिनाइयों के खिलाफ़ संघर्ष। त्रात्स्कीवादियों का अपनी कार्यवाही बढ़ाने के लिये लेनिन की बीमारी से फ़ायदा उठाना। नयी पार्टी–बहस। त्रात्स्कीपंथियों की हार। लेनिन की मृत्यु। लेनिन–भर्ती। तेरहवीं पार्टी कांग्रेस। 324

5. पुनर्संगठन के दौर के खात्मे की तरफ़ सोवियत संघ। समाजवादी निर्माण और हमारे देश में समाजवाद की विजय का सवाल। जिनोवियेव–कामेनेव का 'नया विरोध'। चौदहवीं पार्टी कांग्रेस। देश के समाजवादी औद्योगीकरण की नीति। 331

सारांश 341

दसवां अध्याय

देश के समाजवादी औद्योगीकरण के लिये संघर्ष में बोल्शेविक पार्टी (1926–1929)

1. समाजवादी औद्योगिकरण के दौर में कठिनाइयां और उन्हें दूर करने के लिये संघर्ष। त्रात्स्कीवादियों और जिनोवियेवपंथियों के पार्टी–विरोधी गुट का निर्माण। गुट के सोवियत–विरोधी कारनामे। गुट की हार। 342

2. समाजवादी औद्योगीकरण की प्रगति। खेती का पिछड़ना। पंद्रहवीं पार्टी कांग्रेस। खेती में पंचायतीकरण की नीति। त्रात्स्कीवादियों और जिनोवियेवपंथियों के गुट की हार। राजनीतिक दुरंगापन। 349

3. कुलक–विरोधी हमला। पार्टी–विरोधी बुखारिन–राईकोव गुट। पहली पंचवर्षीय योजना की स्वीकृति। समाजवादी होड़। आम पंचायती खेती के आन्दोलन की शुरूआत। 356

सारांश 364

ग्यारहवां अध्याय

खेती के पंचायतीकरण के लिये संघर्ष में बोल्शेविक पार्टी

(1930–1934)

1. 1930–'34 में अंतर्राष्ट्रीय परिस्थिति। पूंजीवादी देशों में आर्थिक संकट। जापान का मंचूरिया हड़पना। जर्मनी में राज्य–सत्ता पर फ़ासिस्ट अधिकार। युद्ध के दो केन्द्र। 366

2. कुलकों को नियंत्रित करने की नीति से, वर्ग रूप में कुलकों को खत्म करने की नीति की तरफ़ आना। पंचायती खेती के आन्दोलन में पार्टी की नीति को तोड़ने–मरोड़ने के खिलाफ़ संघर्ष। तमाम मोर्चे पर पूंजीवादी तत्वों के खिलाफ़ हमला। सोलहवीं पार्टी कांग्रेस। 369

3. राष्ट्रीय अर्थतंत्र की सभी शाखाओं के पुनर्संगठन की नीति। कौशल का महत्व। पंचायती खेती के आन्दोलन का और भी प्रसार। मशीन और ट्रैक्टर स्टेशनों के राजनीतिक विभाग। चार साल में पंचवर्षीय योजना पूरी करने के नतीजे। समूचे मोर्चे पर समाजवाद की विजय। सत्रहवीं पार्टी कांग्रेस। 380

4. बुखारिनपंथियों का राजनीतिक दग़ेबाजी तक उतरना। त्रात्स्कीपंथी दग़ेबाजों का हत्यारों और जासूसों का एक गद्दार गुट बनना। स•म• किरोव की नीच हत्या। बोल्शेविक चौकसी बढ़ाने के लिये पार्टी के उपाय। 395

सारांश 401

बारहवां अध्याय

सोशलिस्ट समाज के निर्माण को पूरा करने के संघर्ष में बोल्शेविक पार्टी। नये विधान का प्रचलन।

(1935–1937)

1. 1935–'37 में अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति। अस्थायी रूप से आर्थिक संकट का कम होना। नये आर्थिक संकट की शुरूआत। इटली का अबीसीनिया हड़पना। स्पेन में जर्मनी और इटली का हस्तक्षेप। मध्य चीन पर जापानी हमला। दूसरे साम्राज्यवादी युद्ध की शुरूआत। 403

2. सोवियत संघ में उद्योग–धंधों और खेती की और अधिक प्रगति। दूसरी पंचवर्षीय योजना का समय से पहले पूरी होना। खेती के पुनर्संगठन और पंचायतीकरण का पूरा होना। कार्यकर्ताओं का महत्व। स्ताखानोव आन्दोलन। खुशहाली का ऊँचा होता हुआ स्तर। ऊंचा होता हुआ सांस्कृतिक स्तर। सोवियत क्रांति की शक्ति। 407

3. सोवियतों की आठवीं कांग्रेस। सोवियत संघ के नये विधान की स्वीकृति। 415

4. जासूसों, तोड़–फोड़ करने वालों और देश के ग़द्दारों के बुखारिन–त्रात्स्की गिरोह के अवशेषों का खात्मा। सोवियत संघ की सर्वोच्च सोवियत के चुनाव की तैयारियां। पार्टी के भीतर व्यापक जनवाद – पार्टी का रास्ता। सोवियत संघ की सर्वोच्च सोवियत के चुनाव। 420

उपसंहार 428

भूमिका

19 वीं सदी के आखिरी दिनों में रूस के प्रारम्भिक छोटे–छोटे मार्क्सवादी गुटों और हल्कों में जन्म लेकर सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) 20वीं सदी की महान् बोल्शेविक पार्टी बनी,, जो आज संसार के किसान–मजदूरों का पहला समाजवादी राज चला रही है। इस तरह, वह अपने जीवन का एक लम्बा और शानदार रास्ता तय कर चुकी है।

क्रान्ति से पहले के रूस के मजदूर आन्दोलन के आधार पर इस पार्टी का विकास हुआ। उसका जन्म उन मार्क्सवादी गुटों और हल्कों से हुआ जिन्होंने अपना सम्बन्ध मजदूर आन्दोलन से क़ायम किया था और उसमें समाजवादी चेतना पैदा की थी। मार्क्सवाद–लेनिनवाद के क्रान्तिकारी सिद्धांत हमेशा इस पार्टी को रास्ता दिखाने वाले रहे हैं। साम्राज्यवाद, साम्राज्यवादी जंगों और सर्वहारा क्रान्तियों के युग की नयी हालतों में उसके नेताओं ने मार्क्स और एंगेल्स के सिद्धांतों को और विकसित किया और वे उन्हें एक ऊंची सतह तक ले आये।

अपने बुनियादी सिद्धान्तों के लिये मजदूर आन्दोलन के भीतर की निम्न पूंजीवादी पार्टियों से लड़ कर यह पार्टी बढ़ी और पुष्ट हुई है। समाजवादी क्रान्तिकारियों (और उनसे भी पहले उनके पुरखे लोकवादियों), मेन्शेविकों, अराजकतावादियों और सभी तरह के पूंजीवादी राष्ट्रवादियों से लड़ कर और पार्टी के भीतर भी मेन्शेविक, अवसरवादी रुझानों से, त्रात्स्कीपंथियों, बुखारिन के अनुयायियों, राष्ट्रवादी गुमराहियों में पड़ने वालों और लेनिनवाद के दूसरे विरोधी गुटों से लड़कर यह पार्टी बढ़ी और पुष्ट हुई है।

मजदूर वर्ग और सभी मेहनतकशों के सारे दुश्मनों से – जमींदारों, पूंजीपतियों, धनी किसानों, तोड़–फोड़ करने वालों, जासूसों और चारों तरफ के पूंजीवादी राज्यों के दलालों से लड़ कर क्रान्तिकारी संघर्ष की आंच में यह पार्टी पकी और मजबूत हुई है।

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) का इतिहास तीन क्रान्तियों का इतिहास है : 1905 की पूंजीवादी–जनवादी क्रान्ति, फरवरी 1917 की पूंजीवादी–जनवादी क्रान्ति और अक्तूबर 1917 की समाजवादी क्रान्ति का इतिहास।

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) का इतिहास ज़ारशाही के नाश और पूजीपतियों और ज़मींदारों की ताकत के नाश का इतिहास है। इसका इतिहास घरेलू जंग में दूसरे देशों की फ़ौजी दखलन्दाजी की हार का इतिहास है। इसका इतिहास हमारे देश में सोशलिस्ट समाज और सोवियत राज्य के निर्माण का इतिहास है।

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) के इतिहास के अध्ययन से हम उस अनुभव से परिचित होंगे जिसे हमारे देश के मजदूरों और किसानों ने समाजवाद के लिये लड़कर हासिल किया है।

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) के इतिहास का अध्ययन, मेहनतकश जनता और मार्क्सवाद–लेनिनवाद के सभी दुश्मनों से हमारी पार्टी की लड़ाई के इतिहास का अध्ययन, हमें **बोल्शेविज्म में माहिर होने में** मदद देता है तथा राजनीतिक तौर से और सजग करता है।

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) के वीरतापूर्ण इतिहास का अध्ययन हमें सामाजिक विकास और राजनीतिक संघर्ष के नियमों के ज्ञान से, क्रान्ति की मूल प्रेरक शक्तियों के ज्ञान से लैस करता है।

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) के इतिहास के अध्ययन से लेनिन और स्टालिन की पार्टी के ध्येय में हमारा विश्वास दृढ़ होता है, संसार भर में कम्युनिज्म की जीत में हमारा विश्वास दृढ़ होता है।

इस पुस्तक में सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) का संक्षिप्त इतिहास है।

पहला अध्याय

रूस में सोशल–डमोक्रेटिक लेबर पार्टी के निर्माण के लिये संघर्ष

(1883–1901)

1. भूदास प्रथा का ख़ात्मा और रूस में औद्योगिक पूंजीवाद का विकास। आधुनिक औद्योगिक सर्वहारा वर्ग का उत्थान। मज़दूर आन्दोलन के पहले क़दम।

दूसरे देशों के मुकाबिले, ज़ारशाही रूस पूंजीवादी विकास की राह पर देर से आगे बढ़ा। 1860 के पहले, रूस में बहुत कम मिलें और कारखाने थे। आर्थिक व्यवस्था का मुख्य रूप भूदास प्रथा पर निर्भर रियायतें थीं। भूदास प्रथा के रहते हुए उद्योग–धंधों का सच्चा विकास न हो सकता था। खेती में भूदासों की बेगार से पैदावार कम होती थी। आर्थिक विकास के समूचे क्रम ने यह लाज़िमी कर दिया था कि भूदास प्रथा का खात्मा किया जाये। 1861 में क्रिमिया की लड़ाई में हारने से कमजोर होकर और ज़मींदारों के खिलाफ़ किसानों के विद्रोह से डर कर ज़ारशाही सरकार को मजबूर होकर भूदास प्रथा का खात्मा करना पड़ा।

लेकिन, भूदास प्रथा का खात्मा हो जाने के बाद भी ज़मींदार किसानों को सताते रहे। उनकी 'मुक्ती' के सिलसिले में उन्होंने किसानों को लूटा। जिस ज़मीन को किसान पहले जोतते–बोते थे, उसके काफ़ी हिस्सों को उन्होंने घेर लिया या छांट लिया। ज़मीन के इन छांटे हुए हिस्सों को किसान अतिरेजकी (छांटी हुई ज़मीन) कहते थे। किसानों को मजबूर किया गया कि अपनी मुक्ति के लिये क़रीब दो अरब रूबल ज़मींदारों को मुक्ति–धन के रूप में दें।

जब भूदास प्रथा का खात्मा हो गया, तब किसानों को मजबूर किया गया कि बहुत ही कड़ी शर्तों पर वे ज़मींदारों से लगान पर जमीनें लें। नक़दी लगान देने के अलावा, किसानों को अक्सर ज़मींदार मजबूर करते थे कि अपने ही घोड़ों और हल–माची से उनकी ज़मीन का एक निश्चित हिस्सा वे बिना पैसे लिये जोतें–बोयें।

इसे ***अत्राबोत्की*** या ***बार्शचीना*** (लगान के बदले मेहनत, बेगार) कहते थे। ज्यादातर किसानों को मजबूर होना पड़ता था कि वे ज़मींदारों को गल्ले की शकल में लगान दें, जो उनकी फ़सल का आधा होता था। इसे ***इस्पोलू*** (अधियारी) कहते थे।

इस तरह, हालत करीब–करीब वैसी ही रही जैसी कि भूदास प्रथा में थी। फ़र्क यही था कि किसान निजी तौर पर अब आजाद था और जानवर की तरह उसकी खरीद–फ़रोख न हो सकती थी।

ज़मींदारों ने पिछड़े हुए किसान कुनबों को शोषण के विभिन्न तरीकों (लगान, जुर्माना) से बेदम कर दिया था। ज़मींदारों के सताने की वजह से, ज्यादातर किसान अपनी खेती में तरक्क़ी न कर सकते थे। इसीलिये, क्रान्ति से पहले के रूस में खेती बहुत ज्यादा पिछड़ी हुई थी, जिससे अक्सर फ़सल न होती थी और अकाल पड़ते थे।

भूदास प्रथा के अवशेषों से, भारी टैक्स और जमींदारों को मुक्ति–धन देने से, जो कभी–कभी किसान कुनबे की आय से भी ज्यादा होता था, किसान तबाह हो गये। वे दर–दर के भिखारी बन गये और रोजी की तलाश में उन्हें मजबूरन अपने गांव छोड़ने पड़े। वे मिलों और कारखानों में काम करने चले गये। कारखानेदारों को यह सस्ते में श्रम–शक्ति खरीदने का ज़रिया मिल गया।

मजदूरों और किसानों के सिर पर मुंशी,, दारोगा, चौकीदार, जमादार वगैरह की एक फ़ौज की फ़ौज थी जो शोषित और मेहनत करनेवाली जनता से ज़ार, पूंजीपतियों और ज़मींदारों की रक्षा करती थी। 1903 तक शारीरिक दण्ड देने की प्रथा चालू थी। हालांकि भूदास प्रथा का खात्मा कर दिया गया था, फिर भी छोटे से छोटे क़सूर के लिये और टैक्स न देने पर किसानों को पीटा जाता था। पुलिस और कज़ाक मजदूरों को मारते थे, खास तौर से हड़ताल में, जबकि मजदूर कारखानेदारों द्वारा जिन्दगी असह्य बना दिये जाने पर काम बन्द कर देते थे। ज़ारशाही में मजदूरों और किसानों के कोई भी राजनीतिक अधिकार नहीं थे। निरंकुश ज़ारशाही जनता की सबसे बड़ी शत्रु थी।

ज़ारशाही रूस जातियों के लिये जेलखाना था। बहुसंख्यक गैर रूसी जातियों को कोई भी अधिकार न दिये गये थे और उन्हें हर तरह से लगातार अपमानित किया

और नीचा दिखाया जाता था। ज़ारशाही सरकार ने रूसी जनता को सिखलाया था कि वह जातीय इलाक़ों के रहनेवालों को नफ़रत की नज़र से देखे, उन्हें घटिया नस्ल का समझे। सरकारी तौर पर वह उन्हें ***इनोरोत्सी*** (विदेशी) कहती थी और उनके खिलाफ घृणा और नफ़रत फैलाती थी। ज़ारशाही सरकार जानबूझ कर जातीय द्वेष की आग लगाती थी, एक जाति को दूसरी जाति के खिलाफ़ उकसाती थी, यहूदियों के कत्लेआम कराती थी और ट्रांस कॉकेशिया में तातारों और आरमीनियनों को एक–दूसरे का कत्लेआम करने के लिये भड़काती थी।

जातीय इलाक़ों में सभी नहीं, तो करीब–करीब सभी, सरकारी जगहों पर रूसी अफसर होते थे। सरकारी संस्थाओं और कचहरियों में सभी काम रूसी भाषा में होता था। ग़ैर रूसी जातियों की भाषाओं में अखबार और किताबें छापने या स्कूलों में वहां की भाषा में पढ़ाने की मनाही थी। ज़ारशाही सरकार कोशिश करती थी कि जातीय संस्कृति की हर चिंगारी बुझा दी जाये। वह गैर रूसी जातियों को ज़बर्दस्ती "रूसी बनाने" की नीति पर चलती थी। ग़ैर रूसी जातियों के लिये ज़ारशाही उन्हें सतानेवाला जल्लाद थी।

भूदास प्रथा के खात्मे के बाद, रूस में औद्योगिक पूंजीवाद का विकास काफ़ी तेजी के साथ हुआ हालांकि भूदास प्रथा के अवशेषों से उसमें अब भी अड़चनें पड़ती थीं। 1865 से 1890 तक, 25 वर्षों में, बड़ी मिलों और कारखानों में और रेलों पर काम करनेवाले मजदूरों की तादाद 7,06,000 से बढ़ कर 14,33,000 हो गई, यानी दूनी से ज्यादा हो गयी।

1890 के बाद, बड़े पैमाने के पूंजीवादी उद्योग–धंधे और भी तेजी के साथ विकसित होने लगे। दस साल के बाद, रूस के पचास यूरोपीय सूबों में ही बड़ी मिलों और कारखानों में, खानों और रेलों में काम करने वाले मजदूरों की संख्या 22,07,000 और समूचे रूस में उनकी संख्या 27,92,000 हो गई थी।

यह एक आधुनिक औद्योगिक सर्वहारा वर्ग था। यह वर्ग भूदास प्रथा के जमाने में कारखानों में काम करनेवाले मजदूरों से और छोटी–मोटी दस्तकारी और दूसरी तरह के धंधों में काम करनेवाले मजदूरों से बुनियादी तौर पर भिन्न था। वह इसलिये भिन्न था कि बड़े पूंजीवादी धंधों में काम करनेवाले मजदूरों के अन्दर एकता की भावना थी और इसलिये भी कि उसके अन्दर लड़ाकू क्रान्तिकारी गुण थे।

1890 के बाद उद्योग–धंधों में जो बढ़ती दिखाई दी, उसका खास सबब बड़े पैमाने पर रेलों का बनना था। दस सालों में (1890 से 1900 तक) 2,100 वर्स्त नई रेलें बिछाई

गयीं। रेलों की वजह से धातु की भारी मांग हुई (रेलों के लिये, इंजिनों और गाड़ियों के लिये) और ज्यादा तादाद में ईंधन, कोयला और तेल के लिये भी मांग बराबर बढ़ती गयी। इस वजह से धातुओं और ईंधन के उद्योगों का विकास हुआ।

सभी पूंजीवादी देशों की तरह, क्रांति से पहले के रूस में उद्योग–धंधों में बढ़ती के बाद औद्योगिक संकट और ठहराव का जमाना आता था, जिसका गहरा असर मज़दूरों पर पड़ता था और वे लाखों की तादाद में बेकारी और गरीबी के शिकार होते थे।

हालांकि भूदास प्रथा के खात्मे के बाद रूस में पूंजीवाद का विकास काफ़ी तेजी से हुआ, फिर भी आर्थिक विकास में रूस दूसरे पूंजीवादी देशों से काफ़ी पीछे था। जनता का बहुसंख्यक हिस्सा अब भी खेती में लगा हुआ था। अपनी प्रसिद्ध पुस्तक ***रूस में पूंजीवाद का विकास*** में लेनिन ने 1897 की आम जनगणना से महत्वपूर्ण आंकडे दिये थे। इन आंकड़ों से मालूम होता था कि सम्पूर्ण जनता का क़रीब 5/6 भाग खेती में लगा हुआ है और सिर्फ करीब 1/6 हिस्सा बड़े और छोटे उद्योग–धंधों, व्यापार, रेलों और जल–मार्गों, मकान बनाने के कामों और लकड़ी वगैरह के काम में लगा हुआ है।

इससे मालूम होता है कि हालांकि रूस में पूंजीवाद का विकास हो रहा था, वह अब भी एक खेतिहर, आर्थिक रूप से पिछड़ा हुआ देश एक निम्न पूंजीवादी देश था। यानि, वह एक ऐसा देश था जिसमें छोटी मिल्कियत पर आधारित कम पैदावार वाली निजी खेती की अब भी बहुतायत थी।

पूंजीवाद शहरों में ही नहीं बल्कि देहात में भी विकसित हो रहा था। क्रान्ति से पहले के रूस के सबसे बड़े वर्ग, किसानों में, भीतर से टूटने, छिन्न–भिन्न होने का एक सिलसिला जारी था। ज्यादा खाते–पीते किसानों से धनी किसानों का एक ऊपरी स्तर पैदा हो रहा था। ये देहात के पूंजीपति थे। दूसरी तरफ़ बहुत से किसान तबाह हो रहे थे और ग़रीब किसानों, देहाती सर्वहारा और अर्द्ध सर्वहारा की तादाद बढ़ रही थी। जहां तक मध्यम किसानों का सवाल था, उनकी संख्या साल दर साल घटती जाती थी।

1903 में,रूस में क़रीब एक करोड़ किसान कुनबे थे। **गांव के ग़रीबों से** नाम की अपनी पुस्तिका में, लेनिन ने हिसाब लगाया था कि इस तादाद में कम से कम 35,00,000 कुनबे ऐसे थे **जिनके पास घोड़े नहीं थे।** ये सबसे ग़रीब किसान थे जो आम तौर से अपनी ज़मीन का थोड़ा हिस्सा ही बोते थे, बाक़ी धनी किसानों को उठा देते थे और खुद रोजी के लिये दूसरे उपाय तलाश करने निकल पड़ते थे। इन

किसानों की हालत सर्वहारा के सबसे नज़दीक थी। लेनिन ने इन्हें देहाती सर्वहारा या अर्द्ध सर्वहारा कहा था।

दूसरी तरफ़, (उन एक करोड़ किसान कुनबों में से) पन्द्रह लाख धनी किसानों के परिवार ऐसे थे जिन्होंने किसानों की कुल खेती की आधी ज़मीन अपने हाथ में कर रखी थी। ये देहाती पूंजीपति गरीब और मध्यम किसानों को पीस कर खुद धनी बन रहे थे। वे खेतिहर मजदूरों की जांगर से फ़ायदा उठा रहे थे और देहाती पूंजीपति वन रहे थे।

रूस का मजदूर वर्ग 1870 में ही, खास तौर से 1880 के बाद, और जागने लगा था और पूंजीपतियों के खिलाफ़ उसने संघर्ष छेड़ दिया था। ज़ारशाही रूस में मजदूरों की जिन्दगी बड़ी ही कठिन थी। 1880 के करीब, मिलों और कारखानों में काम करने का दिन साढ़े बारह घंटे से कम का न था और सूती धंधों में 14 से 15 घंटे तक का हो जाता था। औरतों और बच्चों की मेहनत का शोषण बड़े पैमाने पर होता था। बच्चे उतने ही घंटे काम करते थे जितने घंटे बड़े, लेकिन औरतों की तरह तनख़ाह बहुत कम पाते थे। मजदूरी बेहद कम दी जाती थी। ज्यादातर मजदूरों को 7 या 8 रूबल माहवार दिया जाता था। धातु के कारखानों और ढलाई घरों के मजदूरों को, जो सबसे ज्यादा तनख़ाह पाते थे, उन्हें 35 रूबल माहवार से ज्यादा मजदूरी न मिलती थी। मज़दूरों की रक्षा करने के लिये कोई भी क़ायदे–कानून नहीं थे। नतीजा यह होता था कि मजदूर भारी तादाद में घायल होते और मारे जाते थे। मज़दूरों का बीमा न होता था और हर तरह की दवा–दारू के लिये उन्हें पैसे देने होते थे। इनके रहने के घरों की हालत भयानक थी। कारखाने की बैरिकों में छोटी–छोटी 'खोलियों' में दस–दस बारह–बारह मजदूरों को ठूंस दिये जाते थे। मजदूरी देने के मामले में कारखानेदार अक्सर मजदूरों को ठगते थे। कारखाने की दूकानों में भारी कीमतें देकर चीजें खरीदने के लिये मजदूरों को मजबूर किया जाता था। और जुर्माने के जरिये उनकी जेबें कतरी जाती थीं।

मज़दूर एकजुट होने लगे और अपनी असह्य परिस्थितियों में सुधार करने के लिये कारखानेदारों के सामने मिली–जुली मांगे रखने लगे। काम बन्द करके, वे हड़तालें करने लगे। 1870 और '80 में जो शुरू–शुरू की हड़तालें हुईं, आम तौर से उनका कारण बेहद जुर्माना, पगार के मामले में मजदूरों को झांसा देना और ठगना तथा मजदूरी की दरों में कमी करना होता था।

इन शुरू की हड़तालों में, मजदूर निराश होकर कभी–कभी मशीनें तोड़ देते थे, कारखानों की खिड़कियां फ़ोड देते थे और कारखानों की दूकानों और उनके दफ्तरों को बर्बाद कर देते थे।

ज्यादा आगे बढ़े हुए मजदूर यह समझने लगे कि पूंजीपतियों के खिलाफ़ संघर्ष में अगर उन्हें सफल होना है तो उन्हें संगठित होना पड़ेगा। मजदूरों के यूनियन बनने लगे।

1875 में, दक्षिण रूस के मजदूरों का यूनियन ओदेसा में बना। मज़दूरों का यह पहला संगठन आठ या नौ महीने चला और उसके बाद ज़ार की हुकूमत ने उसे कुचल डाला।

1878 में, रूसी मजदूरों का उत्तरी, यूनियन सेंट पीटर्सबर्ग (पीतरबुर्ग) में बना। इसके नेता खाल्तूरिन, जो बढ़ई था और अबनोर्स्की, जो फ़िटर था, बने। यूनियन के कार्यक्रम के अनुसार, यूनियन के उद्देश्य और ध्येय वैसे ही थे जैसे पच्छिम की सोशल–डेमोक्रेटिक लेबर पार्टियों के। यूनियन का अंतिम घ्येय यह था कि वह समाजवादी क्रांति करे –"मौजूदा राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था को खत्म किया जाये जो एक बहुत ही अन्यायपूर्ण व्यवस्था है।" अबनोर्स्की, जो यूनियन के जन्मदाताओं में से था, कुछ समय तक विदेश रह आया था और वहां पर वह मार्क्सवादी सोशल–डेमोक्रेटिक पार्टियों से और पहली इण्टरनेशनल की कार्यवाहियों से, जिसका संचालन मार्क्स करते थे, परिचित हो आया था। इस बात की छाप रूसी मजदूरों के उत्तरी यूनियन के कार्यक्रम पर पड़ी। यूनियन का फ़ौरी उद्देश्य जनता के लिये राजनीतिक स्वाधीनता और राजनीतिक अधिकार (बोलने, अखबार निकालने, सभा करने वगैरह की आज़ादी) हासिल करना था। फ़ौरी मांगों में काम के दिन के घण्टे कम करने की मांग भी शामिल थी।

यूनियन की सदस्यता 200 तक पहुंच गयी और क़रीब इतने ही उसके हमदर्द थे। वह मजदूरों की हड़तालों में हिस्सा लेने लगा, उनका नेतृत्व करने लगा। ज़ार की हुकूमत ने मजदूरों के इस यूनियन को भी कुचल दिया।

लेकिन, मजदूर आन्दोलन एक जिले से दूसरे जिले तक फैलता हुआ बराबर बढ़ता रहा। 1880 के आसपास, बहुत सी हड़तालें हुईं। पांच साल के दौरान (1881 से '86 तक) में 48 हड़तालें हुईं, जिनमें 80,000 मजदूरों ने हिस्सा लिया।

क्रान्तिकारी आन्दोलन के इतिहास में बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका उस बड़ी हड़ताल की थी जो 1885 में अरेखोवोजुयेवो की मोरोजोव मिल में हुई थी।

इस मिल में क़रीब 8,000 मज़दूर काम करते थे। उनके काम करने की हालत दिन पर दिन गिरती जाती थी। 1882 से 84 तक, पांच बार उनकी मज़दूरी में कटौती हुई। 1884 में, मज़दूरी की दरों में एकबारगी 25 फ़ीसदी कमी की गयी। इसके अलावा,

कारखानेदार मोरोज़ोव जुर्माने करके मज़दूरों को सताता था। हड़ताल के बाद जो मुकदमा हुआ, उसमें पता चला कि मज़दूर जो भी कमाते थे उसमें से फ़ी रूबल 30 से 50 कोपक तक जुर्माने की शक्ल में कारखानेदार की जेब में चला जाता था। मज़दूर यह डकैती और न सह सके। जनवरी 1885 में, उन्होंने हड़ताल कर दी। हड़ताल का संगठन पहले से ही किया गया था। राजनीतिक तौर से आगे बढ़े हुए मज़दूर प्योत्र मोयरूसेयंको ने उसका नेतृत्व किया। वह रूसी मजदूरों के उत्तरी यूनियन का सदस्य रह चुका था और उसे थोड़ा बहुत क्रांतिकारी अनुभव हासिल था। हड़ताल शुरू होने से पहले मोयरूसेयंको और दूसरे बुनकरों ने जो ज्यादा वर्ग–चेतन थे, मिल–मालिक के सामने पेश करने के लिये कुछ मांगें तैयार कीं। मज़दूरों की एक गुप्त सभा में इन मांगों का अनुमोदन किया गया। खास मांग बेहिसाब जुर्मानों को खत्म करने की थी।

हथियारबन्द शक्ति से इस हड़ताल को दबाया गया। 600 से ऊपर मज़दूर पकड़ लिये गये और बीसों को मुकदमा चलाने के लिये बन्द कर रखा गया।

इसी तरह की हड़तालें 1885 में इवानोवो–वज़नेसेंस्क में हुईं।

मज़दूर आन्दोलन की बढ़ती से डर कर, अगले साल ज़ार सरकार को मजबूरन जुर्मानों के बारे में एक कानून बनाना पड़ा। कानून यह था कि जुर्माने से जो पैसा मिले वह कारखानेदारों की जेबों में न जाये बल्कि खुद मज़दूरों की ज़रूरतों में लगाया जाये।

मोरोज़ोव मिल और दूसरी जगह की हड़तालों ने मज़दूरों को सिखा दिया कि संगठित होकर संघर्ष करने से बहुत कुछ हासिल हो सकता है। मज़दूर आन्दोलन ऐसे योग्य नेता और संगठनकर्ता पैदा करने लगा जो दृढ़ता के साथ मज़दूर वर्ग के हितों का समर्थन करते थे।

इसके साथ ही मज़दूर आन्दोलन की बढ़ती के आधार पर और पच्छिमी यूरोप के मज़दूर आन्दोलन के असर से, रूस में पहले मार्क्सवादी संगठन बनने लगे।

2. रूस में नरोद्वाद (लोकवाद) और मार्क्सवाद। प्लेखानोव और उसका 'मजदूर उद्धारक' गुट। लोकवाद के खिलाफ़ प्लेखानोव का संघर्ष। रूस में मार्क्सवाद का फैलना।

मार्क्सवादी गुटों के जन्म लेने से पहले रूस में क्रांतिकारी काम लोकवादी किया करते थे। ये लोग **मार्क्सवाद** के विरोधी थे।

पहला रूसी मार्क्सवादी गुट 1883 में बना। यह **'मजदूर उद्धारक'** गुट था, जिसे ग•व• प्लेखानोव ने रूस के बाहर जिनेवा में बनाया था। क्रांतिकारी काम की वजह से, ज़ार सरकार के दमन से बचने के लिये वहां उसे मजबूरन जाना पड़ा था।

पहले **प्लोखानोव खुद भी लोकवादी था। लेकिन विदेश में मार्क्सवाद का अध्ययन करने के बाद,** उसने लोकवाद से नाता तोड़ लिया और **मार्क्सवाद का श्रेष्ठ प्रचारक** बन गया।

'मज़दूर उद्धारक' गुट ने रूस में मार्क्सवाद फैलाने में बहुत कुछ किया। इस गुट के लोगों ने मार्क्स और एंगेल्स की पुस्तकों का रूसी में अनुवाद किया। इन किताबों में ***कम्युनिस्ट घोषणा पत्र, मजूरी और पूंजी, समाजवाद–काल्पनिक और वैज्ञानिक*** आदि थीं। उन्होंने इन किताबों को बाहर छपवाया और गुप्त रूप से रूस में बंटवाया। प्लेखानोव, जासूलिच, ऐक्सेलरोद और इस गुट के दूसरे लोगों ने मार्क्स और एंगेल्स के सिद्धांतों की व्याख्या करते हुए, **वैज्ञानिक समाजवाद** के विचारों की व्याख्या करते हुए, कई पुस्तकें भी लिखीं।

सर्वहारा वर्ग के महान् शिक्षक मार्क्स और एंगेल्स ने सबसे पहले बतलाया था कि काल्पनिक समाजवादियों के मत के खिलाफ समाजवाद सपना देखनेवालों (कल्पनावादियों) का स्वप्न नहीं है, बल्कि आधुनिक पूंजीवादी समाज के विकास का लाजिमी नतीजा है। उन्होंने दिखलाया था कि पूंजीवादी व्यवस्था वैसे ही खत्म होगी जैसे भूदास प्रथा खत्म हुई थी और यह कि सर्वहारा वर्ग के रूप में पूंजीवाद खुद अपनी कब्र खोदने वाले पैदा कर रहा था। उन्होंने दिखाया था कि सर्वहारा का वर्ग–संघर्ष ही, पूंजीपतियों पर सर्वहारा की विजय ही, मनुष्य मात्र को पूंजीवाद और शोषण से मुक्त करेगी।

मार्क्स और एंगेल्स ने सर्वहारा वर्ग को सिखलाया था कि वह अपनी ताकत पहचाने, अपने वर्ग–हित पहचाने और पूंजीपतियों के खिलाफ़ जमकर संघर्ष करने के लिये एक हो। मार्क्स और एंगेल्स ने पूंजीवादी समाज के विकास के नियमों का पता लगाया और वैज्ञानिक ढंग से साबित किया कि पूंजीवादी समाज के विकास से और उसके अन्दर चलनेवाले वर्ग–संघर्ष से लाजिमी तौर पर पूंजीवाद का नाश होगा, सर्वहारा की विजय होगी, **सर्वहारा वर्ग की डिक्टेटरशिप** कायम होगी। मार्क्स और एंगेल्स ने सिखलाया था कि शान्तिपूर्ण ढंग से पूंजी की ताकत से छुटकारा पाना और पूंजीवादी सम्पत्ति को जन–संपत्ति बनाना असंभव है। उन्होंने सिखलाया था कि मजदूर वर्ग यह काम पूंजीपतियों के खिलाफ़ क्रांतिकारी हिंसा के जरिये, **सर्वहारा क्रान्ति** के जरिये ही कर सकता है, अपनी राजनीतिक हुकूमत – सर्वहारा वर्ग की डिक्टेटरशिप

– कायम करके ही कर सकता है, जो शोषकों के विरोध को कुचल दे और एक नये, वर्गहीन कम्युनिस्ट समाज का निर्माण करे।

मार्क्स और एंगेल्स ने सिखाया था कि पूंजीवादी समाज में औद्योगिक सर्वहारा वर्ग सबसे क्रान्तिकारी और इसलिये सबसे आगे बढ़ा हुआ वर्ग है और सर्वहारा जैसा वर्ग ही पूंजीवाद से असंतुष्ट तमाम ताकतों को अपने चारों तरफ बटोर सकता है और पूंजीवाद पर हल्ला बोलने के लिये उनका नेतृत्व कर सकता है। लेकिन, पुरानी दुनिया को पछाड़ने और नये वर्गहीन समाज का निर्माण करने के लिये यह जरूरी है कि सर्वहारा की अपनी मजदूर वर्ग की पार्टी हो, जिसे मार्क्स और एंगेल्स कम्युनिस्ट पार्टी कहते थे।

रूस के पहले मार्क्सवादी गुट, प्लेखानोव के 'मजदूर उद्धारक' गुट ने मार्क्स और एंगेल्स के मत का प्रचार करने का काम उठाया था।

'मजदूर उद्धारक' गुट ने विदेश के रूसी अखबारों में मार्क्सवाद का झंडा उस समय ऊंचा किया जब कि रूस में कोई सोशल–डेमोक्रेटिक (सामाजिक–जनवादी) आन्दोलन जन्म नहीं ले पाया था। पहले जरूरी था कि इस तरह के आन्दोलन के लिये सिद्धांतों और विचारधारा की जमीन तैयार की जाये। मार्क्सवाद और सोशल–डेमाक्रेटिक आन्दोलन के फैलने में विचारधारा सम्बन्धी खास अड़चन लोकवादी मत था, जो उस समय आगे बढ़े हुए मजदूरों और क्रान्तिकारी रुझान रखनेवाले बुद्धिजीवियों में फैला हुआ था।

रूस में जब पूंजीवाद का विकास हुआ तो मजदूर वर्ग एक ताकतवर और आगे बढ़ी हुई शक्ति बना, जो इस योग्य था कि संगठित होकर क्रान्तिकारी लड़ाई लड़ सके। लेकिन, लोकवादी मजदूर वर्ग के नेतृत्व की भूमिका न समझते थे। रूसी लोकवादी ग़लती से समझते थे कि मुख्य क्रान्तिकारी ताकत मजदूर वर्ग नहीं बल्कि किसान हैं और ज़ार और जमींदारों का शासन किसानों के विद्रोह से खत्म किया जा सकता है। लोकवादी मजदूर वर्ग से परिचित नहीं थे और यह महसूस नहीं करते थे कि मजदूर वर्ग से मैत्री किये बिना और उसके मार्ग–दर्शन के बिना अकेले किसान ज़ारशाही और जमींदारों को परास्त नहीं कर सकते। लोकवादी नहीं समझते थे कि मजदूर वर्ग समाज का सबसे क्रान्तिकारी और सबसे आगे बढ़ा हुआ वर्ग है।

लोकवादियों ने पहले कोशिश की कि ज़ार सरकार के खिलाफ़ संघर्ष करने के लिये किसानों को उभारें। इस उद्देश्य से नौजवान क्रान्तिकारी बुद्धिजीवियों ने किसानों की पोशाक पहनी और देहातों की तरफ गये–'जनता की ओर', जैसा कि कहा जाता

था। इसीलिये उनका नाम नरोद, जनता से 'नरोद्निक' पड़ा। लेकिन किसानों में उन्हें समर्थन करनेवाले नहीं मिले, क्योंकि किसानों की भी सही जानकारी या समझ उनमें नहीं थी। उनमें से अधिकांश को पुलिस ने पकड़ लिया। इस पर, लोकवादियों ने तय किया कि निरंकुश ज़ारशाही के खिलाफ़ वे अकेले, जनता के बिना ही लड़ेंगे। इससे और भी भारी ग़लतियां हुईं।

'नरोद्नाया वोल्या' ('जनता की इच्छा') नाम की एक गुप्त लोकवादी संस्था ज़ार की हत्या का षड़यंत्र करने लगी। पहली मार्च, 1881 को **'नरोद्नाया वोल्या'** के सदस्य ज़ार अलेक्जेण्डर द्वितीय को बम से मारने में सफल हुए। लेकिन, इससे जनता का कुछ भी भला नहीं हुआ। इक्का–दुक्का आदमियों की हत्या से निरंकुश ज़ारशाही का खात्मा न हो सकता था, न जमींदार वर्ग निर्मूल किया जा सकता था। मारे हुए ज़ार के बदले, दूसरा जार अलेक्जेण्डर तृतीय आ गया, जिसकी हुकूमत में मजदूरों और किसानों की हालत और बदतर हो गयी।

लोकवादियों ने ज़ारशाही का मुकाबिला करने के लिये इक्का–दुक्का व्यक्तियों की हत्या करने का व्यक्तिगत आतंकवाद का जो रास्ता अपनाया था, वह गलत था और क्रान्ति के लिये हानिकर था। व्यक्तिगत आतंकवाद की नीति इस गलत लोकवादी सिद्धांत पर टिकी हुई थी कि कुछ लोग सक्रीय 'वीर' होते हैं और बाकी जनता निष्क्रिय 'भेड़ियाधसान' होती है, जो 'वीरों' से आशा करती है कि वे बड़े–बड़े काम करें। इस गलत सिद्धांत का दावा था कि कुछ बड़े आदमी ही इतिहास बनाते हैं जबकि आम जनता, आवाम, वर्ग, 'भेडियाधसान' – जैसा कि लोकवादी लेखक उसे नफ़रत से कहते थे – इस बात के अयोग्य है कि सचेत और संगठित होकर काम कर सके। **लोग अन्धे होकर 'वीरों'** के पीछे ही चल सकते हैं। इस वजह से, लोकवादियों ने किसानों में और मजदूर वर्ग में आम क्रान्तिकारी काम करना छोड़ दिया और **व्यक्तिगत आतंकवाद** का रास्ता अपनाया। उस समय के एक बहुत ही प्रसिद्ध क्रान्तिकारी स्तपान खाल्तूरिन को उन्होंने मना लिया कि वह क्रान्तिकारी मज़दूरों के यूनियन का संगठन करना छोड़ दे और सारा समय आतंकवाद में लगाये।

शोषक वर्ग के **इक्का–दुक्का प्रतिनिधियों** की इन हत्याओं से, ऐसी हत्याओं से जिनसे क्रान्ति को कोई फायदा न होता था, लोकवादियों ने मेहनतकश जनता का ध्यान उस समूचे वर्ग के खिलाफ़ संघर्ष से हटाया। मजदूर वर्ग और किसानों की क्रान्तिकारी पहल और कार्यवाही के विकास में उन्होंने अड़चन डाली।

लोकवादियों ने क्रान्ति में अपनी प्रमुख भूमिका पहचानने से मजदूर वर्ग को रोका और मजदूर वर्ग की स्वतंत्र पार्टी बनने में बिलंब पैदा किया।

हालांकि ज़ार सरकार ने लोकवादियों का गुप्त संगठन कुचल दिया था, लेकिन लोकवादी विचार क्रान्तिकारी रुझान के बुद्धिजीवियों में बहुत दिनों तक कायम रहे। बचे हुए लोकवादियों ने रूस में मार्क्सवाद के प्रसार का डट कर विरोध किया और मजदूर वर्ग के संगठन में बाधा डाली।

इसलिये, रूस में लोकवाद का मुकाबिला करके ही मार्क्सवाद बढ़ सकता था और शक्तिशाली बन सकता था।

'मजदूर उद्धारक' गुट ने लोकवादियों के गलत विचारों के खिलाफ लड़ाई छेड़ दी। उसने दिखाया कि उनके विचार और संघर्ष के तरीके मजदूर आन्दोलन के लिये कितने ज्यादा अहितकर हैं।

लोकवादियों के खिलाफ़ अपनी रचनाओं में, प्लेखानोव ने दिखाया कि उनके विचार और वैज्ञानिक समाजवाद में कोई भी समानता नहीं है, हालांकि वे अपने को समाजवादी कहते थे।

सबसे पहले प्लेखानोव ने लोकवादियों के गलत विचारों की मार्क्सवादी आलोचना की। लोकवादी धारणाओं पर अचूक हमला करते हुए, प्लेखानोव ने साथ–साथ मार्क्सवादी विचारों का सुन्दर प्रतिपादन भी किया।

लोकवादियों की मुख्य भूलें क्या थीं, जिन पर प्लेखानोव ने ऐसा घातक हमला किया?

पहले तो लोकवादियों का दावा था कि रूस में पूंजीवाद एक 'आकस्मिक' वस्तु है, वह विकसित न होगा और इसलिये सर्वहारा वर्ग भी न बढ़ेगा, न विकसित होगा।

दूसरे, लोकवादी मजदूर वर्ग को क्रान्ति का प्रमुख वर्ग न मानते थे। वे सर्वहारा वर्ग के बिना समाजवाद हासिल करने का सपना देखते थे। वे समझते थे कि प्रमुख क्रान्तिकारी शक्ति किसान हैं – जिनका नेतृत्व बुद्धिजीवी करेंगे – और किसानों के कम्यून हैं जिन्हें वे समाजवाद का बीज और बुनियाद समझते थे।

तीसरे, मानव इतिहास के समूचे क्रम के बारे में लोकवादी विचार गलत और हानिकर थे। वे समाज के आर्थिक और राजनीतिक विकास के नियमों को न जानते थे, न समझते थे। इस मामले में वे बिल्कुल पिछड़े हुए थे। उनके हिसाब से इतिहास का निर्माण वर्गों के द्वारा न होता था और वर्गों के संघर्ष द्वारा न होता था, बल्कि महापुरुषों द्वारा, 'वीरों' द्वारा होता था, जिनके पीछे आम जनता, 'भेड़ियाधसान', अवाम, वर्ग आंख मूंद कर चलते थे।

लोकवादियों का विरोध और खंडन करते हुए, प्लेखानोव ने कई मार्क्सवादी पुस्तकें रचीं जिन्हें पढ़ कर रूस के मार्क्सवादी बढ़े और शिक्षित हुए। ***समाजवाद और राजनीतिक संघर्ष, हमारे मतभेद, इतिहास के प्रति एक सत्तावादी दृष्टिकोण का विकास*** जैसी उसकी पुस्तकों ने रूस में मार्क्सवाद की जीत के लिये रास्ता साफ किया। प्लेखानोव ने अपनी रचनाओं में मार्क्सवाद के बुनियादी सिद्धांतों का प्रतिपादन किया। 1895 में प्रकाशित ***इतिहास के प्रति एक सत्तावादी दृष्टिकोण का विकास*** नाम की पुस्तक खास तौर से महत्वपूर्ण थी। लेनिन का कहना था कि इस पुस्तक को पढ़कर "रूसी मार्क्सवादियों की पूरी एक पीढ़ी तैयार हुई है।" (***लेनिन ग्रन्थावली,*** रूसी संस्करण, खण्ड14, पृ• 347)।

लोकवादियों के खिलाफ़ अपनी रचनाओं में, प्लेखानोव ने दिखलाया कि लोकवादी जिस तरह से सवाल करते थे कि 'रूस में पूंजीवाद का विकास हो या न हो'– यह सवाल करने का ढंग ही गलत था। प्लेखानोव ने कहा कि दरअसल रूस पूंजीवादी विकास के रास्ते पर **पहले ही चल पड़ा था।** उसने तथ्य देकर यह साबित किया और बताया कि ऐसी कोई ताकत नहीं है जो उसे इस रास्ते से हटा सके।

क्रांतिकारियों का यह काम न था कि रूस में पूंजीवाद के विकास को **रोकें, यह तो वे किसी तरह भी** न कर सकते थे। उनका काम यह था कि पूंजीवाद के विकास ने जिस ताकतवर क्रान्तिकारी शक्ति को, यानी मजदूर वर्ग को जन्म दिया था, उसका समर्थन प्राप्त करें, उसकी वर्ग–चेतना को विकसित करें, उसे संगठित करें और उसकी अपनी मज़दूर वर्ग की पार्टी बनाने में मदद करें।

प्लेखानोव ने लोकवादियों की दूसरी मुख्य ग़लती का भी खण्डन किया कि क्रान्तिकारी संघर्ष में सर्वहारा वर्ग हिरावल की भूमिका अदा नहीं करेगा। लोकवादी रूस में सर्वहारा के उत्थान को 'ऐतिहासिक दुर्घटना' जैसी चीज समझते थे और 'सर्वहारावाद के नासूर' की बातें किया करते थे। मार्क्सवाद के सिद्धांतों का समर्थन करते हुए, प्लेखानोव ने दिखाया कि वे रूस पर पूरी तरह लागू हो सकते हैं और तादाद में किसानों के बहुत ज्यादा होने पर भी और सर्वहारा वर्ग के संख्या में निस्बतन कम होने पर भी, क्रान्तिकारियों को अपनी मुख्य आशाएं सर्वहारा वर्ग और उसकी बढ़ती पर ही आधारित करनी चाहिये।

सर्वहारा वर्ग पर ही क्यों?

इसलिये कि हालांकि सर्वहारा वर्ग अभी तादाद में कम था, लेकिन वह मेहनतकश वर्ग था जिसका सम्बन्ध आर्थिक व्यवस्था के **सबसे आगे बढ़े हुए** रूप से बड़े पैमाने की पैदावार से था और इस वजह से जिसका भविष्य महान् था।

इसलिये कि वर्ग रूप में सर्वहारा साल दर साल **बढ़ रहा था,** राजनीतिक रूप से **विकसित हो रहा था।** बड़े पैमाने की पैदावार में मजदूरी की हालत की वजह से, वह आसानी से संगठित किया जा सकता था। अपनी सर्वहारा स्थिति की वजह से, वह सबसे क्रान्तिकारी वर्ग था क्योंकि क्रान्ति में सिवाय अपनी जंजीरों के उसके पास खोने के लिये और कुछ न था।

किसानों की हालत इससे भिन्न थी।

किसान (यहां पर व्यक्तिगत खेती करने वाले किसानों से मतलब है, जो अपने लिये अलग–अलग काम करते थे – सम्पादक) तादाद में ज्यादा होने पर भी मेहनतकश वर्ग थे, जो आर्थिक व्यवस्था के **सबसे पिछड़े हुए रूप,** छोटे पैमाने की पैदावार से सम्बन्धित थे, जिसकी वजह से उनके सामने न तो महान् भविष्य था और न हो सकता था।

वर्ग रूप में बढ़ना तो दरकिनार, किसान अधिकाधिक पूंजीपतियों (धनी किसानों) और ग़रीब किसानों (सर्वहारा और अर्द्ध सर्वहारा) में बंट रहे थे। इसके सिवा, बिखरे होने की वजह से, सर्वहारा के मुकाबिले में वे कम आसानी से संगठित किये जा सकते थे और छोटे मालिक होने की वजह से, सर्वहारा के मुकाबिले में वे कम तत्परता से क्रान्तिकारी आन्दोलन में शामिल होते थे।

लोकवादियों का दावा था कि रूस में समाजवाद सर्वहारा डिक्टेटरशिप से न आयेगा बल्कि किसानों के कम्यून से आयेगा, जिसे वे समाजवाद का बीज और बुनियाद समझते थे। लेकिन, कम्यून समाजवाद का बीज और बुनियाद न था और न हो सकता था क्योंकि उस पर धनी किसान हावी थे। ये धनी किसान वह जोंक थे जो गरीब किसानों, खेत मजदूरों और आर्थिक रूप से कमजोर मध्यम किसानों का शोषण करते थे। जमीन पर सामूहिक मिल्कियत का दिखावा होने से और हर किसान कुनबे में खानेवालों की तादाद के हिसाब से समय–समय पर जमीन का बंटवारा होने से हालत में कोई फर्क न पड़ता था। कम्यून के वे सदस्य जिनके पास मवेशी थे, हल–माची और बीज थे, यानी खाते–पीते मध्यम और धनी किसान जमीन जोत–बो सकते थे। जिनके पास घोड़े नहीं थे, ऐसे ग़रीब किसान और आमतौर से छोटे किसान मजबूरन अपनी जमीन धनी किसानों के हवाले करते थे और खेत मज़दूरों के तौर पर कुलीगीरी करते थे। हकीकत यह थी कि किसानों का कम्यून धनी किसानों के प्रभुत्व को छिपाने के लिये बहुत बढ़िया साधन था। सामूहिक जिम्मेदारी के आधार पर किसानों से टैक्स वसूल करने के लिये ज़ार सरकार के हाथ में कम्यून बिना पैसे–टके का साधन था। यही सबब था कि ज़ारशाही ने किसानों के कम्यून को बरकरार रहने दिया था। इस तरह के कम्यून को समाजवाद का बीज या बुनियाद समझना बेहुदा बात थी।

प्लेखानोव ने लोकवादियों की तीसरी मुख्य गलती का भी खण्डन किया, जिसके अनुसार महापुरुष, 'वीर' और उनके विचार समाज के विकास में प्रमुख भूमिका अदा करते हैं और जनता, 'भेडियाधसान', अवाम, वर्गों की भूमिका महत्वहीन होती है। प्लेखानोव ने लोकवादियों पर **भाववाद** का जुर्म लगाया और दिखाया कि सच्चाई भाववाद में नहीं है, बल्कि मार्क्स और एंगेल्स के भौतिकवाद में है।

प्लेखानोव ने मार्क्सवादी भौतिकवाद के मत का समर्थन किया और उसकी व्याख्या की। मार्क्सवादी भौतिकवाद के अनुकूल, उसने दिखाया कि कुल मिलाकर समाज का विकास महापुरुषों की इच्छाओं और विचारों से नहीं, बल्कि समाज के अस्तित्व की भौतिक परिस्थितियों के विकास और समाज के अस्तित्व के लिये जो भौतिक मूल्य जरूरी हैं उनकी पैदावार के तरीकों में तब्दीली से निश्चित होता है। समाज का विकास भौतिक मूल्यों की पैदावार में वर्गों के आपसी सम्बन्धों में तब्दीली और भौतिक मूल्यों की पैदावार, उन्हें बांटने में स्थान तथा सुविधा के लिये वर्गों के संघर्ष से निश्चित होता है। इंसानों की सामाजिक और आर्थिक स्थिति विचारों से निश्चित नहीं होती, बल्कि उनके विचार उनकी सामाजिक और आर्थिक स्थिति से निश्चित होते हैं। महापुरुषों के विचार और उनकी इच्छायें समाज के आर्थिक विकास के खिलाफ जायें, प्रमुख वर्ग की जरूरतों के खिलाफ जायें तो महापुरुष नगण्य हो सकते हैं। इसके विपरीत, महापुरुष दरअसल महान् पुरुष बन सकते हैं अगर उनके विचार और इच्छायें समाज के आर्थिक विकास की जरूरतों को, प्रमुख वर्ग की जरूरतों को ठीक–ठीक जाहिर करें।

लोकवादियों के इस दावे के जवाब में कि जनता भेड़ियाधसान छोड़कर और कुछ नहीं है और इतिहास का निर्माण करना और भेड़ियाधसान को जनता बनाना वीरों का काम है, मार्क्सवादियों ने कहा कि इतिहास का निर्माण वीर नहीं करते बल्कि वीरों का निर्माण इतिहास करता है। इसलिये, वीर लोग जनता को नहीं बनाते बल्कि जनता वीरों को उत्पन्न करती है और इतिहास को आगे बढ़ाती है। वीर, महापुरुष समाज के जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका वहीं तक अदा कर सकते हैं जहां तक वे समाज के विकास की परिस्थितियों को और उन्हें भले के लिये बदलने के तरीकों को ठीक–ठीक समझ सकते हैं। वीर, महापुरुष हास्यास्पद बन सकते हैं और, बुरी तरह असफल हो सकते हैं अगर वे समाज के विकास की परिस्थितियों को ठीक–ठीक न समझें और इस घमण्ड में कि वे इतिहास के 'निर्माता' हैं, अगर वे समाज की ऐतिहासिक जरूरतों के खिलाफ जायें।

इसी तरह के अभागे वीरों की श्रेणी में लोकवादी थे।

प्लेखानोव की रचनाओं ने और लोकवादियों के खिलाफ उसके संघर्ष ने क्रांतिकारी बुद्धिजीवियों पर उनके असर को पूरी तरह कमजोर कर दिया। लेकिन, विचार धारा की दृष्टि से लोकवाद का ध्वंस अभी पूरा नहीं हुआ था। लोकवाद को मार्क्सवाद का दुश्मन साबित करना और उस पर आखिरी चोट करना लेनिन का ही काम था।

'नरोद्नाया वोल्या' पार्टी के दबाये जाने के तुरंत बाद ही, अधिकांश लोकवादियों ने ज़ार सरकार के खिलाफ़ क्रान्तिकारी संघर्ष बन्द कर दिया और उससे समझौते और मेल–मिलाप की नीति का प्रचार करने लगे। 1880 और '90 में लोकवादी धनी किसानों के हितों के हामी हो गये।

'मजदूर उद्धारक' गुट ने रूसी सोशल–डेमोक्रेटों के लिये कार्यक्रम के दो मसौदे तैयार किये, (पहला 1884 में और दूसरा 1887 में)। रूस में मार्क्सवादी सोशल–डेमोक्रेटिक पार्टी के निर्माण में यह बहुत ही महत्वपूर्ण तैयारी का कदम था।

लेकिन इसके साथ ही, 'मजदूर उद्धारक' गुट ने कुछ बहुत ही संगीन गलतियां भी की थीं। उसके कार्यक्रम के पहले मसौदे में लोकवादी विचारों के अवशेष मौजूद थे। व्यक्तिगत आतंकवाद की कार्यनीति उसने रहने दी थी। इसके अलावा, प्लेखानोव ने इस बात पर ध्यान न दिया था कि क्रान्ति के दौर में सर्वहारा वर्ग किसानों का नेतृत्व कर सकता है और उसे करना चाहिये और किसानों के साथ मिलकर ही सर्वहारा वर्ग ज़ारशाही पर विजयी हो सकता है। इसके सिवा, प्लेखानोव का विचार था कि उदारपंथी पूंजीपति एक ऐसी ताकत हैं जो क्रांति को मदद दे सकते हैं, भले ही यह मदद अस्थिर हो। जहां तक किसानों का सवाल था, अपनी कुछ रचनाओं में उसने उन्हें दरकिनार ही कर दिया था। मिसाल के लिये, उसने कहा था :

"पूंजीपतियों और सर्वहारा के अलावा, हमें अपने देश में ऐसी सामाजिक शक्ति नहीं दिखायी देती जिससे क्रांतिकारी या विरोधी जमातों को मदद मिले।" ***(प्लेखानोव ग्रन्थावली,*** रूसी संस्करण, खण्ड 3, पृष्ठ 119)।

ये ग़लत धारणायें प्लेखानोव के भावी मेन्शेविक विचारों का बीज थीं।

न तो 'मजदूर उद्धारक' गुट और न उस समय के मार्क्सवादी हल्कों का ही मजदूर आन्दोलन से कोई अमली सम्बन्ध क़ायम हो पाया था। यह वह जमाना था जब मार्क्सवाद के सिद्धांत, मार्क्सवाद के विचार और सोशल–डेमोक्रेटिक कार्यक्रम के उसूल प्रकट ही हो रहे थे और रूस में पैर जमा रहे थे। 1884–'94 के दशक में, सोशल–डेमोक्रेटिक आन्दोलन अलग–अलग छोटे गुटों और मंडलों के रूप में ही था। इनका आम मजदूर आन्दोलन से कोई लगाव न था, या बहुत ही कम लगाव

था। उस शिशु की तरह जो अभी पैदा न हुआ हो लेकिन मां के गर्भ में बढ़ रहा हो, सोशल–डेमोक्रेटिक आन्दोलन, जैसा कि लेनिन ने लिखा था, **"गर्भ रूप में विकसित होने की हालत में था।"**

लेनिन का कहना था कि 'मजदूर उद्धारक' गुट ने "सोशल–डेमोक्रेटिक आन्दोलन की सिर्फ़ सैद्धांतिक नींव डाली और मजदूर आन्दोलन की तरफ़ पहले कदम उठाये।"

रूस में मार्क्सवाद और मजदूर आन्दोलन को मिलाने का काम और 'मजदूर उद्धारक' गुट की ग़लतियों के सुधारने का काम लेनिन के कंधों पर पड़ा।

3. लेनिन की क्रान्तिकारी कार्यवाही की शुरुआत। मज़दूर वर्ग के मुक्ति–संग्राम का सेंट पीटर्सबर्ग (पीतरबुर्ग) संघ।

ब्लादिमीर इलिच उलियानोव (लेनिन) बोलशेविज्म के जन्मदाता, 1870 में सिम्बिर्स्क नाम के शहर में (जो अब उलयानोव्स्क कहलाता है) पैदा हुए थे। 1887 में लेनिन कजान विश्वविद्यालय में दाखिल हुए, लेकिन क्रांतिकारी विद्यार्थी आन्दोलन में हिस्सा लेने के कारण उन्हें तुरंत ही गिरफ्तार किया गया और विश्वविद्यालय सेनिकाल दिया गया। कज़ान में लेनि एक मार्क्सवादी मण्डल में शामिल हुये, जिसे फेदोसेयेव नाम के व्यक्ति ने बनाया था। बाद में लेनिन समारा पहुंचे और जल्द ही उस शहर में पहला मार्क्सवादी मंडल क़ायम हुआ, जिसके केन्द्र लेनिन थे। उन दिनों में भी मार्क्सवाद के सम्पूर्ण ज्ञान से लेनिन हरेक को चकित कर देते थे।

1893 के अंत में, लेनिन पीतरबुर्ग चले आये। उस शहर के मार्क्सवादी मण्डलों के सदस्य उनके शुरू के भाषणों से ही बहुत प्रभावित हुए। लेनिन ने मार्क्स का अभूतपूर्व ढंग से गहरा अध्ययन किया था। उनमें उस समय के रूस की आर्थिक और राजनीतिक हालत पर मार्क्सवाद लागू करने की क्षमता थी। मजदूो के ध्येय की जीत में उनका विश्वास अटल और अडिग था। एक संगठनकर्ता के रूप में उनकी प्रतिभा अपूर्व थी। इन सब कारणों से, लेनिन पीतरबुर्ग के मार्क्सवादियों के जाने–माने नेता बन गये।

लेनिन ने मण्डलों में जिन मज़दूरों को शिक्षा दी और जो राजनीतिक रूप से आगे बढ़े हुए थे, उनके दिलों में लेनिन के लिये बेहद प्यार था।

मज़दूरों के मण्डलों में लेनिन के शिक्षा–कार्य को याद करते हुए, बबूश्किन नाम का मजदूर कहता है : **"हमारे व्याख्यान बहुत ही दिलचस्प और सजीव होते थे।**

इन व्याख्यानों से हम सभी लोग बहुत खुश होते थे और अपने व्याख्यानदाता की बुद्धिमानी पर मुग्ध थे।"

1895 में, लेनिन ने पीतरबुर्ग के सभी मार्क्सवादी मज़दूर–मण्डलों को एक किया। (उस वक्त भी उनकी तादाद बीस के लगभग थी) और, उनसे मिलाकर मज़दूर वर्ग के मुक्ति–संग्राम का संघ बनाया। इस तरह, उन्होंने एक क्रांतिकारी मार्क्सवादी मजदूर पार्टी की नींव डालने का रास्ता तैयार किया।

लेनिन ने मुक्ति–संग्राम संघ के सामने यह काम रखा कि आम मजदूर आन्दोलन के साथ और नज़दीकी सम्बन्ध कायम किया जाये और उसे राजनीतिक नेतृत्व दिया जाये। लेनिन ने यह प्रस्ताव रखा कि प्रचार–मण्डलों में रजनीतिक रूप से आगे बढ़े हुए जो थोड़े से मजदूर आते थे, उनमें मार्क्सवाद का प्रचार करने से बढ़ कर सामयिक समस्याओं पर आम मजदूरों में राजनीतिक आन्दोलन की तरफ चला जाये। रूस में मजदूर आन्दोलन के विकास के लिये, जन आन्दोलन की तरफ़ यह मोड़ बहुत ही महत्वपूर्ण था।

1890 का ज़माना औद्योगिक बढ़ती का जमाना था। मजदूरों की तादाद बढ़ रही थी। मजदूर आन्दोलन शक्तिशाली बन रहा था। 1895–'99 के सालों में, अधूरे आंकड़ों के अनुसार, 2,21,000 से ज्यादा मजदूरों ने हड़तालों में हिस्सा लिया। देश के राजनीतिक जीवन में मजदूर आन्दोलन महत्वपूर्ण शक्ति बन रहा था। घटनाक्रम उस मत का समर्थन कर रहा था जिसे मार्क्सवादियों ने लोकवादियों के खिलाफ पेश किया था, यानी यह कि क्रान्तिकारी आन्दोलन में मज़दूर वर्ग प्रमुख भूमिका दा कर रहा था।

लेनिन के निर्देश से मजदूर वर्ग के मुक्ति–संग्राम संघ ने आर्थिक मांगों के लिये मज़दूरों के संघर्ष को – मजदूरी करने की हालतों में सुधार, काम के घन्टों में कमी और मजदूरी बढ़ाने के संघर्ष को ज़ारशाही के खिलाफ राजनीतिक संघर्ष से जोड़ दिया।

लेनिन की देख–रेख में, मजदूर वर्ग के मुक्ति–संग्राम का पीतरबुर्ग संघ रूस में पहली संस्था थी जो समाजवाद को मज़दूर आन्दोलन से जोड़ने लगी। जब किसी कारखाने में हड़ताल होती थी, तब मुक्ति–संग्राम संघ परचे निकाल कर और समाजवादी ऐलान निकाल कर तुरंत उसकी हिमायत करता था। अपने मण्डल के सदस्यों के जरिये, उसे अच्छी तरह पता रहता था कि कारखानों में कहां क्या हो रहा है। ये परचे कारखानेदारों द्वारा मज़दूरों को सताने का भण्डाफोड़ करते थे। वे बतलाते

थे कि मजदूरों को अपने हितों के लिये किस तरह लड़ना चाहिये और वे मजदूरों की मांग पेश करते थे। इन परचों में पूंजीवाद के नासूर के बारे में साफ़ बातें कही जाती थीं। इसमें मजदूरों की गरीबी, 12 से 14 घन्टों तक उनके असहनीय कठिन काम करने के दिन और अधिकारों के एकदम अभाव की चर्चा होती थी। वे उचित मांगें भी पेश करते थे। मजदूर बबूश्किन के सहयोग से, लेनिन ने 1894 के अंत में इस तरह का पहला आन्दोलनकारी पर्चा लिखा और पीतरबुर्ग में सेम्यानिकोव कारखाने के हड़ताली मज़दूरों के नाम अपील निकाली। 1895 की शरद् में, लेनिन ने थॉर्नटन मिलों के मर्द–औरत हड़तालियों के लिये एक पर्चा लिखा। ये मिलें अंग्रेज मालिकों की थी, जो इनसे लाखों का मुनाफा काट रहे थे। इन मिलों में काम करने का दिन चौदह घन्टों से भी ज्यादा का होता था, जब कि एक बुनकर की तनख्वाह 7 रूबल माहवार के करीब होती थी। मजदूर हड़ताल में जीत गये। थोड़े ही वक़्त में, मुक्ति–संग्राम संघ ने इस तरह के दर्जनों पर्चे और अपीलें विभिन्न कारखानों के मजदूरों के लिये छापीं। मजदूरों के मन को दृढ़ करने में हर पर्चे ने बहुत काम किया। उन्होंने देखा कि समाजवादी उनकी मदद कर रहे हैं और उनका समर्थन कर रहे हैं।

1896 की गर्मी में, पीतरबुर्ग में, मुक्ति–संग्राम संघ के नेतृत्व में 30,000 सूती मजदूरों की हड़ताल हुई। इनकी मुख्य मांग काम के घन्टे कम करने की थी। इस हड़ताल ने 2 जून 1897 को ज़ार सरकार को एक कानून बनाने के लिये मजबूर किया, जिससे काम करने का दिन साढ़े ग्यारह घंटों का तय हुआ। इससे पहले, काम करने के दिन पर किसी तरह की पाबन्दी न थी।

दिसम्बर 1895 में, जार सरकार ने लेनिन को गिरफ्तार कर लिया। लेकिन, जेल में भी उन्होंने अपना क्रांतिकारी काम बन्द नहीं किया। सलाह और निर्देश देकर, वह मुक्ति–संग्राम संघ की मदद करते रहे और उसके लिये पुस्तिकायें और पर्चे लिखते रहे। वहां पर उन्होंने ***हड़तालों पर*** नामक एक पुस्तिका लिखी और ज़ारशाही के बर्बर स्वेच्छाचार का पर्दाफ़ाश करते हुए, ***ज़ार सरकार के नाम*** शीर्षक से एक पर्चा निकाला। यहीं पर लेनिन ने पार्टी के लिये कार्यक्रम का मसौदा तैयार किया (उन्होंने अदृश्य स्याही के तौर पर दूध इस्तेमाल किया और दवाइयों की किताब की पंक्तियों के बीच में लिखा)।

मुक्ति–संग्राम के पीतरबुर्ग संघ ने रूस के दूसरे शहरों और प्रदेशों में मज़दूरों के मण्डलों को ऐसे ही संघों में मिलकर एक होने की भारी प्रेरणा दी। 1894–'95 के लगभग, ट्रांस कॉकेशिया में मार्क्सवादी संगठन बने। 1894 में, मास्को में एक मजदूर यूनियन बना। 1900 के लगभग, साइबेरिया में एक सोशल–डेमोक्रेटिक यूनियन कायम हुआ। लगभग इसी काल में इवानोवो–वज्नेसेंस्क, यारोस्लावल और

कोस्त्रोया में मार्क्सवादी गुट बने। आगे चलकर, वे एक–दूसरे से मिल गये और उनसे सोशल–डेमोक्रेटिक पार्टी का उत्तरी यूनियन बना। 1895 के बाद, दोन नदी के तट पर रोस्तोव, एकातेरीनोस्लाव, कियेव, निकोलायेव, तूला, समारा, कजान, ओरेखोवोजूयेवो और दूसरे शहरों में सोशल–डेमोक्रेटिक गुट और यूनियन बने।

मजदूर वर्ग के मुक्ति–संग्राम के पीतरबुर्ग संघ का महत्व, जैसा कि लेनिन ने कहा था, इस बात में था कि वह एक क्रांतिकारी पार्टी की पहली सच्ची शुरूआत थी जिसे मजदूर आन्दोलन का समर्थन हासिल था।

आगे चलकर, रूस में एक मार्क्सवादी सोशल–डेमोक्रेटिक पार्टी बनाने के लिये लेनिन ने पीतरबुर्ग संघ के क्रांतिकारी अनुभव से काम लिया।

लेनिन और उनके नज़दीकी साथियों के पकड़े जाने के बाद, मुक्ति–संग्राम के पीतरबुर्ग संघ का नेतृत्व काफी बदल गया। नये आदमी आ गये, जो अपने को 'नौजवान' और लेनिन और उनके साथियों को 'पुराने लोग' कहते थे। ये लोग एक गलत राजनीतिक नीति पर चल रहे थे। इनका कहना था कि मजदूरों से सिर्फ अपने मालिकों के खिलाफ आर्थिक लड़ाई लड़ने के लिये कहना चाहिये : जहां तक राजनीतिक संघर्ष का सवाल है, वह उदारपंथी पूंजीपतियों का काम है और राजनीतिक संघर्ष का नेतृत्व उन्हीं के लिये छोड़ देना चाहिये।

ये लोग 'अर्थवादी' कहलाये।

रूस के मार्क्सवादी संगठनों की सफों में ये अवसरवादियों और समझौता करने वालों का पहला गुट था।

4. लोकवाद और 'कानूनी मार्क्सवाद' के खिलाफ़ लेनिन का संघर्ष। मजदूर वर्ग और किसानों की मैत्री के बारे में लेनिन का विचार। रूसी सोशल–डेमोक्रेटिक लेबर पार्टी की पहली कांग्रेस।

हालांकि 1880 के आसपास ही प्लेखानोव ने लोकवादी मत पर मुख्य प्रहार किया था, फिर भी 1890 के लगभग क्रांतिकारी नौजवानों के कुछ हल्कों में लोकवादी विचारों के प्रति अब भी हमदर्दी बनी हुई थी। उनमें से कुछ का यह विचार बना हुआ था कि रूस, विकास के पूंजीवादी रास्ते से बच सकता है और क्रांति में मुख्य भूमिका किसानों की होगी, न कि मज़दूर वर्ग की। जो लोकवादी अब भी बचे रहे थे, वह रूस में मार्क्सवाद के प्रसार को रोकने की भरसक कोशिश कर रहे थे। वे मार्क्सवादियों से

लड़ते थे और हर तरह उन्हें बदनाम करने की कोशिश कर रहे थे। अगर मार्क्सवाद का आगे प्रसार करना था और सोशल–डेमोक्रेटिक पार्टी बनाने का काम सचमुच करना था, तो विचारधारा के रूप में लोकवाद का पूरी तरह से **खण्डन** जरूरी था।

यह काम लेनिन ने पूरा किया।

अपनी किताब ***'जनता के मित्र' क्या हैं और वे सोशल–डेमोक्रेटों से कैसे लड़ते हैं?*** (1894) में, लेनिन ने लोकवादियों की असलियत का पूरी तरह पर्दाफाश किया। उन्होंने दिखाया कि वे 'जनता के' झूठे 'मित्र' हैं, जो दरअसल जनता के खिलाफ काम कर रहे थे।

1890 के लोकवादियों ने तत्व रूप में बहुत पहले ही ज़ार सरकार के खिलाफ़ क्रांतिकारी संघर्ष को छोड़ दिया था। उदारपंथी लोकवादी ज़ार सरकार से मेल करने का प्रचार करते थे। उस समय के लोकवादियों के सिलसिले में लेनिन ने लिखा था : "वे समझते हैं कि वे इस सरकार से अगर काफ़ी बढ़िया ढंग से और काफी नम्रता से अर्ज भर करेंगे तो वह सब कुछ दुरुस्त कर देगी।" (लेनिन – ***'जनता के मित्र' क्या हैं और वे सोशल–डेमोक्रेटों से कैसे लड़ते हैं?***, अग्रेंजी संस्करण, मास्को, 1946, पृष्ठ 157)।

1890 के लोकवादियों ने गरीब किसानों की हालत की तरफ, देहात के वर्ग–संघर्ष की तरफ और धनी किसानों द्वारा ग़रीब किसानों के शोषण की तरफ आंखें बन्द कर रखी थीं। वे धनी किसानों की खेती के गुन गाते थे। हकीकत यह थी कि वे धनी किसानों के हितों के हामी थे।

इसके साथ ही, अपनी पत्रिकाओं में लोकवादियों ने मार्क्सवादियों के खिलाफ़ हल्ला बोल रखा था। वे जानबूझ कर रूसी मार्क्सवादियों के विचारों को तोड़ते–मरोड़ते और गलत पेश करते थे। वे दावा करते थे कि मार्क्सवादी चाहते हैं कि गांवों के लोग तबाह हो जायें और वे "हर किसान को कारखाने की भट्टी में झोंक देना चाहते हैं।" लेनिन ने लोकवादी आलोचना के झूठ का पर्दाफाश किया और दिखाया कि सवाल मार्क्सवादियों के "चाहने" का नहीं है। उन्होंने कहा कि हकीकत यह है कि पूंजीवाद रूस में सचमुच विकसित हो रहा है और लाजिमी तौर पर इस विकास के साथ सर्वहारा वर्ग बढ़ रहा है। उन्होंने कहा कि सर्वहारा वर्ग पूंजीवादी व्यवस्था की कब्र खोदने वाला बनेगा।

लेनिन ने दिखाया कि जनता के सच्चे दोस्त मार्क्सवादी हैं, न कि लोकवादी। उन्होंने दिखाया कि पूंजीपतियों और जमींदारों की गुलामी जो खत्म करना चाहते हैं, ज़ारशाही का नाश जो करना चाहते हैं, वे मार्क्सवादी ही हैं।

अपनी किताब ***'जनता के मित्र' क्या हैं?*** में, लेनिन ने पहली बार मजदूरों और किसानों के क्रांतिकारी सहयोग का विचार ज़ारशाही, जमींदारों और पूंजीपतियों को परास्त करने के मुख्य साधन के रूप में रखा था।

इस जमाने की अपनी कई रचनाओं में, लेनिन ने राजनीतिक संघर्ष के उन तरीकों की आलोचना की थी जिन्हें मुख्य लोकवादी गुट **'नरोद्नाया वोल्या'** इस्तेमाल करता था और जिन्हें बाद में लोकवादियों के वारिसों, सामाजिक क्रांतिकारियों ने इस्तेमाल किया था। लेनिन ने खास तौर से व्यक्तिगत आतंकवाद की आलोचना की थी। लेनिन का विचार था कि क्रांतिकारी आन्दोलन के लिये ये दांव–पेच हानिकर हैं, क्योंकि उनके अनुसार आम जनता के संघर्ष की जगह कुछ अलग–थलग वीरों का संघर्ष ले लेता था। उनसे जनता के क्रांतिकारी आन्दोलन में विश्वास की कमी जाहिर होती थी।

'जनता के मित्र' क्या हैं? पुस्तक में, लेनिन ने रूसी मार्क्सवादियों के लिये मुख्य कामों की रूपरेखा पेश की। उनके विचार से रूसी मार्क्सवादियों का पहला कर्तव्य यह था कि बिखरे हुए मार्क्सवादी मण्डलों को एक संयुक्त समाजवादी मजदूर पार्टी में इकट्ठा करें। इसके अलावा, उन्होंने बतलाया कि रूस का मजदूर वर्ग ही, किसानों के सहयोग से, निरंकुश ज़ारशाही का खात्मा करेगा। इसके बाद, रूसी सर्वहारा वर्ग मेहनतकश और शोषित अवाम के सहयोग से, दूसरे देशों के सर्वहारा के साथ, कम्युनिस्ट क्रान्ति की विजय के लिये खुले राजनीतिक संघर्ष का सीधा रास्ता अपनायेगा।

इस तरह, चालीस साल से ऊपर बीते जब लेनिन ने मज़दूर वर्ग को उसके संघर्ष का ठीक–ठीक रास्ता बतलाया था, समाज की प्रमुख क्रांतिकारी शक्ति के रूप में उसकी भूमिका की व्याख्या की थी और मज़दूर वर्ग के सहयोगी के रूप में किसानों की भूमिका बतलाई थी।

लोकवाद के खिलाफ़ लेनिन और उनके अनुयायियों ने जो संघर्ष किया, उससे 1890 के आसपास, विचारधारा के क्षेत्र में लोकवादियों की पूरी हार हुई।

'कानूनी मार्क्सवाद' के खिलाफ भी लेनिन का संघर्ष बहुत ही महत्वपूर्ण था। इतिहास में आम तौर से ऐसा होता है कि बड़े सामाजिक आन्दोलनों के साथ अस्थिर 'सहयात्रि' चिपक आते हैं। 'कानूनी मार्क्सवादी', जैसा कि उनका नाम पड़ गया था, इसी तरह के सहयात्री थे। रूस में चारों तरफ़ बड़े पैमाने पर मार्क्सवाद फैलने लगा था। और इसलिये, पूंजीवादी बुद्धिजीवी भी मार्क्सवादी पोशाक पहने हुए दिखाई दिये। वे अपने लेख ऐसे अखबारों और पत्रिकाओं में छपवाते थे जो कानूनी थीं, यानी जिनके लिये ज़ार सरकार की अनुमति थी। इसीलिये, वे 'कानूनी मार्क्सवादी' कहलाये।

अपने ढंग से वे भी लोकवाद से लड़ते थे। लेकिन, वे इस लड़ाई और मार्क्सवाद के झण्डे का इस्तेमाल यों करने की कोशिश करते थे कि मज़दूरों के आन्दोलन को पूंजीवादी समाज के हितों के अनुकूल, पूंजीपतियों के हितों के अनुकूल चलायें और उसे उन हितों के मातहत बनायें। उन्होंने मार्क्सवाद का तत्व ही निकाल दिया था, यानी सर्वहारा क्रांति और सर्वहारा वर्ग की डिक्टेटरशिप को निकाल दिया था। पीतर स्त्रूवे नाम का एक प्रमुख 'कानूनी मार्क्सवादी' पूंजीपतियों की तारीफ़ों के पुल बांधता था और पूंजीवाद के खिलाफ़ क्रांतिकारी संघर्ष के बदले, इस बात पर ज़ोर देता था कि "हम इस बात को मानें कि संस्कृति की हममें कमी है और शिक्षा पाने के लिये हम पूंजीवाद के पास जायें।"

लोकवादियों के खिलाफ़ संघर्ष में, लेनिन ने यह उचित समझा कि 'कानूनी मार्क्सवादियों' के साथ अस्थायी समझौता कर लिया जाये ताकि उन्हें लोकवादियों के खिलाफ़ इस्तेमाल किया जा सके। मिसाल के लिये, लोकवादियों के खिलाफ़ मिलजुल कर एक लेख–संग्रह प्रकाशित करने के बारे में यह समझौता किया गया। इसके साथ ही, लेनिन ने अपनी आलोचना में 'कानूनी मार्क्सवादियों' को ज़रा भी नहीं बख्शा और उनके उदारपंथी पूंजीवादी स्वरूप का पर्दाफ़ाश किया।

आगे चलकर, इनमें से बहुत से सहयात्री कॉन्स्टीट्यूशनल डेमोक्रेट (रूसी पूंजीपतियों की प्रमुख पार्टी) और गृह–युद्ध के काल में सौ फ़ीसदी ग़द्दार बन गये।

पीतरबुर्ग, मास्को, कियेव और दूसरी जगहों के मुक्ति–संग्राम संघों के साथ–साथ रूस के पच्छिमी जातीय सीमान्त इलाकों में भी सोशल–डेमोक्रेटिक संगठन बने। 1890 के बाद, पोलैण्ड की राष्ट्रवादी पार्टी से मार्क्सवादी अलग हो गये और उन्होंने पोलैण्ड और लिथुआनिया की सोशल–डेमोक्रेटिक पार्टी बनायी। 1900 से कुछ पहले, लैटविया में सोशल–डेमोक्रेटिक संगठन बने और अक्तूबर 1897 में, रूस के पच्छिमी सूबों में यहूदियों का जनरल सोशल–डेमोक्रेटिक यूनियन बना, जो 'बुन्द' कहलाता था।

1898 में, पीतरबुर्ग, मास्को, कियेव और एकातेरीनोस्लाव के मुक्ति–संग्राम संघों ने बुन्द के साथ मिलकर पहली बार कोशिश की कि वे एक हों और एक सोशल–डेमोक्रेटिक पार्टी बनायें। इस उद्देश्य से, उन्होंने रूसी सोशल–डेमोक्रेटिक लेबर पार्टी (रू•सो•डे•ले•पा•) की पहली कांग्रेस बुलाई, जो मार्च 1898 में मिन्स्क में हुई।

रू•सो•डे•ले•पा• की पहली कांग्रेस में सिर्फ़ नौ आदमी आये थे। लेनिन मौजूद नहीं थे, क्योंकि उस समय वह साईबेरिया में निर्वासित थे। पार्टी की केन्द्रीय समिति, जो कांग्रेस में चुनी गयी, बहुत जल्द गिरफ़्तार कर ली गयी। कांग्रेस के नाम से जो घोषणापत्र छापा गया था, वह कई तरह से असंतोष जनक था। सर्वहारा वर्ग

द्वारा राजनीतिक शक्ति जीतने के सवाल को उसमें टाल दिया गया था, सर्वहारा वर्ग के एकछत्र नेतृत्व का उसमें ज़िक्र नहीं था। ज़ारशाही और पूंजीपतियों के खिलाफ़ सर्वहारा वर्ग के सहयोगियों के बारे में उसमें कुछ भी नहीं कहा गया था।

अपने फ़ैसलों में और घोषणापत्र में, कांग्रेस ने रूसी सोशल–डेमोक्रेटिक लेबर पार्टी के बनने का ऐलान किया था।

रू•सो•डे•ले•पा• की पहली कांग्रेस का महत्व इस व्यवहारिक काम में ही निहित था। इसने एक भारी क्रान्तिकारी प्रचारात्मक भूमिका अदा की।

लेकिन, हालांकि पहली कांग्रेस हो चुकी थी, फिर भी हकीक़त में अभी रूस में कोई मार्क्सवादी सोशल–डेमोक्रेटिक पार्टी बनी न थी। अलग–अलग मार्क्सवादी मण्डलों और संगठनों को मिलाने और संगठित करके दृढ़ करने में कांग्रेस कामयाब न हुई थी। स्थानीय संगठनों के काम के लिये अब भी कोई सर्वसम्मत नीति न थी, न अभी पार्टी का कार्यक्रम था, न पार्टी के नियम थे और न **एकमात्र नेतृत्व करने वाला केन्द्र था।**

इस वजह से और ऐसे ही दूसरे कारणों से स्थानीय संगठनों में विचारधारा सम्बन्धी उलझन बढ़ने लगी और इससे मज़दूर आन्दोलन के अन्दर **'अर्थवाद'** नाम की अवसरवादी पवृत्ति के बढ़ने के लिये अनुकूल ज़मीन तैयार हो गयी।

लेनिन और उनके स्थापित किये हुए अखबार ***इस्क्रा (चिनगारी)*** को कई साल तक घोर मेहनत करनी पड़ी और तब कहीं जाकर यह उलझन दूर हुई, अवसरवादी ढुलमुलपन खत्म किया गया और रूसी सोशल–डेमोक्रेटिक लेबर पार्टी के निर्माण के लिये रास्ता साफ हुआ।

5. 'अर्थवाद' के खिलाफ़ लेनिन का संघर्ष। लेनिन के अखबार 'इस्क्रा' का प्रकाशन।

रू•सो•डे•ले•पा• की पहली कांग्रेस में लेनिन मौजूद नहीं थे। उस समय वह लाईबेरिया में शुशेन्स्कोय नाम के गांव में निर्वासित थे। मुक्ति–संग्राम संघ पर मुकदमा चलाने के सिलसिले में, ज़ार सरकार ने एक लम्बे अर्से के लिये उन्हें पीतरबुर्ग की जेल में डाल रखा था और उसके बाद वह निर्वासित किये गये थे।

लेकिन, निर्वासन में भी लेनिन ने अपना क्रान्तिकारी काम जारी रखा। वहां पर उन्होंने अपनी बहुत ही महत्वपूर्ण वैज्ञानिक पुस्तक ***रूस में पूंजीवाद का विकास*** पूरी

की। इस किताब ने विचारधारा के क्षेत्र में लोकवाद को समाप्त करने का काम पूरा किया। वहीं पर, उन्होंने अपनी प्रसिद्ध पुस्तिका रूसी ***सोशल–डेमोक्रेटों के कर्तव्य*** भी लिखी।

हालांकि लेनिन सीधे–सीधे अमली क्रान्तिकारी कार्यवाही में भाग न ले सकते थे, फिर भी जो लोग इस काम में लगे हुए थे, उनसे वह कुछ न कुछ सम्बन्ध बनाये ही हुए थे। निर्वासन से वह उनसे पत्र–व्यवहार रखते थे, उनसे समाचार प्राप्त करते थे और उन्हें सलाह देते थे। इन दिनों लेनिन का ज्यादा ध्यान 'अर्थवादियों' की तरफ़ था। और सभी से वह इस बात को ज्यादा अच्छी तरह समझते थे कि समझौते और अवसरवाद की मुख्य जड़ 'अर्थवाद' है और अगर मजदूर आन्दोलन में **'अर्थवाद'** की तूती बोलने लगी तो इससे सर्वहारा वर्ग के क्रान्तिकारी आन्दोलन में कमजोरी पैदा होगी और उससे मार्क्सवाद की हार होगी।

इसलिये, जैसे ही **'अर्थवादी'** सामने आये, लेनिन ने उन पर भरपूर हमला बोल दिया।

'अर्थवादियों' का दावा था कि मज़दूरों को सिर्फ आर्थिक संघर्ष करना चाहिये। जहां तक राजनीतिक संघर्ष का सवाल है, वह उदारपंथी पूंजीपतियों के लिये छोड़ देना चाहिये और मज़दूरों को चाहिये कि उनका समर्थन करें। लेनिन की नज़रों में यह मत मार्क्सवाद का त्याग था। इसके मानी थे, मजदूर वर्ग की स्वतंत्र राजनीतिक पार्टी की जरूरत से इन्कार करना। यह इस बात की कोशिश थी कि मज़दूर वर्ग को पूंजीपतियों का राजनीतिक पुछल्ला बना दिया जाये।

1899 में, **'अर्थवादियों'** के एक गुट ने (प्रोकोपोविच, कुस्कोवा और दूसरों ने जो आगे चल कर कान्स्टीट्यूशनल डेमोक्रेट बन गये थे) एक घोषणापत्र निकाला, जिसमें उन्होंने क्रांतिकारी मार्क्सवाद का विरोध किया। उन्होंने इस बात पर ज़ोर दिया कि सर्वहारा की स्वतंत्र राजनीतिक पार्टी और मज़दूर वर्ग की स्वतंत्र राजनीतिक मांगों का विचार छोड़ दिया जाये। 'अर्थवादियों' का कहना था कि राजनीतिक संघर्ष चलाना उदारपंथी पूंजीपतियों का काम है। जहां तक मज़दूरों का सम्बन्ध है, उनके लिये मालिकों के खिलाफ़ आर्थिक संघर्ष चलाना ही काफ़ी है।

जब लेनिन को इस अवसरवादी दस्तावेज की जानकारी हुई, तो उन्होंने राजनीतिक निर्वासन में आसपास रहने वाले मार्क्सवादियों का एक सम्मेलन बुलाया। इनमें से सत्रह लोग आये और उन्होंने लेनिन की अगुवाई में 'अर्थवादियों' के मत का जोरों से खण्डन करते हुए, अपना तीव्र विरोध प्रकाशित किया।

यह विरोध–पत्र लेनिन ने लिखा था। देश के तमाम मार्क्सवादी संगठनों में वह घुमाया गया और रूस में मार्क्सवादी विचारों और मार्क्सवादी पार्टी के विकास में उसने महत्वपूर्ण काम किया।

रूसी '**अर्थवादी**' वे ही विचार प्रतिपादित कर रहे थे जिनका प्रचार बाहर की सोशल–डेमोक्रेटिक पार्टियों में मार्क्सवाद के विरोधी किया करते थे। इनको लोग बर्न्सटाइनपंथी, यानी अवसरवादी बर्न्सटाइन के अनुयायी, कहते थे।

इस तरह '**अर्थवादियों** के खिलाफ लेनिन का संघर्ष अंतर्राष्ट्रीय पैमाने पर अवसरवाद के खिलाफ़ संघर्ष भी था।

लेनिन द्वारा संस्थापित ग़ैरकानूनी अख़बार इस्क्रा ने मुख्य तौर से अर्थवाद के खिलाफ़ लड़ाई की और सर्वहारा वर्ग की स्वतंत्र राजनीतिक पार्टी बनाने के लिये संघर्ष किया।

1900 के आरंभ में, लेनिन और मुक्ति–संग्राम संघ के दूसरे सदस्य साइबेरिया के निर्वासन से रूस लौट आये। लेनिन ने अखिल रूसी पैमाने पर एक बड़ा ग़ैरकानूनी मार्क्सवादी अखबार स्थापित करने का विचार किया। रूस में जो बहुत से मार्क्सवादी मण्डल और संगठन अभी थे, वे एक दूसरे से जुड़े हुए न थे। ऐसे वक्त जब, कॉमरेड स्तालिन के शब्दों में, "मण्डलों का अधकचरापन और उनका स्थानीय दृष्टिकोण पार्टी को ऊपर से नीचे तक खोखला बना रहा था, जब पार्टी के अन्दरूनी जीवन की विशेषता विचारधारा की उलझन थी" तब अखिल रूसी पैमाने पर एक ग़ैरकानूनी अखबार चलाना रूस के क्रान्तिकारी मार्क्सवादियों का मुख्य काम था। इस तरह का अखबार ही बिखरे हुए मार्क्सवादी संगठनों को जोड़ सकता था और सच्ची पार्टी के निर्माण के लिये रास्ता साफ़ कर सकता था।

लेकिन, पुलिस के दमन की वजह से इस तरह का अखबार ज़ारशाही रूस में नहीं छप सकता था। महीने भर में या ज्यादा से ज्यादा दो महीने में ज़ार के कुत्ते उसे सूंघ लेते और उसे खत्म कर देते। इसलिये, लेनिन ने तय किया कि अख़बार विदेश से निकाला जाये। वह बहुत ही पतले, लेकिन टिकाऊ कागज पर छापा जाता था और गुप्त रूप से रूस पहुंचा दिया जाता था। रूस में ***इस्क्रा*** के कुछ अंक बाकू, किशीनेव और साईबेरिया के गुप्त छापेखानों में फिर से छापे जाते थे।

1900 की शरद् में '**मजदूर उद्धारक**' गुट के साथियों के साथ अखिल रूसी पैमाने पर राजनीतिक अखबार निकालने का प्रबन्ध करने के लिये लेनिन विदेश गये। जब वह निर्वासन में थे, तभी उन्होंने इसकी पूरी रूपरेखा बना ली थी। निर्वासन से लौटते

हुए, उन्होंने इस विषय पर ऊफा, प्स्कोव, मास्को और पीतरबुर्ग में कई सम्मेलन किये थे। हर जगह उन्होंने गुप्त पत्र–व्यवहार के लिये संकेत–भाषा के बारे में साथियों से प्रबंध कर लिये थे। किस पते पर साहित्य वगैरह भेजा जायेगा, इसका इंतज़ाम कर लिया था और भावी संघर्ष के लिये योजनाओं पर उनसे बातचीत कर ली थी।

ज़ार सरकार ने सूंघ लिया कि लेनिन उसका सबसे खतरनाक दुश्मन है। ज़ार की ओखराना[1] के हथियारबन्द दलों के एक अफ़सर, जुबातोव ने एक विश्वस्त रिपोर्ट में यह राय ज़ाहिर की थी कि "आजकल इंक़लाब में उलियानोव (लेनिन) से बढ़कर दूसरा कोई नहीं।" और इस वजह से, उसका विचार था कि लेनिन की हत्या करा देना उचित होगा।

विदेश में लेनिन ने **'मजदूर उद्धारक'** गुट से, यानी प्लेखानोव, एक्सेलरोद और व• ज़ासूलिच से मिलकर ***इस्क्रा*** निकालने के बारे में समझौता किया। शुरू से लेकर आखिर तक, प्रकाशन की पूरी योजना लेनिन ने बनायी थी।

दिसम्बर 1900 में ***इस्क्रा*** का पहला अंक विदेश में निकला। मुखपृष्ठ पर यह वाक्य लिखा हुआ था :

"इस चिनगारी से आग की लपटें उठेंगी।"

साइबेरिया के निर्वासन में, दिसम्बर क्रांतिकारियों[2] के लिये पुश्किन ने अभिनन्दन भेजा था; उसका उन्होंने जो जवाब दिया था, ये शब्द उसी से लिये गये थे।

और दरअसल, लेनिन ने जो चिनगारी (इस्क्रा) जलाई, उससे आगे चलकर भारी क्रान्तिकारी लपटें उठीं, जिनमें जमींदारों की ज़ारशाही और पूंजीपतियों की ताक़त जलकर खाक हो गयी।

---

1. **ज़ारशाही रूस में क्रान्तिकारी आंदोलन का दमन करने के लिये गुप्त राजनीतिक पुलिस विभाग – अंग्रेजी अनु•।**
2. **अभिजात वर्ग के क्रान्तिकारी जो स्वेच्छाचारी, बादशाही और भूदास प्रथा के विरोधी थे। दिसम्बर 1825 में उन्होंने असफल विद्रोह किया था – अंग्रेजी अनु•।**

सारांश

रूस में मार्क्सवादी सोशल–डेमोक्रेटिक लेबर पार्टी का निर्माण हो रहा था। यह निर्माण उस संघर्ष के दौर में हो रहा था जो सबसे पहले लोकवाद और उसकी धारणाओं के खिलाफ़ चलाया जा रहा था। ये धारणायें ग़लत थीं और क्रांति के लिये हानिकर थीं।

विचारधारा के क्षेत्र में लोकवादियों के विचारों का खण्डन करके ही यह मुमकिन था कि रूस में मार्क्सवादी मजदूर पार्टी के लिये रास्ता साफ़ किया जाये। 1880 के आसपास प्लेखानोव और उसके **'मजदूर उद्धारक'** गुट ने लोकवाद पर निर्णायक प्रहार किया।

लेनिन ने विचारधारा के क्षेत्र में लोकवाद को पूरी तरह हराया और 1890 के लगभग उस पर अंतिम प्रहार किया।

1883 में स्थापित, 'मजदूर उद्धारक' गुट ने रूस में मार्क्सवाद के प्रसार के लिये बहुत कुछ किया। उसने सोशल–डेमोक्रेसी की सैद्धान्तिक बुनियाद डाली और मजदूर आन्दोलन से सम्बन्ध क़ायम करने के लिये पहले क़दम उठाये।

रूस में पूंजीवाद का विकास होने के साथ–साथ, औद्योगिक सर्वहारा वर्ग की तादाद तेज़ी से बढ़ी। 1885 के लगभग, मजदूर वर्ग ने संगठित संघर्ष का रास्ता, संगठित हड़तालों के रूप में सामूहिक कार्यवाही का रास्ता अपनाया। लेकिन, मार्क्सवादी मण्डल और गुट सिर्फ़ प्रचार करते थे और इस बात की जरूरत को नहीं समझ रहे थे कि मज़दूर वर्ग के आम आन्दोलन की तरफ़ बढ़ना चाहिये। इसलिये, अब भी मजदूर आन्दोलन के साथ उनका कोई अमली सम्बन्ध न था और वे उसका नेतृत्व न करते थे।

1895 में, लेनिन ने मजदूर वर्ग के मुक्ति–संग्राम का जो पीतरबुर्ग संघ क़ायम किया और जिसने मज़दूरों में आम आन्दोलन शुरू किया और आम हड़तालों का नेतृत्व किया, वह एक नयी मंजिल का सूचक था। यह मंजिल मज़दूरों में आम आन्दोलन की तरफ़ बढ़ने और मार्क्सवाद को मजदूर आन्दोलन से मिलाने की मंजिल थी। मजदूर वर्ग के मुक्ति–संग्राम का पीतरबुर्ग संघ रूस में एक क्रांतिकारी सर्वहारा पार्टी का बीज था। उसके बनने के बाद, सभी मुख्य औद्योगिक केन्द्रों में और सीमान्त इलाकों में भी मार्क्सवादी संगठन क़ायम हुए।

1898 में, रू•सो•डे•ले•पा•की पहली कांग्रेस हुई। इसमें मार्क्सवादी सोशल–डेमोक्रेटिक संगठनों को एक पार्टी में मिलाने की पहली, यद्यपि नाकाम, कोशिश की गयी। लेकिन, इस कांग्रेस ने अभी पार्टी का निर्माण नहीं किया। न तो पार्टी का कार्यक्रम था और न पार्टी के नियम थे। अभी कोई नेतृत्व करने वाला एक ही केंद्र भी न था और अलग–थलग मार्क्सवादी मण्डलों और गुटों में मुश्किल से ही कोई सम्बन्ध था।

विभिन्न मार्क्सवादी संगठनों को एक ही पार्टी में मिलाने और जोड़ने के लिये, लेनिन ने ***इस्क्रा*** की स्थापना की योजना पेश की और उसे पूरा किया। क्रान्तिकारी मार्क्सवादियों का अखिल रूसी पैमाने पर **यह पहला** अखबार था।

उस समय मजदूर वर्ग की एक ही राजनीतिक पार्टी बनाने के मुख्य विरोधी 'अर्थवादी' थे। वे इस तरह की पार्टी की जरूरत से इनकार करते थे। अलग–थलग गुटों के अलगाव और अधकचरे तरीकों को वे शह देते थे। इन्हीं पर लेनिन और उनके द्वारा संगठित ***इस्क्रा*** अखबार ने अपने प्रहार किये।

इस्क्रा के पहले अंकों का प्रकाशन (1900–01) एक नये ज़माने की तरफ़ बढ़ने की सूचना थी। इस जमाने में, बिखरे हुए गुटों और मण्डलों से एक ही रूसी सोशल–डेमोक्रेटिक लेबर पार्टी सचमुच बनी।

दूसरा अध्याय

रूसी सोशल-डेमोक्रैटिक लेबर पार्टी का निर्माण। पार्टी के भीतर बोल्शेविक और मेन्शेविक गुटों का जन्म।

(1901-1904)

1. 1901-'04 में रूस में क्रांतिकारी आन्दोलन की उठान।

यूरोप में 19वीं सदी के अंत में औद्योगिक संकट दिखाई दिया। यह संकट जल्द ही रूस भी आ पहुंचा। संकट के दिनों में (1900-'03), क़रीब 3,000 बड़े और छोटे कारख़ाने बंद कर दिये गये और एक लाख से ऊपर मज़दूर बेकार हो गये। जो मज़दूर काम में लगे रहे, उनकी तनख्वाह में भारी कमी हुई। ज़बर्दस्त आर्थिक हड़तालें करके पूंजीपतियों से जो छोटी-मोटी रियायतें पहले मिली थीं, वे भी वापस ले ली गयीं।

औद्योगिक संकट और बेकारी ने मज़दूर आन्दोलन को न तो रोका और न कमज़ोर बनाया। इससे उल्टा मज़दूरों का संघर्ष दिन पर दिन क्रांतिकारी रूप धारण करता गया। आर्थिक हड़तालें करने के बाद, मज़दूर राजनीतिक हड़तालें करने लगे और अंत में वे प्रदर्शन करने लगे। जनवादी अधिकारों के लिये वे राजनीतिक मांगें पेश करने लगे और उन्होंने **"निरंकुश ज़ारशाही मुर्दाबाद!"** का नारा बुलन्द किया।

1901 में, मई दिवस पर पीतरबुर्ग में ओबूख़ोव के गोला-बारूद के कारख़ाने में हड़ताल हुई, जिसके फलस्वरूप मज़दूरों और फ़ौज के सिपाहियों में ख़ूनी टक्कर हुई। ज़ार के हथियारबन्द सिपाहियों का मुक़ाबिला करने के लिये, अस्त्र-शस्त्र के नाम पर मज़दूरों के पास सिर्फ़ पत्थर और लोहे के टुकड़े थे। मज़दूरों का ज़बर्दस्त विरोध तोड़ दिया गया। इसके बाद, भयानक बदला लिया था। क़रीब आठ सौ मज़दूर गिरफ़्तार किये गये। बहुतों को जेल में डाल दिया गया, या कठिन मेहनत और निर्वासन की

सज़ा दी गयी, लेकिन वीरतापूर्ण 'ओबूख़ोव संघर्ष' ने रूस के मज़दूरों पर गहरा असर डाला और उनके अन्दर हमदर्दी की लहर दौड़ गयी।

मार्च 1902 में, बातुम में मज़दूरों की बड़ी हड़तालें हुईं और एक प्रदर्शन हुआ। इसका संगठन बातुम की सोशल–डेमोक्रैटिक कमेटी ने किया था। बातुम के प्रदर्शन से ट्रांस कॉकेशिया के मज़दूरों और किसानों में हलचल पैदा हुई।

1902 में, दोन–तट के रोस्तोव नगर में भी एक भारी हड़ताल हुई। सबसे पहले रेल मज़दूर काम छोड़कर आये। फिर, बहुत से कारख़ानों के मज़दूर उनके साथ आ मिले। हड़ताल से सभी मज़दूरों में हलचल थी। लगातार कई दिनों तक शहर के बाहर होने वाली सभाओं में तीस–तीस हज़ार मज़दूर तक इकट्ठे हो जाते थे। इन सभाओं में सोशल–डेमोक्रेटिक ऐलान ज़ोर से पढ़े जाते थे और वक्ता मज़दूरों के सामने व्याख्यान देते थे। पुलिस और क़ज़्ज़ाक़ ये सभायें तोड़ने के लिये बेकार थे, जहां हज़ारों लोग इकट्ठे होते थे। जब पुलिस के हाथ से कई मज़दूर मारे गये तो उनकी शव–यात्रा में मेहनतकश जनता का एक भारी जुलूस दूसरे दिन निकला। आसपास के शहरों से फ़ौज बुलाकर ही, ज़ार सरकार हड़ताल दबा सकी। रोस्तोव के मज़दूरों के संघर्ष का नेतृत्व रू•सो•डे•ले•पा• की दोन कमिटी ने किया था।

1903 में जो हड़तालें हुईं, वे और भी बड़े पैमाने की थीं। उस साल दक्खिन में आम राजनीतिक हड़तालें हुईं। हड़तालों की लहर ट्रांस कॉकेशिया (बाकू, तिफ़लिस, बातुम) और उक्रैन के बड़े शहरों (ओदेसा, कियेव, एकातरिनोस्लाव) में फैल गई। हड़तालें दिन पर दिन दृढ़ और ज़्यादा सुसंगठित होती गयीं। मज़दूर वर्ग की पहली कार्यवाही के विपरीत, क़रीब–क़रीब हर जगह मज़दूरों के राजनीतिक संघर्ष का नेतृत्व सोशल–डेमोक्रैटिक कमिटियों ने किया था।

रूस का मज़दूर वर्ग ज़ारशाही के ख़िलाफ़ क्रांतिकारी संघर्ष चलाने के लिये उठ रहा था।

मज़दूर आन्दोलन का असर किसानों पर पड़ा। 1902 के बसंत और गरमी में, उक्रैन में (पोल्तावा और ख़ारकोव प्रान्तों में) और वोल्गा प्रदेश में किसान आन्दोलन शुरू हो गया। किसानों ने ज़मींदारों की कोठियों में आग लगा दी, उनकी ज़मीन छीन ली और ***ज़ैम्स्की नाचाल्निक***[1] (देहाती थानेदार) और ज़मींदारों को, जिनसे वे नफ़रत करते थे, उन्होंने मार डाला।

---

1. **अभिजात वर्ग द्वारा नियुक्त अफ़सर जिसे पुलिस, मैजिस्ट्रेट और शासक के काम करने होते थे – अंग्रेज़ी अनु•**

विद्रोही किसानों को दबाने के लिये फ़ौजें भेजी गयीं। किसानों को गोलियां चलाकर मारा गया, सैकड़ों को गिरफ़्तार कर लिया गया और उनके नेताओं और संगठनकर्त्ताओं को जेल में डाल दिया गया। फिर भी, क्रान्तिकारी किसान–आन्दोलन बढ़ता ही रहा।

मज़दूरों और किसानों के क्रान्तिकारी कामों ने दिखला दिया कि रूस में क्रान्ति परिपक्व हो रही है और नज़दीक आ रही है।

मज़दूरों के क्रान्तिकारी संघर्ष के असर से हुकूमत के ख़िलाफ़ विद्यार्थियों के विरोध–आन्दोलन ने और तेज़ी पकड़ी। विद्यार्थियों के प्रदर्शनों और हड़तालों का बदला लेने के लिये हुकूमत ने विश्वविद्यालयों को बन्द कर दिया। सैकड़ों विद्यार्थियों को जेल में डाल दिया और अंत में बाग़ी विद्यार्थियों को मामूली सिपाहियों की तरह फ़ौज में भेजने की योजना बनायी। इसके जवाब में, 1901–'02 के जाड़ों में सभी विश्वविद्यालयों के विद्यार्थियों ने एक आम हड़ताल संगठित की। इस हड़ताल में क़रीब 30,000 विद्यार्थी शामिल हुए।

मज़दूरों और किसानों के क्रान्तिकारी आन्दोलन और ख़ास तौर से विद्यार्थियों के ख़िलाफ़ दमन का असर उदारपंथी पूंजीपतियों और उदारपंथी ज़मींदारों पर पड़ा, जो ज़ेम्स्त्वो नाम की संस्थाओं में जमे बैठे थे। ये भी अब हिले–डुले और इन्होंने अपनी आवाज़ अपने विद्यार्थी बेटों को दबाने में ज़ार सरकार की 'ज़्यादतियों' के 'विरोध' में बुलन्द की।

ज़ेम्स्त्वो बोर्ड ज़ेम्स्त्वो उदारपंथियों के गढ़ थे। ये स्थानीय सरकारी संस्थायें थीं, जिनके अधिकार में देहाती जनता से संबंध रखने वाले सिर्फ़ स्थानीय काम ही थे (सड़क, अस्पताल और स्कूल बनाना)। ज़ेम्स्त्वो बोर्डों में उदारपंथी ज़मींदार काफ़ी प्रमुख भाग लेते थे। उदारपंथी पूंजीपतियों से उनका गहरा संबंध था। दरअसल वे क़रीब–क़रीब उनसे घुल–मिल गये थे, क्योंकि वे ख़ुद वे तरीक़े छोड़ रहे थे जिनका आधार भूदास प्रथा के अवशेष थे और अपनी रियासतों में खेती के लिये ज़्यादा मुनाफ़ा देने वाले पूंजीवादी तरीक़े अपना रहे थे। यह ठीक है कि उदारपंथियों के ये दोनों गुट ज़ार सरकार का समर्थन करते थे, लेकिन वे ज़ारशाही की 'ज़्यादतियों' का विरोध करते थे। उन्हें डर था कि इन 'ज़्यादतियों' से क्रान्तिकारी आन्दोलन और ज़ोर ही पकड़ेगा। अगर एक तरफ़ वे ज़ारशाही की 'ज़्यादतियों' से डरते थे, तो दूसरी तरफ़ वे क्रान्ति से और भी डरते थे। इन 'ज़्यादतियों' का विरोध करने में उदारपंथियों के दो उद्देश्य थे, पहला तो यह कि ज़ार 'होश में आ जाये', और दूसरा यह कि ज़ारशाही

के प्रति 'गंभीर असंतोष' का चोग़ा पहनकर जनता का विश्वास हासिल करें और उसे या उसके एक हिस्से को क्रान्ति से तोड़ लें और इस तरह से क्रान्ति को कमज़ोर बनायें।

इसमें कोई शक नहीं कि ज़ेम्स्त्वो उदारपंथी आन्दोलन से ज़ारशाही के अस्तित्व के लिये किसी तरह का भी ख़तरा नहीं था। फिर भी, उससे यह ज़ाहिर हो गया कि ज़ारशाही के 'अडिग' स्तम्भ भी डगमगाने लगे हैं।

1902 में, ज़ेम्स्त्वो उदारपंथी आन्दोलन से पूंजीवादी 'देशोद्धारक' गुट का निर्माण हुआ। रूस में पूंजीपतियों की भावी मुख्य पार्टी – कॉन्स्टीट्यूशनल डेमोक्रेटिक पार्टी – का यह बीज रूप था।

यह देखकर कि मज़दूरों और किसानों का आन्दोलन एक ज़बरदस्त लहर बन कर देश पर छाया जा रहा है, ज़ार सरकार ने इस क्रान्तिकारी ज्वार को रोकने के लिये भरसक सब कुछ किया। मज़दूरों की हड़तालों और प्रदर्शनों का दमन करने के लिये हथियारबंद ताक़त जल्दी–जल्दी इस्तेमाल की जाने लगी। मज़दूरों और किसानों की कार्यवाही के जवाब में, हुकूमत आम तौर से लाठी और गोली इस्तेमाल करने लगी। जेलख़ाने और निर्वासन की जगहें ठसाठस भर गयीं।

दमन के उपाय और भी सख़्ती से काम में लाने के साथ–साथ, ज़ार सरकार ने कोशिश की कि दूसरे अहिंसावादी ज़्यादा 'लचीले' तरीक़े भी इस्तेमाल करे, जिसमें कि मज़दूरों को क्रान्तिकारी आन्दोलन से हटाया जा सके। हथियारबंद सिपाहियों और पुलिस की देख–रेख में मज़दूरों के दिखावटी संगठन खड़े करने की कोशिश की गयी। इन्हें 'पुलिस समाजवाद' के संगठन या ज़ूबातोव संगठन कहा जाता था (ज़ूबातोव हथियारबंद पुलिस का कर्नल था और वह पुलिस के निर्देश से चलने वाले इन मज़दूर संगठनों का संस्थापक था)। अपने दलालों के ज़रिये ***ओखराना*** ने मज़दूरों में यह विश्वास पैदा करने की कोशिश की कि ज़ार सरकार ख़ुद ही उनकी आर्थिक मांगों को पूरा किये जाने में मदद देने के लिये तैयार है। ज़ूबातोव के दलाल मज़दूरों से कहते : "राजनीति में पड़ने से क्या फ़ायदा, क्रान्ति आने से क्या फ़ायदा? ज़ार ख़ुद ही मज़दूरों की हिमायत कर रहा है!" कई शहरों में ज़ूबातोव संगठन बने। इन्हीं के नमूने पर और उसी उद्देश्य से 1904 में, गेपन नाम के पादरी ने पीतरबुर्ग के रूसी मिल–मज़दूरों का संघ बनाया।

लेकिन ज़ारशाही ***ओखराना*** की यह कोशिश कि वह मज़दूर आन्दोलन की बागडोर अपने हाथ में ले ले नाकाम रही। ज़ार सरकार इस तरह के उपायों से बढ़ते हुये मज़दूर

आन्दोलन की रोक–थाम करने में असफल रही। मज़दूर वर्ग के उठते हुये क्रान्तिकारी आन्दोलन ने पुलिस के चलाये हुये इन संगठनों को अपने रास्ते से दूर फेंक दिया।

2. मार्क्सवादी पार्टी बनाने के लिये लेनिन की योजना। 'अर्थवादियों' का अवसरवाद। लेनिन की योजना के लिये 'इस्क्रा' का संघर्ष। लेनिन की पुस्तक 'क्या करें'– मार्क्सवादी पार्टी का सैद्धान्तिक आधार।

बावजूद इस बात के कि रूसी सोशल–डेमोक्रैटिक पार्टी की पहली कांग्रेस 1898 में हो चुकी थी और उसने पार्टी बनने का ऐलान कर दिया था, अभी कोई सचमुच की पार्टी न बनी थी। न कोई पार्टी–कार्यक्रम था और न पार्टी के नियम थे। पहली कांग्रेस में जो पार्टी की केन्द्रीय समिति चुनी गई थी, वह गिरफ्तार कर ली गयी थी और किसी ने उसकी जगह न ली थी, क्योंकि जगह लेने वाला कोई था ही नहीं, इससे भी ख़राब यह था कि पहली कांग्रेस के बाद पार्टी में विचारधारा की उलझन और संगठन की एकता की कमी और भी बढ़ गयी।

1884–'94 के साल, लोकवाद पर विजय के साल थे और **सोशल–डेमोक्रैटिक** पार्टी बनाने के लिये सैद्धांतिक तैयारी के साल थे। 1894–' 98 के सालों में कोशिश की गयी, भले ही यह नाकाम कोशिश थी, कि अलग–थलग मार्क्सवादी संगठनों को सोशल–डेमोक्रैटिक पार्टी में मिलाकर एक किया जाये। 1898 के बाद ही जो वक़्त आया, वह ऐसा था जिसमें पार्टी के भीतर विचारधारा और–संगठन संबंधी उलझने और बढ़ गयीं। लोकवाद पर मार्क्सवादियों ने जो जीत हासिल की और मज़दूर वर्ग ने जो क्रान्तिकारी काम किये, जिनसे साबित हुआ कि मार्क्सवादी सही थे, इनसे मार्क्सवाद के लिये क्रान्तिकारी नौजवानों में हमदर्दी पैदा हुई। मार्क्सवाद एक फ़ैशन हो गया। इसका नतीजा यह हुआ कि झुन्ड के झुन्ड क्रान्तिकारी बुद्धिजीवी मार्क्सवादी संगठनों में आ पहुंचे। ये सिद्धान्त में कमज़ोर थे और राजनीतिक संगठन में अनुभवहीन थे। इनके दिमाग़ में मार्क्सवाद की एक अस्पष्ट और ज़्यादातर ग़लत धारणा थी, जिसे उन्होंने 'क़ानूनी मार्क्सवादियों' की अवसरवादी रचनाओं से पाया था। अख़बारों में इस तरह की रचनायें भरी होती थीं। नतीजा यह कि मार्क्सवादी संगठनों का सैद्धान्तिक और राजनीतिक स्तर और नीचा हुआ। इनके अन्दर 'क़नूनी मार्क्सवाद' की अवसरवादी प्रवृत्तियां घर कर गयीं। उनमें सैद्धान्तिक उलझन, राजनीतिक ढुलमुलपन और संगठन की अराजकता बढ़ गयी।

मज़दूर आन्दोलन के उठते हुये ज्वार और क्रान्ति के स्पष्टतः नज़दीक आने की यह मांग थी कि मज़दूर वर्ग की एक संयुक्त और सुकेन्द्रित पार्टी हो, जो **क्रान्तिकारी** आन्दोलन का नेतृत्व कर सके। लेकिन स्थानीय पार्टी–संगठन, स्थानीय कमिटियां, स्थानीय गुट और मंडल ऐसी बुरी हालत में थे और उनकी संगठन संबंधी फूट और सैद्धान्तिक झगड़े ऐसे गंभीर थे कि इस तरह के पार्टी का निर्माण करना बहुत बड़ी कठिनाई का काम था।

कठिनाई इसी में नहीं थी कि ज़ार सरकार के बर्बर दमन का सामना करते हुये पार्टी बनानी थी। ज़ार सरकार जब–तब संगठनों के सबसे अच्छे कार्यकर्ता छीन लेती थी और उन्हें निर्वासन, जेल और कठिन मेहनत की सज़ायें देती थी। कठिनाई इस बात में भी थी कि स्थानीय कमिटियों और उनके सदस्यों की एक बड़ी तादाद अपनी स्थानीय, छोटी–मोटी अमली कार्यवाही छोड़ कर और किसी चीज़ से सरोकार न रखती थी। पार्टी के अन्दर संगठन और विचारधारा की एकता न होने से कितना नुक़सान हो रहा है, इसका अनुभव न करती थी। पार्टी के भीतर जो फूट और सैद्धान्तिक उलझन फैली हुई थी, वह उसकी आदी हो गयी थी। वह समझती थी कि बिना एक संयुक्त केन्द्रित पार्टी के भी मज़े में काम चला सकती है।

अगर केन्द्रित पार्टी बनानी थी तो यह पिछड़ापन, आलस और **स्थानीय संगठनों** का यह संकीर्ण दृष्टिकोण ख़त्म करना था।

लेकिन, बात इतनी ही नहीं थी। पार्टी के अन्दर ऐसे लोगों का एक काफ़ी बड़ा दल था जिनके अपने अख़बार थे – रूस में ***रबोचाया मिस्ल (श्रमिक विचार)*** और विदेश में ***रबोचेयेदेलो (श्रमिक ध्येय)***। ये सैद्धान्तिक आधार पर संगठन की एकता के अभाव और पार्टी के अन्दर सैद्धान्तिक उलझन को सही ठहराने की कोशिश करते थे। वे अक्सर इस हालत की तारीफ़ भी करते थे। उनका दावा था कि मज़दूर वर्ग की संयुक्त और केन्द्रित राजनीतिक पार्टी बनाने की योजना ग़ैर–ज़रूरी और नक़ली थी।

ये थे 'अर्थवादी' और उनके अनुयायी।

सर्वहारा वर्ग की संयुक्त राजनीतिक पार्टी बने, इसके पहले 'अर्थवादियों' को हराना ज़रूरी था।

लेनिन ने यह काम और मज़दूर वर्ग की पार्टी के निर्माण का काम उठाया।

मज़दूर वर्ग की संयुक्त पार्टी बनाने का काम कैसे शुरू किया जाये, यह एक ऐसा

सवाल था जिस पर अलग–अलग मत थे। कुछ लोगों का विचार था कि पार्टी की दूसरी कांग्रेस बुलाकर पार्टी–निर्माण का काम शुरू किया जाये। यह कांग्रेस स्थानीय संगठनों को एक करेगी और पार्टी बनायेगी। लेनिन इसका विरोध करते थे। उनका कहना था कि कांग्रेस बुलाने से पहले पार्टी के उद्देश्य और ध्येय साफ़ कर देना ज़रूरी है, यह मालूम करना ज़रूरी है कि किस तरह की पार्टी दरकार है, 'अर्थवादियों' से सैद्धान्तिक भेद करना ज़रूरी है, ईमानदारी से साफ़–साफ़ पार्टी से यह कहना ज़रूरी है कि पार्टी के ध्येय और उद्देश्यों के बारे में दो अलग मत मौजूद हैं – 'अर्थवादियों' का मत और क्रान्तिकारी सोशल–डेमोक्रैटों का मत – अख़बारों में क्रान्तिकारी सोशल – डेमोक्रैसी के विचारों के पक्ष में व्यापक आन्दोलन करना ज़रूरी है – जैसे कि 'अर्थवादी' अपने अख़बारों में अपने विचारों के पक्ष में आन्दोलन चला रहे थे – और इन दो धाराओं में से एक को जानबूझ कर चुनने के लिये स्थानीय संगठनों को मौक़ा देना ज़रूरी है। यह शुरू का लाज़िमी काम पूरा होने पर ही पार्टी कांग्रेस बुलाई जा सकती थी।

लेनिन ने साफ़–साफ़ कहा :

> "इसके पहले कि हम मिलें और इसलिये कि मिलें, हमें मतभेद की स्पष्ट और निश्चित रेखायें खींच लेनी चाहिये।" (लेनिन, ***संक्षिप्त ग्रंथावली***, अंग्रेज़ी संस्करण, मास्को, 1947, खन्ड 1, पृष्ठ 162)।

इसी के अनुसार, लेनिन का कहना था कि मज़दूर वर्ग की राजनीतिक पार्टी बनाने का काम अखिल रूसी पैमाने पर एक लड़ाकू राजनीतिक अख़बार स्थापित करके शुरू करना चाहिये। यह अख़बार क्रान्तिकारी सोशल–डेमोक्रेसी के विचारों के पक्ष में प्रचार और आन्दोलन करे। इस तरह के अख़बार की स्थापना पार्टी के निर्माण में पहला क़दम होगी।

अपने प्रसिद्ध लेख "शुरूआत कहां हो?" में, लेनिन ने पार्टी के निर्माण के लिये एक ठोस योजना की रूपरेखा पेश की थी। अपनी प्रसिद्ध पुस्तक क्या करें? में, लेनिन ने आगे चलकर इसी योजना को विस्तृत रूप दिया।

लेनिन ने इस लेख में कहा था :

> "हमारी राय में हमारी कार्यवाही की शुरूआत अखिल रूसी पैमाने पर एक राजनीतिक अख़बार की स्थापना से होनी चाहिये। जिस तरह का संगठन हम चाहते हैं (यानि पार्टी का निर्माण–सम्पादक), उसके लिये यह पहला अमली क़दम होगा। यही मुख्य सूत्र होगा जिसके सहारे हम संगठन को अटल रूप से विकसित कर

सकेंगे, उसमें गंभीरता पैदा कर सकेंगे और उसका प्रसार कर सकेंगे।... इसके बिना हम बाक़ायदा वह व्यापक प्रचार और आन्दोलन नहीं कर सकते, जो हमेशा सैद्धान्तिक रहे और जो आम तौर से सोशल–डेमोक्रैटों का मुख्य और हर समय का काम है। आजकल जबकि राजनीति से, समाजवाद के सवालों से जनता के भारी हिस्सों में दिलचस्पी पैदा हो गयी है, इस तरह का प्रचार और आन्दोलन ख़ास तौर से ज़रूरी काम है।" (लेनिन, ***संक्षिप्त ग्रंथावली,*** रूसी संस्करण, खन्ड 4, पृष्ठ 110)।

लेनिन का विचार था कि इस तरह के अख़बार से सैद्धान्तिक रूप में ही पार्टी एक न होगी बल्कि उसके भीतर स्थानीय संस्थायें भी संगठन की दृष्टि से एक होंगी। अख़बार के लिये जो एजेन्टों और संवाददाताओं का जाल बिछ जायेगा, उससे एक ऐसा ढांचा खड़ा होगा जिसके चारों तरफ़ संगठन की दृष्टि से पार्टी का निर्माण हो सकेगा। ये एजेन्ट और संवाददाता स्थानीय संगठनों के प्रतिनिधि होंगे। लेनिन का कहना था "अख़बार एक सामूहिक प्रचारक और एक सामूहिक आन्दोलनकर्ता ही नहीं है, बल्कि एक सामूहिक संगठनकर्ता भी है।"

लेनिन ने उसी लेख में लिखा था :

"एजेन्टों का यह जाल उस संगठन का ही ढांचा बन जायेगा जिसकी हमें ज़रूरत है, यानि ऐसा ढांचा जो इतना बड़ा हो कि सारे देश में फैला हो, इतना व्यापक और चौमुखी हो कि मेहनत का बंटवारा सख़्ती के साथ और विस्तार के साथ हो सके। यह ढांचा काफ़ी परखा हुआ और तपाया हुआ हो कि सभी हालतों में, सभी 'मोड़ों' पर और हर तरह की आकस्मिक परिस्थिति में अटल होकर अपना काम चलाता रहे। वह इतना लचीला हो कि बहुत ज़्यादा ताकतवर दुश्मन से खुली लड़ाई लड़ने से बचे जबकि दुश्मन ने अपनी सारी ताकत एक जगह बटोर ली हो और फिर भी, इस दुश्मन के भोंड़ेपन का फायदा उठा सके और जहां भी और जिस समय भी उसे सबसे कम उम्मीद हो, हमला कर सके।" (***उपर्युक्त,*** पृष्ठ 112)।

इस्क्रा ऐसा ही अख़बार बनने वाला था।

और सचमुच, कुल रूसी पैमाने पर ***इस्क्रा*** ऐसा ही राजनीतिक अख़बार बना कि जिसने पार्टी को विचारधारा और संगठन में मज़बूत करने के लिये रास्ता तैयार किया।

जहां तक पार्टी की बनावट और ढांचे का सम्बन्ध था, लेनिन का विचार था कि उसके दो हिस्से होने चाहिये – अ) पार्टी के नियमित प्रमुख कार्यकर्ताओं का एक

भीतरी व्यूह हो, जिसमें मुख्यकर पेशेवर क्रान्तिकारी हों, यानि पार्टी के ऐसे कार्यकर्ता जो पार्टी के काम के अलावा और सभी धंधों से आज़ाद हों और जिनके पास कम से कम आवश्यक सैद्धान्तिक ज्ञान, राजनीतिक अनुभव हो, संगठन का अभ्यास और ज़ार की पुलिस का मुक़ाबिला करने तथा उससे बचने की कला हो; आ) स्थानीय पार्टी–संगठनों का विशद जाल हो और पार्टी के सदस्यों की एक बड़ी तादाद हो, जिनकी तरफ़ लाखों मेहनतकशों की हमदर्दी हो और वे उनका समर्थन करते हों।

लेनिन का कहना था :

"मेरा दावा है कि 1) कोई भी क्रान्तिकारी आन्दोलन नेताओं के ऐसे टिकाऊ संगठन के बिना, जो लगातार कायम रहे, चल नहीं सकता; 2) संघर्ष में आम जनता जितना ही अपने–आप कूदती है... उतना ही इस संगठन की ज़रूरत बढ़ जाती है और संगठन उतना ही मज़बूत होना चाहिये... । 3) इस तरह के संगठन में मुख्यतः ऐसे लोग होने चाहिये जो क्रान्तिकारी काम में पेशेवर तरीके से लगे हों। 4) स्वेच्छाचारी राज्य में इस तरह के संगठन की सदस्यता को जितना ही हम ऐसे लोगों के लिये सीमित रखेंगे जो पेशेवर तरीके से क्रान्तिकारी काम में लगे हों और जिन्हें पेशे के तौर पर राजनीतिक पुलिस का मुकाबिला करने की कला में शिक्षा हो, उतना ही इस तरह के संगठन को मिटाना मुश्किल होगा; और 5) उतना ही मज़दूर वर्ग और समाज के दूसरे वर्गों के लोगों की तादाद, जो आन्दोलन में शामिल हो सकेंगे और उसमें सक्रिय भाग ले सकेंगे, बड़ी होगी।" (*उपर्युक्त,* पृष्ठ 456)।

जहां तक बनाई जाने वाली पार्टी के स्वरूप का सम्बन्ध था और मज़दूर वर्ग के सम्बन्ध में उसकी भूमिका और उसके उद्देश्य और ध्येय का सवाल था, लेनिन का कहना था कि पार्टी मज़दूर वर्ग की हिरावल हो, वह मज़दूर आन्दोलन को रास्ता दिखाने वाली ताकत हो जो सर्वहारा के वर्ग–संघर्षों का संचालन करे और उन्हें आपस में मिलाये। पार्टी का अंतिम ध्येय पूंजीवाद का ख़ात्मा और समाजवाद कायम करना था। फौरी ध्येय ज़ारशाही का खात्मा और जनवादी व्यवस्था कायम करना था। चूंकि ज़ारशाही को पहले ख़त्म किये बिना पूंजीवाद को ख़त्म करना नामुमकिन था, इसलिये उस वक़्त पार्टी का मुख्य काम मज़दूर वर्ग और तमाम जनता को ज़ारशाही के ख़िलाफ़ संघर्ष के लिये उभारना था, उसके ख़िलाफ़ जनता के क्रान्तिकारी आन्दोलन को विकसित करना था और समाजवाद के रास्ते में उसे पहली और भारी अड़चन समझ कर ख़त्म करना था।

लेनिन ने लिखा था :

"इतिहास ने अब हमारे सामने एक **फ़ौरी** काम रखा है। किसी भी देश के सर्वहारा के सामने जो फ़ौरी काम हैं, उनमें यह **सबसे क्रान्तिकारी** है। इस काम के पूरा होने से, यूरोपीय प्रतिक्रियावाद ही नहीं, बल्कि (अब यह कहा जा सकता है कि) एशियायी प्रतिक्रियावाद के सबसे शक्तिशाली गढ़ के विनाश से रूसी सर्वहारा वर्ग अंतर्राष्ट्रीय क्रान्तिकारी सर्वहारा वर्ग का हिरावल बन जायेगा।" (***उपर्युक्त,*** पृष्ठ 382)।

और भी आगे :

"हमें यह ध्यान में रखना चाहिये कि आंशिक मांगों के लिये हुकूमत से संघर्ष, आंशिक रियायतों की जीत, दुश्मन से छोटी–मोटी मुठभेड़ ही है। यह बाहर की चौकियों पर छोटी टक्करें हैं, जबकि निपटारे की लड़ाई अभी होने को है। हमारे सामने अपनी भरपूर ताकत से सुसज्जित दुश्मन का किला खड़ा हुआ है। वह हम पर गोला–बारूद बरसा रहा है और हमारे सबसे अच्छे सिपाहियों को भूने डाल रहा है। इस किले पर हमें कब्ज़ा करना है। हम उस पर कब्ज़ा कर लेंगे, बशर्ते कि हम जागते हुये सर्वहारा की सभी ताकतों को रूसी क्रान्तिकारियों की ताकतों के साथ एक ही पार्टी में मिलायें, जो पार्टी रूस में जो कुछ भी जीवित और ईमानदार है, उसे अपनी तरफ़ खींचे। और, तभी रूस के मज़दूर क्रान्तिकारी प्योत्र एलैक्सीयेव की महान् भविष्यवाणी पूरी होगी : 'लाखों मेहनतकशों की सशक्त भुजा उठेगी और तानाशाही का किला, जिसकी हिफ़ाज़त सिपाहियों की संगीनें कर रही हैं, चूर–चूर हो जायेगा'।" (***उपर्युक्त,*** पृष्ठ 59)।

निरंकुश ज़ारशाही के रूस में मज़दूर वर्ग की पार्टी बनाने के लिये, लेनिन की योजना इस तरह की थी।

लेनिन की योजना के ख़िलाफ़ जिहाद बोलने में 'अर्थवादियों' ने ज़रा भी देर न लगायी।

उनका दावा था कि ज़ारशाही के ख़िलाफ़ आम राजनीतिक संघर्ष चलाने में सभी वर्गों को दिलचस्पी है, लेकिन मुख्यतः पूंजीपतियों को है। और इसलिये, मज़दूर वर्ग को उससे गहरी दिलचस्पी नहीं है क्योंकि मज़दूरों का मुख्य हित ज़्यादा तनख़्वाह, काम करने की बेहतर हालत वग़ैरह के लिये अपने मालिकों के ख़िलाफ़ आर्थिक लड़ाई लड़ने में है। इसलिये, सोशल–डेमोक्रैटों का पहला और मुख्य ध्येय ज़ारशाही के ख़िलाफ़ राजनीतिक संघर्ष न होना चाहिये, ज़ारशाही का ख़त्मा न होना चाहिये

बल्कि "मालिकों और सरकार के ख़िलाफ़ मज़दूरों के आर्थिक संघर्ष" का संगठन होना चाहिये। सरकार के ख़िलाफ़ आर्थिक संघर्ष से उनका मतलब ज़्यादा अच्छे मिल सम्बन्धी कानून बनवाने से था। 'अर्थवादियों' का कहना था कि इस तरह से "आर्थिक संघर्ष को ही राजनीतिक रूप देना" मुमकिन होगा।

'अर्थवादियों' की अब यह हिम्मत नहीं थी कि मज़दूर वर्ग की राजनीतिक पार्टी की आवश्यकता का खुलकर विरोध करें। लेकिन वे समझते थे कि उसे मज़दूर आन्दोलन की निर्देशक शक्ति न होना चाहिये, उसे मज़दूर वर्ग के अपने–आप चलने वाले आन्दोलन का संचालन करना तो दूर, उसमें दख़ल भी न देना चाहिये, बल्कि उसे इस आन्दोलन के पीछे चलना चाहिये, उसका अध्ययन करना चाहिये और उसे सबक लेना चाहिये।

इसके अलावा, 'अर्थवादी' कहते थे कि मज़दूर आन्दोलन के सचेत लोगों की भूमिका, समाजवादी चेतना और समाजवादी सिद्धान्त की संगठन और संचालन सम्बन्धी भूमिका नगण्य है, या करीब–करीब नगण्य है। उनका कहना था कि सोशल–डेमोक्रैटों को मज़दूरों के शऊर को समाजवादी चेतना की सतह तक न उठाना चाहिये, बल्कि उल्टा औसत दर्जे के मज़दूरों, मज़दूर वर्ग के ज़्यादा पिछड़े हुये हिस्सों की सतह तक उन्हें खुद झुकना चाहिये; उनसे अपनी पटरी बैठानी चाहिये। सोशल–डेमोक्रैटों को यह न चाहिये कि मज़दूर वर्ग में समाजवादी चेतना पैदा करें, बल्कि तब तक इंतज़ार करना चाहिये जब तक कि मज़दूर वर्ग का अपने–आप चलने वाला आन्दोलन समाजवादी चेतना की सतह तक खुद ही न पहुंच जाये।

जहां तक पार्टी के संगठन के लिये लेनिन की योजना का सवाल था, 'अर्थवादी' उसे अपने–आप चलने वाले आन्दोलन के ख़िलाफ़ करीब–करीब हिंसा का ही काम समझते थे।

इस्क्रा के कॉलमों में और ख़ास तौर से अपनी प्रसिद्ध पुस्तक ***क्या करें?*** में, लेनिन ने 'अर्थवादियों' के इस अवसरवादी दर्शन पर कस कर हमला किया और उसे निर्मूल कर दिया।

(1) लेनिन ने दिखलाया कि ज़ारशाही के ख़िलाफ़ आम राजनीतिक संघर्ष से मज़दूर वर्ग को हटाना और मालिकों और सरकार के ख़िलाफ़ आर्थिक संघर्ष तक उसका काम सीमित रखना, जबकि मालिक और सरकार दोनों बरकरार रहने दिये जायें, इसके माने यह थे कि मज़दूरों को हमेशा के लिये गुलामी करने के लिये छोड़ दिया जाये। मालिकों और सरकार के ख़िलाफ़ मज़दूरों की आर्थिक लड़ाई

पूंजीपतियों को अपनी श्रम–शक्ति बेचने में ज़्यादा अच्छी शर्तें पाने के लिये एक ट्रेड यूनियन लड़ाई थी। लेकिन मजदूर पूंजीपतियों को अपनी श्रम–शक्ति बेचने में ज्यादा अच्छी शर्तों के लिये ही न लड़ना चाहते थे, बल्कि उस पूंजीवादी व्यवस्था के खात्में के लिये भी लड़ना चाहते थे जो उन्हें पूंजीपतियों को अपनी श्रम–शक्ति बेचने पर और शोषित होने पर मजबूर करती थी। लेकिन जब तक मज़दूर आन्दोलन के रास्ते को पूंजीवाद के रखवाले कुत्ते ज़ार शासन ने रोक रखा था, तब तक मज़दूर पूंजीवाद के ख़िलाफ़ अपना संघर्ष, समाजवाद के लिये अपना संघर्ष पूरी तरह विकसित नहीं कर सकते थे। इसलिये, पार्टी और मज़दूर वर्ग का यह फ़ौरी काम था कि रास्ते से ज़ारशाही को हटाया जाये और इस तरह समाजवाद के लिये रास्ता साफ़ किया जाये।

(2) लेनिन ने दिखलाया कि मज़दूर आन्दोलन के अपने–आप चलने की तारीफ़ करना, इस बात से इंकार करना कि पार्टी को प्रमुख भूमिका अदा करनी है, सिर्फ़ घटनाओं का हिसाब रखने तक उसकी भूमिका घटा देना, पिछलगुआपन ***(ख्वोस्तीवाद)*** का प्रचार करना था, पार्टी को अपने–आप चलने वाले घटना–क्रम की दुम बना देने का प्रचार करना था, उसे आन्दोलन में एक निष्क्रिय ताकत बना देना था जो सिर्फ़ अपने–आप होने वाले घटना–क्रम को देखा भर करे और घटनाओं को अपने तरीके से होने दे। यह सब प्रचार करने का मतलब था – पार्टी के नाश के लिये काम करना, यानि मज़दूर वर्ग को बिना पार्टी के कर देना, यानि मज़दूर वर्ग को निहत्था छोड़ देना। लेकिन ज़ारशाही जैसे दुश्मन के सामने, जो सिर से पैर तक हथियारों से लैस थी, और पूंजीपतियों जैसे दुश्मन के सामने, जो आधुनिक तरीके से संगठित थे और मज़दूर वर्ग के ख़िलाफ़ अपना संघर्ष चलाने के लिये खुद अपनी पार्टी बनाये हुये थे, मज़दूर वर्ग को निहत्था छोड़ने का मतलब था – उसके साथ गद्दारी करना।

(3) लेनिन ने दिखलाया कि अपने–आप चलने वाले मज़दूर आन्दोलन की पूजा करना और चेतना के महत्व को कम और समाजवादी सिद्धान्त के महत्व को तुच्छ बताना, सबसे पहले मज़दूरों का अपमान करना था, जो चेतना की तरफ़ वैसे ही झुकते थे जैसे प्रकाश की तरफ़। इसके अलावा, उसे तुच्छ बताने का मतलब था – पार्टी की नज़र में सिद्धान्त की कीमत कम करना, यानि उस अस्त्र को ही तुच्छ बताना जिसकी मदद से पार्टी वर्तमान को समझ सकती थी और भविष्य को देख सकती थी। और तीसरे, चेतना को तुच्छ बताने का मतलब था – अवसरवाद के दलदल में पूरी तरह अटल रूप से फंस जाना।

लेनिन ने लिखा था :

"क्रान्तिकारी सिद्धान्त के बिना कोई क्रान्तिकारी आन्दोलन नहीं चल सकता।... लड़ाकू हिरावल का काम ऐसी ही पार्टी कर सकती है जो सबसे आगे बढ़े हुये सिद्धान्त से अपना रास्ता पहचानती हो।" ***(लेनिन, संक्षिप्त ग्रंथावली, अंग्रेजी संस्करण,*** मास्को, 1947, खण्ड1, पृष्ठ 163, 164)।

(4) लेनिन ने दिखलाया कि 'अर्थवादी' यह कहकर कि अपने–आप चलने वाले मज़दूर आंदोलन से समाजवादी विचारधारा पैदा हो सकती है, मज़दूर वर्ग को धोखा दे रहे थे। कारण यह कि समाजवादी विचारधारा अपने–आप चलने वाले आन्दोलन में नहीं पैदा होती, बल्कि विज्ञान से पैदा होती है। मज़दूर वर्ग में समाजवादी चेतना फैलाने की ज़रूरत से इंकार करके, 'अर्थवादी' पूंजीवादी विचारधारा के लिये रास्ता साफ़ कर रहे थे। वे मज़दूर वर्ग में पूंजीवादी विचारधारा को पहुंचाने और फैलाने का काम आसान बना रहे थे। और इसलिये, वे मज़दूर आन्दोलन से समाजवाद को मिलाने के विचार को दफ़ना रहे थे और इस तरह पूंजीपतियों की मदद कर रहे थे।

लेनिन ने कहा था :

"मज़दूर आन्दोलन के अपने–आप चलने, स्वतः स्फूर्त होने की सभी पूजा, 'सचेत लोगों' की भूमिका और सोशल–डेमोक्रैसी की पार्टी की भूमिका को कम करने की सभी कोशिशों का मतलब है – **मज़दूरों में पूंजीवादी विचारधारा के असर को मज़बूत करना, और यह सवाल बिल्कुल दरकिनार है कि वह ऐसा करना चाहते हैं या नहीं।"** (***उपर्युक्त,*** पृष्ठ 173)।

और आगे :

"हमारे सामने एक **ही रास्ता** हैः या तो पूंजीवादी विचारधारा या समाजवादी विचारधारा। बीच का रास्ता नहीं है।... इसलिये समाजवादी विचारधारा को **किसी तरह** कम करके बताना, **उससे ज़रा भी हटना** पूंजीवादी विचारधारा को मज़बूत करना है।" (***उपर्युक्त,*** पृष्ठ 174, 175)।

'अर्थवादियों' की इन तमाम भूलों का सार देते हुये, लेनिन इस नतीजे पर पहुंचे थे कि वे लोग पूंजीवाद से मज़दूरों को मुक्त करने के लिये सामाजिक क्रान्ति की पार्टी न चाहते थे, बल्कि 'सामाजिक सुधार' की पार्टी चाहते थे। 'सामाजिक सुधार' की पार्टी चाहने का मतलब था पूंजीवादी हुकूमत को बने रहने देना। इसलिये, 'अर्थवादी' सुधारवादी थे, जो सर्वहारा वर्ग के बुनियादी हितों के साथ ग़द्दारी कर रहे थे।

(5) अंत में, लेनिन ने दिखलाया कि रूस में 'अर्थवाद' आकस्मिक घटना नहीं है; 'अर्थवादी' मज़दूर वर्ग पर पूंजीवादी असर डालने का साधन हैं। पच्छिमी यूरोप की सोशल–डेमोक्रैटिक पार्टियों में भी उनके साथी थे। अवसरवादी बर्न्सटाइन के अनुयायी, 'संसोधनवादी' उनके साथी थे। पच्छिमी यूरोप में सोशल–डेमोक्रैटिक पार्टियों के अन्दर अवसरवादी प्रवृत्ति ज़ोर पकड़ रही थी। मार्क्स की "आलोचना करने की आज़ादी" के नाम पर, ये लोग मार्क्सवादी सिद्धान्तों में संसोधन करने की मांग करते थे। (इसीलिये 'संसोधनवादी' शब्द बना)। ये लोग मांग करते थे कि क्रान्ति त्याग दी जाये, समाजवाद और सर्वहारा वर्ग की डिक्टेटरशिप को त्याग दिया जाये। लेनिन ने दिखलाया कि रूसी 'अर्थवादी' भी क्रान्तिकारी संघर्ष को छोड़ने की, समाजवाद और सर्वहारा डिक्टेटरशिप त्यागने की वैसी ही नीति पर चल रहे थे।

क्या करें? नाम की पुस्तक में, लेनिन ने इस तरह के ***सैद्धान्तिक उसूलों*** का विवेचन किया था।

इस किताब के व्यापक रूप से पढ़े जाने से नतीजा यह हुआ कि रूसी सोशल–डेमोक्रैटिक पार्टी की दूसरी कांग्रेस तक, यानि प्रकाशित होने के साल भर के भीतर ही (मार्च 1902 में वह प्रकाशित हुई थी), 'अर्थवाद' के उसूलों की एक कड़वी याद भर रह गयी। पार्टी के ज़्यादातर सदस्य 'अर्थवादी' कहलाना अपमान की बात समझने लगे।

'अर्थवाद' की यह करारी सैद्धान्तिक हार थी; यह अवसरवाद, ***पिछलगुआपन*** और अपने–आप चलने वाले आन्दोलन की पूजा की करारी हार थी।

लेकिन, लेनिन की पुस्तक क्या करें? का महत्व यहीं ख़त्म नहीं हो जाता।

इस प्रसिद्ध पुस्तक का महत्व इस बात में है कि इसके अन्दर लेनिन ने :

(1) मार्क्सवादी विचारों के इतिहास में पहली बार, अवसरवाद की सैद्धान्तिक जड़ों को उघार कर रख दिया और यह दिखलाया कि ये जड़ें सबसे अधिक अपने–आप चलने वाले मज़दूर आन्दोलन की पूजा करने और मज़दूर आन्दोलन में समाजवादी चेतना कम करने में है;

(2) अपने–आप चलने वाले मज़दूर आन्दोलन में सिद्धान्त के, चेतना के और पार्टी के भारी महत्व को दिखाया कि वह क्रान्तिकारी तब्दीली करने वाली और रास्ता दिखाने वाली ताकत है;

(3) इस बुनियादी मार्क्सवादी सूत्र को बहुत सुन्दर ढंग से पुष्ट किया कि मार्क्सवादी पार्टी समाजवाद से मज़दूर आन्दोलन का मेल है;

(4) मार्क्सवादी पार्टी की सैद्धान्तिक बुनियाद की बहुत सुन्दर व्याख्या की।

क्या करें? नाम की पुस्तक में सिद्धान्त के जो विचार रखे गये थे, वे आगे चल कर बोल्शेविक पार्टी की विचारधारा की बुनियाद बने।

सिद्धान्त की ऐसी निधि पास होने पर ***इस्क्रा*** पार्टी बनाने के लिये, अपनी ताकत बटोरने के लिये, दूसरी पार्टी कांग्रेस बुलाने के लिये, क्रान्तिकारी सोशल–डेमोक्रैसी के समर्थन और 'अर्थवादियों', संशोधनवादियों और सभी तरह के अवसरवादियों के विरोध की लेनिन की योजना कारगर करने के लिये एक व्यापक आन्दोलन कर सका और हक़ीक़त में ऐसा आन्दोलन उसने किया।

इस्क्रा ने जो एक बहुत ही महत्वपूर्ण बात की वह पार्टी–कार्यक्रम का मसौदा तैयार करना था। **जैसा कि हम जानते हैं,** मज़दूरों की पार्टी का कार्यक्रम मज़दूर वर्ग के संघर्ष के **ध्येय और उद्देश्यों का संक्षेप में** और वैज्ञानिक ढंग से लिखा हुआ बयान होता है। **कार्यक्रम सर्वहारा वर्ग के** क्रान्तिकारी आन्दोलन के अंतिम उद्देश्य की व्याख्या भी करता है **और इस अंतिम उद्देश्य** तक पहुंचने के रास्ते में जिन मांगों के लिये पार्टी लड़ती है, उनकी व्याख्या भी करता है। इसलिये, कार्यक्रम का मसौदा तैयार करना सबसे ज़्यादा महत्व की बात थी।

कार्यक्रम का मसौदा तैयार करते हुए, ***इस्क्रा*** के सम्पादक–मण्डल में एक तरफ़ लेनिन और दूसरी तरफ़ प्लेखानोव और मण्डल के दूसरे सदस्यों के बीच गम्भीर मतभेद उठ खड़े हुए। इन मतभेदों और झगड़ों से लेनिन और प्लेखानोव का सम्बन्ध करीब–करीब टूटने को हो आया। लेकिन, उस वक़्त बात यहां तक नहीं बढ़ी। लेनिन इस बात में सफल रहे कि कार्यक्रम के मसौदे में सर्वहारा–डिक्टेटरशिप के बारे में एक बहुत ही महत्वपूर्ण धारा रहे और क्रान्ति में मज़दूर वर्ग की प्रमुख भूमिका के बारे में साफ़ बयान रहे।

लेनिन ने ही कार्यक्रम का खेती सम्बन्धी हिस्सा लिखा था। उस समय ही, लेनिन ज़मीन के राष्ट्रीकरण के पक्ष में थे। लेकिन, संघर्ष की पहली मंज़िल में वह इस बात को ज़रूरी समझते थे कि किसानों की ***अतरेज़्की,*** यानि किसानों की 'मुक्ति' के समय ज़मींदारों ने उनकी ज़मीन से जो हिस्से छांटे लिये थे, उन्हें वापस करने की मांग रखी जाये। प्लेखानोव ने ज़मीन के **राष्ट्रीकरण की मांग का** विरोध किया था।

लेनिन और प्लेखानोव में पार्टी–कार्यक्रम के बारे में जो झगड़े हुए, उन्होंने किसी हद तक बोल्शेविकों और मेन्शेविकों के भावी मतभेदों की रूपरेखा बनाई।

3. रूसी सोशल–डेमोक्रेटिक लेबर पार्टी की दूसरी कांग्रेस। कार्यक्रम और नियमों की स्वीकृति और एक ही पार्टी का निर्माण। कांग्रेस में मतभेद और पार्टी के अन्दर दो प्रवृत्तियों का प्रकट होना : बोल्शेविक और मेन्शेविक।

इस तरह, लेनिन के सिद्धान्तों की जीत से और संगठन सम्बन्धी लेनिन की योजना के लिये ***इस्क्रा*** के सफल संघर्ष से वे तमाम मुख्य बातें तैयार हो गयीं, जो कि पार्टी बनाने के लिये, या जैसा कि उस समय कहा जाता था, एक सच्ची पार्टी बनाने के लिये ज़रूरी थीं। रूस के सोशल–डेमोक्रैटिक संगठनों में ***इस्क्रावादी*** रूझान प्रमुख हो गया। अब दूसरी पार्टी कांग्रेस बुलाई जा सकती थी।

17 जुलाई (नयी शैली, 30 जुलाई) 1903 को रू•सो•डे•ले•पा• की दूसरी कांग्रेस शुरू हुई। वह विदेश में गुप्त रूप से की गयी थी। पहले वह ब्रूसेल्स में हुई। बेल्जियम की पुलिस ने प्रतिनिधियों से देश छोड़ देने की प्रार्थना की। उसके बाद, कांग्रेस ने अपना अधिवेशन लंदन में किया।

26 संगठनों से 43 प्रतिनिधि कांग्रेस में इकट्ठे हुए थे। हर कमिटी को अधिकार था कि दो प्रतिनिधि भेजे, लेकिन कुछ ने एक ही भेजा था। 43 प्रतिनिधियों के आपस में कुल मिलाकर 51 वोट थे।

कांग्रेस का मुख्य उद्देश्य "एक सच्ची पार्टी बनाना था, जिसका आधार वे सिद्धान्त और संगठन हों जिन्हें इस्क्रा ने पेश किया था और जिनकी उसने विस्तार में व्याख्या की थी।" (लेनिन, **सं•ग्रं•, अं•सं•**, मास्को, 1947, खं• 1, पृष्ठ 273)।

कांग्रेस में आये हुए प्रतिनिधि तरह–तरह के थे। खुले हुए 'अर्थवादी' उनमें न थे क्योंकि उनकी हार हो चुकी थी, लेकिन उसके बाद उन्होंने अपने विचारों को ऐसी चतुराई से नया लिवास पहनाया था कि अपने कई प्रतिनिधि कांग्रेस के भीतर भेज देने में वे कामयाब हुए। इसके सिवा, बुन्द के प्रतिनिधि 'अर्थवादियों' से सिर्फ़ ऊपरी तौर पर ही भिन्न थे। वास्तव में, वे 'अर्थवादियों' का समर्थन करते थे।

इस तरह, कांग्रेस में **इस्क्रा** के ही समर्थक न थे बल्कि उसके विरोधी भी थे। 33 प्रतिनिधि, यानि बहुमत, **इस्क्रा** के समर्थक थे। लेकिन वे सभी लोग जो अपने को ***इस्क्रावादी*** समझते थे, **सच्चे** लेनिनपंथी **इस्क्रावादी** नहीं थे। प्रतिनिधि कई गुटों में बंट गये। **लेनिन के समर्थकों,** यानि पक्के ***इस्क्रावादियों,*** के 24 वोट थे। **9 *इस्क्रावादी* मारतोव के अनुयायी थे;** ये कच्चे ***इस्क्रावादी*** थे। कुछ प्रतिनिधि **इस्क्रा**

और उसके **विरोधियों** के बीच में ढुलमुलाते रहते थे। इनके 10 वोट थे और इनसे मिलकर 'केन्द्र' बना था : **इस्क्रा** के खुले विरोधियों के 8 वोट थे (3 'अर्थवादी' और 5 बुन्दवादी)। ***इस्क्रावादियों*** की पांती में फूट का मतलब होता कि **इस्क्रा** के दुश्मनों की बन आती।

इससे देखा जा सकता है कि कांग्रेस में परिस्थिति कितनी उलझी हुई थी। **इस्क्रा** की जीत पक्की करने के लिये लेनिन ने बहुत बड़ी शक्ति लगायी।

एजेण्डे पर सबसे महत्वपूर्ण बात पार्टी के प्रोग्राम की स्वीकृति थी। **प्रोग्राम** पर बहस के दौर में कांग्रेस के अवसरवादी लोगों को जिस खास बात पर आपत्ति थी, वह सर्वहारा–डिक्टेटरशिप का सवाल था। प्रोग्राम में कुछ बातें और थीं जिन पर अवसरवादी कांग्रेस के क्रान्तिकारी हिस्से से सहमत नहीं थे। लेकिन, उन्होंने सर्वहारा–डिक्टेटरशिप के सवाल पर मुख्य लड़ाई लड़ने का विचार किया। उनकी दलील यह थी कि विदेश की और कई सोशल–डेमोक्रैटिक पार्टियों के कार्यक्रम में सर्वहारा–डिक्टेटरशिप के बारे में कोई धारा नहीं है और इसलिये रूसी सोशल–डेमोक्रैटिक पार्टी के कार्यक्रम से भी उसे दूर रखा जा सकता है।

किसानों के सवाल पर भी अवसरवादी लोग पार्टी–प्रोग्राम में मांग रखने पर आपत्ति कर रहे थे। ये लोग क्रान्ति न चाहते थे। इसलिये, मज़दूर वर्ग के सहयोगी – किसानों – के सवाल पर झेंपते थे और उनकी तरफ़ ग़ैरदोस्ताना भाव रखते थे।

बुन्दवादी और पोलैण्ड के सोशल–डेमोक्रैटों ने जातियों के आत्म–निर्णय के अधिकार पर आपत्ति की। लेनिन ने हमेशा सिखलाया था कि मज़दूर वर्ग को जातीय उत्पीड़न का मुक़ाबिला करना चाहिये। प्रोग्राम में इस मांग को रखने पर आपत्ति करने का यही मतलब था कि सर्वहारा अंतर्राष्ट्रीयता के उसूल को छोड़ दिया जाये और जातीय उत्पीड़न का साझीदार बना जाये।

लेनिन ने इन तमाम आपत्तियों को चुटकी से मसल दिया।

कांग्रेस ने इस्क्रा द्वारा पेश किये हुये प्रोग्राम को स्वीकार किया।

इस प्रोग्राम के दो हिस्से थे – एक तो अधिकतम प्रोग्राम और दूसरा अल्पतम प्रोग्राम। अधिकतम प्रोग्राम में मज़दूर वर्ग की पार्टी के मुख्य ध्येय की चर्चा थी, यानि कि समाजवादी क्रान्ति, पूंजीपतियों की ताकत का ख़ात्मा और सर्वहारा–डिक्टेटरशिप की स्थापना की चर्चा थी। अल्पतम प्रोग्राम में पार्टी के फ़ौरी उद्देश्यों की चर्चा थी, ऐसे उद्देश्यों की जो पूंजीवादी व्यवस्था के ख़ात्में और सर्वहारा–डिक्टेटरशिप के कायम

किये जाने से पहले हासिल किये जायेंगे, यानि निरंकुश ज़ारशाही के ख़ात्में, जनवादी प्रजातंत्र की स्थापना, 8 घन्टों का दिन चालू करने, गांवों में भूदास प्रथा के सभी अवशेषों को ख़त्म करने और ज़मींदारों द्वारा छीनी हुई सभी भूमि ***(अतरेज़्की)*** किसानों को वापस देने की चर्चा थी।

आगे चलकर, ***अतरेज़्की*** वापस करने की मांग के बदले बोल्शेविकों ने सभी ज़मींदारियों को छीन लेने की मांग प्रोग्राम में रखी।

दूसरी कांग्रेस ने जो प्रोग्राम स्वीकार किया, वह मज़दूर वर्ग की पार्टी का इंक़लाबी प्रोग्राम था।

सर्वहारा क्रान्ति की जीत के बाद होने वाली, आठवीं पार्टी कांग्रेस तक यह प्रोग्राम चालू रहा। उस समय हमारी पार्टी ने नया कार्यक्रम स्वीकार किया।

प्रोग्राम स्वीकार करने के बाद, दूसरी पार्टी कांग्रेस ने पार्टी–नियमावली के मसौदे पर बहस शुरू की। चूंकि अब कांग्रेस ने एक प्रोग्राम मंजूर कर लिया था और पार्टी की सैद्धान्तिक एकता की बुनियाद डाल दी थी, इसलिये उसे पार्टी–नियमावली इस तरह अपनानी थी कि मण्डलों के अधकचरेपन और उनके स्थानीय दृष्टिकोण का ख़त्मा हो जाये, संगठन सम्बन्धी फूट और पार्टी में सख़्त अनुशासन के अभाव का ख़ात्मा हो जाये।

प्रोग्राम को स्वीकार करने का काम निस्बतन आसानी से हो गया था, लेकिन कांग्रेस में पार्टी–नियमों को लेकर भारी झगड़े उठ खड़े हुये। सबसे तीख़े मतभेद नियमावली का पहला पैरा रचने के बारे में थे, जिसमें पार्टी सदस्यता की चर्चा थी। पार्टी सदस्य कौन हो सकता है, पार्टी की बनावट क्या हो, पार्टी के संगठन की शक्ल कैसी हो, वह एक संगठित इकाई हो या उसकी रूपरेखा अनिश्चित हो?–इस तरह के सवाल नियमावली के पहले पैरा के सिलसिले में उठ खड़े हुए। दो तरह के मसौदों में टक्कर थी : लेनिन का मसौदा, जिसका समर्थन प्लेखानोव और पक्के ***इस्क्रावादी*** कर रहे थे; और मारतोव का मसौदा, जिसका समर्थन ऐक्सेलरोद, ज़ासूलिच, कच्चे ***इस्क्रावादी***, त्रात्स्की और कांग्रेस में आये हुए सभी खुले अवसरवादी कर रहे थे।

लेनिन के मसौदे के अनुसार, जो पार्टी का प्रोग्राम माने, पैसे से पार्टी की मदद करे और उसके किसी संगठन का सदस्य हो, वही पार्टी सदस्य हो सकता था। मारतोव के मसौदे के अनुसार, प्रोग्राम मानना और पैसे से पार्टी की मदद करना पार्टी सदस्यता के लिये लाज़िमी शर्तें तो थीं, लेकिन किसी पार्टी–संगठन का सदस्य होना पार्टी सदस्य के लिये शर्त न होनी चाहिये थी। उसका कहना था कि पार्टी सदस्य के लिये ज़रूरी नहीं है कि वह किसी पार्टी–संगठन में हो ही।

लेनिन के अनुसार, पार्टी एक **संगठित** दस्ता थी। उसके सदस्य पार्टी में हर किसी तरह नाम न लिखा सकते थे। वे पार्टी के किसी संगठन के ज़रिये ही उसमें भर्ती हो सकते थे। इसलिये, उनके लिये पार्टी का अनुशासन मानना ज़रूरी था। दूसरी तरफ़, मारतोव की नज़रों में पार्टी कुछ ऐसी चीज़ थी जो संगठन के विचार से **रूपरेखाहीन** हो, जिसके सदस्य पार्टी में नाम लिखा लेते हों और इसलिये पार्टी अनुशासन मानने के लिये मजबूर न हों क्योंकि वे किसी पार्टी–संगठन में नहीं हैं।

इस तरह, लेनिन के मसौदे के ख़िलाफ़ मारतोव का मसौदा अस्थिर, गैर सर्वहारा लोगों के लिये पार्टी का दरवाज़ा खुला छोड़ देता था। पूंजीवादी–जनवादी क्रान्ति होने के ऐन पहले पूंजीवादी बुद्धिजीवियों में ऐसे लोग थे जो क्रान्ति से हमदर्दी रखते थे। समय–समय पर वे पार्टी की थोड़ी–बहुत सेवा भी कर देते थे। लेकिन इस तरह के लोग किसी संगठन में शामिल होने, पार्टी का अनुशासन मानने, पार्टी के दिये हुए कामों को पूरा करने और साथ के ख़तरे मोल लेने से आनाकानी करते थे। फिर भी, मारतोव और दूसरे मेन्शेविकों का प्रस्ताव था कि ऐसे लोगों को पार्टी का सदस्य माना जाये और पार्टी के काम पर असर डालने का हक़ और अवसर उन्हें दिया जाये। उन्होंने यह प्रस्ताव किया था कि किसी भी हड़ताली को पार्टी में 'नाम लिखाने' का हक़ दिया जाये, हालांकि ग़ैर समाजवादी, अराजकतावादी और समाजवादी–क्रान्तिकारी भी हड़तालों में हिस्सा लेते थे।

इस तरह, यह हालत पैदा हुई कि एक गठी हुई और लड़ाकू पार्टी के बदले, जिसका एक स्पष्ट कार्यक्रम हो और जिसके लिये कांग्रेस में लेनिन और लेनिनवादी लड़े थे, मारतोवपंथी एक ऐसी पार्टी चाहते थे जिसमें हर तरह के लोग हों, जो शिथिल और रूपरेखाहीन हो, जो और किसी सबव से नहीं तो तरह–तरह के लोगों के होने से ही दृढ़ अनुशासन वाली लड़ाकू पार्टी न बन सके।

पक्के ***इस्क्रावादियों*** से कच्चे ***इस्क्रावादी*** टूट गये और केन्द्रवादियों से मिल गये। इनके साथ खुले अवसरवादी हो गये। इसलिये, इस बात पर मारतोव के पक्ष में बहुमत हो गया। 22 के ख़िलाफ़ 28 वोट से – 1 आदमी तटस्थ रहा – कांग्रेस ने नियमावली के पहले पैरा पर मारतोव का रचा हुआ प्रस्ताव स्वीकार किया। नियमावली के पहले पैरा पर ***इस्क्रावादियों*** की पांती टूटने पर, कांग्रेस के भीतर संघर्ष और भी तेज़ हो गया। कांग्रेस एजेन्डे की आख़िरी बात लेने वाली थी – पार्टी की प्रमुख संस्थाओं का चुनाव : पार्टी के केन्द्रीय पत्र (***इस्क्रा***) के संपादक–मंडल और केन्द्रीय समिति का चुनाव। लेकिन चुनाव की नौबत आने से पहले ही, कुछ ऐसी घटनायें हुईं जिनसे कांग्रेस के भीतर का शक्ति–संतुलन बदल गया।

पार्टी–नियमावली के सिलसिले में, कांग्रेस को बुन्द का सवाल लेना था। बुन्द पार्टी के भीतर एक खास जगह का दावा करता था। उसकी माँग थी कि उसे रूस के यहूदी मज़दूरों का एकमात्र प्रतिनिधि माना जाये। इस माँग को मानने का मतलब होता – पार्टी–संगठनों के भीतर कार्यकर्ताओं को जातीयता के आधार पर बाँटना और मजदूरों के सामान्य प्रदेशगत वर्ग–संगठनों का त्याग। कांग्रेस ने बुन्द द्वारा प्रस्तावित जातीय आधार पर संगठन की व्यवस्था को नामंजूर किया। इस पर बुन्दवादी कांग्रेस से उठ कर चले गये। दो 'अर्थवादी' भी कांग्रेस से उठ गये, जब कांग्रेस ने उनकी विदेशी लीग को बाहर की पार्टी का प्रतिनिधि मानने से इन्कार किया।

इन सात अवसरवादियों के चले जाने से, कांग्रेस में शक्ति–संतुलन लेनिनवादियों के पक्ष में हो गया।

शुरू से ही लेनिन ने पार्टी की केन्द्रीय संस्थाओं की बनावट पर अपना ध्यान केन्द्रीत किया। उन्होंने इस बात को जरूरी समझा कि केन्द्रीय समिति में पक्के और सुसंगत क्रान्तिकारी हों। मारतोवपंथियों ने कोशिश की कि केन्द्रीय समिति में अस्थिर और अवसरवादी लोगों का बहुमत हो। इस सवाल पर, कांग्रेस के बहुमत ने लेनिन का समर्थन किया। जो केन्द्रीय समिति चुनी गयी, उसमें लेनिन के अनुयायी थे।

लेनिन के प्रस्ताव पर, **इस्क्रा** के सम्पादक–मण्डल में लेनिन, प्लेखानोव और मारतोव चुने गये। मारतोव ने माँग की थी कि इस्क्रा के सम्पादक–मंडल के पिछले सभी 6 सदस्य चुने जायें, जिनमें से ज्यादातर मारतोव के अनुयायी थे। कांग्रेस के बहुमत ने इस माँग को नामंजूर किया। लेनिन के प्रस्तावित तीन नाम मंजूर किये गये। इस पर, मारतोव ने ऐलान किया कि वह केन्द्रीय पत्र के सम्पादक–मण्डल में शामिल न होगा।

इस तरह, पार्टी की केन्द्रीय संस्थाओं पर अपने वोट से कांग्रेस ने मारतोव के अनुयायियों की हार और लेनिन के अनुयायियों की जीत पक्की कर दी।

उस समय से लेनिन के अनुयायी, जिन्हें कांग्रेस में चुनाव के वक्त ज्यादा वोट मिले, बोल्शेविक कहलाये (**बोल्शेन्स्त्वो** से, जिसका अर्थ है बहुमत) और लेनिन के विरोधी, जिन्हें कम वोट मिले, **मेन्शेविक (मेन्शिन्स्त्वो से,** जिसका अर्थ है अल्पमत) कहलाये।

दूसरी कांग्रेस के काम को सार रूप में पेश करते हुए, ये नतीजे निकाले जा सकते हैं :

(1) कांग्रेस ने 'अर्थवाद' पर, खुले अवसरवाद पर मार्क्सवाद की जीत पक्की कर दी।

(2) कांग्रेस ने एक कार्यक्रम और नियमावली स्वीकार की, सोशल–डेमोक्रैटिक पार्टी बनायी और इस तरह एक ही पार्टी का ढाँचा खड़ा किया।

(3) कांग्रेस ने संगठन के सवालों पर गंभीर मतभेदों का होना जाहिर किया। इनसे पार्टी दो हिस्सों में बंटी हुई थी – बोल्शेविक और मेन्शेविक। बोल्शेविक–क्रान्तिकारी सोशल–डेमोक्रेसी के संगठन सम्बन्धी उसूलों का समर्थन करते थे, जबकि मेन्शेविक संगठन संबंधी शिथिलता और अवसरवाद के दलदल में फंसे हुए थे।

(4) कांग्रेस ने दिखाया कि पुराने अवसरवादियों, 'अर्थवादियों की जगह जिन्हें पार्टी पहले ही हरा चुकी थी, नये अवसरवादी, मेन्शेविक ले रहे थे।

(5) संगठन के काम में, कांग्रेस अपनी जिम्मेदारी नहीं निभा सकी। उसने ढुलमुलपन दिखाया और कई बार मेन्शेविकों का बहुमत भी हो जाने दिया। हालाँकि आखीर की तरफ़ उसने अपनी हालत सुधार ली, फिर भी वह संगठन के मामलों में मेन्शेविकों के अवसरवाद का पर्दाफ़ाश न कर सकी और उन्हें पार्टी के अन्दर अकेला न कर सकी। पार्टी के सामने वह इसे काम की शक्ल में भी न रख सकी।

यह आखिरी बात कांग्रेस के बाद बोल्शेविकों और मेन्शेविकों के संघर्ष के कम होने के बदले और भी तेज होने का एक मुख्य कारण बनी।

4. मेन्शेविक नेताओं का फूट का काम और दूसरी कांग्रेस के बाद पार्टी के भीतर संघर्ष का तेज होना। मेन्शेविकों का अवसरवाद। लेनिन की पुस्तक 'एक कदम आगे तो दो क़दम पीछे।' मार्क्सवादी पार्टी के संगठन के सिद्धान्त।

दूसरी कांग्रेस के बाद, पार्टी के भीतर संघर्ष और तेज हो गया। मेन्शेविकों ने भरसक कोशिश की कि दूसरी कांग्रेस में फ़ैसलों को नाकाम कर दें और पार्टी की केन्द्रीय संस्थाओं पर क़ब्जा कर लें। उनकी माँग थी कि इस्क्रा के सम्पादक–मण्डल और केन्द्रीय समिति में उनके सदस्य इनती तादाद में लिये जायें जिससे कि सम्पादक–मण्डल में उनका बहुमत हो जाये और केन्द्रीय समिति में वे बोल्शेविकों के बराबर हो जायें। यह माँग दूसरी कांग्रेस के फ़ैसलों की बिल्कुल उल्टी थी, इसलिये बोल्शेविकों ने इसे ठुकरा दिया। इसके बाद, मेन्शेविकों ने पार्टी से छिपाकर खुद अपने पार्टी–विरोधी गुटबाज दल को संगठित किया जिसके अगुआ मारतोव, त्रात्स्की और ऐक्सेलरोद थे, और जैसा कि मारतोव ने लिखा था : "लेनिनवाद के खिलाफ़

बग़ावत शुरू कर दी।" पार्टी का विरोध करने के लिये उन्होंने जो तरीक़े अपनाये वे जैसा कि लेनिन ने कहा था, ऐसे थे कि "पार्टी का समूचा काम तितर–बितर हो जाये, पार्टी के उद्देश्य की हानि हो और सब जगह और सब कहीं अड़चन पैदा हो जाये।" रूसी सोशल–डेमोक्रैटों की विदेशी लीग में वे जम गये। इनमें से 90 फ़ीसदी बाहर गये हुए बुद्धिजीवी थे। रूस में जो काम हो रहा था, उससे वे दूर थे। लीग के अन्दर अपनी जगह से मेन्शेविकों ने पार्टी के खिलाफ़, लेनिन और लेनिनवादियों के खिलाफ़ गोलाबारी शुरू की।

मेन्शेविकों को प्लेखानोव से काफ़ी मदद मिली। दूसरी कांग्रेस में प्लेखानोव ने लेनिन का साथ दिया था, लेकिन दूसरी कांग्रेस के बाद उसने अपने को मेन्शेविकों की फूट की धमकी से डर जाने दिया। उसने किसी भी क़ीमत पर मेन्शेविकों के साथ 'सुलह करने' का फ़ैसला किया। उसकी पहली अवसरवादी भूलों के भारी वजन ने प्लेखानोव को खींच कर मेन्शेविकों की सतह पर ला दिया। अवसरवादी मेन्शेविकों से 'सुलह करने' का समर्थक होने के बाद, वह बहुत जल्द खुद भी मेन्शेविक हो गया। प्लेखानोव ने माँग की कि **इस्क्रा** के वे तमाम भूतपूर्व मेन्शेविक सम्पादक, जिन्हें कांग्रेस ने नामंजूर कर दिया था, सम्पादक–मण्डल में शामिल कर लिये जायें। अवश्य ही, लेनिन इससे सहमत न हो सकते थे। उन्होंने इस्क्रा का सम्पादक–मंण्डल छोड़ दिया, जिससे कि पार्टी की केन्द्रीय समिति में वह जम सकें और वहाँ से अवसरवादियों पर हमला कर सकें। अपने ही बिरते पर और कांग्रेस की मर्ज़ी की अवज्ञा करते हुए, प्लेखानोव ने भूतपूर्व मेन्शेविक सम्पादकों को इस्क्रा के सम्पादक–मण्डल में शामिल कर लिया। उस घड़ी से, इस्क्रा के 52 वें अंक के बाद से, मेन्शेविकों ने उसे अपना मुखपत्र बना लिया और उसके कॉलमों में अपने अवसरवादी मत का प्रचार करने लगे।

तभी से पार्टी में लेनिन के बोल्शेविक **इस्क्रा** को पूराना **इस्क्रा** कहा जाता है और मेन्शेविक, अवसरवादी इस्क्रा को नया इस्क्रा कहा जाता है।

जब इस्क्रा मेन्शेविकों के हाथ में आ गया तो वह लेनिन और बोल्शेविकों के खिलाफ़ लड़ाई करने का हथियार बन गया। वह मेन्शेविक अवसरवाद, सबसे पहले संगठन के सवालों पर अवसरवाद का प्रचारक बन गया। **'अर्थवादियों'** और बुन्दवादियों से सहयोग करके, मेन्शेविकों ने **इस्क्रा** के कॉलमों में, जैसा कि वे कहते थे, लेनिनवाद के खिलाफ़ आन्दोलन शुरू किया। प्लेखानोव सुलह के समर्थक की जगह कायम न रह सका और जल्द ही वह भी इस आन्दोलन में शामिल हो गया। घटना–क्रम के तर्क की यह माँग थी ही कि ऐसा होता। अवसरवादियों के साथ जो भी सुलह करने के रुख पर जोर देता है, वह जरूर खुद भी अवसरवाद में फंस जाता है। नये **इस्क्रा**

के कॉलमों में, लेख और बयान इस तरह निकलने लगे जैसे कल्पवृक्ष में फल लग रहे हों। और, इन लेखों और बयानों का दावा था कि पार्टी को एक संगठित इकाई न बनना चाहिये, उसकी पांति में आजाद गुटों और व्यक्तियों को आने देना चाहिये और उन पर उसकी संस्थाओं के फ़ैसलों को मानने की मजबूरी न डालनी चाहिये; हर बुद्धिजीवी जो पार्टी से हमदर्दी रखता हो और 'हर हड़ताली' और 'प्रर्दशन में हिस्सा लेने वाला हर कोई' अपने को पार्टी सदस्य कह सकता है"; पार्टी के सभी फ़ैसलों को मानने की माँग "नौकरशाही से भरी हुई और ऊपरी है"; अल्पमत बहुमत के मातहत रहे, इस मांग का मतलब है – पार्टी सदस्यों की इच्छा का 'यांत्रिक दमन'; सभी पार्टी सदस्य, नेता और साधारण सदस्य, दोनों ही बराबर पार्टी अनुशासन मानें, इस माँग का मतलब है – पार्टी के अन्दर **'भूदास प्रथा'** कायम करना; 'हमें' पार्टी के अन्दर जिस चीज की जरूरत है वह केन्द्रीयता नहीं है बल्कि अराजकतावादी **'खुदमुख्तारी'** है, जो व्यक्तियों और पार्टी–संगठनों को पार्टी फ़ैसले न मानने की इजाजत दे।

संगठन सम्बन्धी स्वेच्छाचार के लिये यह बेरोक प्रचार था, जो पार्टी सिद्धान्त और पार्टी अनुशासन की जड़ खोदता था; यह बुद्धिजीवियों के व्यक्तिवाद का गुणगान था और अनुशासन की तरफ़ अराजकवादी घृणा को सही ठहराना था।

जाहिर है, मेन्शेविक कोशिश कर रहे थे कि पार्टी को दूसरी कांग्रेस की जगह से खींच कर पुराने संगठन सम्बन्धी अलगाव तक ले आया जाये, मण्डलों के पुराने स्थानीय दृष्टिकोण और पुराने अधकचरे तरीकों की तरफ़ ले आया जाये। मेन्शेविकों पर एक जोरदार रद्दा जमाना जरूरी था।

लेनिन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक ***एक कदम आगे तो दो क़दम पीछे*** में यह रद्दा जमाया। यह किताब मई 1904 में प्रकाशित हुई।

लेनिन ने अपनी इस पुस्तक में संगठन के जो मुख्य सिद्धान्त रखे और जो आगे चलकर बोल्शेविक पार्टी के संगठन की बुनियाद बने, वे ये है :

(1) मार्क्सवादी पार्टी मजदूर वर्ग का एक हिस्सा, उसका एक दस्ता है। लेकिन मजदूर वर्ग के बहुत से दस्ते हैं और इसलिये मजदूर वर्ग का हर हिस्सा उसकी पार्टी नहीं कहला सकता। मजदूर वर्ग के दूसरे दस्तों से पार्टी सबसे पहले इस बात में भिन्न है कि वह मामूली दस्ता नहीं है बल्कि **हिरावल** दस्ता है, एक **वर्ग–चेतन** दस्ता है, मज़दूर वर्ग का एक **मार्क्सवादी** दस्ता है, जो सामाजिक जीवन के ज्ञान से सुसज्जित है, जो सामाजिक विकास के नियमों और वर्ग–संघर्ष के नियमों को जानता–पहचानता है और इस वजह से मज़दूर वर्ग की अगुवाई कर सकता है और उसकी लड़ाई का

संचालन कर सकता है। इसलिये, पार्टी और मज़दूर वर्ग को उलझा न देना चाहिये, जैसे कि किसी पूरी चीज और उसके हिस्से को उलझा न देना चाहिये। हम यह माँग नहीं कर सकते कि हर हड़ताली अपने को पार्टी का सदस्य कह सके, क्योंकि जो कोई पार्टी और वर्ग को उलझाता है वह पार्टी की चेतना की सतह को 'हर हड़ताली' की चेतना की सतह तक नीचे ले आता है। वह मजदूर वर्ग के वर्ग–चेतन हिरावल के रूप में पार्टी का नाश करता है। पार्टी का काम यह नहीं है कि वह अपनी सतह 'हर हड़ताली' की सतह तक **नीचे ले आये,** बल्कि पार्टी की सतह तक आम मजदूरों को **ऊपर ले जाये,** 'हर हड़ताली' को **ऊपर ले जाये।**

लेनिन ने लिखा था :

"हम एक वर्ग की पार्टी हैं, और इसलिये **क़रीब–क़रीब समूचे वर्ग को** (और युद्ध–काल में, गृह–युद्ध के समय समूचे वर्ग को) हमारी पार्टी के नेतृत्व में काम करना चाहिये, जहाँ तक हो सके उसे हमारी पार्टी से सम्बन्धित रहना चाहिये। लेकिन, यह सोचना मानिलोववाद[1] और **'पिछलगुआपन'** होगा कि पूंजीवाद के रहते किसी समय समूचा वर्ग या क़रीब–क़रीब समूचा वर्ग अपने हिरावल दस्ते, अपनी सोशल–डेमोक्रेटिक पार्टी की चेतना और कार्यवाही की सतह तक उठ सकेगा। किसी भी समझदार सोशल–डेमोक्रेट को अभी तक इसमें शक नहीं रहा कि पूंजीवाद के रहते हुए ट्रेड यूनियन संगठनों में भी (जो ज्यादा सीधे संगठन हैं और अविकसित लोगों के लिये ज्यादा समझ में आने वाले हैं) समूचा या क़रीब–क़रीब समूचा मज़दूर वर्ग सिमट कर नहीं आ पाता। हिरावल और उसकी तरफ़ खिंचकर आने वाले अवाम के भेद को भूल जाना, हिरावल के इस हमेशा के फ़र्ज को भूल जाना कि ज्यादा से ज्यादा लोगों को सबसे आगे बढ़े हुए लोगों की सतह तक **उठाना** है, सिर्फ़ अपने को धोखा देना है, हमें जितने भारी काम करने हैं, उनकी तरफ़ आँखे बन्द करना है और इन कामों को संकुचित करना है।" (***लेनिन, सं॰ग्रं॰, अं॰सं॰,*** मास्को, 1947, खण्ड 1, पृष्ठ 294)।

(2) पार्टी मजदूर वर्ग का हिरावल ही नहीं, उसका वर्ग–चेतन दस्ता ही नहीं, बल्कि मज़दूर वर्ग का **संगठित** दस्ता है, जिसका अपना अनुशासन है और जो उसके अपने सदस्यों पर लागू होता है। इसलिये, पार्टी सदस्यों के लिये जरूरी है कि वे किसी पार्टी–संगठन के सदस्य हों ही। अगर पार्टी वर्ग का **संगठित** दस्ता न होती, **संगठन की व्यवस्था** न होती बल्कि सिर्फ़ उन लोगों की एक जमात होती जो अपने

---

1. **गोगल की रचना "मृत आत्माएँ" में एक पात्र मानिलोव से; परम आत्मा–संतोष, निष्क्रियता, बेकार ख्वाब देखना – अंग्रेजी अनु॰**

को पार्टी सदस्य कहते हैं, लेकिन पार्टी–संगठन में नहीं हैं और इसलिये **संगठित नहीं** हैं, इसलिए पार्टी के फ़ैसले मानने के लिये मजबूर नहीं हैं, तो पार्टी की कभी संयुक्त इच्छा न होती, वह अपने सदस्यों की संयुक्त कार्यवाही कभी न चला सकती और इसलिये वह मज़दूर वर्ग के संघर्ष का संचालन ही न कर सकती। पार्टी मज़दूर वर्ग के अमली संघर्ष का नेतृत्व तभी कर सकती है और उसे एक ही उद्देश्य की तरफ़ तभी ले जा सकती है, जब उसके सभी सदस्य एक ही सामान्य दस्ते में संगठित हों, इच्छा की एकता से आपस में संयुक्त हों, काम की एकता और अनुशासन की एकता से एक–दूसरे से जुड़े हुए हों।

मेन्शेविकों को आपत्ति थी कि ऐसा होने पर बहुत से बुद्धिजीवी–मिसाल के लिये प्रोफ़ेसर लोग, यूनिवर्सिटी और हाईस्कूल के विद्यार्थी, वग़ैरह–पार्टी की सफ़ों से बाहर रहेंगे। कारण यह कि वे पार्टी के किसी भी संगठन में शामिल होना

पसन्द न करेंगे, चाहे इसलिये कि वे पार्टी अनुशासन से कतराते हों, या जैसा कि प्लेखानोव ने दूसरी कांग्रेस में कहा था, इसलिये कि वे "किसी स्थानीय संगठन में शामिल होना अपनी शान के खिलाफ़" समझते हों। मेन्शेविकों की यह आपत्ति उलट कर उन्हीं के सिर पड़ी। कारण यह कि पार्टी को ऐसे सदस्यों की जरूरत नहीं है जो पार्टी अनुशासन से कतराते हों और पार्टी–संगठन में शामिल होने से डरते हों। मजदूर अनुसाशन और संगठन से नहीं डरते और अगर उन्होंने पार्टी सदस्य होने का फ़ैसला कर लिया है तो वे खुशी से संगठन में शामिल हो जाते हैं। ये व्यक्तिवादी बुद्धिजीवी ही हैं जो अनुशासन और संगठन से डरते हैं, और वे दरअसल पार्टी की सफ़ों के बाहर रहेंगे। लेकिन यह तो अच्छा ही है, क्योंकि इससे पार्टी अस्थिर लोगों की भरमार से बच सकेगी। जब पूंजीवादी–जनवादी क्रान्ति उठान पर थी, तब यह भरमार खास तौर से जोरों पर थी।

लेनिन ने कहा था :

"जब मैं कहता हूँ कि पार्टी को **संगठनों का जोड़** होना चाहिये (और सिर्फ़ गणित का जोड़ नहीं बल्कि संश्लिष्ट जोड़) .... तो मैं साफ–साफ और निश्चित शब्दों में अपनी इच्छा, अपनी माँग जाहिर करता हूँ कि वर्ग के हिरावल की तहर पार्टी यथासंभव **संगठित** हो, पार्टी अपनी सफ़ों में ऐसे लोगों को ले **जो कम से कम अल्पतम संगठन मानने के लिये तैयार हों...**।" (**उप•** पृष्ठ 292)।

और आगे :

"मारतोव का प्रस्ताव ऊपर से आम मज़दूरों के हितों का समर्थन करता है,

लेकिन **वास्तव में** वह **पूंजीवादी बुद्धिजीवियों** के हितों का समर्थन करता है जो सर्वहारा अनुशासन और संगठन से कतराते हैं। कोई इस बात से इन्कार न करेगा कि यह **उसका व्यक्तिवाद ही है** और अनुशासन और संगठन के लिये उसकी असमर्थता ही है जो मौजूदा पूंजीवादी समाज में आम तौर से **एक अलग स्तर के रूप में बुद्धिजीवी की** विशेषता जाहिर करती है।" (**उप•** पृष्ठ 298–99)।

और भी :

"सर्वहारा वर्ग संगठन और अनुशासन से डरता नहीं है...। सर्वहारा वर्ग उन प्रतिष्ठित प्रोफ़ेसरों और हाईस्कूल के विद्यार्थियों को पार्टी सदस्यता देने के लिये कुछ भी न करेगा जो किसी संगठन में सिर्फ़ इसीलिये शामिल नहीं होना चाहते कि उन्हें एक संगठन के नियंत्रण में काम करना पड़ेगा...। यह सर्वहारा वर्ग नहीं है, बल्कि हमारी पार्टी में **कुछ बुद्धिजीवी** हैं जिनमें, संगठन और अनुशासन की भावना में, **आत्म–शिक्षण** की कमी है।" (**उप•**,पृष्ठ 322)।

(3) पार्टी सिर्फ़ संगठित दस्ता नहीं है, बल्कि मज़दूर वर्ग के "**संगठन के सभी रूपों में सबसे ऊँचा**" है और उसका काम मज़दूर वर्ग के दूसरी सभी संगठनों को रास्ता दिखाना है। पार्टी वर्ग के संगठन का सबसे ऊंचा रूप है, वर्ग के सबसे अच्छे लोग उसके अन्दर शामिल होते हैं, उसके पास आगे बढ़ा हुआ सिद्धान्त होता है, उसे वर्ग–संघर्ष के नियमों का ज्ञान होता है और उसे क्रान्तिकारी आन्दोलन का तजुर्बा होता है। इसलिये, मजदूर वर्ग के सभी दूसरे संगठनों को पार्टी रास्ता दिखला सकती है, और उन्हें रास्ता दिखाना उसका फ़र्ज है। पार्टी की नेतृत्व की भूमिका को कम करने और तुच्छ समझने की मेन्शेविकों की कोशिश का असर यह होगा कि सर्वहारा वर्ग के दूसरे सभी संगठन कमज़ोर होंगे जिन्हें पार्टी रास्ता दिखाती है। उनकी कोशिश का असर यह होगा कि सर्वहारा वर्ग कमजोर और निहत्था बनेगा, क्योंकि "सत्ता के लिये संघर्ष में सर्वहारा के पास संगठन को छोड़ कर दूसरा कोई हथियार नहीं है।" (**उप•**, पृष्ठ 340)।

(4) पार्टी **लाखों मज़दूरों** से मजदूर वर्ग के हिरावल के **सम्बन्ध का सजीव रूप** है। पार्टी चाहे जितनी अच्छी हिरावल हो और वह चाहे जितनी अच्छी तरह संगठित हो, गैर पार्टी अवाम से सम्बन्ध क़ायम किये बिना और इस सम्बन्ध को बढ़ाये और मज़बूत किये बिना वह न तो जीवित रह सकती है, न विकसित हो सकती है। ऐसी पार्टी जो अपने को अपने ही घोंघे में बन्द कर लेती है, आम जनता से अलग जा पड़ती है, अपने वर्ग से अपना सम्बन्ध खो देती है या ढीला कर लेती है, वह जरूर आम जनता का विश्वास और समर्थन खो देगी और

इसलिये खत्म भी ज़रूर हो जायेगी। पूरी तरह जिन्दा रहने और विकसित होने के लिये, यह जरूरी है कि पार्टी आम जनता से अपना सम्बन्ध बढ़ाये और अपने वर्ग के लाखों आदमियों का विश्वास हासिल करे।

लेनिन ने कहा था :

"सोशल–डेमोक्रैटिक **पार्टी** होने के लिये जरूरी है कि हम ठीक **वर्ग** का ही **समर्थन** हासिल करें।" (***लेनिन ग्रन्थावली,*** रूसी संस्करण, खं• 6, पृ• 208)।

(5) उचित ढंग से काम करने के लिये और बाक़ायदा आम जनता का नेतृत्व करने के लिये, पार्टी को **केन्द्रीयता** के उसूल पर संगठित होना चाहिये। उसकी एकसी नियमावली और एकसा पार्टी अनुशासन होना चाहिये। उसकी एक ही प्रमुख संस्था होनी चाहिये – पार्टी कांग्रेस और कांग्रेसों के बीच में पार्टी की केन्द्रीय कमिटी। अल्पमत को बहुमत की आज्ञा माननी चाहिये, विभिन्न संगठनों को केन्द्र की आज्ञा माननी चाहिये और नीचे के संगठनों को ऊपर के संगठनों की आज्ञा माननी चाहिये। ये शर्तें पूरी न होने पर, मजदूर वर्ग की पार्टी सच्ची पार्टी नहीं बन सकती और वर्ग का नेतृत्व करने का अपना काम पूरा नहीं कर सकती।

यह ठीक है कि निरंकुश ज़ारशाही में पार्टी ग़ैरकानूनी थी, इसलिये उन दिनों नीचे से चुनाव के उसूलों पर पार्टी के संगठन न बनाये जा सकते थे। इसलिये, पार्टी को संगठन का काम कड़ाई से, छिप कर करना पड़ता था। लेकिन, लेनिन का विचार था कि पार्टी जीवन का यह **अस्थायी** लक्षण जारशाही को निर्मूल करते ही खत्म हो जायेगा। तब पार्टी खुल कर और कानूनी बन कर काम कर सकेगी। तब, पार्टी के संगठन, जनवादी चुनाव के उसूल पर, **जनवादी केन्द्रीयता** के उसूल पर बनाये जा सकेंगे।

लेनिन ने लिखा था :

"**पहले** हमारी पार्टी बाक़ायदा एक संगठित इकाई नहीं थी, बल्कि अलग–थलग गुटों का जोड़ भर थी। इसलिये, इन गुटों में सैद्धान्तिक असर के अलावा और कोई सम्बन्ध मुमकिन नहीं थे। **अब** हम एक संगठित पार्टी बन चुके हैं। इसका मतलब यह है कि अधिकारी भाव (ऑथोरिटी) क़ायम हो गया है, विचारों की शक्ति, अधिकारी भाव की शक्ति में बदल गयी है, पार्टी की नीचे की संस्थायें पार्टी की ऊपर की संस्थाओं के मातहत हैं।" (**उप•**, पृष्ठ 291)।

मेन्शेविकों पर संगठन सम्बन्धी ध्वंसवाद और रईसी अराजकतावाद का दोष

लगाते हुए, जो उन्हें पार्टी के अधिकारी भाव और उसके अनुशासन को मानने से रोकता था, लेनिन ने लिखा था :

"रूसी ध्वंसवादियों (निहिलिस्टों) में यह रईसी अराजकतावाद खास तौर से देखा जाता है। वे समझते हैं कि पार्टी–संगठन एक भयानक 'कारखाना' है। उनकी नजर में, अंश का पूरी इकाई के मातहत होना और अल्पमत का बहुमत की बात मानना 'भूदास प्रथा' है। ...एक ही केन्द्र की देख–रेख में काम का बँटवारा देख कर, वह कुछ करूण, कुछ हास्यास्पद स्वर में चीत्कार कर उठता है कि लोग 'मशीन के कलपुर्जे' बने जा रहे हैं (सम्पादकों को पत्रिका के लेखक बना देना खास तौर से ऐसी तब्दीली की भयानक मिसाल समझी जाती है)। पार्टी के संगठन सम्बन्धी नियमों का जिक्र होने पर, वह नफ़रत से मुंह बनाता है और घृणा से कहता है कि नियमों के बिना ही काम चल सकता है (यह बात वह 'नियमवादियों' के लिये कहता है)।" (***लेनिन, सं•ग्रं•,*** अं•सं•,मास्को, 1947 खं• 1, पृ• 324)।

(6) अपने अमली काम में अगर पार्टी अपनी सफ़ों की **एकता** क़ायम रखना चाहती है तो उसे समान सर्वहारा अनुशासन लागू करना होगा, जिसकी पाबन्दी सभी पार्टी के सदस्यों के लिये, नेता और साधारण दोनों के लिये, **बराबर** हो। इसलिये, पार्टी के अन्दर कुछ 'चुने हुए' लोग जिन पर अनुशासन न लागू हो, और 'बाक़ी तमाम लोग' जिन पर अनुशासन लागू होता हो, ऐसा बँटवारा न होना चाहिये। यह शर्त पूरी न की जायेगी तो पार्टी की भीतरी दृढ़ता और उसकी सफ़ों की एकता कायम न रखी जा सकेगी।

लेनिन ने लिखा था :

"कांग्रेस ने जो सम्पादक–मण्डल नियुक्त किया था, उसके खिलाफ़ मारतोव एण्ड कम्पनी की तरफ़ बुद्धिसंगत दलीलों का नितान्त अभाव सबसे अच्छी तरह उन्हीं के इस नारे से जाहिर होता है : 'हम गुलाम नहीं हैं।'... पूंजीवादी बुद्धिजीवी की ज़हनियत, जो अपने को जन–संगठन और जन–अनुशासन से ऊपर 'चुने हुओं' में समझता है, बहुत ही स्पष्टता से यहाँ जाहिर होती है। ... बुद्धिजीवियों के व्यक्तिवाद को दिखाई देता है... कि **सभी** सर्वहारा संगठन और अनुशासन गुलामी है।" (***लेनिन ग्रन्थावली,*** रूसी संस्करण, खण्ड 6, पृष्ठ 282)।

और आगे :

"जैसे–जैसे हम एक **वास्तविक** पार्टी बनाने के काम में आगे बढ़ते हैं वैसे–वैसे वर्ग–चेतन मजदूर को पूंजीवादी बुद्धिजीवी और सर्वहारा फ़ौज के सिपाही के मानसिक गठन का भेद करना सीखना चाहिये। पूंजीवादी बुद्धिवादी अराजकतावादी

बातों का तूमार बांध देता है। वर्ग–चेतन मज़दूर को चाहिये कि वह इस बात पर **अड़ जाये** कि पार्टी सदस्य का फ़र्ज न सिर्फ़ साधारण सदस्य बल्कि 'ऊपर के लोग' भी पूरा करें।" (**लेनिन,** सं•ग्रं•, अं•सं•, मास्को, 1947, खं• 1, पृ• 326)।

मतभेदों की छानबीन का सार देते हुए और मेन्शेविकों की हैसियत को "संगठन के मामलों में अवसरवाद" बतलाते हुए, लेनिन ने कहा था कि मेन्शेविकवाद का एक बहुत ही गंभीर अपराध इस बात में है कि वह मुक्ति के लिये सर्वहारा वर्ग के संघर्ष में एक हथियार के तौर पर पार्टी–संगठन के महत्व को कम करके आँकता है। मेन्शेविकों का कहना था कि क्रान्ति की जीत के लिये सर्वहारा वर्ग के पार्टी–**संगठन** का बहुत बड़ा महत्व नहीं है। मेन्शेविकों के खिलाफ, लेनिन का मत था कि सर्वहारा वर्ग की **सैद्धान्तिक** एकता ही जीत के लिये **काफ़ी नहीं** है। अगर जीत हासिल करनी है तो सैद्धान्ति एकता को सर्वहारा वर्ग के "**संगठन** की भौतिक एकता" से "**दृढ़ करना**" होगा। लेनिन का विचार था कि इस शर्त के पूरी होने पर ही सर्वहारा वर्ग अजेय शक्ति बन सकता है।

लेनिन ने लिखा था :

> "सत्ता के लिये संघर्ष में, सर्वहारा के पास संगठन छोड़ कर दूसरा हथियार नहीं है। पूंजीवादी संसार में अराजक होड़ के नियम से छिन्न–भिन्न होकर, पूंजी के लिये ज़बर्दस्ती की मेहनत में पीसे जाकर, बार–बार बेहद तबाही, बर्बरता और पतन के 'गढ़े' में ढकेले जाकर, सर्वहारा वर्ग अजेय शक्ति तभी बन सकता है और जरूर बनेगा जब मार्क्सवाद के उसूलों के आधार पर उसकी सैद्धान्तिक एकता ऐसे संगठन की भौतिक एकता से दृढ़ हो जायेगी जो लाखों मेहनतकशों को मज़दूर वर्ग की एक फ़ौज बना दे। रूसी ज़ारशाही का चरमराता हुआ शासन और 'अंतर्राष्ट्रीय पूंजी की खूसट हुकूमत, कोई भी शक्ति इस फ़ौज का मुक़ाबिला न कर सकेगी।" (**उप•**, पृष्ठ 340)।

लेनिन की इस भविष्यवाणी के साथ यह किताब समाप्त होती है।

ये थे संगठन के बुनियादी सिद्धान्त, जिन्हें लेनिन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक ***एक क़दम आगे तो दो क़दम पीछे*** में पेश किया था।

इस किताब का महत्व मुख्यतः इस बात में है कि उसने मण्डल बनाने के सिद्धान्त के खिलाफ़ सफलता से पार्टी सिद्धान्त का समर्थन किया और असंगठनवादियों के खिलाफ़ पार्टी सिद्धान्त को सही साबित किया। संगठन के सवालों पर, उसने मेन्शेविकों के अवसरवाद को कुचल दिया और बोल्शेविक पार्टी की संगठन सम्बन्धी बुनियाद डाली।

लेकिन, इससे उसका महत्व खत्म नहीं होता। उसका ऐतिहासिक महत्व इस

बात में है कि लेनिन ने मार्क्सवाद के इतिहास में पहली बार उसमें इस सिद्धान्त की विस्तृत व्याख्या की कि **पार्टी** सर्वहारा वर्ग का प्रमुख संगठन है, वह सर्वहारा वर्ग का मुख्य **हथियार** है जिसके बिना सर्वहारा वर्ग की डिक्टेटरशिप के लिये लड़ाई नहीं जीती जा सकती।

लेनिन की किताब ***एक क़दम आगे तो दो क़दम पीछे*** पार्टी के कार्यकर्ताओं में घुमायी जाने पर स्थानीय संगठनों में अधिकांश लेनिन की तरफ़ हो गये।

लेकिन जितना ही ये संगठन बोल्शेविकों के नज़दीक खिंच आये, उतना ही मेन्शेविक नेताओं का व्यवहार द्वेषपूर्ण हो गया।

1904 की गर्मियों में, प्लेखानोव की मदद से और क्रासिन और **नोस्कोव** नाम के दो पस्त हिम्मत बोल्शेविकों की दग़ेबाजी से, मेन्शेविकों ने केन्द्रीय समिति में अपना बहुमत क़ायम कर लिया। जाहिर था कि मेन्शेविक फूट के रास्ते पर चल रहे थे। ***इस्क्रा*** और केन्द्रीय समिति के हाथ से निकल जाने पर, बोल्शेविक कठिनाई में पड़ गये। उनके लिए ज़रूरी हो गया कि वे अपना बोल्शेविक पत्र संगठित करें। यह ज़रूरी हो गया कि नयी पार्टी कांग्रेस, तीसरी कांग्रेस का इंतज़ाम किया जाये, जिससे कि नयी केन्द्रीय समिति क़ायम की जाये और मेन्शेविकों से हिसाब–किताब बराबर किया जाये।

और, लेनिन के नेतृत्व में बोल्शेविकों ने यही करना शुरू किया।

बोल्शेविकों ने तीसरी पार्टी कांग्रेस बुलाने के लिये आन्दोलन करना शुरू किया। अगस्त 1904 में, लेनिन की देख–रेख में 22 बोल्शेविकों का सम्मेलन स्विट्ज़रलैंड में हुआ। सम्मेलन ने 'पार्टी के नाम' एक अपील मंजूर की। तीसरी कांग्रेस बुलाने के लिये संघर्ष में इस अपील ने बोल्शेविकों के लिये कार्यक्रम का काम दिया।

बोल्शेविक कमिटियों (दक्षिणी, कॉकेशस की, और उत्तरी) के तीन प्रादेशिक सम्मेलनों में, बहुमत की तरफ़ से कमिटियों की एक ब्यूरो चुनी गयी जिसने तीसरी पार्टी कांग्रेस के लिये अमली तैयारी का काम संभाला।

4 जनवरी, 1905 को बोल्शेविक अख़बार ***व्पर्योद (आगे बढ़ो)*** निकला।

इस तरह, पार्टी के अन्दर दो विभिन्न दल पैदा हुए, बोल्शेविक और मेन्शेविक, जिनमें से हरएक की अपनी केन्द्रीय संस्था थी और अपना अखबार था।

सारांश

1901–'04 के दिनों में क्रान्तिकारी मजदूर आन्दोलन की बढ़ती के साथ, रूस में मार्क्सवादी सोशल–डेमोक्रैटिक संगठन बढ़े और मजबूत हुए। सिद्धान्तों के लिये डटकर लड़ने के बाद, लेनिन के इस्क्रा की क्रान्तिकारी नीति विजयी हुई। यह लड़ाई 'अर्थवादियों' के खिलाफ हुई थी। सैद्धान्तिक उलझन और "काम के अधकचरे तरीके" खत्म किये गये।

इस्क्रा ने बिखरे हुए सोशल–डेमोक्रैट मण्डलों और गुटों को एक सूत्र में जोड़ा और दूसरी पार्टी कांग्रेस बुलाने के लिये रास्ता साफ़ किया। 1903 में होने वाली दूसरी कांग्रेस में रूसी सोशल–डेमोक्रैटिक लेबर पार्टी बनायी गयी, पार्टी कार्यक्रम और नियमावली मंजूर की गई और पार्टी की केन्द्रीय प्रमुख संस्थायें नियुक्त की गयीं।

दूसरी कांग्रेस में रू•सो•डे•ले•पा• के अन्दर ***इस्क्रा*** के रुझान के लिये जो संघर्ष किया गया, उससे दो दल पैदा हुए – बोल्शेविक दल और मेन्शेविक दल।

दूसरी कांग्रेस के बाद, बोल्शेविकों और मेन्शेविकों के बीच मुख्य मतभेद संगठन के सवालों को लेकर था।

मेन्शेविक 'अर्थवादियों' के नज़दीक खिंच आये और पार्टी के अन्दर उनकी जगह ले ली। फ़िलहाल मेन्शेविकों का अवसरवाद संगठन के सवालों पर जाहिर हुआ। मेन्शेविक लेनिन की बतायी हुई लड़ाकू क्रान्तिकारी पार्टी का विरोध करते थे। वे एक ढीली–ढाली, असंगठित, पिछलगुआ पार्टी चाहते थे। उन्होंने पार्टी की सफ़ें तोड़ने के लिये काम किया। प्लेखानोव की मदद से, उन्होंने इस्क्रा और केन्द्रीय समिति पर क़ब्जा जमा लिया और इन केन्द्रीय संस्थाओं को वे अपने उद्देश्यों के लिये, पार्टी में फूट डालने के लिये काम में लाये।

यह देखकर कि मेन्शेविक फूट का खतरा पैदा कर रहे हैं, बोल्शेविकों ने फूटपरस्तों को रोकने के लिये उपाय किया। उन्होंने तीसरी कांग्रेस बुलाने की माँग का समर्थन करने के लिये स्थानीय संगठनों को बटोरा और अपना अखबार ***वर्यौद*** निकाला।

इस तरह, पहली, रूसी क्रान्ति होने से पहले, जबकि रूस–जापान युद्ध शुरू हो चुका था, बोल्शेविक और मेन्शेविक दो विभिन्न राजनीतिक दलों की तरह काम कर रहे थे।

तीसरा अध्याय

रूस–जापान युद्ध और पहली रूसी क्रान्ति के समय बोल्शेविक और मेन्शेविक

(1904–1907)

1. रूस–जापान युद्ध। रूस में क्रान्तिकारी आन्दोलन की और प्रगति। पीतरबुर्ग में हड़तालें। 9 जनवरी, 1905 को शरद् प्रासाद के सामने मजदूरों का प्रदर्शन। प्रदर्शन पर गोलियों की बौछार। क्रान्ति का आरम्भ।

19वीं सदी के आख़ीर में, साम्राज्यवादी राज्यों में प्रशान्त महासागर पर अधिकार पाने के लिये और चीन का बंटवारा करने के लिये तेज़ लड़ाई शुरु की। ज़ारशाही रूस ने इस लड़ाई में हिस्सा लिया। 1900 में जापानी, जर्मन, ब्रिटिश और फ्रांसीसी फ़ौजों के साथ ज़ारशाही फ़ौज ने अभूतपूर्व बर्बरता के साथ विदेशी साम्राज्यवादियों के खिलाफ़ चीनी जनता के विद्रोह का दमन किया। इसके पहले भी, ज़ार सरकार ने चीन को मजबूर किया था कि वह लियाओ तुंग प्रायद्वीप और पोर्ट आर्थर का किला रूस के हवाले कर दे। रूस ने चीन की धरती पर रेलें बनाने का अधिकार हासिल कर लिया। उत्तरी मंचूरिया में चाइनीज़–ईस्टर्न रेलवे नाम की रेल बनायी गयी और उसकी रक्षा करने के लिये वहां पर रूसी फौजें रखी गयीं। उत्तरी मंचूरिया पर ज़ारशाही रूस का फ़ौजी कब्ज़ा हो गया। ज़ारशाही कोरिया की तरफ बढ़ रही थी। रूसी पूंजीपति मंचूरिया में 'पीला रूस' बनाने के लिये योजनायें गढ़ रहे थे।

सुदूर पूर्व में राज्य विस्तार करने से, ज़ारशाही की मुठभेड़ एक दूसरे डाकू से हुई। जापान बहुत तेज़ी से एक साम्राज्यवादी देश बन गया था। एशिया के महाद्वीप में, वह राज्य–विस्तार करने पर तुला हुआ था और सबसे पहले चीन में राज्य–विस्तार करना चाहता था। ज़ारशाही रूस की तरह, जापान भी कोरिया और मंचूरिया पर कब्ज़ा करने की घात लगाया था। उस समय भी, जापान ख्वाब देख रहा था कि साखालिन और रूस के सुदूर पूर्वी हिस्सों पर कब्ज़ा जमा ले। ब्रिटेन सुदूरपूर्व में ज़ारशाही रूस की बढ़ती हुई शक्ति से डरता था। वह छिपे तौर से जापान का साथ दे रहा था। रूस और जापान के बीच में लड़ाई की तैयारी हो रही थी। बड़े पूंजीपतियों ने ज़ार सरकार को इस लड़ाई में ठेल दिया। ये पूंजीपति नये बाज़ार ढूंढ़ रहे थे। ज़मींदार वर्ग के ज्यादा प्रतिक्रियावादी हिस्सों ने भी ज़ार सरकार को इस लड़ाई में ठेला।

इस बात का इंतजार किये बिना कि ज़ार सरकार लड़ाई का ऐलान करे, जापान ने खुद ही युद्ध छेड़ दिया। रूस में उसका जासूसी काम अच्छा था और उसे पहले से मालूम था कि उसका दुश्मन लड़ाई के लिये तैयार न होगा। जनवरी 1904 में, लड़ाई का ऐलान किये बिना, जापान ने पोर्ट आर्थर के रूसी किले पर अचानक हमला कर दिया और बन्दरगाह में पड़े हुए रूसी बेड़े को भारी हानि पहुँचायी।

इस तरह रूस–जापान युद्ध शुरु हुआ।

ज़ार सरकार समझती थी कि लड़ाई से उसकी राजनीतिक स्थिति दृढ़ होगी और क्रान्ति की रोक–थाम होगी। लेकिन, उसने गलत हिसाब लगाया। युद्ध ने ज़ार सरकार के पाये पहले से भी ज़्यादा हिला दिये।

रूसी फ़ौज के पास हथियारों की कमी थी। उसे लड़ाई की शिक्षा अच्छी न मिली थी। उसके सेनापति अयोग्य और बेईमान थे। रूसी फ़ौज हार पर हार खाती गयी।

पूंजीपति, सरकारी हाकिम और जनरल लड़ाई से रकमें काटते रहे। सट्टेबाजी का बाज़ार गर्म था। फ़ौजों को सामान बहुत कम मिलता था। जब फ़ौज के पास गोला–बारूद की कमी थी तब, मानो उसे चिढ़ाने के लिये, गाड़ियों भर देवताओं की मूर्तियाँ और तस्वीरें भेज दी जाती थीं। फ़ौज के सिपाही क्षुब्ध होकर कहते थे : "जापानी हम पर गोले बरसा रहे हैं; हम उन्हें मूर्तियाँ भेंट करेंगे।" स्पेशल गाड़ियाँ घायलों को मैदान से हटाने के बदले ज़ार के सेनापतियों द्वारा लूटी हुई सम्पत्ति से लदी रहती थीं।

जापानियों ने पोर्ट आर्थर को घेर लिया और बाद में उस पर कब्ज़ा कर लिया। ज़ार की फौज को कई बार हराने के बाद, अंत में उन्होंने मुकदन के पास उसे खदेड़

दिया। इस लड़ाई में ज़ार की फ़ौज के तीन लाख आदमियों में से एक लाख बीस हज़ार हताहत हुये, या बन्दी बनाये गये। इसके बाद, सुशीमा के जल डमरूमध्य में पोर्ट आर्थर की मदद के लिये बाल्टिक समुद्र से भेजा हुआ ज़ारशाही बेड़ा पूरी तरह से परास्त किया गया और नष्ट कर दिया गया। सुशीमा की हार घातक थी। ज़ार ने जो 20 युद्ध–पोत भेजे थे, उनमें से 13 डुबा दिये गये या नष्ट कर दिये गये और 4 पर जापानियों का क़ब्जा हो गया। युद्ध में ज़ारशाही रूस की पक्की हार हो चुकी थी।

ज़ार सरकार को मजबूरन जापान से अपमानजनक संधि करनी पड़ी। जापान ने कोरिया पर कब्ज़ा कर लिया और रूस से पोर्ट आर्थर और साखालिन का आधा द्वीप ले लिया।

जनता युद्ध न चाहती थी और जानती थी कि देश के लिये वह कितना हानिकर होगा। ज़ारशाही रूस के पिछड़ेपन के लिये, उसे भारी कीमत चुकानी पड़ी।

बोल्शेविकों और मेन्शेविकों ने युद्ध की तरफ अलग–अलग रुख अपनाया।

मेन्शेविक, जिनमें त्रात्स्की भी था, सुरक्षावाद की तरफ गिर रहे थे। इसका मतलब था – ज़ार, ज़मींदारों और पूंजीपतियों की 'पितृभूमि' की रक्षा की जाये।

दूसरी तरफ, लेनिन और बोल्शेविकों का यह मत था कि इस डाकू–संग्राम में ज़ार सरकार की हार लाभदायी होगी, क्योंकि उससे ज़ारशाही कमजोर होगी और क्रान्ति मजबूत होगी।

ज़ारशाही फ़ौजों की हार ने लोगों की आँखें खोल दीं, और उन्होंने देखा कि ज़ारशाही कितनी सड़ियल है। ज़ारशाही के लिये उनकी नफ़रत दिन पर दिन तेज होती गयी। लेनिन ने लिखा था कि पोर्ट आर्थर का पतन निरंकुश सत्ता के पतन की शुरुआत है।

ज़ार चाहता था कि लड़ाई को क्रान्ति का गला घोंट देने के लिये इस्तेमाल करे। उसने इसका उल्टा ही भर पाया। रूस–जापान युद्ध ने क्रान्ति शुरू करने में और जल्दी की।

ज़ारशाही रूस में पूंजीवाद का जुंआ ज़ारशाही के बोझ से और भारी हो गया था। मजदूर पूंजीवादी शोषण से ही, अमानवीय मेहनत से ही परेशान न होते थे, बल्कि तमाम जनता के साथ सभी तरह के अधिकारों के अभाव से भी पीड़ित थे। इसलिये, राजनीतिक रूप से आगे बढ़े हुए मजदूर ज़ारशाही के खिलाफ़ शहर और देहात के सभी जनवादी लोगों के क्रान्तिकारी आन्दोलनों को चलाने की कोशिश करते थे।

किसान जमीन के अभाव और भूदास प्रथा के अनगिनत अवशेषों की वजह से बड़ी मुसीबत में थे। वे जमींदारों और धनी किसानों की गुलामी के दिन काटते थे। ज़ारशाही रूस में रहने वाली जातियाँ दुहरी मार से कराहती थीं – पहली मार तो खुद उनके जमींदारों और पूंजीपतियों की और दूसरी मार रूस के जमींदारों और पूंजीपतियों की। 1900–'03 के **आर्थिक संकट** ने मेहनतकश जनता की कठिनाईयाँ बढ़ा दी थीं। युद्ध से वे और बढ़ गयीं। युद्ध में हारने से, ज़ारशाही के खिलाफ़ जनता की नफ़रत और प्रबल हो उठी। लोगों का धैर्य छूटने लगा था।

जैसा कि हम देख सकते हैं, क्रान्ति के लिये काफ़ी से ज्यादा सामान था।

दिसम्बर 1904 में, बाकू में मजदूरों की एक भारी और सुसंगठित हड़ताल हुई। इसका संचालन बोल्शेविकों की बाकू–कमिटी ने किया। हड़ताल में मजदूर जीते। मालिकों और तेल–मजदूरों के बीच एक सामूहिक समझौता हुआ। **रूस के मजदूर** आन्दोलन के इतिहास में यह समझौता अपने ढंग का पहला था।

बाकू–हड़ताल ट्रांसकॉकेशिया और रूस के विभिन्न हिस्सों में क्रान्तिकारी उठान की शुरुआत थी।

"बाकू की हड़ताल समूचे रूस में **जनवरी** और **फरवरी** की शानदार कार्यवाही का संकेत थी।" (***स्टालिन***)।

यह हड़ताल बादलों की गड़गड़ाहट की तरह थी, जो इस बात की सूचना देती थी कि एक भारी क्रान्तिकारी तूफ़ान आने वाला है।

9 जनवरी, (नई शैली, 22 जनवरी) 1905 को, पीतरबुर्ग की घटनाओं के साथ क्रांतिकारी तूफ़ान फूट पड़ा।

3 जनवरी, 1905 को, पीतरबुर्ग के कारखानों में पुतिलोव (अब किरोव) नाम के सबसे बड़े कारखाने में हड़ताल शुरु हो गयी। चार मजदूरों को निकालने की वजह से हड़ताल शुरु हुई थी। वह तेज़ी से बढ़ी और पीतरबुर्ग की दूसरी मिलें और कारखाने उसमें शामिल हो गये। वह आम हड़ताल हो गयी। आन्दोलन शक्तिशाली बनता गया। ज़ार सरकार ने उसकी शुरुआत में ही उसे कुचल देने का फैसला किया।

1904 में, पुतिलोव–हड़ताल के पहले, पुलिस ने गेपन नाम के एक पादरी जासूस से काम लेने की कोशिश की थी। उसके जरिये रूसी मिल–मजदूरों का संघ नाम से मजदूरों का एक संगठन खड़ा करने की कोशिश की गयी थी। इस संगठन की

शाखायें पीतरबुर्ग के सभी जिलों में थी। जब हड़ताल शुरु हुई, तो इस संगठन की सभाओं में पादरी गेपन ने एक विश्वासघाती योजना रखी कि सभी मज़दूर 9 जनवरी को इकट्ठा हों और गिरजे के झण्डे और ज़ार की तसवीरें लेकर, शान्तिपूर्ण जुलूस में शरद–प्रासाद की तरफ चलें और अपनी जरूरतें बताते हुए ज़ार के सामने एक अर्जी पेश करें; ज़ार लोगों के सामने आयेगा, उनकी बातें सुनेगा और उनकी माँगें पूरी करेगा। गेपन ने ज़ारशाही ***ओखराना*** से वादा किया कि वह मजदूरों पर गोली चलाने के लिये बहाना ढूंढ़कर उसकी मदद करेगा और वह मजदूर आन्दोलन को खून में डुबो सकेगी। लेकिन, पुलिस का यह षड़यंत्र ज़ार सरकार के सिर पर ही फूटा।

मज़दूरों की सभाओं में अर्जी पर विचार किया गया और संशोधन पेश किये गये। इन सभाओं में बिना अपने को खुल्लमखुल्ला जाहिर किये हुए बोल्शेविक बोले। उनके असर से अर्जी में ये माँगें जोड़ दी गयीं, – अखबार निकालने की आजादी हो, भाषण करने की आज़ादी हो, मजदूरों को सभायें बनाने की आजादी हो, रूस की राजनीतिक व्यवस्था को बदलने के लिये विधान–सभा बुलायी जाये, कानून के सामने सबको बराबर माना जाये, राज्य से चर्च को अलग किया जाये, युद्ध बंद किया जाये, मजदूरी के आठ घण्टे हों और जमीन किसानों को दी जाये।

इन सभाओं में, बोल्शेविकों ने मजदूरों को समझाया कि ज़ार के सामने अर्जियां भेजने से आजादी न मिलेगी। आज़ादी हथियारों की ताकत से मिलेगी। बोल्शेविकों ने मजदूरों को आगाह किया कि उन पर गोली चलायी जायेगी। लेकिन, वे शरद–प्रासाद की तरफ जुलूस का जाना न रोक सके। मजदूरों का एक बड़ा हिस्सा अब भी यह समझता था कि ज़ार उनकी मदद करेगा। आन्दोलन ने आम जनता पर पक्का असर कायम कर लिया था।

पीतरबुर्ग के मजदूरों की अर्जी में कहा गया था :

"हम पीतरबुर्ग के मजदूर, हमारी बीवियाँ, हमारे बच्चे और हमारे बूढ़े माँ–बाप तेरे पास आये हैं कि ऐ हमारे बादशाह, तू हमारे साथ इंसाफ कर और हमारी रक्षा कर। हम गरीबी से तबाह हैं, सताये हुए हैं, हम पर असह्य मेहनत का बोझ है। हमारी बेइज़्जती होती है और हमारे साथ इंसानों जैसा सुलूक नहीं होता।... हमने धीरज में यह सब सहा है, लेकिन गरीबी, अधिकारहीनता और अज्ञान के दलदल में हम और गहरे घुसते जाते हैं। निरंकुश सत्ता और अत्याचार हमारा गला घोंट रहे हैं।... हमारा धीरज छूट चला है। वह भयानक घड़ी आ पहुँची है जब हम इन असहनीय तकलीफों को और बर्दाश्त करने के बदले मर जाना बेहतर समझेंगे। ..."

9 जनवरी, 1905 को सुबह तड़के मजदूर शरद–प्रासाद की तरफ़ चले, जहाँ पर उन दिनों ज़ार रहता था। वे अपने पूरे परिवारों के साथ आये। उनकी बीवियाँ, बच्चे और बूढ़े साथ थे। उनके हाथों में ज़ार की तसवीरें और चर्च के झण्डे थे। जुलूस में चलते हुए, वे धार्मिक गीत गा रहे थे। वे निहत्थे थे। सड़कों पर 1,40,000 आदमी इकट्ठे हुए।

निकोलस द्वितीय ने उनके साथ दुश्मनी का व्यवहार किया। उसने निहत्थे मजदूरों पर गोली चलाने का हुकुम दिया। उस रोज ज़ार की फ़ौज के हाथ से एक हज़ार से ऊपर मज़दूर मारे गये और दो हज़ार से ऊपर घायल हुए। पीतरबुर्ग की सड़कें मजदूरों के खून से लाल हो गयीं।

बोल्शेविक मज़दूरों के साथ गये थे। उनमें बहुत से मारे गये या गिरफ़्तार कर लिये गये। वहाँ मजदूरों के खून से लाल सड़कों पर, बोल्शेविकों ने मज़दूरों को समझाया कि इस हत्या का अपराध किसके सिर पर है और उससे कैसे लड़ना चाहिये।

9 जनवरी का नाम 'खूनी इतवार' पड़ गया। उस रोज मजदूरों को एक खूनी सबक मिला। उस रोज गोलियों ने ज़ार में उनकी श्रद्धा को ही छलनी कर डाला। उन्होंने महसूस किया कि वे लड़कर ही अपने अधिकार हासिल कर सकते हैं। उस दिन की शाम को मजदूर इलाकों में सड़कों पर मोर्चेबन्दी शुरु हो गयी। मजदूरों ने कहा : "ज़ार हमसे निपट चुका है; अब हम उससे निपटेंगे!"

ज़ार के खूनी अपराध का भयानक समाचार चारों तरफ फैल गया। समूचा मजदूर वर्ग, तमाम देश, क्रोध और घृणा से भर गया। कोई ऐसा शहर नहीं था जहाँ ज़ार की इस नीचता के विरोध में लोगों ने हड़ताल न की हो और राजनीतिक माँगें न पेश की हों। "ज़ारशाही मुर्दाबाद!" का नारा लगाते हुए, मजदूर अब सड़कों पर निकल आये। जनवरी में, हड़तालियों की तादाद चार लाख चालीस हज़ार के भारी अंकों तक पहुंच गयी। पिछले दस सालों में जितने मजदूरों ने हड़तालें न की थीं, उतने मजदूरों ने एक महीने में हड़तालें की। मजदूर आन्दोलन अभूतपूर्व ऊँचाई तक पहुँच गया।

रूस में क्रान्ति शुरु हो गयी थी।

2. मजदूरों की राजनीतिक हड़तालें और प्रदर्शन। किसानों में क्रान्तिकारी आन्दोलन की बढ़ती। युद्ध–पोत 'पोतेमकिन' पर बग़ावत।

9 जनवरी के बाद, मजदूरों का क्रान्तिकारी संघर्ष और तेज़ हुआ और उसने राजनीतिक रूप ले लिया। मजदूर आर्थिक हड़तालें और हमदर्दी में **हड़तालें** करने से आगे बढ़ कर राजनीतिक हड़तालें, प्रदर्शन और कहीं–कहीं पर ज़ारशाही फ़ौज का हथियारबन्द मुकाबिला करने लगे। पीतरबुर्ग, मास्को, वारसा, रीगा और बाकू जैसे बड़े शहरों में जहाँ भारी संख्या में मजदूर केन्द्रित थे, हड़तालें अच्छी तरह से संगठित थीं और खास तौर से जमकर लड़ी गयीं। लड़ाकू सर्वहारा की अगली सफ़ों में धातु के मजदूर चल रहे थे। अपनी हड़तालों से मजदूरों के हिरावल ने कम वर्ग–चेतन हिस्सों को जगाया और संघर्ष के लिये समूचे मज़दूर वर्ग को उभारा। सोशल–डेमोक्रेसी का असर तेज़ी से बढ़ा।

कई शहरों में मई दिवस के प्रदर्शनों में पुलिस और फ़ौज से टक्करें हुईं। वारसा में प्रदर्शन पर गोली चलायी गयी और कई सौ आदमी हताहत हुए। पोलैण्ड के सोशल–डेमोक्रेटों के आह्वान पर, मजदूरों ने विरोध में आम हड़ताल करके गोली–काण्ड का जवाब दिया। मई के महीने में हड़तालें और प्रदर्शन बन्द नहीं हुए। उस महीने, समूचे रूस में दो लाख से ऊपर मज़दूरों ने हड़ताल की। बाकू, लोत्स और इवानोवोवज़्नेसेंस्क में आम हड़तालें हुईं। हड़ताली और प्रदर्शनकारी ज़ारशाही फौज से अधिकाधिक टक्करें लेने लगे। कई शहरों में – ओदेसा, वारसा, रीगा, लोत्स वग़ैरह में – इस तरह की टक्करें हुईं।

लोत्स में संघर्ष खास तौर से तेज़ हुआ। पोलैण्ड का यह एक बड़ा औद्योगिक केन्द्र था। मजदूरों ने शहर की सड़कों पर बीसों जगह मोर्चेबन्दी की और तीन दिनों तक (22–24 जून, 1905) ज़ारशाही फौज़ से सड़कों पर लड़ते रहे। यहाँ पर हथियारबन्द लड़ाई आम हड़ताल में घुल–मिल गयी। लेनिन के अनुसार, ये लड़ाइयाँ रूस के मजदूरों की पहली हथियारबन्द कार्यवाही थी।

उस साल, गर्मियों की सबसे बड़ी हड़ताल इवानोवोवज़्नेसेंस्क के मजदूरों की थी। यह करीब ढाई महीने, मई के आखीर से अगस्त 1905 के शुरू तक, चली। लगभग सत्तर हज़ार मजदूरों ने, जिनमें स्त्रियाँ भी थीं, हड़ताल में हिस्सा लिया। इसका नेतृत्व बोल्शेविकों की उत्तरी कमिटी ने किया था। करीब हर रोज शहर के बाहर ताल्का नदी के किनारे हज़ारों मजदूर इकट्ठे होते थे। इन सभाओं में वे अपनी जरूरतों पर विचार

करते थे। मजदूरों की सभाओं में बोल्शेविक भाषण देते थे। ज़ारशाही अधिकारियों ने फ़ौज को हुकुम दिया कि मजदूरों को तितर–बितर करें और उन पर गोली चलायें। बीसियों मजदूर मारे गये और कई सौ घायल हुए। शहर में संकट की हालत का ऐलान कर दिया गया। लेकिन, मजदूर अडिग रहे और काम पर न लौटे। वे और उनके परिवार भूखों मरने लगे, लेकिन वे घुटने टेकने को तैयार न थे। सिर्फ बेहद कमजोर हो जाने के बाद, आखिर में उन्हें मजबूरन काम पर आना पड़ा। हड़ताल ने मजदूरों को दृढ़ बना दिया। मजदूर वर्ग के साहस, दृढ़ता, धीरज और एकता की यह मिसाल थी। इवानोवोवज़्नेसेंस्क के मजदूरों के लिये यह सच्ची राजनीतिक शिक्षा थी।

हड़ताल के दौर में, इवानोवोवज़्नेंसेंस्क के मज़दूरों ने प्रतिनिधियों की एक समिति बनायी, जो दरअसल रूस में मजदूरों के प्रतिनिधियों की पहली सोवियत थी।

मजदूरों की राजनीतिक हड़तालों से सारा देश आन्दोलित हो उठा। शहरों के पीछे गांव भी उठ खड़े होने लगे। वसन्त में, किसानों में असंतोष फूट पड़ा। बड़े–बड़े झुंड बना कर किसान जमींदारों के खिलाफ़ चलने लगे। वे उनकी रियासतों, शक्कर साफ़ करने के कारखानों और शराब बनाने की भट्ठियों को घेर लेते थे और उनकी गढ़ी और कोठियों में आग लगा देते थे। कई जगह किसानों ने जमींदारों की जमीनें छीन लीं, जंगल के जंगल काटना शुरु कर दिये और यह मांग की कि उनकी रियासतें जनता के हवाले की जायें। उन्होंने जमींदारों के गल्ले और दूसरी जिन्सों के गोदामों पर कब्जा कर लिया और उन्हें भूखों मरने वालों में बाँट दिया। जमींदार बदहवास होकर शहरों में भाग आये। ज़ार सरकार ने किसानों का विद्रोह कुचलने के लिये सिपाही और कज्जाक भेजे। फौज ने किसानों पर गोली चलायी, उनके 'सरदारों' को पकड़ लिया और उन्हें पीटा और तरह–तरह से यंत्रणा दी। लेकिन, किसानों ने अपनी लड़ाई बन्द न की।

किसान आन्दोलन रूस के मध्य भाग में बोल्गा–प्रदेश और ट्रांसकॉकेशिया में, खास तौर से जॉर्जिया में, बराबर फैलता गया।

सोशल–डेमोक्रैट सुदूर गाँवों में पहुँच गये। पार्टी की केन्द्रीय कमिटी ने किसानों के नाम अपील निकाली : 'किसानों, हमें तुमसे यह शब्द कहने हैं!' त्वेर, सारातोव, पोल्तावा, चर्निगोव, एकातेरिनोस्लाव, तिफ़लिस और दूसरे बहुत से सूबों की सोशल–डेमोक्रैटिक कमिटियों ने किसानों के नाम अपीलें निकालीं। सोशल–डेमोक्रैट गाँवों में सभायें करते, किसानों में मण्डल संगठित करते और किसान कमिटियाँ कायम करते। 1905 की गर्मियों में, सोशल–डेमोक्रैटों की संगठित की हुई खेत–मजदूरों की हड़तालें बहुत जगह हुईं।

लेकिन, यह किसान–संघर्ष की शुरुआत ही थी। किसान–आन्दोलन की लपेट में सिर्फ़ 85 उयेज़्द (जिले) ही आये थे, यानी मोटे तौर से ज़ारशाही रूस के यूरोपीय भाग के कुल उयेज्दों का 1/7 हिस्सा ही आया था।

मजदूरों और किसानों के अन्दोलन और रूस–जापान युद्ध में रूसी फ़ौजों की हार पर हार का असर फ़ौज पर भी पड़ा। ज़ारशाही का यह गढ़ डावाँडोल हो उठा।

जून 1905 में, काले समुद्र के बेड़े के ***पोतेमकिन*** नामक युद्ध–पोत पर विद्रोह फूट पड़ा। युद्ध–पोत उस समय ओदेसा के नज़दीक था, जहाँ मजदूरों की आम हड़ताल चालू थी। बाग़ी मल्लाहों ने अपने ज़्यादा घृणित अफ़सरों से बदला लिया और जहाज़ को ओदेसा ले आये। युद्ध पोत ***पोतेमकिन*** क्रान्ति की तरफ़ आ गया था।

लेनिन ने इस बग़ावत को बहुत ही महत्वपूर्ण बतलाया। उन्होंने **बोल्शेविकों** के लिये जरूरी समझा कि वे इस आन्दोलन का नेतृत्व अपने हाथों में लें और मजदूरों, किसानों तथा स्थानीय छावनियों के आन्दोलन से उसे जोड़ दें।

ज़ार ने ***पोतेमकिन*** के खिलाफ़ कई युद्ध–पोत भेजे, लेकिन इन जहाज़ों के मल्लाहों ने अपने विद्रोही भाईयों पर गोली चलाने से इन्कार किया। कई दिनों तक युद्ध–पोत ***पोतेमकिन*** के मस्तूल पर क्रान्ति का लाल निशान फहराता रहा। लेकिन, उन दिनों 1905 में आन्दोलन की अगुवाई करने वाली बोल्शेविक पार्टी ही एक पार्टी न थी, जैसा कि आगे 1917 में हुआ। ***पोतेमकिन*** पर मेन्शेविक, समाजवादी क्रान्तिकारी और अराजकतावादी भी काफ़ी तादाद में थे। इसका नतीजा यह हुआ कि हालाँकि सोशल–डेमोक्रैटों ने व्यक्तिगत रूप से विद्रोह में हिस्सा लिया, फिर भी उसमें योग्य और काफी अनुभवी नेतृत्व की कमी थी। ऐन मौके पर, मल्लाहों का एक हिस्सा ढुलमुल हो गया। काले समुद्र के बेड़े के दूसरे जहाजों ने ***पोतेमकिन*** की बग़ावत में साथ नहीं दिया। कोयला और सामान कम पड़ जाने पर, क्रान्तिकारी युद्ध–पोत को रूमानियां के तट की तरफ़ बढ़ना पड़ा और वहाँ पर अधिकारियों के आगे आत्म–समर्पण करना पड़ा।

युद्ध–पोत ***पोतेमकिन*** के मल्लाहों की बग़ावत का अंत हार में हुआ। आगे चल कर जो मल्लाह ज़ार सरकार के हाथ में पड़ गये, उन पर मुकदमा चलाया गया। कुछ को प्राण–दण्ड दिया गया और बाकी को निर्वासन और कड़ी मेहनत की सज़ा दी गयी। लेकिन, यह बग़ावत अपने आप में एक बड़ी महत्वपूर्ण घटना थी। ***पोतेमकिन*** का विद्रोह फ़ौज और बेड़े में आम जनता की क्रान्तिकारी कार्यवाही की पहली मिसाल थी। यह पहला मौक़ा था जब ज़ार की फ़ौज की एक बड़ी टुकड़ी क्रान्ति की तरफ़ आयी थी। इस विद्रोह से मजदूर और किसान इस बात को समझ गये और यह उनके

दिल में बैठ गयी कि फ़ौज और बेड़ा मजदूर वर्ग और जनता का साथ दे सकते हैं; खास तौर से खुद फ़ौजियों और मल्लाहों ने इस बात को समझा।

मज़दूरों का आम राजनीतिक हड़तालें और प्रदर्शन करना, **किसान आन्दोलन** की बढ़ती, पुलिस और फ़ौज से जनता की हथियारबन्द टक्करें और अंत में काले समुद्री बेड़े की बग़ावत, इन सबसे ज़ाहिर होता था कि जनता के सशस्त्र विद्रोह के लिये हालत तैयार हो रही है। इससे उदारपंथी पूंजीपति भी मैदान में आये। क्रान्ति से डरते हुए और साथ ही क्रान्ति के हौवे से ज़ार को डराते हुये, उन्होंने चाहा कि क्रान्ति के खिलाफ़ ज़ार से समझौता कर लें। उन्होंने 'जनता के लिये' मामूली सुधारों की माँग की जिससे कि जनता को 'शांत किया जाये', क्रान्ति की ताकतों में फूट डाली जाये और इस तरह से 'क्रान्ति की विभीषिका' से बचा जाये। उदारपंथी जमींदार कहते थे : "सर देने से थोड़ी ज़मीन दे देना बेहतर है।" उदारपंथी पूंजीपति ज़ार के साथ सत्ता में हिस्सा बटाने की तैयारी कर रहे थे! मज़दूर वर्ग की कार्यनीति और उदारपंथी पूंजीपतियों की कार्यनीति के सिलसिले में, उन दिनों लेनिन ने लिखा था : "सर्वहारा वर्ग लड़ रहा है; पूंजीपति चोरी–चोरी सत्ता हथियाने के लिये बढ़ रहे हैं।"

ज़ार सरकार पाशविक बर्बरता से मज़दूरों और किसानों का दमन करती रही। लेकिन, उसे यह दिखाई दिये बिना न रहा कि वह दमन से ही क्रान्ति की रोक–थाम नहीं कर सकती। इसलिये दमन बन्द किये बिना, उसने दाँव–पेंच से काम लेने की नीति अपनाई। एक तरफ, वह जासूसों की मदद से रूसी जातियों को एक–दूसरे के खिलाफ़ भड़काती थी, यहूदियों के कत्लेआम और आर्मीनियनों और तातारों के आपसी हत्याकाण्ड कराती थी। दूसरी तरफ़, उसने वादा किया कि वह ***जेम्स्की सोबोर***[1] या राज्य–परिषद (दूमा) के रूप में एक प्रतिनिधि संस्था बुलायेगी। उसने मंत्री बुनिगिन को आदेश दिया कि ऐसी दूमा के लिये वह एक योजना बनाये। साथ ही, उसने यह ख़याल रखा कि दूमा के पास कानून बनाने के अधिकार न हों। ये सब उपाय इसलिये किये गये थे कि क्रान्ति की शक्तियों में फूट डाल दी जाये और जनता के नरम विचार के लोगों को उससे अलग कर दिया जाये।

बोल्शेविकों ने जनता के प्रतिनिधित्व के इस स्वांग को खत्म करने के लिये बुलिगिन दूमा के बायकाट का ऐलान किया।

दूसरी तरफ़ मेन्शेविकों ने फ़ैसला किया कि वे दूमा भंग न करेंगे और उन्होंने उसमें हिस्सा लेना जरूरी समझा।

---

1. सरकार के साथ विचार करने के लिये 16–17वीं सदी में बुलाई जाने वाली उच्च स्तरों की सभा – अंग्रेजी अनु•

3. बोल्शेविकों और मेन्शेविकों के कार्यनीति सम्बन्धी मतभेद। तीसरी पार्टी कांग्रेस। लेनिन की पुस्तक 'जनवादी क्रान्ति में सोशल–डेमोक्रैसी की दो कार्य–नीतियाँ'। मार्क्सवादी पार्टी की कार्यनीति सम्बन्धी बुनियाद।

क्रान्ति ने समाज के सभी वर्गों को गतिशील बना दिया था। देश के राजनीतिक जीवन में क्रान्ति से जो तब्दीली हुई, उससे वे अपनी पुरानी जानी–पहचानी जगहों से बिछुड़ गये। नयी परिस्थिति के अनुकूल, उन्हें फिर से व्यवस्थित होने के लिये मजबूर होना पड़ा। हर वर्ग और हर पार्टी ने अपनी कार्यनीति, अपने काम की लाइन, दूसरे वर्गों की तरफ अपना रुख और हुकूमत की तरफ अपना रवैया बनाने की कोशिश की। ज़ार सरकार को भी मजबूर होकर नयी और बेपहचानी कार्यनीति गढ़नी पड़ी, जिसकी मिसाल बुलिगिन दूमा जैसी 'प्रतिनिधि संस्था' को बुलाने के वादे से मालूम होती है।

सोशल–डेमोक्रेटिक पार्टी को भी अपनी कार्यनीति बनानी थी। क्रान्ति के बढ़ते हुए ज्वार से यह जरूरत पैदा हुई थी और इसलिये पैदा हुई थी कि सर्वहारा वर्ग के सामने ऐसे अमली सवाल आये थे जिन्हें हल करने में देर न की जा सकती थी : हथियारबन्द विद्रोह का संगठन, ज़ार सरकार का खात्मा, अस्थायी क्रान्तिकारी सरकार का निर्माण, इस सरकार में सोशल–डेमोक्रैटों का हिस्सा लेना, किसानों और उदारपंथी पूंजीपतियों की तरफ़ रुख, इत्यादि। सोशल–डेमोक्रैटों को अपने लिये ध्यानपूर्वक सोच कर और एक–जैसी मार्क्सवादी कार्यनीति बनानी थी।

लेकिन, मेन्शेविकों के अवसरवाद और उनकी फूट की **कार्यवाही की** वजह से रूसी सोशल–डेमोक्रैटिक पार्टी उस समय दो दलों में बँटी हुई थी। इनका अलगाव अभी पूरा न समझा जा सकता था और **नियमानुसार** दोनों दल अभी दो पार्टियाँ न थे। लेकिन **वास्तव** में, वे दो अलग पार्टियों से बहुत ज्यादा मिलते–जुलते थे जिनमें से हरेक का अपना नेतृत्व–केन्द्र और अपना अखबार हो।

जिस बात से फूट और बढ़ गयी, वह यह थी कि **संगठन के** सवालों पर पार्टी के बहुमत से अपने पुराने मतभेदों में मेन्शेविकों ने अब नये मतभेद, **कार्यनीति के** सवालों पर मतभेद भी जोड़ दिये थे।

संयुक्त पार्टी न होने से, पार्टी की एक–जैसी कार्यनीति भी न थी।

इस परिस्थिति से निकलने का एक रास्ता था कि तुरंत एक और कांग्रेस, पार्टी की तीसरी कांग्रेस बुलायी जाती। यह कांग्रेस सामान्य कार्यनीति तय करती और अल्पमत

को इस बात के लिये बाध्य करती कि वह कांग्रेस के फैसलों को, बहुमत के फैसलों को, ईमानदारी से पूरा करे। मेन्शेविकों के सामने बोल्शेविकों ने यह प्रस्ताव रखा। लेकिन, मेन्शेविक तीसरी कांग्रेस बुलाने की बात सुनने को तैयार न थे। बोल्शेविकों ने सोचा कि पार्टी को ऐसी कार्यनीति के बिना और ज्यादा छोड़ना अपराध होगा जिसे पार्टी ने स्वीकृत किया हो और जिसे तमाम पार्टी सदस्य बनाने के लिये बाध्य हों। इसलिये, उन्होंने तीसरी कांग्रेस बुलाने में पहल करने का काम अपने हाथों में लिया।

सभी पार्टी–संगठन, बोल्शेविक और मेन्शेविक दोनों ही, कांग्रेस में बुलाये गये। लेकिन, मेन्शेविकों ने तीसरी कांग्रेस में हिस्सा लेने से इन्कार कर दिया और तय किया कि खुद अपनी कांग्रेस करेंगे। उनकी कांग्रेस में थोड़े ही प्रतिनिधि आये, इसलिये उन्होंने उसे कान्फ्रेंस का नाम दिया। लेकिन, दरअसल वह एक कांग्रेस थी, मेन्शेविक पार्टी की कांग्रेस, जिसके फैसले सभी मेन्शेविकों के लिये मान्य थे।

रूसी सोशल–डेमोक्रैटिक पार्टी की तीसरी कांग्रेस अप्रैल 1905 में लन्दन में हुई। उसमें 20 बोल्शेविक कमिटियों की तरफ़ से 24 प्रतिनिधि शामिल हुए थे। उसमें पार्टी के सभी बड़े संगठनों का प्रतिनिधित्व था।

कांग्रेस ने मेन्शेविकों की यह कह कर निन्दा की कि "वे एक ऐसा गुट हैं जो पार्टी से टूट कर अलग हो गया है," और इसके बाद कांग्रेस ने मुख्य काम संभाला, यानी, पार्टी की कार्यनीति का निर्माण।

जिस समय यह कांग्रेस हुई, उसी समय मेन्शेविकों ने अपनी कान्फ्रेंस जिनेवा में की।

लेनिन ने परिस्थिति का सार बतलाते हुए कहा था : "दो कांग्रेसें – दो पार्टियाँ।"

कांग्रेस और कान्फ्रेंस दोनों ने वस्तुतः कार्यनीति के एक ही सवालों पर बहस की, लेकिन उन्होंने जो फैसले किये, वे एक–दूसरे के बिल्कुल उल्टे थे। कांग्रेस और कान्फ्रेंस ने क्रमशः जो दो तरह के फैसले मंजूर किये, उनसे तीसरी पार्टी कांग्रेस और मेन्शेविक कान्फ्रेंस के बीच के, बोल्शेविकों और मेन्शेविकों के बीच के, कार्यनीति सम्बंधी भेद की पूरी गहराई ज़ाहिर हुई।

मतभेद की मुख्य बातें यह हैं।

तीसरी पार्टी कांग्रेस की कार्यनीति सम्बन्धी लाइन। कांग्रेस का विचार था कि यद्यपि उस समय होने वाली क्रान्ति का रूप पूंजीवादी–जनवादी था और पूंजीवाद के ढाँचे के अन्दर जो कुछ मुमकिन था, उसकी सीमाओं के बाहर वह न जा सकती थी, फिर भी सर्वहारा वर्ग ही मुख्य रूप से उसकी पूरी जीत में दिलचस्पी रखता था। सबब यह कि इस क्रान्ति की जीत से सर्वहारा वर्ग अपने को संगठित कर सकता था, राजनीतिक रूप से बढ़ सकता था, मेहनतकश आवाम का राजनीतिक नेतृत्व करने में योग्यता और अनुभव हासिल कर सकता था और पूंजीवादी क्रान्ति से समाजवादी क्रान्ति की तरफ बढ़ सकता था।

पूंजीवादी–जनवादी क्रान्ति की पूरी जीत हासिल करने के लिये सर्वहारा वर्ग ने जो कार्यनीति अपनायी थी, उसका समर्थन किसान ही कर सकते थे। किसान ज़मींदारों से अपना हिसाब–किताब तब तक तय न कर सकते थे और अपनी जमीन पर तब तक अधिकार न पा सकते थे जब तक कि क्रान्ति की पूरी विजय न हो। इसलिये, किसान सर्वहारा वर्ग के स्वाभाविक सहयोगी थे।

उदारपंथी पूंजीपतियों को क्रान्ति की पूरी जीत में दिलचस्पी न थी। वे मजदूरों और किसानों से जितना डरते थे उतना और किसी चीज़ से नहीं, और इन्हीं के खिलाफ़ बतौर कोड़े के उन्हें ज़ारशाही की जरूरत थी। वे कोशिश करते कि ज़ारशाही कायम रहे, सिर्फ उसके अधिकार सीमित कर दिये जायें। इसलिये, उदारपंथी पूंजीपति वैधानिक सम्राट्वाद के आधार पर ज़ार से समझौता करके मामला रफ़ा–दफ़ा करने की कोशिश करते थे।

क्रान्ति तभी बिजयी होगी जब सर्वहारा वर्ग उसका नेतृत्व करेगा; जब क्रान्ति के नेता की तरह सर्वहारा वर्ग किसानों का सहयोग हासिल करेगा; जब उदारपंथी पूंजीपति अकेले कर दिये जायेंगे; जब सोशल–डेमोक्रैटिक पार्टी ज़ारशाही के खिलाफ़ जनता के विद्रोह के संगठन में सक्रिय हिस्सा लेगी; जब सफल विद्रोह के बाद एक अस्थायी क्रान्तिकारी सरकार कायम की जायेगी जो क्रान्ति–विरोध को जड़ से उखाड़ कर फेंक सकेगी और तमाम जनता का प्रतिनिधित्व करने वाली विधान–सभा बुलायेगी; जब परिस्थिति अलुकूल होने पर क्रान्ति को अंतिम ध्येय तक पहुँचाने के लिये सोशल–डेमोक्रैटिक पार्टी अस्थायी क्रान्तिकारी हुकूमत में हिस्सा लेने से इन्कार न करेगी।

मेन्शेविक कान्फ्रेंस की कार्यनीति सम्बन्धी लाइन। क्रान्ति पूंजीवादी क्रान्ति थी, इसलिये उदारपंथी पूंजीपति उसके नेता हो सकते थे। सर्वहारा वर्ग को किसानों से नज़दीकी सम्बंध न कायम करने चाहिये बल्कि उदारपंथी पूंजीपतियों से कायम करने

चाहिये। मुख्य बात यह है कि क्रान्तिकारी जोश दिखला कर उदारपंथी पूंजीपतियों को डरा न देना चाहिये और क्रान्ति से हटने के लिये उन्हें बहाना न देना चाहिये, क्योंकि अगर वे क्रान्ति से हट गये तो क्रान्ति कमजोर पड़ जायेगी।

यह मुमकिन था कि विद्रोह विजयी हो। लेकिन, विद्रोह की जीत के बाद सोशल–डेमोक्रैटिक पार्टी को अलग हट जाना चाहिये, जिससे कि उदारपंथी पूंजीपति डर न जायें। यह मुमकिन था कि विद्रोह के फलस्वरूप एक अस्थायी क्रान्तिकारी सरकार कायम की जाये। लेकिन, सोशल–डेमोक्रैटिक पार्टी को किसी भी हालत में उसमें हिस्सा लेना न चाहिये क्योंकि यह सरकार सोशलिस्ट न होगी, और यह मुख्य बात थी, सरकार में हिस्सा लेकर, तथा अपने क्रान्तिकारी जोश से, सोशल–डेमोक्रैटिक पार्टी उदारपंथी पूंजीपतियों को डरा सकती है। और, इस तरह से क्रान्ति कमजोर पड़ सकती है।

क्रान्ति की भावी प्रगति के लिये यह ज्यादा अच्छा होगा कि ***ज़ेम्स्की सोबोर*** या राज्य दूमा की तरह की कोई प्रतिनिधि सभा बुलायी जाये, जिस पर बाहर से मजदूर वर्ग का दबाव डाला जा सके और उसे विधान–सभा में तब्दील किया जा सके, या उसे विधान–सभा बुलाने के लिये प्रेरित किया जाये।

सर्वहारा वर्ग के अपने स्पष्ट और शुद्ध मज़दूरी कमाने वालों के हित हैं। उसे इन्हीं हितों की तरफ़ ध्यान देना चाहिये और पूंजीवादी क्रान्ति का नेता बनने की कोशिश न करनी चाहिये। यह पूंजीवादी क्रान्ति एक आम राजनीतिक क्रान्ति है, इसलिये उसका सभी वर्गों से सम्बंध है, न कि सिर्फ़ सर्वहारा वर्ग से। संक्षेप में, रूसी सोशल–डेमोक्रैटिक लेबर पार्टी के दो दलों की ये दो कार्यनीतियाँ थीं।

अपनी ऐतिहासिक पुस्तक ***जनवादी क्रान्ति में सोशल–डेमोक्रैसी की दो कार्यनीतियां*** में, लेनिन ने मेन्शेविकों की कार्यनीति की पक्की आलोचना की थी और बोल्शेविक कार्यनीति का सुन्दर प्रतिपादन किया था।

यह किताब जुलाई 1905 में, यानी तीसरी पार्टी कांग्रेस के दो मास बाद प्रकाशित हुई थी। उसके नाम से सोचा जा सकता है कि उसमें लेनिन ने पूंजीवादी–जनवादी क्रान्ति के दौर के कार्यनीति सम्बन्धी सवालों पर ही प्रकाश डाला होगा और उनका ध्यान सिर्फ़ रूसी मेन्शेविकों पर ही रहा होगा। लेकिन वास्तव में, जब उन्होंने मेन्शेविकों की कार्यनीति की आलोचना की, तो उन्होंने साथ ही अंतर्राष्ट्रीय अवसरवाद की कार्यनीति का भी पर्दाफ़ाश किया। जब उन्होंने पूंजीवादी–जनवादी क्रान्ति के दौर की मार्क्सवादी कार्यनीति का प्रतिपादन किया और पूंजीवादी क्रान्ति और समाजवादी

क्रान्ति का भेद किया, तो उन्होंने साथ ही पूंजीवादी क्रान्ति से समाजवादी क्रान्ति की तरफ बढ़ने के दौर की मार्क्सवादी कार्यनीति के बुनियादी सिद्धान्तों की स्थापना की।

लेनिन ने ***जनवादी क्रान्ति में सोशल–डेमोक्रैटिक की दो कार्यनीतियां*** नाम की अपनी पुस्तिका में कार्यनीति के जिन बुनियादी उसूलों का प्रतिपादन किया, वे इस प्रकार हैं :

(1) कार्यनीति का मुख्य सिद्धान्त, जो लेनिन की पूरी किताब में मिलता है, यह है कि सर्वहारा वर्ग को पूंजीवादी क्रान्ति का नेता होना चाहिये और वह हो सकता है; उसे रूस में पूंजीवादी–जनवादी क्रान्ति की ***रास्ता दिखाने वाली शक्ति*** होना चाहिये और वह हो सकता है।

लेनिन ने इस क्रान्ति के पूंजीवादी रूप को स्वीकार किया था, क्योंकि जैसा उन्होंने कहा था, वह "एक शुद्ध जनवादी क्रान्ति की सीमाओं को सीधे लाँघने में असमर्थ है।" फिर भी, उनका कहना था कि यह ऊपर के वर्गों की क्रान्ति नहीं बल्कि जनता की क्रान्ति है, जो तमाम जनता, समूचे मजदूर वर्ग, तमाम किसानों को गतिशील बनायेगी। इसलिये, मेन्शेविकों द्वारा सर्वहारा वर्ग के लिये पूंजीवादी क्रान्ति के महत्व को कम करके दिखाना, उसके सर्वहारा वर्ग की भूमिका को तुच्छ बताना और उससे सर्वहारा को दूर रखना, लेनिन की राय में सर्वहारा वर्ग के हितों से ग़द्दारी थी।

लेनिन ने लिखा था :

"मार्क्सवाद सर्वहारा वर्ग को सिखलाता है कि वह पूंजीवादी क्रान्ति से अलग न रहे, उसकी तरफ उदासीन न हो, क्रान्ति का नेतृत्व पूंजीपतियों के हाथ में न जाने दे। इसके विपरीत, वह पूरी ताकत से उसमें हिस्सा ले, खूब डट कर सुसंगत सर्वहारा जनतंत्र के लिये लड़े, क्रान्ति को उसके आखिरी नतीजे तक ले जाने के लिये लड़े।" (लेनिन, **सं•ग्र•**, अं•सं•, मास्को, 1947, ख• 1, पृष्ठ 369)।

लेनिन ने आगे लिखा था :

"हमें याद रखना चाहिये कि आज के ज़माने में समजावाद को नज़दीक लाने के लिये पूरी राजनीतिक आज़ादी के अलावा, जनवादी प्रजातंत्र के अलावा, दूसरा कोई रास्ता न है, न हो सकता है।" (***उप•***, पृष्ठ 414)।

लेनिन ने देखा कि क्रान्ति के दो परिणाम हो सकते हैं :

(अ) या तो वह ज़ारशाही पर पूरी जीत से, ज़ारशाही की पराजय और जनवादी प्रजातंत्र की स्थापना से खत्म होगी;

(आ) या अगर शक्तियाँ नाकाफ़ी हुईं, तो जनता के हितों की बलि देकर ज़ार और पूंजीपतियों के बीच समझौते से, किसी तरह से सीमित विधान सभा, या बहुत मुमकिन है विधान के स्वांग से खत्म हो।

सर्वहारा वर्ग इन दोनों से बेहतर नतीजे में दिलचस्पी रखता था, यानी वह चाहता था कि ज़ारशाही पर पूरी जीत हो। लेकिन, इस तरह का नतीजा तभी मुमकिन होगा जब सर्वहारा वर्ग क्रान्ति का नेता और उसका पथप्रदर्शक बन पाये।

लेनिन ने कहा था :

> "क्रान्ति का नतीजा इस बात पर निर्भर है कि मजदूर वर्ग पूंजीपतियों के मातहत अपना पार्ट अदा करता है, इस तरह मातहत कि ज़ारशाही पर हमला करने में तो उसकी शक्ति प्रबल हो लेकिन राजनीतिक रूप से वह अपाहिज हो, या कि वह जनता की क्रान्ति के नेता का पार्ट अदा करता है।" (**उप॰**, पृष्ठ 344)।

लेनिन का कहना था कि सर्वहारा वर्ग के पास हर तरह की संभावना है कि वह पूंजीपतियों के मातहत बनने से बचे और पूंजीवादी–जनवादी क्रान्ति का नेता बन जाये। लेनिन के अनुसार, यह संभावना इस बात से पैदा होती थी –

पहले तो, "सर्वहारा वर्ग अपनी स्थिति की वजह से ही सबसे आगे बढ़ा हुआ वर्ग और एकमात्र सुसंगत क्रान्तिकारी वर्ग है। इस वजह से ही, रूस के आम जनवादी क्रान्तिकारी आन्दोलन में उसे मुख्य भूमिका अदा करनी होगी।" (***उप॰***, पृष्ठ 386)।

दूसरे, सर्वहारा वर्ग की अपनी राजनीतिक पार्टी है। यह पार्टी पूंजीपतियों से स्वतंत्र है और सर्वहारा वर्ग के लिये यह मुमकिन बनाती है कि वह अपने को "एक संयुक्त और स्वतंत्र राजनीतिक शक्ति के रूप में" सुगठित कर सके। (***उप॰***, पृष्ठ 386)

तीसरे, पूंजीपतियों के मुबाबिले में सर्वहारा वर्ग को क्रान्ति की निश्चित जीत में ज्यादा दिलचस्पी है। इस लिहाज से, "**एक अर्थ में**, पूंजीवादी क्रान्ति पूंजीपतियों से ज्यादा सर्वहारा वर्ग के लिये लाभकारक है।" ***उप॰***, पृष्ठ 368)

लेनिन ने लिखा था :

"सर्वहारा वर्ग के मुकाबिले में पूंजीपतियों को राज्यतंत्र, स्थायी फ़ौज वग़ैरह जैसी अतीत की कुछ बची–खुची चीजों का सहारा लेने में लाभ है। पूंजीपतियों को इसमें फायदा है कि पूंजीवादी क्रान्ति पुराने जमाने के अवशेषों को बहुत दृढ़ता से साफ़ न कर दे, बल्कि उनमें से कुछ को रहने दे, यानी अगर यह क्रान्ति पूरी तरह से संगत न हो, अगर वह पूरी न हो, अगर वह दृढ़ता और निर्ममता से चलने वाली न हो तो इससे पूंजीपतियों को फायदा है। ...पूंजीपतियों के लिये यह ज्यादा लाभदायी है यदि पूंजीवादी जनतंत्र की दिशा में ज़रूरी परिवर्तन और भी धीरे, और क्रमशः और फूंक–फूंक कर, कम दृढ़ता से, सुधारों के ज़रिये हों और क्रान्ति के ज़रिये न हों ... यदि ये परिवर्तन आम जनता, यानी किसानों और खास तौर से मज़दूरों की स्वतंत्र क्रांतिकारी कार्यवाही, पहल और शक्ति को कम से कम विकसित करें। ऐसा न होने पर, मज़दूरों के लिये आसान होगा कि, जैसा कि फ्रांसीसी कहते हैं, 'एक कन्धे से उठा कर बन्दूक दूसरे कन्धे पर रख ली' यानी पूंजीवादी क्रान्ति उनके हाथों में जो बन्दूकें देगी, जो आजादी क्रान्ति लायेगी, भूदास प्रथा से धरती पाक होने पर वहां जो जनवादी संस्थायें पनपेंगी, उन्हें वे पूंजीपतियों के खिलाफ़ इस्तेमाल करेंगे। दूसरी तरफ़, मजदूरों के लिये इस बात से ज्यादा फायदा है कि पूंजीवादी जनतंत्र की दिशा में जो परिवर्तन जरूरी हैं, वे क्रान्ति के ज़रिये हों और सुधारों के ज़रिये न हों। सुधारों का तरीका देर लगाने का तरीका है, मामला टालने का तरीका है, जातीय जीवन के सड़े–गले तबकों के दर्दनाक, धीमे–धीमे घुलने का तरीका है। सर्वहारा वर्ग और किसान भी इस सड़ाँध से सबसे पहले तकलीफ़ उठाते हैं। क्रान्तिकारी तरीका तुरन्त चीर–फाड़ का तरीका है, जो सर्वहारा वर्ग के लिये सबसे कम दर्दनाक है। यह तरीका गलते हुए हिस्सों को सीधे हटा देने का तरीका है, यह तरीका राज्यतंत्र और उसके साथ चलने वाली घृणित, घटिया, सड़ी हुई और छूत फैलाने वाली संस्थाओं को कम से कम रियायतें देने का और उनका कम से कम लिहाज़ करने का तरीका है।" (***उप०,*** पृष्ठ 368–69)।

लेनिन ने अनगे लिखा है :

"इसी वजह से, सर्वहारा वर्ग प्रजातंत्र के लिये अगली पांत में लड़ता है और इस मूर्खतापूर्ण और अपने लिये अयोग्य सलाह को घृणा से ठुकरा देता है कि वह पूंजीपतियों को डरा कर भगा न देने का ध्यान रखें।" (***उप०,*** पृष्ठ 405)।

सर्वहारा वर्ग क्रान्ति का नेता बने, इस **संभावना** को **वास्तविकता** का रूप देने के लिये, इसके लिये कि सर्वहारा वर्ग **हक़ीकत** में पूंजीवादी क्रान्ति का नेता, उसकी पथ–प्रदर्शक शक्ति बने, लेनिन के अनुसार कम से कम दो शर्तें जरूरी थीं।

पहले तो, सर्वहारा वर्ग के लिये एक ऐसे सहयोगी की जरूरत थी जिसे ज़ारशाही पर पूरी जीत हासिल करने से दिलचस्पी हो और जो सर्वहारा वर्ग का नेतृत्व स्वीकार कर सकता हो। नेतृत्व के ही विचार से यह बात पैदा होती थी, क्योंकि किसी का नेतृत्व ही न करना हो तो नेता नेता न रह जाये। रास्ता देखने के लिये कोई न हो तो रास्ता दिखाने वाला भी नाममात्र को रह जायेगा। लेनिन का विचार था कि किसान ऐसे ही सहयोगी हैं।

दूसरे यह जरूरी था कि जो वर्ग क्रान्ति के नेतृत्व के लिये सर्वहारा वर्ग से लड़ रहा था और उसका एकमात्र नेता बनने की कोशिश कर रहा था, उसे नेतृत्व के मैदान से हटा दिया जाये और अकेला कर दिया जाये। यह बात भी नेतृत्व के ही विचार से पैदा होती थी, क्योंकि क्रान्ति के दो नेता होने की संभावना उस विचार से बाहर थी। लेनिन का मत था कि उदारपंथी पूंजीपतियों का वर्ग ऐसा ही वर्ग है।

लेनिन ने लिखा था :

"सर्वहारा वर्ग ही जनतंत्र के लिये सुसंगत रूप से लड़ने वाला हो सकता है। जनतंत्र के लिये वह तभी विजयी लड़ाका हो सकता है जब आम किसान उसके क्रान्तिकारी संघर्ष में हिस्सा लें।" (***उप.***, पृष्ठ 376)।

और आगे :

"किसानों में अर्द्ध–सर्वहारा की बहुत बड़ी तादाद है और निम्न पूंजीवादी लोग भी हैं। इस वजह से, किसान अस्थिर होते हैं और सर्वहारा वर्ग को मजबूर होकर बिल्कुल एक वर्ग–पार्टी में संगठित होना पड़ता है। लेकिन, किसानों की अस्थिरता पूंजीपतियों की अस्थिरता से बुनियादी तौर पर भिन्न है। कारण यह कि मौजूदा वक्त में किसानों को व्यक्तिगत सम्पत्ति की पूर्ण रक्षा से इतनी दिलचस्पी नहीं है जितनी जमींदारों की रियासतें ज़ब्त करने से है, जो कि व्यक्तिगत संपत्ति का एक मुख्य रूप है। इससे किसान समाजवादी नहीं हो जाते, न उनका मध्यवित्त होना खत्म होता है। फिर भी, किसान जनवादी क्रान्ति के दिल से समर्थक और उसके सबसे उग्र समर्थक हो सकते हैं। किसान लाजमी तौर से ऐसे समर्थक तभी बनेगें जब क्रान्तिकारी घटनाओं की प्रगति, जिनसे उनकी चेतना जागती है, पूंजीपतियों की गद्दारी और सर्वहारा वर्ग की हार से बहुत जल्द भंग न हो जाये। इस शर्त के पूरी होने पर, किसान अनिवार्य रूप

से क्रान्ति और प्रजातंत्र के दृढ़ समर्थक बन जायेंगे। पूरी तरह से विजयी क्रान्ति ही कृषि–सुधारों के क्षेत्र में किसानों को **सब कुछ** दे सकती है – **सब कुछ जो किसान चाहते हैं,** जिसका सपना देखते हैं और जिसकी उन्हें दरअसल जरूरत है।" (***उप.***, पृष्ठ 405)।

मेन्शविकों की आपत्तियाँ थीं कि बोल्शेविक कार्यनीति से "पूंजीवादी वर्ग क्रान्ति से हट जायेंगे और इस तरह उसका प्रवाह कम हो जायेगा।" इन आपत्तियों की छान–बीन करते हुए, लेनिन ने उन्हें "क्रान्ति से ग़द्दारी की कार्यनीति" और ऐसी "कार्यनीति जो सर्वहारा वर्ग को पूंजीवादी वर्गों का तुच्छ पिछलगुवा बना देगी" बताया था। लेनिन ने लिखा था :

> "जो लोग दरअसल एक विजयी रूसी क्रान्ति से किसानों की भूमिका समझते हैं, वे यह ख्वाब में भी न कहेंगे कि अगर पूंजीपति उससे हट गये तो क्रान्ति का प्रवाह कम हो जायेगा। वास्तव में, रूसी क्रान्ति का सच्चा प्रवाह तभी शुरु होगा, पूंजीवादी–जनवादी क्रान्ति के युग में उसमें विशालतम क्रान्तिकारी प्रवाह तभी पैदा होगा जब पूंजीपति उससे हट जायेंगे और जब आम किसान सर्वहारा वर्ग के साथ–साथ सक्रिय क्रान्तिकारियों के रूप में आगे आयेंगे। हमारी जनवादी क्रान्ति सुसंगत रूप से अपने परिणाम तक ले जायी जाये, इसके लिये जरूरी है कि वह उन्हीं ताकतों पर निर्भर रहे जो पूंजीपतियों की लाज़िमी असंगति को बेकार कर दे, यानी जो 'क्रान्ति से हटाने में ही' कामयाब हो सके।" (***उप.***, पृष्ठ 406)।

लेनिन ने अपनी किताब ***जनवादी क्रान्ति में सोशल–डेमोक्रैसी की दो कार्यनीतियां में कार्यनीति*** का यह मुख्य सिद्धान्त रखा था। यह सिद्धान्त सर्वहारा वर्ग के बारे में था, जो पूंजीवादी क्रान्ति का नेता होगा। यह कार्यनीति का बुनियादी सिद्धान्त पूंजीवादी क्रान्ति में सर्वहारा वर्ग के एकछत्र नेतृत्व (प्रमुख भूमिका) के बारे में था।

पूंजीवादी–जनवादी क्रान्ति में कार्यनीतिक सवालों पर मार्क्सवादी पार्टी की यह एक नयी लाइन थी। मार्क्सवाद की टकसाल में कार्यनीति की जो लाइनें अभी तक थीं, उनसे यह बुनियादी तौर से भिन्न थी। पूंजीवादी क्रान्तियों में – मिसाल के लिये पच्छिमी यूरोप में – अब तक हालत यह थी कि मुख्य भूमिका पूंजीपतियों की होती थी। सर्वहारा वर्ग चाहे या न चाहे, उनके मातहत का पार्ट अदा करता था और किसान पूंजीपतियों की रिज़र्व का काम देते थे। इस तरह के परस्पर सम्बंध को मार्क्सवादी बहुत कुछ अनिवार्य मानते थे। साथ ही, यह ख्याल रखते थे कि जहाँ तक हो सके, सर्वहारा अपनी फ़ौरी वर्गगत माँगों के लिये लड़े और उसकी अपनी राजनीतिक पार्टी हो। अब नयी ऐतिहासिक परिस्थितियों में, लेनिन के अनुसार, हालत जब यों बदल

रही थी कि सर्वहारा वर्ग पूंजीवादी क्रान्ति की प्रमुख शक्ति बन रहा था, पूंजीवादी वर्ग क्रान्ति के नेतृत्व से हटाया जा रहा था और किसान सर्वहारा वर्ग की रिज़र्व बन रहे थे।

यह दावा कि प्लेखानोव "भी" सर्वहारा वर्ग के एकछत्र नेतृत्व का "समर्थन करता था", एक भ्रम पर निर्भर है। यह सही है कि प्लेखानोव सर्वहारा नेतृत्व की कल्पना से खेल करता था और उसे ज़बानी मानने में भी उसे आनाकानी न थी, लेकिन दरअसल तत्व रूप में इस विचार का वह विरोधी था। सर्वहारा वर्ग के एकछत्र नेतृत्व का मतलब है – पूंजीवादी क्रान्ति में सर्वहारा वर्ग की प्रमुख भूमिका, उसके साथ सर्वहारा वर्ग और किसानों के **सहयोग** की नीति हो और उदारपंथी पूंजीपतियों को अकेले कर देने की नीति हो। लेकिन प्लेखानोव, जैसा कि हमें मालूम है, उदारपंथी पूंजीपतियों को **अकेले** कर देने की नीति का **विरोध करता था,** उदारपंथी पूंजीपतियों से **समझौते** की नीति का **समर्थन करता था** और सर्वहारा वर्ग और किसानों के सहयोग की नीति का **विरोध** करता था। **वास्तव** में, प्लेखानोव की कार्यनीति की लाइन मेन्शेविक लाइन थी जो सर्वहारा नेतृत्व अस्वीकार करती थी।

(2) लेनिन का विचार था कि ज़ारशाही को खत्म करने और **जनवादी प्रजातंत्र** कायम करने का सबसे कारगर तरीका जनता का विजयी सशस्त्र विद्रोह है। मेन्शेविकों के खिलाफ़, लेनिन का कहना था कि "आम जनवादी क्रान्तिकारी आन्दोलन ने सशस्त्र विद्रोह की **ज़रूरत अभी भी पैदा कर दी है**," कि "विद्रोह के लिये सर्वहारा वर्ग का संगठन" अभी भी "फौरी कामों में आ चुका है। वह पार्टी का ज़रूरी मुख्य और **अनिवार्य** काम है।" और यह ज़रूरी है कि "सर्वहारा वर्ग को हथियारबन्द करने के लिये **पूरा जोर** लगाया जाये और विद्रोह का सीधे नेतृत्व करने की संभावना पक्की करने के लिये ज़ोरदार उपाय किये जायें।" (***उप.***, पृष्ठ 386) ।

विद्रोह की तरफ जनता को ले जाने और उसे समूची जनता का विद्रोह बना देने के लिये, लेनिन ने यह जरूरी समझा कि ऐसे नारे दिये जायें, जनता के नाम ऐसी अपीलें निकाली जायें जिनसे कि उसकी क्रान्तिकारी पहलकदमी को पूरी छूट मिले, वह विद्रोह के लिये संगठित हो और ज़ारशाही सत्ता के कलपुर्जे ढीले पड़ जायें। उनका विचार था कि ये नारे तीसरी पार्टी कांग्रेस के कार्यनीति सम्बन्धी फ़ैसलों से मिलते हैं, जिनके समर्थन में उन्होंने अपनी किताब ***जनवादी क्रान्ति में सोशल–डैमोक्रैसी की दो कार्यनीतियाँ*** लिखी थी।

उनके विचार से, वे नारे ये थे :

(क) "आम राजनीतिक हड़तालें, जो शुरु में और विद्रोह के दौर में भी बहुत महत्व की हो सकती हैं" (*उप०*, पृ० 386);

(ख) "क्रान्तिकारी ढंग से 8 घंटों का दिन और मजदूर वर्ग की दूसरी फौरी माँगें तुरंत हासिल करना" (*उप०*, पृ० 358);

(ग) क्रान्तिकारी ढंग से "सभी जनवादी परिवर्तन" करने के लिये, जिनमें रियासतों की ज़मीन छीनना भी शामिल हो, "क्रान्तिकारी किसान कमिटियाँ तुरंत संगठित करना"; (*उप०*, पृष्ठ 398);

(घ) मज़दूरों को हथियारबन्द करना।

यहाँ दो बातें खास दिलचस्पी की हैं। पहली तो, शहरों में 8 घंटों का दिन हासिल करने और गाँवों में जनवादी परिवर्तन करने के **क्रान्तिकारी** ढंग की कार्यनीति। दूसरे शब्दों में, यह ऐसी कार्यनीति थी जो अधिकारियों की परवाह नहीं करती, कानून की परवाह नहीं करती, जो अधिकारियों और कानून दोनों को भुला देती है, मौजूदा कानूनों को तोड़ती है और अनधिकारी कामों से एक नयी व्यवस्था कायम करती है। यह नयी व्यवस्था एक कर डाले हुए काम के रूप में सामने आती है। यह कार्यनीति का एक नया तरीका था, जिसके इस्तेमाल से ज़ारशाही सत्ता के कलपुर्जे ठप पड़ गये और आम जनता की कार्यवाही और रचनात्मक पहलकदमी को छूट मिली। इस कार्यनीति से शहरों में क्रान्तिकारी हड़ताल कमिटियाँ बनीं और गाँवों में क्रान्तिकारी किसान कमिटियाँ बनीं। पहली तरह की कमिटियाँ आगे चल कर मज़दूर प्रतिनिधियों की सोवियतें बनीं, और दूसरी तरह की कमिटियां किसान प्रतिनिधियों की सोवियतें बनीं।

दूसरी बात **आम राजनीतिक हड़तालों का** इस्तेमाल है। क्रान्ति के दौर में आगे चल कर आम राजनीतिक हड़तालें जनता को क्रान्तिकारी ढंग से बटोरने के लिये बहुत ही महत्वपूर्ण साबित हुई। सर्वहारा वर्ग के हाथ में यह एक नया और बहुत ही महत्वपूर्ण हथियार था। यह एक ऐसा हथियार था जो मार्क्सवादी पार्टियों के अमल में अभी तक अनजाना रहा था और जो आगे चल कर सुपरिचित हो गया।

लेनिन का कहना था कि जनता का सफल विद्रोह होने के बाद, ज़ार सरकार की जगह एक अस्थायी क्रान्तिकारी सरकार कायम करनी चाहिये। अस्थायी क्रान्तिकारी सरकार का यह काम होगा कि क्रान्ति में मिली हुई सफलताओं को पक्का करे, क्रान्ति विरोधियों की मुखालिफ़त को कुचल दे और ऐसी सोशल–डेमोक्रैटिक लेबर पार्टी के अल्पतम प्रोग्राम को पूरा करे। लेनिन का कहना था कि जब तक ये काम पूरे न किये जायेंगे, तब तक ज़ारशाही को पूरी तरह से हराना नामुमकिन होगा। और इन कामों

को पूरा करने के लिये और ज़ारशाही पर पूरी विजय हासिल करने के लिये, यह जरूरी होगा कि अस्थायी क्रान्तिकारी सरकार कोई मामूली तरह की सरकार न हो बल्कि विजयी वर्गों की, मज़दूरों और किसानों की, डिक्टेटरशिप की सरकार हो। यह सर्वहारा और किसानों की क्रान्तिकारी डिक्टेटरशिप हो। मार्क्स का यह प्रसिद्ध सूत्र पेश करते हुए कि "क्रान्ति के बाद राज्य के हर अस्थायी संगठन को एक डिक्टेटरशिप की ज़रूरत होती है और वह भी एक शक्तिशाली डिक्टेटरशिप की, लेनिन ने यह नतीजा निकाला कि अगर अस्थायी क्रान्तिकारी सरकार को ज़ारशाही पर अपनी पूरी जीत पक्की करनी है तो वह सर्वहारा वर्ग और किसानों की डिक्टेटरशिप के अलावा कुछ नहीं हो सकती।

लेनिन ने लिखा था :

"ज़ारशाही पर क्रान्ति की पूरी जीत का मतलब है – **सर्वहारा वर्ग और किसानों की क्रान्तिकारी जनवादी डिक्टेटरशिप।** ...और, इस तरह की जीत एक डिक्टेटरशिप ही होगी, यानी उसे फ़ौजी ताकत पर लाज़िमी तौर से निर्भर होना पड़ेगा, आम जनता को हथियारबन्द करने पर, विद्रोह पर निर्भर करना पड़ेगा और 'कानून' या 'शान्तिपूर्ण' तरीके से कायम की हुई जैसी–तैसी संस्थाओं से काम न चलेगा। यह डिक्टेटरशिप ही होगी; क्योंकि जब सर्वहारा वर्ग और किसानों के लिये तुरंत जरूरी और एकदम आवश्यक तब्दीलियाँ करनी होगी तो ज़मींदार जान पर खेल कर विरोध करेंगे, बड़े पूंजीपति और ज़ारशाही प्राणपण से विरोध करेंगे। डिक्टेटरशिप के बिना, उस विरोध को तोड़ना और क्रान्ति–विरोधी कोशिशों को विफल करना असम्भव है। लेकिन अवश्य ही, वह एक जनवादी डिक्टेटरशिप होगी, न कि सोशलिस्ट डिक्टेटरशिप। (क्रान्तिकारी विकास की बीच की कई मंजिलें पार किये बिना) वह पूंजीवाद की बुनियाद पर असर न डाल सकेंगी। ज्यादा से ज़्यादा, किसानों के पक्ष में वह रियासतों की ज़मीन का आमूल नया बँटवारा कर सकती है। वह सुसंगत और पूर्ण जनतंत्र कायम कर सकती है, जिसमें प्रजातंत्र कायम करना भी शामिल है। वह एशियायी गुलामी के तमाम सताने वाले रूप खत्म कर सकती है, न सिर्फ गाँवों में बल्कि कारखानों की जिन्दगी में भी। वह मजदूरों की हालत में पूरी उन्नति के लिये नींव डाल सकती है और उनकी जिन्दगी के स्तर को ऊँचा करने के लिये नींव डाल सकती है। और अंत में – और इस अंतिम कार्य का महत्व कम नहीं है – यूरोप में क्रान्ति की लपटें पहुँचा सकती है। इस तरह की जीत अभी किसी तरह हमारी पूंजीवादी क्रान्ति को समाजवादी क्रान्ति का रूप न दे देगी। जनवादी क्रान्ति पूंजीवादी सामाजिक और अर्थिक सम्बन्धों की हदें सीधे न लाँघ जायेगी। फिर भी, इस

तरह की जीत का जो महत्व रूस के भावी विकास के लिये और तमाम दुनिया के भावी विकास के लिये होगा, वह बहुत ज्यादा है। कोई भी चीज़ दुनिया के सर्वहारा की क्रान्तिकारी शक्ति को इस तरह न उभारेगी, कोई भी चीज़ इस हद तक उसकी पूरी जीत की मंबिजल तक उसका रास्ता कम न करेगी जैसा कि इस क्रान्ति की पूरी जीत, जो अब रूस में शुरु हुई है।" (***उप.***, पृ• 373)।

अस्थायी क्रान्तिकारी सरकार की तरफ सोशल–डेमोक्रैटों का रुख क्या हो और उसमें वे हिस्सा ले सकेंगे या नहीं, इन सवालों पर लेनिन ने तीसरी पार्टी कांग्रेस के प्रस्ताव का पूरी तरह समर्थन किया, जिसमें कहा गया था :

"हमारी पार्टी के प्रतिनिधि अस्थायी क्रान्तिकारी सरकार में हिस्सा ले सकते हैं। शर्त यह होगी कि शक्तियों का आपसी सम्बन्ध अनुकूल हो और वे दूसरी बातें अनुकूल हों जबो पहले से ठीक–ठीक निश्चित नहीं की जा सकती। पार्टी के प्रतिनिधि इस सरकार में इसलिये हिस्सा लेंगे कि वे तमाम क्रान्ति–विरोधी कोशिशों के खिलाफ़ डटकर लड़ सकें और मजदूर वर्ग के स्वतबंत्र हितों की रक्षा कर सकें। इस तरह का हिस्सा लेने के लिये एक लाज़िमी शर्त यह है कि पार्टी अपने प्रतिनिधियों पर कठोरता से नियंत्रण रखे। सोशल–डेमोक्रैटिक पार्टी पूरी समाजवादी क्रान्ति के लिये कोशिश कर रही है और इसलिये, सभी पूंजीवादी पार्टियों के प्रति, वह बिना किसी मेल–मुलाहिज़े के, शत्रु–भाव रखती है। उस लाज़िमी शर्त में सोशल–डेमोक्रैटिक पार्टी की आजादी को पूरी–पूरी बतरह बनाये रखना जरूरी होगा। अस्थायी क्रान्तिकारी सरकार में सोशल–डेमोक्रैटों का हिस्सा लेना मुमकिन हो चाहे न हो, हमें आम सर्वहारा में इस बात का प्रचार करना चाहिये कि क्रान्ति की जीत की रक्षा करने के लिये, उसे सुदृढ़ करने और उसका विस्तार करने के लिये सोशल–डेमोक्रैटिक पार्टी के नेतृत्व में हथियारबन्द सर्वहारा को अस्थायी सरकार पर टिकाऊ दबाव डालना जरूरी होगा।" (***उप.***, पृष्ठ 348–49)।

मेन्शेविकों को आपत्ति थी कि अस्थायी सरकार पूंजीवादी सरकार ही होगी। सोशल–डेमोक्रैट ऐसी सरकार में हिस्सा न लेंगे वर्ना वह वही गलती करेंगे जो फ्रांस के सोशलिस्ट मिलेरॉ ने फ्रांस की पूंजीवादी सरकार में शामिल होकर की थी। लेनिन ने इस आपत्ति का जवाब यह कह कर दिया कि मेन्शेविक यहाँ दो भिन्न चीजों को उलझा रहे हैं और यह दिखला रहे हैं कि मार्क्सवादियों की तरह वे इस सवाल पर विचार करने में असमर्थ हैं। फ्रांस में सवाल था कि क्या समाजवादी ऐसे समय में जबकि देश में कोई **क्रान्तिकारी परिस्थिति न थी,** एक **प्रतिक्रियावादी** पूंजीवादी सरकार

में हिस्सा लें। ऐसी हालत में, समाजवादियों के लिये यह लाज़िमी था कि ऐसी सरकार में वे हिस्सा न लें। दूसरी तरफ, रूस में यह सवाल था कि क्या सोशलिस्ट ऐसे समय जबकि क्रान्ति **पूरी उठान** पर हो, एक **क्रान्तिकारी** पूंजीवादी सरकार में हिस्सा लें जो **क्रान्ति की जीत** के लिये लड़ रही हो। ऐसे हालत में, सोशल–डेमोक्रैटों के लिये ऐसी सरकार में हिस्सा लेना **उचित** ही न होगा बल्कि अनुकूल हालत में **लाज़िमी** भी होगा, जिससे कि वे क्रान्ति–विरोध के खिलाफ़ न सिर्फ़ 'नीचे से', न सिर्फ़ बाहर से, बल्कि 'ऊपर से' भी, हुकूमत के अन्दर से भी प्रहार कर सकें।

पूंजीवादी क्रान्ति की जीत और जनवादी प्रजातंत्र हासिल करने का समर्थन करते हुए, लेनिन की यह जरा भी इच्छा न थी कि जनवादी मंजिल पर ही रुक जायें और पूंजीवादी–जनवादी काम पूरे करने तक क्रान्तिकारी आन्दोलन का दायरा सीमित कर दिया जाये। इसके विपरीत, लेनिन का कहना था कि जनवादी काम पूरे होने पर सर्वहारा वर्ग और दूसरे शोषित बअवाम को संघर्ष शुरु करना होगा। इस बार, यह संघर्ष **समाजवादी** क्रान्ति के लिये होगा। लेनिन यह जानते थे और इसे सोशल–डेमोक्रैटों का कर्तव्य समझते थे कि वे इस बात के लिये भरसक कोशिश करें कि पूंजीवादी–जनवादी क्रान्ति समाजवादी क्रान्ति की **मंजिल** में प्रवेश करे। लेनिन का कहना था कि सर्वहारा वर्ग और किसानों की डिक्टेटरशिप इसलिये जरूरी न थी कि ज़ारशाही पर क्रान्ति की विजय पूरी होते ही उसे खत्म कर दिया जाये बल्कि इसलिये कि जहाँ तक हो सके क्रान्ति की हालत को बढ़ाया जाये, क्रान्ति–विरोध के आखिरी अवशेष खत्म कर दिये जायें, क्रान्ति की लपटें यूरोप में फैलायी जायें और इसी बीच सर्वहारा वर्ग को यह मौका देकर कि वह राजनीतिक रूप से अपने को शिक्षित करे और एक बड़ी फ़ौज में अपने को संगठित करे, समाजवादी क्रान्ति की तरफ़ सीधे बढ़ चलने का काम शुरु किया जाये।

पूंजीवादी क्रान्ति का दायरा क्या हो और मार्क्सवादी पार्टी उसे क्या रूप दे, इन सवालों पर रोशनी डालते हुए लेनिन ने लिखा था,

> "सर्वहारा वर्ग को चाहिये कि आम किसानों का सहयोग हासिल करके जनवादी क्रान्ति को पूरा करें, जिससे वह निरंकुश सत्ता के विरोध को बलपूर्वक कुचल दे और पूंजीपतियों की अस्थिरता नाकाम कर दे। सर्वहारा वर्ग को चाहिये कि जनता के आम अर्द्ध–सर्वहारा लोगों का सहयोग हासिल करके समाजवादी क्रान्ति पूरी करे, जिससे कि वह पूंजीपतियों के विरोध को बलपूर्वक कुचल दे और किसानों और मध्यवित्त लोगों की अस्थिरता नाकाम कर दें। सर्वहारा वर्ग के ये काम हैं, जिन्हें नये इस्क्रावादी (यानी मेन्शेविक – सम्पादक) अपनी दलीलों में

और क्रान्ति के दायरे के बारे में अपने प्रस्तावों में इतनी संकीर्णता से पेश करते हैं।" (*उप०*, पृष्ठ 40ब6)।

और आगे :

"पूरी आज़ादी के लिये, सुसंगत जनवादी क्रान्ति के लिये, प्रजातंत्र के लिये – तमाम जनता के सिरे पर और खास तौर से किसानों के सिरे पर! समाजवाद के लिये – तमाम मेहनतकशों और शोषितों रके सिरे पर! – क्रान्तिकारी सर्वहारा वर्ग की नीति अमल में ऐसी होनी चाहिये। यह है वर्ग–नारा जो कार्यनीति की हर समस्या का हल निश्चित करे और उस हल में मौजूद हो, जो क्रान्ति के दौर में मजदूरों की पार्टी के हर अमली कदम पर असर डाले और उसे निश्चित करे।" (*उप०*, पृष्ठ 415)।

कोई भी बात अस्पष्ट नररह जाये, इसलिये दो कार्यनीतियाँ छपने के दो महीने बाद लेनिन ने एक लेख लिखा –"किसान आन्दोलन की तरफ सोशल–डेमोक्रैटों का रुख।" इसमें उन्होंने समझाया :

"जनवादी क्रान्ति से हम तुरंत समाजवादी क्रान्ति की मंजिल में प्रवेश करना शुरू कर देंगे। यह काम हमारी शक्ति के अनुसार, वर्ग–चेतन आरैर संगठित सर्वहारा की शक्ति के अनुसार होगा। हम अविराम क्रान्ति के समर्थक हैं। हम बीच में न रुकेंगे।" (*उप०*, पृष्ठ 442)।

पूंजीवादी क्रान्ति और समाजवादी क्रान्ति के सम्बन्ध के सवाल पर यह एक नई लाइन थी, सर्वहारा वर्ग के चारों तरफ शक्तियों को फिर से संगठित करने का एक नया सिद्धान्त था, जिससे कि पूंजीवादी क्रान्ति के खत्म होते–होते समाजवादी क्रान्ति की तरफ सीधे बढ़ा जाये। यह पूंजीवादी–जनवादी क्रान्ति के समाजवादी क्ररान्ति की मंजिल में प्रवेश करने का सिद्धान्त था।

यह नयी लाइन निकालने में, लेनिन ने सबसे पहले मार्क्स के अविराम क्रान्ति सम्बन्धी प्रसिद्ध सूत्र को अपना आधरार बनाया। 1850 के कुछ पहले कम्युनिस्ट लीग के सामने भाषण देते हुए, मार्क्स ने यह सूत्र पेश किया था। दूसरे, मार्क्स ने 1856 में एंगेल्स को एक खत में किसानों के क्रान्तिकारी आन्दोलन को सर्वहारा क्रान्ति से मिलाने की आवश्यकता पर अपनी प्रसिद्ध स्थापनार लिखी थी। लेनिन ने उसे अपना आधार बनाया। मार्क्स ने लिखा था : "जर्मनी में सारी बात इस पर निर्भर होगी कि हम किसान युद्ध के किसी दूसरे संस्करण से सर्वहारा क्रान्ति की मदद कर सकते हैं या नहीं।" फिर भी, मार्क्स के ये श्रेष्ठ विचार मार्क्स और एंगेल्स की रचनाओं में आगे चल कर विकसित न किये गये थे और दूसरी इन्टर–नेशनल के सिद्धान्तकारों ने उन्हें

भरसक दफ़ना देने और हमेशा के लिये **भुला** देने की कोशिश की। लेनिन पर यह जिम्मेदारी पड़ी की वह मार्क्स के इन भुलाये हुएर विचारों को फिर से रोशनी में लायें और उन्हें वाजिबी जगह दिलायें। लेकिन, मार्क्स के इन विचारों को बहाल करने में, लेनिन उन्हें सिर्फ़ दुहराने तक अपने को सीमित न कर सकते थे, न उन्होंने किया। उन्होंने उन्हें आगे विकसित किया और समाजवादी क्रान्ति के एक सांगोपांग सिद्धांत में उन्हें ढाला। इसके लिये उन्होंने एक नया तत्व जोड़ा, जो समाजवादी क्रान्ति का **लाज़िमी** तत्व था। यह तत्व शहर और देहात के अर्द्ध–सर्वहारा लोगों के साथ सर्वहारा वर्ग का सहयोग था, और यह सहयोग सर्वहारा क्रान्ति की जीत की **शर्त थी।**

इस लाइन ने पच्छिमी यूरोप की सोशल–डेमोक्रैटिक पार्टियों की कार्यनीति की जड़ काट दी। ये पार्टियाँ मान बैठी थीं कि पूंजीवादी क्रान्ति के बाद किसान अवाम, गरीब किसानों समेत, जरूररब ही क्रान्ति से भाग खड़े होंगे। इसका नतीजा यह होगा कि पूंजीवादी क्रान्ति के बाद एक लम्बा अवकाश का समय आयेगा, एक लम्बी 'चुप्पी' का समय जो ज्यादा नहीं तो 50 या 100 साल तक चलेगा। इस बीच सर्वहारा वर्ग का 'शान्ति के साथ' शोषण होगा और पूंजीपति 'कानूनी तौर से' धनी बनते जायेंगे जब तक कि एक नयी क्रान्ति, समाजवादी क्रान्ति, का समय न आये।

यह एक नया सिद्धान्त था, जिसका दावा था कि **समूचे** पूंजीवादी वर्ग के खिलाफ़ सर्वहारा वर्ग अकेले रह कर **समाजवादी** क्रान्ति न करेगा। सर्वहारा वर्ग प्रमुख वर्ग के रूप में, जिसके सहयोगी जनता के अर्द्ध–सर्वहारा लोग, "करोड़ों शोषित और मेहनतकश" होंगे, समाजवादी क्रान्ति पूरी करेगा।

इस सिद्धान्त के अनुसार, पूंजीवादी क्रान्ति में कायम होने वाला सर्वहारा वर्ग का एकछत्र नेतृत्व, – जब सर्वहारा वर्ग और किसानों का **परस्पर सहयोग** होगा, – समाजवादी क्रान्ति में सर्वहारा वर्ग का एकछत्र नेतृत्व बन जायेगा, जबकि सर्वहारा वर्ग का **सहयोग** दूसरे मेहनतरकश और शोषित अवाम के साथ होगा। साथ ही, सर्वहारा और किसानों की जनवादी डिक्टेटरशिप सर्वहारा वर्ग की समाजवादी डिक्टेटरशिप के लिये ज़मीन तैयार करेगी।

पच्छिमी यूरोप के सोशल–डेमोक्रैट शहर और देहात के **अर्द्ध–सर्वहारा आवाम** की छिपी हुई क्रान्तिकारी शक्ति अस्वीकार करते थे। वे यह मान बैठे थे कि "पूंजीपतियों और सर्वहारा से अलग, हमें अपने देश में ऐसी सामाजिक ताकतें नहीं दिखाई पड़ती जिनसे विरोधी रया क्रान्तिकारी दल मदद ले सकें", (ये प्लेखानोव के शब्द थे, जो पच्छिमी यूरोप के सोशल–डेमोक्रैटों के मनोभाव प्रकट करते थे)। लेनिन के **सिद्धान्त ने पच्छिमी** यूरोप के सोशल–डेमोक्रैटों में प्रचलित इन विचारों का खण्डन किया।

पच्छिमी यूरोप के सोशल–डेमोक्रैटों का कहना था कि समाजवादी क्रान्ति में **तमाम** पूंजीपतियों के खिलाफ़ सर्वहारा वर्ग **अकेला होगा।** उसके कोई सहयोगी न होंगे और वह सभी गैर सर्वहारा वर्गों और स्तरों के खिलाफ़ होगा। वह इस बात पर ध्यान न देते थे कि पूंजी सर्वहारा का ही शोषण नहीं करती बल्कि शहर और देहात के करोड़ों अर्द्ध–सर्वहारा का भी शोषण करती है। पूंजीवाद इनको कुचलता है कि और वे पूंजीवादी गुलामी से समाज को मुक्त करने के संघर्ष में सर्वहारा वर्ग के सहयोगी हो सकते हैं। इसलिये, पच्छिमी यूरोप के सोशल–डेमोक्रैटों का कहना था कि यूरोप में समाजवादी क्रान्ति के लिये हालत अभी तैयार नहीं है। हालत तभी तैयार समझी जायेगी जबकि सर्वहारा वर्ग समाज के और भी आर्थिक विकास के फलस्वरूप राष्ट्र का बहुसंख्यक हिस्सा, समाज का बहुसंख्यक हिस्सा, बन जाये।

समाजवादी क्रान्ति के बारे में लेनिन के सिद्धान्त ने पच्छिमी यूरोप के सोशल–डेमोक्रैटों के इस सर्वहारा–विरोधी झूठे मत को एकदम उलट दिया।

लेनिन के सिद्धान्त में अभी इस बारे में कोई प्रत्यक्ष परिणाम न निकाला गया था कि अकेले किसी एक देश में समाजवाद की जीत हो सकती है। लेकिन, उसमें सभी या लगभग सभी आवश्यक बुनियादी तत्व मौजूद थे, जिनसे आगे–पीछे यह नतीजा निकाला जा सकता था।

जैसा कि हमें मालूम है, दस साल बाद 1915 में, लेनिन ने यह परिणाम निकाला।

अपनी ऐतिहासिक कृति ***जनवादी क्रान्ति में सोशल–डेमोक्रैसी की दो कार्यनीतियां*** में लेनिन ने कार्यनीति के जिन बुनियादी उसूलों का प्रतिपादन किया, वे इस प्रकार हैं :

इस पुस्तक का ऐतिहासिक महत्व सबसे ज्यादा इस बात में है कि लेनिन ने सैद्धान्तिक रूप से मेन्शेविकों की निम्नपूंजीवादी कार्यनीति की लाइन को चूर कर दिया। उन्होंने पूंजीवादी–जनवादी क्रान्ति की अगली प्रगति के लिये रूस के मजदूर वर्ग को सैद्धान्तिक रूप से सशस्त्र कर दिया, ज़ारशाही पर नये हमले के लिये उसे लैस कर दिया। उन्होंने रूसी सोशल–डेमोक्रैटों को एक साफ़ रास्ता दिखाया कि पूंजीवादी क्रान्ति का समाजवादी क्रान्ति की मंजिल में प्रवेश करना जरूरी है।

लेकिन, इससे लेनिन की पुस्तक का महत्व खत्म नहीं होता। उसका अमूल्य महत्व इस बात में है कि उसने मार्क्सवाद को क्रान्ति के एक नये सिद्धान्त से समृद्ध किया। उसने बोल्शेविक पार्टी की क्रान्तिकारी कार्यनीति की नींव डाली, जिसकी मदद से 1917 में हमारे देश के सर्वहारा वर्ग ने पूंजीवाद पर विजय प्राप्त की।

4. क्रान्ति की उठान में प्रगति। अक्तूबर 1905 की अखिल रूसी राजनीतिक हड़ताल। ज़ारशाही का पीछे हटना। ज़ार का घोषणापत्र। मज़दूर प्रतिनिधियों की सोवियतों का जन्म।

1905 की शरद तक, क्रान्तिकारी आन्दोलन सारे देश में फैल गया था और अब उसका वेग बहुत ही प्रखर हो गया था।

19 सितम्बर को, मास्को में प्रेस–कर्मचारियों की एक हड़ताल हुई। वह पीतरबुर्ग और दूसरे कई शहरों में फैल गयी।,खुद मास्कों में दूसरे उद्योग–धंधों के मजदूरों ने प्रेस–कर्मचारियों की हड़ताल का समर्थन किया और वह बढ़ कर एक आम राजनीतिक हड़ताल बन गयी।

अक्तूबर के आरम्भ में, मास्को–क़जान रेलवे में हड़ताल शुरू हुई। दो दिनों में ही, मास्को रेलवे जंकशन के सभी रेल–कर्मचारी उसमें शामिल हो गये और बहुत जल्द ही सारे देश की रेलें हड़ताल की गिरफ़्त में आ गयीं। डाक और तार का काम ठप हो गया। रूस के विभिन्न शहरों में मजदूर बड़ी–बड़ी सभाओं में इकट्ठे हुए और उन्होंने काम बन्द करने का फैसला किया। एक कारखाने से दूसरे कारखाने तक, एक मिल से दूसरी मिल तक, एक शहर से दूसरे शहर तक और एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश तक हड़ताल फैलती गयी। छोटे कर्मचारी, विद्यार्थी और बुद्धिजीवी – वकील, इंजीनियर और डाक्टर मजदूरों के साथ शामिल हो गये।

अक्तूबर की राजनीतिक हड़ताल अखिल रूसी हड़ताल बन गयी। लगभग पूरा देश उसकी लपेट में आ गया । दूर–दूर के जिले और करीब–करीब सभी मजदूर, जिनमें सबसे पिछड़े हुए मजदूर भी थे, हड़ताल में शामिल हुए। अकेले दस लाख औद्योगिक मजदूरों ने आम हड़ताल में हिस्सा लिया। इनमें रेल–कर्मचारियों, डाक और तार–कर्मचारियों वगैरह की गिनती नहीं है। सारे देश का जीवन ठप हो गया। सरकार पंगु बन गयी।

निरंकुश सत्ता के खिलाफ़, आम जनता के संघर्ष के सिरे पर मजदूर वर्ग था।

बोल्शेविकों ने जो आम राजनीतिक हड़ताल का नारा दिया था, वह सफल हुआ।

अक्तूबर की आम हड़ताल ने सर्वहारा आन्दोलन की ताकत और उसके कस–बल का पता दिया। उसने बेहद डरे हुए ज़ार को मजबूर किया कि वह 17 अक्तूबर, 1905 को अपना घोषणापत्र निकाले। इस घोषणापत्र में वादा किया गया था कि जनता को

"नागरिक स्वाधीनता के दृढ़ आधार मिलेंगे : व्यक्ति की वास्तविक स्वाधीनता, और विचार, भाषण, सभा और संगठन की स्वाधीनता।" उसमें वादा किया गया था कि वैधानिक दूमा बुलायी जायेगी और जनता के सभी वर्गों को वोट देने का हक मिलेगा।

इस तरह से बुलिगिन–दूमा, जिसे सिर्फ़ विचार करने का अधिकार था, क्रान्ति के ज्वार में बह गयी। बुलिगिन–दूमा का बायकाट करने की बोल्शेविक कार्यनीति सही साबित हुई।

फिर भी, 17 अक्तूबर का घोषणापत्र जनता के साथ एक फरेब था। ज़ार का यह एक पैंतरा था, जिससे उसे कुछ मोहलत मिल जाये। वह चाहता था कि इस मोहलत में वह सीधे–सादे लोगों को चुप कर दे और अपनी ताकत बटोरने के लिये उसे वक्त मिले और उसके बाद, वह क्रान्ति पर हमला करे। ज़ार सरकार ने शब्दों में स्वाधीनता देने का वादा किया, लेकिन अमल में उसने कोई ठोस चीज न दी। अभी तक मजदूरों और किसानों को वादे ही वादे मिले थे। आम राजनीतिक रिहाई के बदले, जिसका वादा किया गया था, 21 अक्तूबर को राजनीतिक बन्दियों में से सिर्फ थोड़े लोग छोड़े गये। इसके साथ ही, जनता की ताकतों में फूट डालने के विचार से हुकूमत ने यहूदियों के कई खूनी कत्लेआम कराये। इनमें कई हज़ार आदमी मारे गये। क्रान्ति को कुचलने के लिये, उसने पुलिस की देख–रेख में कई गुण्डा–संगठन बनवाये जिनका नाम रूसी जन संघ और देवदूत–मइकेल संघ था। इन संगठनों में प्रतिक्रियावादी जमींदार, सौदागर, पुरोहित और आवारा क़िस्म के अर्द्ध–जरायम पेशा लोग मुख्य भाग लेते थे। लोगों ने इनका नाम 'यमराज सभा' ('ब्लैक हंड्रेड') रखा था। पुलिस की मदद से, ये 'यमराज सभायें' आगे बढ़े हुए मजदूरों को खुले आम पीटतीं और उनकी हत्या करतीं। उनका यही सलूक क्रा?न्तिकारी बुद्धिजीवियों और विद्यार्थियों के साथ होता था। वे सभा–स्थानों को जला देती और नागरिकों की सभाओं पर गोलियाँ चलाती थीं। ज़ार के घोषणापत्र के अभी तक यही नतीजे निकले थे।

उस समय एक लोकप्रिय गीत रचा गया था :

"बदहवास होकर यों बोल उठा ज़ार :
मुर्दों को आजादी और जिन्दा गिरफ्तार!"

बोल्शेविकों ने जनता को समझाया कि 17 अक्तूबर का घोषणापत्र एक जाल था। उन्होंने हुकूमत के व्यवहार को, जो उसने घोषणापत्र निकालने के बाद किया था, उकसावा पैदा करने वाला बतलाया। बोल्शेविकों ने मज़दूरों को आह्वान किया – हथियार उठाओ, सशस्त्र विद्रोह की तैयारी करो!

मज़दूर पहले से भी ज्यादा मुस्तैदी से लड़ाकू जत्थे बनाने लगे। वह अच्छी तरह से समझ गये कि 17 अक्तूबर को, आम राजनीतिक हड़ताल करके उन्होंने जो आज़ादी हासिल की थी, उसके लिये और कोशिश करना जरूरी है। ज़ारशाही का खात्मा करने के लिये संघर्ष जारी रखना ज़रूरी है।

लेनिन का विचार था कि 17 अक्तूबर का घोषणापत्र एक हद तक शक्तियों का अस्थायी संतुलन ज़ाहिर करता है। सर्वहारा वर्ग और किसानों ने ज़ार को घोषणापत्र निकालने पर मजबूर किया था, लेकिन वे **अभी इतने मज़बूत न थे** कि ज़ारशाही का तख्ता उलट दें। उधर, ज़ारशाही अब पुराने तरीकों से ही **और ज्यादा दिन हुकूमत न कर सकती थी।** उसे मजबूर होकर 'नागरिक स्वाधीनता' और 'कानून बनाने वाली' **दूमा** का काग़जी **वादा** करना पड़ा था।

अक्तूबर की राजनीतिक हड़ताल के तूफ़ानी दिनों में, ज़ारशाही के खिलाफ़ संघर्ष की आग में मजदूर जनता की क्रान्तिकारी रचनात्मक पहलकदमी ने एक नया और शक्तिशाली हथियार गढ़ा। यह हथियार था – मज़दूर प्रतिनिधियों की सोवियतें।

मज़दूर प्रतिनिधियों की सोवियतें सभी मिलों और कारखानों के प्रतिनिधियों की सभायें थीं। यह मजदूर वर्ग का ऐसा आम राजनीतिक संगठन था जैसा कि दुनिया में पहले कभी न देखा गया था। 1905 में, ये सोवियतें **सबसे** पहले बनीं। इनका रूप उस सोवियत सत्ता से काफ़ी मिलता–जुलता था जिसे बोल्शेविक पार्टी के नेतृत्व में सर्वहारा वर्ग ने 1917 में कायम किया। ये सोवियतें जनता की रचनात्मक पहलकदमी का एक नया क्रान्तिकारी रूप थीं। उन्हें जनता के सिर्फ़ क्रान्तिकारी हिस्सों ने क़ायम किया था। उन्होंने ज़ारशाही के तमाम कानून कायदों को ठुकरा कर उन्हें कायम किया था। ज़ारशाही के खिलाफ़ जो जनता लड़ने के लिये उठ रही थी, उसकी स्वतंत्र कार्यवाही का वे सबूत थीं।

बोल्शेविक सोवियतों को क्रान्तिकारी सत्ता का बीज रूप समझते थे। उनका कहना था कि सोवियतों की ताक़त और उनका महत्व विद्रोह की शक्ति और सफलता पर ही निर्भर करेगा।

मेन्शेविक सोवियतों को न तो क्रान्तिकारी सत्ता की संस्थाओं का बीज रूप मानते थे, न उन्हें विद्रोह की संस्थायें मानते थे। वे सोवियतों को स्थानीय खुद–मुख्तार हुकूमत की संस्था मानते थे, जो म्युनिसिपल शासन की जनवादी संस्थाओं जैसी थीं।

पीतरबुर्ग की सभी मिलों और कारखानों में 13 (नई शैली, 26) अक्तूबर, 1905 को मज़दूर प्रतिनिधियों की सोवियत के चुनाव हुए। सोवियत का पहला अधिवेशन उसी

दिन रात को हुआ। मजदूर प्रतिनिधियों की सोवियत बनाने में मास्को ने पीतरबुर्ग का अनुसरण किया।

पीतरबुर्ग रूस का सबसे महत्वपूर्ण औद्योगिक और क्रान्तिकारी केन्द्र था। वह ज़ारशाही रूस की राजधानी था। इसलिये, वहाँ पर मजदूर प्रतिनिधियों की सोवियत को 1905 की क्रान्ति में एक निर्णायक भूमिका अदा करनी चाहिये थी। लेकिन बुरे मेन्शेविक नेतृत्व की वजह से, उसने यह काम पूरा नहीं किया। जैसा कि हमें मालूम है, लेनिन उस समय तक पीतरबुर्ग में न आये थे। वे अभी विदेश में थे। मेन्शेविकों ने लेनिन की ग़ैरहाज़िरी का फ़ायदा उठाया और वे पीतरबुर्ग–सोवियत में घुस आये और उसके नेतृत्व पर उन्होंने कब्जा कर लिया। ऐसी हालत में, कोई ताज्जुब नहीं जो मेन्शेविक खुस्तालेव, त्रात्सकी, पारवुस और दूसरों ने पीतरबुर्ग–सोवियत को विद्रोह की नीति के खिलाफ़ मोड़ दिया। बजाये इसके कि वे सिपाहियों को सोवियत के नज़दीकी सम्पर्क में लायें और सामान्य लड़ाई से उनका सम्बन्ध जोड़ें, उन्होंने माँग की कि सिपाही पीतरबुर्ग से हटाये जायें। मज़दूरों को हथियारबन्द करने और विद्रोह के लिये तैयार करने के बदले, सोवियत सिर्फ़ टाल–मटोल करती रही। वह विद्रोह की तैयारी के खिलाफ़ थी।

मज़दूर प्रतिनिधियों की मास्को–सोवियत ने जो पार्ट अदा किया, वह इससे बिल्कुल भिन्न था। शुरु से ही, मास्को–सोवियत ने भरपूर क्रान्तिकारी नीति का पालन किया। मास्को–सोवियत का नेतृत्व बोल्शेविकों के हाथ में था। उन्हीं की वजह से, मजदूर प्रतिनिधियों की सोवियत के साथ–साथ मास्को में सैनिक प्रतिनिधियों की सोवियत का भी जन्म हुआ। मास्को–सोवयित सशस्त्र विद्रोह की संस्था बन गयी।

अक्तूबर से दिसम्बर 1905 तक के दिनों में, कई बड़े शहरों में और करीब–करीब सभी मजदूर केन्द्रों में मजदूर प्रतिनिधियों की सोवियतें कायम की गयीं। कोशिश की गयी कि सैनिकों और मल्लाहों की सोवियतें भी संगठित की जायें और मजदूर प्रतिनिधियों की सोवियतों से उनका एका कायम किया जाये। कई जगह मजदूरों और किसानों के प्रतिनिधियों की सोवियतें बनायी गयीं।

सोवियतों का बेहद असर पड़ा। अक्सर वे अपने–आप उठ खड़ी होती थीं, उनका ढाँचा निश्चित नहीं था और संगठन ढीला होता था, फिर भी उन्होंने शासन सत्ता की तरह काम किया। बिना कानूनी अधिकार के, उन्होंने प्रेस की स्वाधीनता और 8 घण्टों का दिन चालू कर दिया। उन्होंने जनता को आह्वान किया कि ज़ार सरकार को टैक्स न दें। कई जगह उन्होंने सरकारी धन ज़ब्त कर लिया और क्रान्ति की आवश्यकताओं के लिये उसे इस्तेमाल किया।

5. दिसम्बर का सशस्त्र विद्रोह। विद्रोह की पराजय। क्रान्ति का पीछे हटना। पहली राज्य दूमा। चौथी (एकता) पार्टी काँग्रेस।

अक्तूबर और नवम्बर 1905 में, आम जनता का क्रान्तिकारी संघर्ष खूब ज़ोर–शोर से बढ़ता गया। मजदूरों की हड़तालें ज़ारी रहीं।

जमींदारों के खिलाफ़ किसानों के संघर्ष ने 1905 की शरद में विशाल रूप धारण किया। देश के एक–तिहाई से ऊपर जिले किसान आन्दोलन की लपेट में आ गये। सारातोव, ताम्बोव, चार्निगोव, तिफ़लिस, कुताइस और दूसरे कई सूबे सचमुच किसान विद्रोह के रंगस्थल बन गये। फिर भी, किसान जनता का हमला नाकाफी था। किसान आन्दोलन में संगठन और नेतृत्व की कमी थी।

कई शहरों के सैनिकों में – तिफ़लिस, ब्लादिवस्तोक, ताशकंद, समरकंद, कुर्स्क, सुखुन, वारसा, कियेव और रीगा में – बेचैनी बढ़ी। क्रोन्स्तात और सेवास्तोपोल में काले समुद्री बेड़े के मल्लाओं में विद्रोह फूट पड़े (नवम्बर 1905)। लेकिन, ये विद्रोह अलग–थलग थे और ज़ार सरकार उन्हें दबाने में सफल हुई।

फ़ौज और जलसेना के दस्तों में अक्सर विद्रोह इस वजह से हो जाते थे कि अफ़सरों का व्यवहार जंगली होता था, खाना बहुत ही खराब मिलता था ("साग–सब्जी के विद्रोह") और ऐसी ही दूसरी बातें होती थीं। जो मल्लाह और सैनिक विद्रोह करते थे, वे अभी साफ़–साफ़ यह महसूस न करते थे कि ज़ार सरकार का तख्ता उलटना ज़रूरी है, कि हथियारबन्द लड़ाई को जोरदार तरीके से आगे चलाना है। वे अब भी बहुत ही शान्तिपूर्ण और आत्मसंतुष्ट थे। विद्रोह के शुरु में जिन अफ़सरों को वे पकड़ लेते थे, वे उन्हें छोड़ देने की गलती अक्सर करते थे। ऊपर वालों के वादों की मीठी बोली से वे अपना दिल पिघल जाने देते थे।

क्रान्तिकारी आन्दोलन हथियारबन्द बग़ावत की सीमा तक आ पहुंचा था। बोल्शेविकों ने आम जनता का **आह्वान** किया – ज़ार और जमींदारों के खिलाफ़ हथियार लेकर उठ खड़े हो! उन्होंने समझाया कि यह सब होकर रहेगा। बोल्शेविकों ने साशस्त्र विद्रोह की तैयारी के लिये अथक रूप से काम किया। सैनिकों और मल्लाहों में क्रान्तिकारी काम किया और फ़ौज में पार्टी के सैनिक संगठन कायम किये गये। कई शहरों में मजदूरों के लड़ाकू जत्थे बनाये गये और उनके सदस्यों को हथियारों का इस्तेमाल करना सिखाया गया। विदेश में हथियार खरीदने और गुप्त रूप से उन्हें रूस भेजने का प्रबंध किया गया। उन्हें लाने का इन्तजाम करने में पार्टी के प्रमुख सदस्यों ने हिस्सा लिया।

नवम्बर 1905 में, लेनिन रूस लौट आये। ज़ार की सशस्त्र पुलिस और जासूसों से बचते हुए, लेनिन ने सशस्त्र विद्रोह की तैयारी में खुद हिस्सा लिया। बोल्शेविक अख़बार ***नोवाया जीस्न (नव जीवन)*** में उनके लेखों ने पार्टी को रोज–बरोज के काम में रास्ता दिखाया।

इन्हीं दिनों, कामरेड स्तालिन ट्रांसकॉकेशिया में भारी क्रान्तिकारी काम कर रहे थे। उन्होंने मेन्शेविकों को क्रान्ति और सशस्त्र विद्रोह का दुश्मन बतलाते हुए, उनका पर्दाफ़ाश किया और उनकी अच्छी तरह मरम्मत की। निरंकुश सत्ता के खिलाफ़ फैसले की लड़ाई के लिये, उन्होंने मज़दूरों को दृढ़ता से तैयार किया। जिस दिन ज़ार का घोषणापत्र निकला था, उसी दिन तिफ़लिस के मजदूरों की एक सभा में भाषण देते हुए, कॉमरेड स्तालिन ने कहा था :

"दरअसल जीतने के लिये हमें क्या चाहिये? हमें तीन चीजें चाहिये : पहले – हथियार, दूसरे – हथियार, तीसरे – हथियार, और फिर हथियार!"

दिसम्बर 1905 में, फ़िनलैंड के तामरफ़ोर्स नगर में एक बोल्शेविक कान्फ्रेंस हुई। हालाँकि बोल्शेविक और मेन्शेविक नियमानुसार एक ही सोशल–डेमोक्रैटिक पार्टी में थे, लेकिन वास्तव में वे दो अलग पार्टियाँ थे जिनमें से हरेक का अपना नेतृत्व–केन्द्र था। इस कान्फ्रेंस में लेनिन और स्तालिन पहली बार मिले। तब तक उन्होंने आपसी सम्पर्क पत्र–व्यवहार और साथियों के ज़रिये कायम रखा था।

तामरफ़ोर्स कान्फ्रैंस के फैसलों में दो ध्यान देने योग्य हैं। पहला पार्टी की एकता कायम करने के बारे में था; पार्टी वास्तव में टूट कर दो पार्टियाँ बन गयी थी। दूसरा, पहली दूमा के बायकाट के बारे में था, जिसे वित्ते दूमा कहते थे।

उस समय तक मास्को में सशस्त्र विद्रोह शुरु हो चुका था, इसलिये लेनिन की सलाह पर, कान्फ्रेंस ने अपना काम जल्दी समाप्त किया और सभी चल दिये, जिससे कि प्रतिनिधि विद्रोह में व्यक्तिगत रूप से हिस्सा ले सकें।

लेकिन, ज़ार सरकार भी ऊँघ न रही थी। वह भी फैसले की लड़ाई के लिये तैयारी कर रही थी। जापान से सुलह करने के बाद, और इस तरह अपनी कठिनाइयाँ कम करने के बाद, ज़ार सरकार ने मजदूरों और किसानों के खिलाफ़ हमला शुरू किया। उसने कई सूबों में, जहाँ किसान विद्रोह तेजी पर थे, फ़ौजी कानून जारी कर दिया। उसने सिपाहियों को यह क्रूर आज्ञा दी : "गिरफ्तार मत करो" और "कार्तूस खर्च करने में न हिचको।" उसने क्रान्तिकारी आन्दोलन के नेताओं को पकड़ने और मजदूर प्रतिनिधियों की सोवियतों को भंग कर देने की आज्ञा दी।

इसके जवाब में, मास्को के बोल्शेविकों ने और उनके नेतृत्व में चलने वाली मज़दूर प्रतिनिधियों की मास्को–सोवियत ने, जिसका आम मजदूरों से सम्बन्ध था, फैसला किया कि सशस्त्र विद्रोह के लिये तुरंत तैयारी की जाये। 5 (18) दिसम्बर को, मास्को की बोल्शेविक कमिटी ने फैसला किया कि आम राजनीतिक हड़ताल करने के लिये सोवियत का आह्वान करे। उद्देश्य यह था कि संघर्ष के दौरान में उसे विद्रोह का रूप दे दिया जाये। आम मज़दूरों की सभाओं में इस फैसले का समर्थन किया गया। मास्को–सोवियत ने मजदूर वर्ग की इच्छा को स्वीकार किया और एकमत होकर आम राजनीतिक हड़ताल शुरु करने का फ़ैसला किया।

मास्को के सर्वहारा वर्ग ने जब विद्रोह शुरु किया तब क़रीब एक हज़ार योद्धाओं का उसका लड़ाकू संगठन था, जिनमें से आधे से ज़्यादा बोल्शेविक थे। इसके सिवा, मास्को के कई कारखानों में कई लड़ाकू जत्थे थे। कुल मिलाकर, विद्रोहियों की शक्ति दो हज़ार योद्धाओं की थी। मज़दूरों को उममीद थी कि वे छावनी के सिपाहियों को तटस्थ कर देंगे और उनमें से एक हिस्सा अपनी तरफ़ कर लेंगे।

7 (20) दिसम्बर को, मास्को में राजनीतिक हड़ताल शुरु हुई। फिर भी, उसे सारे देश में फैलाने की कोशिशें नाकाम हुई। पीतरबुर्ग में उसे नाकाफी समर्थन मिला और इससे आरम्भ से ही विद्रोह की सफलता की संभावनायें कम हो गयीं। निकालायेव्स्काया (अब, अक्तूबर) रेलवे ज़ार सरकार के हाथ में रही। इस लाइन पर आमदरफ़्त बन्द न हुई, जिससे हुकूमत **विद्रोह को दबाने** के लिये पीतरबुर्ग से गार्ड फ़ौजें मास्को ले आयी।

खुद मास्को में छावनी के सिपाही आगा–पीछा करते रहे। मज़दूरों ने जब विद्रोह शुरु किया था तब उन्हें आंशिक रूप से उम्मीद थी कि छावनी से मदद मिलेगी। लेकिन, क्रान्तिकारियों ने बहुत देर कर दी थी और हुकूमत छावनी के असन्तोष की रोक–थाम कर सकी।

9 (22) दिसम्बर को, मास्को की सड़कों पर पहली मोर्चाबन्दी हुई। जल्दी ही शहर की सड़कें बैरीकेडों से भर गयीं। ज़ार सरकार मैदान में तोपें ले आयी। विद्रोहियों की जितनी ताकत थी, उससे कई गुनी ज्यादा ताकत उसने जुटायी। नौ दिनों तक लगातार कई हज़ार हथियारबन्द मजदूर वीरता से लड़ते रहे। पीतरबुर्ग, त्वेर और पच्छिमी प्रदेश से फ़ौजें लाकर ही, ज़ार सरकार विद्रोह दबा सकी। लड़ाई शुरु होने से पहले ही, विद्रोह के कुछ नेता तो पकड़ लिये गये और कुछ अकेले पड़ गये। मास्को की बोल्शेविक कमिटी के सदस्य गिरफ्तार कर लिये गये। हथियारबन्द कार्यवाही ने अलग–अलग जिलों में एक–दूसरे से अलग विद्रोहों का रूप धारण कर

लिया संचालन–केन्द्र न होने पर और समूचे नगर के लिये सामान्य योजना के अभाव में, जिलों ने अपना काम मुख्यतः रक्षा करने तक सीमित कर लिया। मास्को विद्रोह की कमजोरी का यह मुख्य कारण था, और जैसा कि लेनिन ने बाद में बताया था, उसकी हार का एक कारण था।

मास्को के क्रासनायाप्रेस्न्या ज़िले में विद्रोह ने खास तौर से कट्टर और **घनघोर** संघर्ष का रूप ले लिया। यह विद्रोह का मुख्य गढ़ और केन्द्र था। यहाँ पर सबसे अच्छे लड़ाकू जत्थे बोल्शेविकों के नेतृत्व में थे। लेकिन, क्रासनायाप्रेस्न्या को संगीनों और गोलियों के बल से ही दबाया जा सका। वह खून में तर कर दिया गया और तोपों के गोलों की आग से जल उठा। **मास्को विद्रोह** कुचल दिया गया।

विद्रोह मास्को तक ही सीमित न था। कई और शहरों और जिलों में क्रान्तिकारी विद्रोह फूट पड़े। क्रासनोयार्स्क, मोतोविलीखा (पर्म), नोवोरोसिस्क, **सोर्मोवो,** सेवास्तोपोल और क्रोन्स्तात में भी सशस्त्र विद्रोह हुए।

रूस की पीड़ित जातियाँ भी हथियारबन्द लड़ाई करने के लिये उठ खड़ी हुईं। लगभग समूचे जार्जियाँ ने हथियार उठा लिये। उक्रैन में दोन्येत्स प्रदेश के गोर्लोव्का, अलैक्सान्द्रोव्स्क और लुगान्स्क (अब बोरोशिलोवग्राद) नाम के शहरों में भारी विद्रोह हुआ। लैटविया में जमकर लड़ाई हुई। फ़िनलैण्ड में मजदूरों ने अपना रैड गार्ड बनाया और विद्रोह में उठ खड़े हुए।

लेकिन मास्को विद्रोह की तरह, इन सभी विद्रोहों को सत्ता ने निरंकुश पाशविक बर्बरता के साथ कुचल दिया।

दिसम्बर के सशस्त्र **विद्रोह** का मूल्यांकन मेन्शेविकों और बोल्शेविकों ने अलग–अलग तरीकों से किया।

विद्रोह के बाद, मेन्शविक प्लेखानोव ने पार्टी को यह कह कर फटकारा : "तुम्हें हथियार उठाने ही नहीं चाहिये थे।" मेन्शेविकों की दलील थी कि विद्रोह अनावश्यक और हानिकारक है। क्रान्ति में उसके बिना काम चल सकता है। सफलता हथियारबन्द विद्रोह से नहीं, बल्कि संघर्ष के शान्तिपूर्ण तरीकों से मिलेगी।

बोल्शेविकों ने इस दृष्टिकोण की निन्दा करते हुए कहा कि यह गद्दारी है। उनका कहना था कि मास्को के सशस्त्र विद्रोह के अनुभव ने यही बात पक्की कर दी है कि मजदूर वर्ग सफलतापूर्वक हथियारबन्द लड़ाई लड़ सकता है। प्लेखानोव की फटकार – "तुम्हें हथियार उठाने ही न चाहिये थे" – के जवाब में, लेनिन ने कहा :

"इसके विपरीत, हमें और दृढ़ता से, शक्ति से और हमलावर तरीके से हथियार उठाने चाहिये थे। हमें आम जनता को समझाना चाहिये था कि अपने को शान्तिपूर्ण हड़ताल तक सीमित रखना असम्भव है, और निडर होकर और जमकर हथियारबन्द लड़ाई चलाना अनिवार्य है।" ***(लेनिन, संक्षिप्त ग्रंथावली,*** अं•सं•, मास्को, 1947, **खण्ड** 1, पृष्ठ 446)।

दिसम्बर 1905 के विद्रोह में क्रान्ति अपने चरम उत्कर्ष तक पहुँच गयी। निरंकुश ज़ारशाही ने विद्रोह को हरा दिया। उसके बाद, क्रान्ति ने पल्टा खाया और पीछे हटने लगी। क्रान्ति का ज्वार धीरे–धीरे शान्त हो गया।

ज़ार सरकार ने इस हार से तुरंत ही फ़ायदा उठाकर क्रान्ति पर आखिरी हमला करने का विचार किया। ज़ार के जेलर और जल्लाद अपने खूनी काम में लग गये। पोलैंड, लैटविया, एस्टोनिया, ट्रांसकॉकेशिया और साइबेरिया में दण्ड देने वाले दस्ते धमाचौकड़ी मचाने लगे।

लेकिन, क्रान्ति अभी कुचली न गयी थी। मज़दूर और क्रान्तिकारी किसान लड़ते हुए धीरे–धीरे पीछे हटे। मज़दूरों के नये हिस्से लड़ाई में शामिल हुए। दस लाख से ऊपर मज़दूरों ने 1906 की हड़तालों में हिस्सा लिया और सात लाख चालिस हज़ार ने 1907 की हड़तालों में। किसान आन्दोलन 1906 के पूर्वार्द्ध में ज़ारशाही रूस के लगभग आधे उयेज़्दों में फैल गया और 1906 के उत्तरार्द्ध में 1/5 जिलों में फैल गया। फ़ौज और जल सेना में असंतोष जारी रहा।

ज़ार सरकार ने क्रान्ति की रोकथाम करने में अपने को दमन तक ही सीमित नहीं रखा। दमन में प्रारम्भिक सफलता पाने के बाद नयी दूमा, "कानून बनाने वाली" दूमा, बुला कर उसने क्रान्ति पर नया प्रहार करने का फैसला किया। उसे उम्मीद थी कि इस तरह किसान क्रान्ति से अलग हो जायेंगे और क्रान्ति **खत्म** हो जायेगी। दिसम्बर 1905 में, ज़ार सरकार ने एक कानून बनाया जिसके अनुसार एक नयी "कानून बनाने वाली" दूमा बुलायी जा सकती थी। यह दूमा पुरानी "विचार करने वाली" बुलिगिन–दूमा से भिन्न थी, जिसे बोल्शेविक बायकाट ने रास्ते से हटा दिया था। ज़ार का चुनाव–कानून जनतंत्र–विरोधी तो था ही। चुनाव सार्वजनिक न थे। आधी आबादी से ज्यादा लोग – मिसाल के लिये स्त्रियाँ और बीस लाख मजदूर – वोट देने का हक़ पा ही न सके थे। चुनावों में समानता का अधिकार न था। मतदाता चार विभागों – या जैसा कि उनका नाम था, क्यूरियों – में बँटे हुए थे : ग्रामीण (जमींदार), शहरी (पूंजीपति), किसान और मज़दूर क्यूरियों। चुनाव

सीधे नहीं, बल्कि कई मंज़िलों में होते थे। वास्तव में, गुप्त बैलट था ही नहीं। चुनाव–कानून से दूमा में करोड़ों मजदूरों और किसानों पर मुट्ठी भर जमींदारों और पूंजीपतियों का जबर्दस्त बहुमत पक्का हो जाता था।

ज़ार ने सोचा कि आम जनता को क्रान्ति से हटाने के लिये दूमा का इस्तेमाल किया जाये। उन दिनों बहुत काफ़ी किसानों को विश्वास था कि दूमा के जरिये जमीन मिल सकती है। कॉस्टीट्यूशनल डेमोक्रैट मेन्शेविक और समाजवादी क्रान्तिकारी मजदूरों और किसानों को यह कह कर धोखा देते थे कि जनता को जिस व्यवस्था की ज़रूरत है, वह बिना विद्रोह के, बिना क्रान्ति के मिल सकती है। जनता के साथ इस फ़रेब का मुकाबिला करने के लिये, बोल्शेविकों ने पहली राज्य दूमा के बायकाट में कार्यनीति का ऐलान किया और उसका पालन किया। तामरफोर्स कान्फ्रेंस ने जो फैसला किया था, यह उसके अनुकूल था।

ज़ारशाही के खिलाफ़ लड़ाई में, मजदूरों ने पार्टी की शक्तियों की एकता की माँग की, सर्वहारा वर्ग की पार्टी की एकता की माँग की। तामरफोर्स कान्फ्रेंस के एकता सम्बन्धी फैसले से सज्जित होकर, बोल्शेविकों ने मजदूरों की इस मांग का समर्थन किया और मेन्शेविकों के सामने यह प्रस्ताव रखा कि पार्टी की एकता कांग्रेस बुलाई जाये। मजदूरों के दबाव की वजह से, मेन्शेविकों को एकता के लिये राज़ी होना पड़ा।

लेनिन एकता के पक्ष में थे, लेकिन सिर्फ़ ऐसी एकता के पक्ष में जो क्रान्ति की समस्याओं पर जो मतभेद थे उन पर पर्दा न डाले। समझौतावादियों (बोग्दानोव, क्रासिन वग़ैरह) ने पार्टी का काफ़ी नुकसान किया। वे यह साबित करना चाहते थे कि बोल्शेविकों और मेन्शेविकों में कोई गम्भीर मतभेद नहीं था। लेनिन ने समझौतावादियों से संघर्ष किया और इस बात पर ज़ोर दिया कि कांग्रेस में बोल्शेविक अपनी अलग नीति लेकर आयें, जिससे कि मजदूर साफ़–साफ़ देख सकें कि बोल्शेविक क्या कहते हैं और किस आधार पर एकता कायम की जा रही है। बोल्शेविकों ने कांग्रेस के लिये अपनी नीति तय की और पार्टी सदस्यों के सामने उसे बहस के लिये रखा।

रू•सो•डे•ले•पा• की चौथी कांग्रेस, जिसका नाम एकता कांग्रेस था, अप्रैल, 1906 में स्टॉकहोम (स्वेडन) में हुई। इसमें पार्टी के 57 स्थानीय संगठनों की तरफ़ से 111 प्रतिनिधि आये, जिन्हें वोट देने का हक़ था। इनके अलावा, जातीय सोशल–डेमोक्रैटिक पार्टियों के प्रतिनिधि थे : 3 बुन्द से, 3 पोलैंड की सोशल–डेमोक्रैटिक पार्टी से और 3 लैटविया के सोशल–डेमोक्रैटिक संगठन से।

दिसम्बर विद्रोह के दौर में और उसके बाद, बोल्शेविक संगठनों के कुचले जाने की वजह से ये सभी संगठन प्रतिनिधि न भेज सके। इसके अलावा, 1905 के "आजादी के दिनों" में मेन्शेविकों ने अपनी पाँति में निम्न पूंजीवादी बुद्धिजीवियों की बड़ी तादाद भरती कल ली थी। क्रान्तिकारी मार्क्सवाद से इन लोगों का कोई भी सम्बन्ध न था। इतना कहना काफ़ी होगा कि तिफ़लिस के मेन्शेविकों ने (और तिफ़लिस में बहुत कम औद्योगिक मज़दूर थे) कांग्रेस में उतने ही प्रतिनिधि भेजे थे जितने कि सबसे बड़े सर्वहारा संगठन, पीतरबुर्ग संगठन, ने भेजे थे। नतीजा यह हुआ कि स्टाकहोम कान्फ्रेंस में मेन्शेविकों का बहुमत रहा, हालाँकि यह सही है कि वह नगण्य था।

कांग्रेस की इस बनावट ने कई सवालों पर लिये जाने वाले फ़ैसलों का मेन्शेविक रूप निश्चित कर दिया।

इस कांग्रेस में केवल **ऊपरी** एकता कायम हुई। वास्तव में, बोल्शेविकों और मेन्शेविकों ने अपने मत और अपने स्वतंत्र संगठन कायम रखे।

चौथी कांग्रेस में जिन मुख्य सवालों पर बहस हुई, वे खेती का सवाल, मौजूदा हालत और सर्वहारा के वर्गगत काम, राज्य दूमा की तरफ़ नीति और संगठन के सवाल थे।

कांग्रेस में यद्यपि मेन्शेविकों का बहुमत था, फिर भी पार्टी नियमावली के पहले पैराग्राफ़ पर जो मसौदा लेनिन ने रखा उससे उन्हें सहमत होना पड़ा, जिससे कि मज़दूर उनके विरोधी न हो जायें।

खेती के सवाल पर, लेनिन ने जमीन के **राष्ट्रीयकरण** का समर्थन **किया।** उनका कहना था कि क्रान्ति की जीत से ही, ज़ारशाही का तख्ता उलटने पर ही, ज़मीन का राष्ट्रीयकरण संभव होगा। ऐसी हालत में, ज़मीन का राष्ट्रीयकरण सर्वहारा वर्ग के लिये यह काम आसान कर देगा कि गरीब किसानों के सहयोग से वह समाजवादी क्रान्ति की मंजिल में प्रवेश करे। ज़मीन के राष्ट्रीयकरण का मतलब था – बिना मुआविज़ा दिये तमाम रियासतों की ज़मीन ज़ब्त कर लेना और उन्हें किसानों को दे देना। बोल्शेविकों के खेती सम्बन्धी प्रोग्राम ने किसानों का आह्वान किया कि वे ज़ार और जमींदारों के खिलाफ़ क्रान्ति के लिये उठ खड़े हों।

मेन्शेविकों का दृष्टिकोण दूसरा था। वे **म्युनिसिपलीकरण** के प्रोग्राम का समर्थन करते थे। इनके प्रोग्राम के अनुसार, रियासती ज़मीन ग्राम समाजों को न दी जाती, न उन्हें काम के लिये ही उठाया जाता, बल्कि वह म्युनिसिपलिटी के हाथ में रहती (यानी खुदमुख्तार हुकूमत की स्थानीय संस्थाओं या ज़ेम्स्त्वो के हाथ में रहती) और हर किसान इस ज़मीन से अपने बूते के अनुसार **लगान पर** हिस्सा ले लेता।

मेन्शेविकों का म्युनिसिपलीकरण का प्रोग्राम, समझौते का प्रोग्राम था और इसलिये क्रान्ति के लिये हानिकर था। वह किसानों को क्रान्तिकारी संघर्ष के लिये न बटोर सकता था और ज़मीन पर ज़मींदारों के सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकारों को पूरी तरह खत्म न कर सकता था। मेन्शेविक प्रोग्राम ऐसे रचा गया था कि क्रान्ति को अधविच में ही रोक दे। मेन्शेविक किसानों को क्रान्ति के लिये उभारना न चाहते थे।

कांग्रेस में मेन्शेविक प्रोग्राम को बहुमत प्राप्त हुआ।

मेन्शेविकों ने अपना सर्वहारा–विरोधी, अवसरवादी रूप खास तौर से तब प्रकट किया जब कि मौजूदा हालत और राज्य दूमा के प्रस्ताव पर बहस हो रही थी। मेन्शेविक मार्तिनोव क्रान्ति में सर्वहारा वर्ग के एकछत्र नेतृत्व के खिलाफ़ खुल कर बोला। मेन्शविकों का जवाब देते हुए, कॉमरेड स्तालिन ने इस बारे में दो टूक बात कही :

"या तो सर्वहारा का एकछत्र नेतृत्व हो, या जनवादी पूंजीपतियों का हो – पार्टी में सवाल का रूप यही है और यहीं हमारा मतभेद है।"

जहाँ तक राज्य दूमा का सम्बन्ध था, मेन्शेविकों ने अपने प्रस्ताव में उसे क्रान्ति की समस्यायें हल करने और ज़ारशाही से जनता को आजाद करने का सबसे अच्छा साधन बताकर, उसकी तारीफ़ की। इसके विपरीत, बोल्शेविकों का विचार था कि दूमा ज़ारशाही का बेकार पुछल्ला है। ज़ारशाही के पास छिपाने के लिये पर्दा है और जैसे ही उसे सुविधा हुई, ज़ारशाही उसे उतार फेंकेगी।

चौथी कांग्रेस में जो केन्द्रीय समिति चुनी गयी, उसमें 3 बोल्शेविक और 6 मेन्शेविक थे। केन्द्रीय अखबार के सम्पादक–मण्डल में सिर्फ़ मेन्शेविक थे।

यह बात साफ़ थी कि पार्टी का अन्दरूनी संघर्ष जारी रहेगा।

चौथी कांग्रेस में, बोल्शेविकों और मेन्शेविकों का परस्पर संघर्ष नये ज़ोरशोर से फूट पड़ा। स्थानीय संगठनों में, जो सिर्फ़ ऊपरी तौर पर एक थे, अक्सर दो–दो वक्ताओं ने कांग्रेस की रिपोर्ट पेश की : एक बोल्शेविकों में से और दूसरा मेन्शेविकों में से। दोनों लाइनों की बहस का नतीजा यह हुआ कि ज्यादातर संगठनों का बहुमत **बोल्शेविकों** के साथ हुआ।

घटना–क्रम ने साबित कर दिया कि बोल्शेविक सही थे। चौथी कांग्रेस में जो मेन्शेविक केन्द्रीय समिति चुनी गयी थी, वह अधिकाधिक अपना अवसरवाद और आम

जनता के क्रान्तिकारी संघर्ष का नेतृत्व करने की पूर्ण आयोग्यता ज़ाहिर करने लगी। 1906 की ग्रीष्म और शरद में, आम जनता के क्रान्तिकारी संघर्ष ने नया जोर पकड़ा। क्रोन्स्तात और स्वीयाबोर्ग में मल्लाहों के विद्रोह हुए। ज़मींदारों के खिलाफ़ किसानों की लड़ाई भड़क उठी। फिर भी, मेन्शेविक केन्द्रीय समिति अवसरवादी नारे देती रही, जिनका जनता ने अनुसरण नहीं किया।

6. पहली राज्य दूमा का भंग होना। दूसरी राज्य दूमा का अधिवेशन। पाँचवी पार्टी कांग्रेस। दूसरी राज्य दूमा का भंग होना। पहली रूसी क्रान्ति की हार के कारण।

पहली राज्य दूमा काफ़ी आज्ञाकारी न साबित हुई, इसलिये ज़ार सरकार ने उसे भंग कर दिया। हुकूमत ने जनता के खिलाफ़ और भी तीव्र दमन शुरु किया। सज़ा देने वाले दस्तों की तबाही ढाने वाली कार्यवाही सारे देश में फैला दी गयी। ज़ार सरकार ने थोड़े ही दिनों में दूसरी राज्य दूमा बुलाने के फैसले का ऐलान किया। ज़ाहिर था कि ज़ार सरकार पर सत्ता का मद और भी चढ़ रहा था। उसे अब क्रान्ति से डर न गलता था, क्योंकि वह देख रही थी कि क्रान्ति का ज्वार अब खत्म हो रहा है।

बोल्शेविकों को फैसला करना था कि दूसरी दूमा में हिस्सा लें या उसका बायकाट करें। बायकाट से आम तौर पर बोल्शेविकों का मतलब सक्रिय बायकाट होता था, न कि सिर्फ़ चुनाव में निष्क्रिय रूप से वोट न देना। बोल्शेविकों की नजर में सक्रिय बायकाट जनता को सावधान करने का एक क्रान्तिकारी साधन था। ज़ार यह कोशिश कर रहा था कि जनता को क्रान्ति के रास्ते से हटा कर ज़ारशाही 'विधान' के रास्ते पर लाया जाये। इस कोशिश के खिलाफ़, जनता को आगाह करने का वह क्रान्तिकारी साधन था। इस तरह की कोशिश नाकाम करने और ज़ारशाही के खिलाफ़ जनता का नया आक्रमण संगठित करने का वह क्रान्तिकारी साधन था।

बुलिगन–दूमा के बायकाट के तजुर्बे ने दिखा दिया था कि बायकाट "ही उस समय सही कार्यनीति थी, और घटना–क्रम से वह क़तई सही साबित हुआ।" (लेनिन, ***सं•ग्रं•***, अं•सं•, मास्को, 1947, खंड 1, पृष्ठ 450)। यह बायकाट इसी लिये सफल नहीं हुआ कि उसने ज़ारशाही विधानवाद की राह के खतरे से जनता को सावधान किया, बल्कि इसलिये भी कि उसने दूमा के जन्म को ही **व्यर्थ कर दिया।** बायकाट इसलिये सफल हुआ कि वह क्रान्ति के **उठते हुए ज्वार** के समय किया गया था और इस ज्वार का उसे समर्थन प्राप्त था। वह उस समय न किया गया था जबकि क्रान्ति का ज्वार बैठ रहा हो। दूमा का बुलाना तभी नाक़ाम किया जा सकता था जब क्रान्ति का **ज्वार वेग पर हो।**

वित्ते–दूमा, यानी पहली दूमा का बायकाट दिसम्बर विद्रोह की पराजय के बाद हुआ, उस समय जबकि ज़ार विजयी साबित हुआ, यानी ऐसे समय जबकि यह विश्वास करने के लिये कारण थे कि क्रान्ति का ज्वार बैठने लगा है।

लेनिन ने लिखा था :

"लेकिन, कहना न होगा कि उस समय अब यह समझने का कोई कारण न था कि यह जीत (ज़ार की जीत – संपादक) निर्णायक जीत है। दिसम्बर 1905 के विद्रोह के बाद, 1906 की गर्मियों में कई अलग–थलग और आंशिक सैनिक विद्रोह और हड़तालें हुईं। वित्ते–दूमा का बायकाट करने का आह्वान इस बात के लिये आह्वान था कि इन विद्रोह को केन्द्रित किया जाये और उन्हें आम बनाया जाये।" (***लेनिन ग्रन्थावली,*** रूसी संस्करण, खण्ड 12, पृष्ठ 20)।

वित्ते–दूमा का बायकाट उसके अधिवेशन को नाकाम न कर सका, हालाँकि इससे उसका रोब काफ़ी कम हुआ और जनता के एक हिस्से का विश्वास उसमें शिथिल हो गया। बायकाट दूमा का अधिवेशन इसलिये नाकाम न कर सका कि, जैसा कि आगे चल कर स्पष्ट हो गया, वह ऐसे समय हुआ जबकि क्रान्ति का ज्वार बैठ रहा था, जब उसका प्रवाह मन्द पड़ रहा था। इस वजह से, 1906 में पहली दूमा का बायकाट असफल रहा। इस सिलसिले में, लेनिन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तिका ***"वामपंथी" कम्युनिज़्म, एक बचकाना बीमारी*** में लिखा था :

"1905 **में,** 'पार्लियामेंट' के बोल्शेविक बायकाट ने क्रान्तिकारी सर्वहारा को बहुत ही मूल्यवान राजनीतिक अनुभव से समृद्ध किया। उसने दिखलाया कि कानूनी और ग़ैर कानूनी संघर्ष के रूपों को, पार्लियामेंटरी और ग़ैर पार्लियामेंटरी रूपों को, मिलाने में कभी–कभी यह लाभदायी और आवश्यक भी हो जाता है कि पार्लियामेंटरी रूपों को ठुकरा दिया जाये। ... फिर भी, 1906 में बोल्शेविकों द्वारा दूमा का बायकाट एक ग़लती थी, हालाँकि यह एक छोटी ग़लती थी और उसका आसानी से सुधार हो सकता था।...जो बात व्यक्तियों पर लागू होती है, वह – आवश्यक तबदीली के साथ – राजनीति और पार्टियों पर भी लागू होती है। बुद्धिमान वह नहीं है जो गलतियाँ ही न करे। ऐसे आदमी न तो होते हैं और न हो सकते हैं। बुद्धिमान वह है जो बहुत गंभीर ग़लतियाँ नहीं करता और उन्हें आसानी से और तुरंत सुधारना जानता है।" (लेनिन, ***सं•ग्र•,*** अं•सं•, मास्को, 1947, खण्ड 2, पृष्ठ 582–83)।

जहाँ तक दूसरी राज्य दूमा का सवाल है, लेनिन का कहना था कि बदली हुई हालत और क्रान्ति के ज्वार के मन्द पड़ने को ध्यान में रखते हुए बोल्शेविकों को "राज्य दूमा के बायकाट के सवाल पर फिर से विचार करना चाहिये।" (*उप॰*, खण्ड 1, पृष्ठ 450)।

लेनिन ने लिखा था :

> "इतिहास ने दिखा दिया है कि दूमा का अधिवेशन होने पर ऐसा अवसर मिलता है कि दूमा के अन्दर और उसके बारे में बाहर भी लाभदायी आन्दोलन किया जा सके। कॉस्टीट्यूशनल डेमोक्रैटों के खिलाफ़, क्रान्तिकारी किसानों के साथ सहयोग करने की नीति दूमा में भी लागू की जा सकती है।" (*उप॰*, पृष्ठ 453)।

इस सबसे ज़ाहिर होता था कि हमें यही न जानना चाहिये कि जब क्रान्ति उभार पर हो तब कैसे दृढ़ता से आगे बढ़ा जाये, कैसे अगली पाँति में रहकर आगे बढ़ा जाये, बल्कि जब क्रान्ति उभार पर न रहे तब कैसे क्रम से पीछे हटा जाये, कैसे सबसे पीछेवाली पाँति में रहकर हटा जाये और बदलती हुई हालत के अनुसार अपने दाँव–पेंच बदले जायें, ताबड़तोड़ पीछे न हटा जाये बल्कि संगठित रूप से, शान्ति के साथ और बिना भगदड़ के पीछे हटा जाये, दुश्मन की मार से अपने कार्यकर्ताओं को बचाने के लिये छोटे से छोटे अवसर से भी लाभ उठाया जाये, अपनी पाँति फिर से बनायी जाये, अपनी शक्तियों को फिर बटोरा जाये और दुश्मन के खिलाफ़ नया हमला करने की तैयारी की जाये।

बोल्शेविकों ने फ़ैसला किया कि वे दूसरी दूमा के चुनाव में हिस्सा लेंगे।

लेकिन, बोल्शेविक दूमा के अन्दर ठोस "कानून बनाने" का काम करने के लिये वहाँ नहीं गये थे। मेन्शेविकों ने इसी काम के लिये वहाँ पर कॉन्स्टीट्यूशनल डेमोक्रैटों के साथ दल बनाया था। इसके खिलाफ़, बोल्शेविकों का उद्देश्य था कि क्रान्ति के हितों में उसे एक मंच की तरह इस्तेमाल करें।

इसके विपरीत, मेन्शेविक केन्द्रीय समिति इस बात पर जोर दे रही थी कि कॉन्स्टीट्यूशनल डेमोक्रैटों के साथ चुनाव सम्बन्धी समझौते किये जायें और दूमा में उनका समर्थन किया जाये, क्योंकि उनकी निगाह में दूमा एक कानून बनाने वाली संस्था थी, जो ज़ार सरकार पर लगाम लगा सकती थी।

पार्टी–संगठनों के बहुमत ने मेन्शेविक केन्द्रीय समिति की नीति का विरोध किया।

बोल्शेविकों ने माँग की कि नयी पार्टी कांग्रेस बुलायी जाये।

मई 1907 में, लन्दन में पाँचवीं पार्टी कांग्रेस हुई। इस कांग्रेस के **वक्त** रू•सो•डे•ले•पा• में (जातीय सोशल–डेमोक्रेटिक संगठनों को मिलाकर) डेढ़ लाख सदस्य थे। कुल मिलाकर, कांग्रेस में 336 प्रतिनिधि थे, जिनमें से 105 बोल्शेविक और 97 मेन्शेविक थे। बाकी प्रतिनिधि जातीय सोशल–डेमोक्रेटिक संगठनों की तरफ़ से पोलैंड और लटविया के सोशल–डेमोक्रेटों और बुन्द की तरफ़ से – जो पिछली कांग्रेस में रू•सो•डे•ले•पा• में भर्ती किये गये थे – आये थे। त्रात्स्की ने कांग्रेस में अपना एक अलग गुट, एक केन्द्रवादी यानी अर्द्ध –मेन्शेविक गुट बनाने की कोशिश की, लेकिन उसे अनुयायी न मिले।

पोलैण्ड और लैटविया के प्रतिनिधि बोल्शेविकों के साथ थे, इसलिये कांग्रेस में उनका दृढ़ बहुमत था। कांग्रेस में बहस के लिये एक मुख्य सवाल पूंजीवादी पार्टियों की तरफ नीति अपनाने का था। इस सवाल पर, दूसरी कांग्रेस में ही बोल्शेविकों और मेन्शेविकों में संघर्ष चल चुका था। पाँचवीं कांग्रेस ने सभी गैर सर्वहारा पार्टियों का बोल्शेविक मूल्यांकन पेश किया – यमराज सभायें, अक्तूबर पंथी (17 अक्तूबर का यूनियन), कॉन्स्टीट्यूशनल डेमोक्रैटों और समाजवादी क्रान्तिकारी – और इन पार्टियों के बारे में बोल्शेविक कार्यनीति का मसौदा रखा।

कांग्रेस ने बोल्शेविकों की नीति मंजूर की और फैसला किया कि वह यमराज सभा पार्टियों के खिलाफ – रूसी जनसंघ, सम्राटवादियों, अभिजातवर्गीय संयुक्त मंडल के खिलाफ़ – और अक्तूबर पंथियों, व्यापार और उद्योग–धंधों की पार्टी और शान्तिपूर्ण सुधार की पार्टी के खिलाफ़ भी डट कर संघर्ष चलायेगी। ये सब पार्टियाँ खुल्लमखुल्ला क्रान्ति–विरोधी थीं।

जहाँ तक उदारपंथी पूंजीपतियों का सम्बन्ध था, कॉन्स्टीट्यूशनल डमोक्रैटिक पार्टी का सम्बन्ध था, कांग्रेस ने बिना समझौते के उनका पर्दाफाश करने की नीति की सिफ़ारिश की। कॉन्स्टीट्यूशनल डेमोक्रैटिक पार्टी की झूठ और मक्कारी से भरी हुई 'डेमोक्रेसी' (प्रजातंत्रवाद) का पर्दाफ़ाश करना था और उदारपंथी पूंजीपतियों की किसान आन्दोलन पर कब्ज़ा करने की कोशिश का मुकाबिला करना था।

जहाँ तक नरोद्निक या *त्रुदोविक*[1] पार्टियों (पापुलर सोशलिस्ट, त्रुदोविक गुट और (सोशलिस्ट रिवोलुशनरी) समाजवादी क्रान्तिकारियों) का सम्बन्ध था, कांग्रेस ने सिफ़ारिश की कि समाजवादियों की नकाब पहनने की उनकी कोशिशों का पर्दाफाश किया जाये। इसके साथ ही, कांग्रेस यह उचित समझती थी कि जब तक इन पार्टियों

---

1. **1906 में बनने वाला एक निम्नपूंजीवादी गुट, जिसमें अंशतः पहली राज्य दूमा के किसान सदस्य थे जिनके सिरे पर समाजवादी क्रान्तिकारी बुद्धिजीवी थे।**

के साथ ज़ारशाही और कॉन्स्टीट्यूशनल डेमोक्रेटिक पूंजीपतियों के खिलाफ़ संयुक्त और एक साथ हमला करने के लिये समझौते कर लिये जायें। कारण यह कि उस समय ये पार्टियाँ जनवादी पार्टियाँ थीं और शहर और देहात के निम्न पूंजीवादियों के हित प्रकट करती थीं।

इस कांग्रेस से पहले भी, मेन्शेविकों ने प्रस्ताव रखा था कि एक तथाकथित मज़दूर कांग्रेस बुलायी जाये। मेन्शेविकों का विचार था कि ऐसी कांग्रेस बुलायी जाये जिसमें सोशल–डेमोक्रैटों, समाजवादी क्रान्तिकारियों और अराजकवादियों – सभी का प्रतिनिधित्व हो। यह "मजदूर" कांग्रेस कुछ "गैर पार्टीजन पार्टी" जैसी चीज, या एक "व्यापक" निम्नपूंजीवादी मजदूर पार्टी बनायी जाये, जिसका कोई कार्यक्रम न हो। लेनिन ने मेन्शेविकों की इस घातक कोशिश का पर्दाफ़ाश किया, जो सोशल–डेमोक्रैटिक लेबर पार्टी को खत्म करने और मजदूर वर्ग के **हिरावल** को निम्नपूंजीवादी अवाम में घुलमिल जाने देने की कोशिश थी। कांग्रेस ने 'मजदूर–कांग्रेस' बुलाने की मेन्शेविक योजना का ज़ोरों से खण्डन किया।

कांग्रेस में, ट्रेड यूनियनों के विषय पर खास तौर से ध्यान दिया गया। मेन्शेविक ट्रेड यूनियनों की 'तटस्थता' का समर्थन करते थे, दूसरे शब्दों में, वे इस बात का विरोध करते थे कि पार्टी उनमें नेतृत्व की भूमिका अदा करे। कांग्रेस ने मेन्शेविकों का प्रस्ताव रद्द कर दिया और बोल्शेविकों के पेश किये हुए प्रस्ताव को मंजूर कर लिया। इस प्रस्ताव में कहा गया था कि पार्टी को ट्रेड यूनियनों में सैद्धान्तिक और राजनीतिक नेतृत्व हासिल करना चाहिये।

पाँचवीं कांग्रेस मजदूर आन्दोलन में बोल्शेविकों के लिये भारी जीत थी।

लेकिन, बोल्शेविकों ने न तो इसकी खुशी में अपने को बहने ही दिया, न उन्होंने अपनी विजय पर ही संतोष कर लिया। लेनिन ने उन्हें यह न सिखाया था। बोल्शेविक जानते थे कि मेन्शेविकों से अभी और संघर्ष होगा।

"एक प्रतिनिधि के नोट" नाम के लेख में, जो 1907 में प्रकाशित हुआ था, कॉमरेड स्तालिन ने कांग्रेस के नतीजों का इस तरह मूल्यांकन किया था :

> **"क्रान्तिकारी** सोशल–डेमोक्रैसी के झण्डे के नीचे रूस के तमाम आगे बढ़े हुए मज़दूरों का एक ही अखिल रूसी पार्टी में वास्तविक एकीकरण – लन्दन कांग्रेस का यह महत्व है, यह उसकी आम विशेषता है।"

इस लेख में, कॉमरेड स्तालिन ने आंकड़े देकर कांग्रेस की **बनावट** पर प्रकाश डाला। आंकड़ों से पता चलता था कि मुख्यतः बड़े औद्योगिक केन्द्रों (पीतरबुर्ग, मास्को, यूराल, इवानोवोवज़्नेसेंस्क वगैरह) ने कांग्रेस को बोल्शेविक प्रतिनिधि भेजे थे। उधर मेन्शेविक उन जिलों की तरफ से भेजे गये थे जहाँ छोटे पैमाने की पैदावार चालू थी, जहाँ दस्तकार, अर्द्ध सर्वहारा बहुतायात से थे, और कुछ विशुद्ध देहाती इलाकों से भी मेन्शेविक भेजे गये थे।

कॉमरेड स्तालिन ने कांग्रेस के नतीजों का सार देते हुए कहा था :

> "यह स्पष्ट है कि बोल्शेविकों की कार्यनीति बड़े उद्योग–धंधों के सर्वहारा वर्ग की कार्यनीति है, उन इलाकों की कार्यनीति है जहाँ वर्ग–विरोध खास तौर से साफ़ है और वर्ग–संघर्ष खास तौर से तीखा है। बोल्शेविज़्म सच्चे सर्वहारा वर्ग की कार्यनीति है। दूसरी तरफ, यह भी कम स्पष्ट नहीं है कि मेन्शेविकों की कार्यनीति मुख्यतः दस्तकारों और अर्द्ध–सर्वहारा किसानों की कार्यनीति है, जहां वर्ग–विरोध बहुत साफ़ नहीं है और वर्ग–संघर्ष छिपा हुआ है। मेन्शेविज़्म सर्वहारा वर्ग के अन्दर अर्द्ध–पूंजीवादी लोगों की कार्यनीति है। आंकड़े यही कहते हैं।" (***रू•सो•डे•ले•पा• की पांचवी कांग्रेस की शब्दशः रिपोर्ट,*** रू•सं• 1935, पृष्ठ 11–12)।

जब ज़ार ने पहली दूमा भंग की तो उसे उम्मीद थी कि दूसरी दूमा ज्यादा ताबेदार होगी। लेकिन, दूसरी दूमा ने भी उसकी उम्मीदों पर पानी फेर दिया। इस पर, ज़ार ने उसे भी भंग कर देने का फैसला किया। उसने ज्यादा संकुचित मताधिकार की बुनियाद पर, तीसरी दूमा बुलाने का निश्चय किया। उसे आशा थी कि यह दूमा ज्यादा आज्ञाकारी साबित होगी।

पाँचवीं कांग्रेस के कुछ ही दिन बाद, ज़ार सरकार ने 3 जून को **बलपूर्वक सत्ताहरण किया**। 3 जून 1907 को, ज़ार ने दूसरी राज्य दूमा को भंग कर दिया। दूमा के सोशल–डेमोक्रैटिक गुट के 65 प्रतिनिधि गिरफ्तार कर लिये गये और साइबेरिया में निर्वासिक कर दिये गये। एक नया चुनाव–कानून चालू किया गया। मजदूरों और किसानों के अधिकार और भी सीमित कर दिये गये। ज़ार सरकार ने अपना हमला जारी रखा।

ज़ार के मंत्री स्तोलिपिन ने मज़दूरों और किसानों के खिलाफ़ खूनी बदला लेने की मुहीम और तेज़ की। सज़ा देने वाले दस्तों ने हज़ारों क्रान्तिकारी मजदूरों और किसानों को गोली से उड़ा दिया, या फांसी पर लटका दिया। ज़ार की कालकोठरियों में क्रान्तिकारियों को मानसिक और शारीरिक रूप से तिलतिल कर मारा गया। मजदूर

संगठनों, खास तौर से बोल्शेविकों पर, दमन चक्र बहुत ही बर्बरता से चला। ज़ार के कुत्ते लेनिन को ढूंढ़ रहे थे, जो उस समय फ़िनलैंड में छिपे हुये थे। वे क्रांति के नेता से बैर निकालना चाहते थे। दिसम्बर 1907 में, लेनिन भारी खतरा उठा कर विदेश जा सके और फिर निर्वासित हो गये।

स्तोलिपिन, प्रतिक्रियावाद का दुस्समय आरंभ हो गया।
इस तरह, पहली रूसी क्रान्ति का अंत पराजय में हुआ।
जिन कारणों से यह पराजय हुई, वे इस प्रकार थे :

(1) क्रान्ति में ज़ारशाही के खिलाफ़ अभी मज़दूरों और किसानों का पक्का सहयोग कायम न हुआ था। किसानों ने जमींदारों के खिलाफ़ विद्रोह किया और वे उनके विरुद्ध मज़दूरों से सहयोग करने के लिये तैयार थे। लेकिन, उन्होंने अभी यह महसूस न किया था कि जब तक ज़ार का तख्ता न उल्टा जायेगा, तब तक जमींदारों को नहीं पछाड़ा जा सकता। उन्होंने यह महसूस न किया था कि ज़ार और जमींदारों की मिलीभगत है। किसानों की बहुत बड़ी तादाद को अब भी ज़ार में विश्वास था और उनकी आशायें ज़ारशाही राज्य दूमा पर लगी हुई थी। यही सबब है कि किसानों का काफी हिस्सा ज़ारशाही का खात्मा करने के लिये, मजदूरों से सहयोग करने के लिये अनिच्छुक था। किसानों को समझौता परस्त समाजवादी क्रान्तिकारियों पर ज्यादा भरोसा था और सच्चे क्रांतिकारियों पर – बोल्शेविकों पर – कम था। इसका नतीजा यह हुआ कि जमींदारों के खिलाफ़ किसानों का संघर्ष काफ़ी संगठित न था। लेनिन ने कहा था :

> "...किसानों की कार्यवाही बहुत ही बिखरी हुई, बहुत ही असंगठित और नाक़ाफी तौर से हमलावर थी; और क्रान्ति की पराजय का यह एक **बुनियादी कारण था**।" (***लेनिन ग्रन्थावली रूसी संस्करण, खण्ड*** 19, पृष्ठ 354)।

(2) किसानों का काफी बड़ा हिस्सा ज़ारशाही का खात्मा करने के लिये मज़दूरों से सहयोग करने में अनिच्छुक था; उसका असर फ़ौज़ के व्यवहार पर भी पड़ा। फ़ौज में ज्यादातर सिपाहियों की वर्दी पहने हुए किसानों के बेटे थे। ज़ार की फ़ौज के कई दस्तों में असंतोष और विद्रोह फूट पड़ा लेकिन अधिकांश सैनिकों ने अब भी मज़दूरों की हड़तालें और विद्रोह दबाने में ज़ार की मदद की।

(3) मजदूरों की कार्यवाही भी काफ़ी सुगठित न थी। मजदूर वर्ग के आगे बढ़े हुए हिस्सों ने 1905 में वीरतापूर्ण क्रान्तिकारी संघर्ष शुरु किया। ज्यादा पिछड़े हुए हिस्से – उन सूबों के मजदूर जहाँ का औद्योगीकरण कम हुआ था, वे लोग जो गाँव

में रहते थे – कार्यवाही में और विलम्ब से आये। क्रान्तिकारी संघर्ष में वे 1906 में ज्यादा सक्रिय रूप से हिस्सा लेने लगे, लेकिन उस समय तक मजदूर वर्ग का हिरावल काफी कमजोर हो चुका था।

(4) मजदूर वर्ग क्रान्ति की पहली और प्रमुख शक्ति था; लेकिन मजदूर वर्ग की पार्टी की सफ़ों में आवश्यक एकता और दृढ़ता का अभाव था। रू•सो•डे•ले•पा• – मजदूर वर्ग की पार्टी – दो दलों में बँटी हुई थी : बोल्शेविक और मेन्शेविक। बोल्शेविक सुसंगत क्रान्तिकारी लाइन पर चलते थे। उन्होंने ज़ारशाही का खात्मा करने के लिये मज़दूरों का आह्वान किया था। मेन्शेविकों ने अपनी समझौतापरस्त कार्यनीति से क्रान्ति में बाधा डाली, मजदूरों की बड़ी तादाद के मन में उलझन पैदा कर दी और मजदूर वर्ग में फूट डाली। इसलिये, मजदूरों ने क्रान्ति में हमेशा एकजुट होकर काम नहीं किया। खुद अभी अपनी पाँति में एकता न होने की वजह से, मजदूर वर्ग क्रान्ति का सच्चा नेता न बन सका।

(5) निरंकुश ज़ारशाही को 1905 की क्रान्ति का दमन करने में पच्छिमी यूरोप के साम्राज्यवादियों से मदद मिली। विदेशी पूंजीपति रूस में लगाई हुई पूंजी और अपने भारी मुनाफ़ों के लिये चिन्तित थे। इसके सिवा, उन्हें डर था कि अगर रूसी क्रान्ति सफल हुई तो दूसरे देशों के मजदूर भी क्रान्ति करने के लिये उठ खड़े होंगे। इसलिये, पच्छिमी यूरोप के साम्राज्यवादी जल्लाद ज़ार की मदद के लिये आ गये। फ्रांस के बैंक–साहूकारों ने क्रान्ति को दबाने के लिये ज़ार को भारी रक़म उधार दी। जर्मनी का कैसर रूसी ज़ार की मदद के लिये दखलन्दाजी करने को एक बड़ी फौज़ तैयार रखता था।

(6) सितम्बर 1905 में, जापान से शान्ति–सन्धि हो जाने पर ज़ार को काफी मदद मिली। लड़ाई में हार और क्रान्ति की खतरनाक बढ़ती से, ज़ार को संधि करने में जल्दी करनी पड़ी। युद्ध में हारने से, ज़ारशाही कमजोर हुई। संधि होने से, ज़ार का पाया मजबूत हुआ।

सारांश

पहली रूसी क्रान्ति हमारे देश के विकास में एक पूरी ऐतिहासिक मंजिल थी। इस ऐतिहासिक मंजिल के दो दौर थे। पहला दौर वह था जब अक्तूबर की आम हड़ताल से क्रान्ति का ज्वार उठा और दिसम्बर के सशस्त्र विद्रोह तक पहुँच गया। इस समय क्रान्ति के ज्वार ने ज़ार की कमजोरी से फायदा उठाया, जो मंचूरिया के युद्ध क्षेत्रों में हार खा चुका था। कमजोरी से फायदा उठा कर बुलिगिन–दूमा रास्ते से हटा दी गयी और ज़ार से एक के बाद दूसरी रियायतें हासिल की गयीं। दूसरा दौर वह था जब ज़ारशाही ने, जापान के साथ संधि करने के बाद संभल कर, उदार पूंजीपतियों के क्रान्ति से डरने का फायदा उठाया, किसानों के ढुलमुलपन का फायदा उठाया, वित्ते–दूमा के रूप में उनके सामने एक टुकड़ा डाला और मजदूर वर्ग के खिलाफ़, क्रान्ति के खिलाफ़ हमला शुरु किया।

क्रान्ति के तीन वर्षों की छोटी अवधि (1905–07) में ही, मजदूर वर्ग और किसानों ने इतनी भरपूर राजनीतिक शिक्षा प्राप्त की जैसी उन्हें साधारण शान्तिपूर्ण विकास के तीस वर्षों में भी न मिल सकती थी। क्रान्ति के थोड़े ही वर्षों ने वे सब बातें स्पष्ट कर दीं जो बीसों वर्षों के शान्तिमय विकास के दौर में न हो सकती थीं।

क्रान्ति ने दिखला दिया कि ज़ारशाही जनता की कट्टर दुश्मन है, कि ज़ारशाही कहावतों के उस कुबड़े की तरह है जिसकी पीठ क़ब्र में सीधी होती है।

क्रान्ति ने दिखला दिया कि उदारपंथी पूंजीपति ज़ार से, न कि जनता से, सहयोग करने की फ़िक्र में हैं। वे एक क्रान्ति–विरोधी शक्ति हैं, जिनसे समझौता करना जनता से गद्दारी करने के समान है।

क्रान्ति ने दिखला दिया कि सिर्फ़ मजदूर वर्ग पूंजीवादी जनवादी क्रान्ति का नेता हो सकता है। सिर्फ़ मजदूर वर्ग उदारपंथी कॉन्स्टीट्यूशनल डेमोक्रैटिक पूंजीपतियों को बलपूर्वक हटा सकता है, किसानों पर उनका असर खत्म कर सकता है और जमींदारों को खदेड़ सकता है, क्रान्ति को आखिरी मंजिल तक पहुँचा सकता और समाजवाद के लिये रास्ता साफ़ कर सकता है।

अंत में, क्रान्ति ने दिखला दिया कि मेहनतकश किसान ही, ढुलमुलपन के बावजूद भी, वह महत्वपूर्ण शक्ति हैं जो मजदूर वर्ग के साथ सहयोग कर सकते हैं।

क्रान्ति के दौरान में, रू•सो•डे•ले•पा• के अन्दर दो लाइनें एक दूसरे से टक्कर ले रही थीं। एक लाइन बोल्शेविकों की थी और दूसरी लाइन मेन्शेविकों की। बोल्शेविकों

का रास्ता क्रान्ति को फैलाने का रास्ता था, सशस्त्र विद्रोह के जरिये ज़ारशाही के खात्मे, मजदूर वर्ग के एकछत्र नेतृत्व, कॉन्स्टीट्यूशनल डेमोक्रैटिक पूंजीपतियों को अकेले करने, किसानों से सहयोग, मजदूरों और किसानों के प्रतिनिधियों से बनी हुई अस्थायी क्रान्तिकारी हुकूमत के निर्माण, क्रान्ति को जीत की मंजिल तक ले जाने का रास्ता था। दूसरी तरफ, मेन्शेविकों का रास्ता क्रान्ति के विसर्जन का रास्ता था। विद्रोह के जरिये ज़ारशाही का तख्ता उलटने के बदले, उन्होंने उसे सुधारने और 'उन्नत करने' का प्रस्ताव रखा। सर्वहारा वर्ग के एकछत्र नेतृत्व के बदले, उन्होंने उदारपंथी पूंजीपतियों के एकछत्र नेतृत्व का प्रस्ताव रखा। किसानों से सहयोग के बदले, उन्होंने कॉन्स्टीट्यूशनल डेमोक्रैटिक पूंजीपतियों से सहयोग का प्रस्ताव रखा। अस्थायी क्रान्तिकारी सरकार के बदले, उन्होंने राज्य दूमा का प्रस्ताव रखा, जो देश की 'क्रांतिकारी शक्तियों' का केन्द्र बने।

इस तरह, मेन्शेविक समझौते के दलदल में फँसते गये और मजदूर वर्ग पर पूंजीवादी असर के साधन बने, वे मजदूर वर्ग के अन्दर वस्तुतः पूंजीपतियों के दलाल बन गये।

बोल्शेविक ही पार्टी के अन्दर और देश में क्रान्तिकारी मार्क्सवादी शक्ति साबित हुए।

यह स्वाभाविक था कि ऐसे गंभीर मतभेद होने की वजह से रू•सो•डे•ले•पा• दरअसल दो पार्टियों में बंटी हुई साबित हुई – बोल्शेविकों की पार्टी और मेन्शेविकों की पार्टी। चौथी पार्टी कांग्रेस ने पार्टी की वास्तविक अन्दरूनी हालत में कोई तब्दीली न की। उसने सिर्फ़ पार्टी की ऊपरी एकता कायम रखी और उसे कुछ–कुछ मजबूत किया। पांचवी पार्टी कांग्रेस ने पार्टी में **वास्तविक एकता** की तरफ **एक कदम** उठाया, ऐसी एकता जो बोल्शेविक झण्डे के नीचे हासिल की गयी थी।

क्रान्तिकारी आन्दोलन का मूल्यांकन करते हुए, पाँचवी पार्टी कांग्रेस ने मेन्शेविक लाइन को सेमझौते की लाइन कहकर उसकी निन्दा की और बोल्शेविक लाइन को क्रान्तिकारी मार्क्सवादी लाइन कहकर उसका समर्थन किया। ऐसा करके, उसने उसी बात को पक्का किया जिसे पहली रूसी क्रान्ति की समूची प्रगति ने पक्का किया था।

क्रान्ति ने दिखला दिया कि बोल्शेविक परिस्थिति की मांग पर आगे बढ़ना जानते हैं, कि उन्होंने अगली पांति में आगे बढ़ना और हमले में समूची जनता का नेतृत्व करना सीख लिया है; लेकिन क्रान्ति ने यह भी दिखलाया कि जब परिस्थिति प्रतिकूल हो

जाये जब क्रान्ति का बेग मन्द पड़ जाये तब बोल्शेविक व्यवस्थित ढंग से पीछे हटना जानते हैं, कि बोल्शेविकों ने उचित रूप से बिना भगदड़ या हड़बड़ाहट के पीछे हटना सीख लिया है, जिससे कि वे अपने कार्यकर्ताओं को बनाये रख सकें, अपनी शक्तियों को बटोर सकें और नयी परिस्थिति के अनुसार अपनी पांति फिर से जोड़कर एक बार फिर दुश्मन पर धावा बोल सकें।

बिना यह जाने हुए कि सही तौर पर हमला कैसे करना चाहिये, दुश्मन को हराना असंभव है।

बिना यह जाने हुए कि सही तौर पर कैसे पीछे हटना चाहिये, कैसे बिना भगदड़ और हड़बड़ाहट के पीछे हटना चाहिये, हार होने पर सत्यानाश से बचना असंभव है।

चौथा अध्याय

स्तोलिपिन प्रतिक्रियावाद के दौर में मेन्शेविक और बोल्शेविक। बोल्शेविकों द्वारा स्वतंत्र मार्क्सवादी पार्टी का निर्माण। (1908–1912)

1. स्तोलिपिन प्रतिक्रियावाद। विरोधी बुद्धिजीवियों में फूट। पतन। पार्टी के बुद्धिजीवियों के एक हिस्से का मार्क्सवाद के दुश्मनों से जाकर मिलना और मार्क्सवाद के सिद्धांत में संशोधन करने के प्रयत्न। लेनिन द्वारा अपनी पुस्तक 'भौतिकवाद और अनुभवसिद्ध आलोचना' में संशोधनवादियों का खण्डन और मार्क्सवादी पार्टी के सैद्धांतिक आधारों का समर्थन।

ज़ार सरकार ने 3 जून 1907 को, दूसरी राज्य दूमा भंग कर दी। इतिहास में इसे आम तौर से 3 जून का **बलपूर्वक सत्ताहरण** कहते हैं। ज़ार सरकार ने तीसरी राज्य दूमा के चुनाव के लिये एक नया कानून बनाया। इस तरह, उसने 17 अक्तूबर के खुद अपने घोषणापत्र को तोड़ा, जिसमें कहा गया था कि दूमा की सहमति से ही नये कानून जारी किये जा सकेंगे। दूसरी दूमा के सोशल–डेमोक्रेटिक गुट के सदस्यों पर मुकदमा चलाया गया। मज़दूर वर्ग के प्रतिनिधियों को सख्त मेहनत और निर्वासन का दण्ड मिला।

नये चुनाव–कानून का मसौदा इस तरह तैयार किया गया कि दूमा में जमींदारों और व्यापारी और औद्योगिक पूंजीपतियों के प्रतिनिधियों की तादाद काफ़ी बढ़ जाये।

इसके साथ ही, किसानों और मजदूरों का प्रतिनिधित्व, जो पहले ही कम था, अब पहले की संख्या का बहुत ही छोटा सा अंश कर दिया गया।

तीसरी दूमा में यमराज सभाओं और कॉन्स्टीट्यूशनल डेमोक्रेटों की बहुतायत थी। कुल 442 प्रतिनिधियों में, 171 दक्षिण पंथी (यमराज सभा वाले), 113 अक्तूबर पंथी या इन्हीं जैसे गुटों के सदस्य, 101 कॉन्स्टीट्यूशनल डेमोक्रेटों या इन्हीं जैसे गुटों के सदस्य, 13 त्रुदोविक और 18 सोशल–डेमोक्रैट थे।

दक्षिण पंथी (दूमा में दाहिनी तरफ़ बैठने की वजह से उनका यह नाम पड़ा था) मजदूरों और किसानों के सबसे कट्टर दुश्मनों – यमराज सभा वाले सामंती जमींदारों – के प्रतिनिधि थे। इन कट्टर दुश्मनों ने किसान आन्दोलन का दमन करते हुए, किसानों को सामूहिक तौर से बेतों से पीटा और गोलियों से उड़ाया था। ये यहूदियों के कत्लेआम, प्रदर्शनकारी मजदूरों को पीटने, क्रांति के दौर में सभा–स्थलों को बर्बरता से जलाने के संगठनकर्ता थे। दक्षिण पंथियों का मत था कि मेहनतकश जनता का खूब कठोरता से दमन किया जाये और ज़ार के पास अपरिमित अधिकार हों। 17 अक्तूबर 1905 के ज़ार के घोषणापत्र का वे विरोध करते थे।

अक्तूबर पंथी पार्टी, या 17 अक्तूबर का यूनियन, दूमा में दक्षिण पंथियों का निकट अनुवर्ती था। अक्तूबर पंथी बड़ी औद्योगिक पूंजी के हितों और पूंजीवादी ढंग से अपनी रियासतें चलाने वाले बड़े जमींदारों के हितों के प्रतिनिधि थे (1905 की क्रांति के आरंभ में बड़े जमींदारों की एक भारी तादाद जो पहले कॉन्स्टीट्यूशनल डेमोक्रेटिक पार्टी में थी, अक्तूबर पंथियों की ओर हो गयी)। अक्तूबर पंथियों को जो बात दक्षिण पंथियों से अलग जाहिर करती थी, वह 17 अक्तूबर के घोषणापत्र की स्वीकृति – वह भी सिर्फ शब्दों में – थी। अक्तूबर पंथी ज़ार सरकार की घरेलू और वैदेशिक नीति का पूरी तरह समर्थन करते थे।

पहली और दूसरी दूमा के मुकाबिले में, कॉन्स्टीट्यूशनल डेमोक्रेटिक पार्टी को तीसरी दूमा में कम सीटें मिलीं। इसका सबब यह था कि जमींदारों के वोट का एक हिस्सा कॉन्स्टीट्यूशनल, डेमोक्रेटिक के बदले अक्तूबर पंथियों को मिल गया था।

तीसरी दूमा में मध्यवित्त जनवादियों का एक छोटा गुट था, जिसे त्रुदोविक कहते थे। वे कॉन्स्टीट्यूशनल डेमोक्रेटों और लेबर–डेमोक्रेटों (बोल्शेविकों) के बीच में फिसलते रहते थे। लेनिन ने बतलाया था कि हालांकि त्रुदोविक दूमा में बहुत ही कमज़ोर थे, फिर भी वे **आम जनता के**, किसान जनता के प्रतिनिधि थे। कॉन्स्टीट्यूशनल डेमोक्रेटों और लेबर–डेमोक्रेटों के बीच त्रुदोविकों का फिसलना, छोटे मालिकों की वर्ग–स्थिति

का लाजिमी नतीजा था। लेनिन ने बोल्शेविक प्रतिनिधियों, लेबर–डेमोक्रेटों के सामने यह काम रखा कि वे "कमजोर मध्यवित्त जनवादियों की मदद करें, उन्हें उदार पंथियों के असर से निकाल लें, सिर्फ दक्षिण पंथियों के खिलाफ नहीं, बल्कि क्रांति–विरोधी कॉन्स्टीट्यूशनल डेमोक्रेटों के खिलाफ भी जनवादी खेमें को बटोरें...।" (लेनिन ***सं•ग्र•,*** अं•सं•, मास्को, 1947, खण्ड1, पृ• 535)।

1905 की क्रांति के दौर में, और उसकी हार के बाद खास तौर से, कॉन्स्टीट्यूशनल डेमोक्रेटों ने दिन पर दिन जाहिर कर दिया कि वे एक क्रांति–विरोधी शक्ति हैं। अधिकाधिक अपनी 'जनवादी' नकाब उतारते हुए, वे वस्तुतः सम्राटवादियों की तरह, ज़ारशाही के समर्थकों की तरह, काम करने लगे। 1909 में, प्रमुख कॉन्स्टीट्यूशनल डेमोक्रेट लेखकों के एक गुट ने एक लेख–संग्रह छापा, जिसका नाम था ***वेखी (मार्ग–चिन्ह)***। इसमें पूंजीपतियों की तरफ से उन्होंने ज़ार का शुक्रिया अदा किया कि उसने क्रान्ति को कुचल दिया है। लाठी और फांसी की सरकार ज़ार की हुकूमत के सामने घुटने टेकते हुए और जीभ निकालते हुए, कॉन्स्टीट्यूशनल डेमोक्रैटों ने इस किताब में सीधे–सीधे लिख दिया कि "हमें इस सरकार की जय मनानी चाहिये, जो अपनी संगीनों और जेलों की बदौलत जनता के क्रोध से हमारी (उदार पंथी पूंजीपतियों की) एकमात्र रक्षक है।"

दूसरी राज्य दूमा भंग करने के बाद और दूमा के सोशल–डेमोक्रेटिक गुट का ठिकाना लगाने के बाद, ज़ार सरकार जोश के साथ सर्वहारा वर्ग के राजनीतिक और आर्थिक संगठनों को तोड़ने में लग गयी। सख्त मेहनत के जेलखाने, किले और निर्वासन की जगहें क्रांतिकारियों से ठसाठस भर गयीं। जेलखानों में वे निर्दयता से पीटे जाते थे और उन्हें तरह–तरह से यंत्रणा और यातनायें दी जाती थीं। यमराज सभाओं का आतंक बेरोकटोक जारी रहा। ज़ार के मंत्री स्तोलिपिन ने सारे देश में फांसी के तख्ते लगा दिए। कई हज़ार क्रांतिकारियों को मार डाला गया। उन दिनों फांसी का नाम 'स्तोलिपिन की नैकटाई' पड़ गया था।

मजदूरों और किसानों के क्रांतिकारी आन्दोलन को कुचलने की कोशिश में, ज़ार सरकार अपना काम दमन, सज़ा के दस्ते, गोलीकाण्ड, जेल और सख्त मेहनत की सज़ाओं तक सीमित न रख सकी। उसने भय के साथ महसूस किया कि 'छोटे पिता, ज़ार' में किसानों की भोली भाली श्रद्धा बराबर खत्म हो रही है। इसलिये, उसने एक बड़ा पैंतरा चलने का विचार किया। उसने अपने लिये देहात में ग्रामीण पूंजीपतियों के बड़े वर्ग, धनी किसानों, में अपने लिये दृढ़ समर्थक पैदा करने की सोची।

9 नवम्बर 1906 को, स्तोलिपिन ने एक नया खेती का कानून बनाया, जिससे कि किसान कम्यून छोड़ सकते थे और अलग खेती कर सकते थे। स्तोलिपिन के

कृषि–कानून ने सामूहिक भूमि–अधिकार की व्यवस्था तोड़ दी। किसानों से कहा गया कि वे अपने हिस्सों पर निजी सम्पत्ति की तरह अधिकार कर लें और कम्यूनों से अलग हो जायें। अब वे अपने हिस्से बेच सकते थे, जिसके लिये पहले उन्हें आज्ञा न थी। जब किसान अपना कम्यून छोड़ता था, तब कम्यून इसके लिये वाध्य था कि ज़मीन का एक मिला–जुला टुकड़ा ***(खुतोर, अत्रूब)*** उसे दे।

धनी किसानों – कुलकों – को अब अवसर मिला कि कम कीमत पर गरीब किसानों की ज़मीन खरीद लें। कुछ ही साल कानून चालू हुआ था कि दस लाख से ऊपर गरीब किसान अपनी ज़मीन से पूरी तरह हाथ धो बैठे और एकदम तबाह हो गये। जैसे–जैसे ग़रीब किसानों के हाथ से उनकी ज़मीन गयी, वैसे–वैसे कुलकों के खेत बढ़ने लगे। कहीं–कहीं पर बाकायदा रियासतें बन गयीं, जहां बड़े पैमाने पर किराये की मज़दूरी – खेत मजदूरों – से काम कराया जाता था। सरकार किसानों को मजबूर करती थी कि कम्यून की सबसे अच्छी जमीन कुलक किसानों को दी जाये।

किसानों की 'मुक्ति' के दौरान में, जमींदारों ने किसानों से उनकी जमीन लूट ली थी। अब कुलक कम्यूनों से उनकी जमीन लूटने लगे। वे सबसे अच्छी जमीन पाने लगे और कम कीमत पर गरीब किसानों के हिस्से खरीदने लगे।

ज़ार सरकार ने जमीन खरीदने के लिये और अपने खेत सुसज्जित करने के लिये कुलकों को भारी रकमें उधार दीं। स्तोलिपिन चाहता था कि कुलक छोटे जमींदार बन जायें, निरंकुश ज़ारशाही के वफादार समर्थक बन जायें।

1906–'15 तक, नौ वर्षों में ही बीस लाख से ऊपर कुटुम्ब कम्यूनों से अलग हुए।

जिन किसानों के पास ज़मीन के छोटे हिस्से आये थे, उनकी और ग़रीब किसानों की हालत स्तोलिपिन की नीति के फलस्वरूप पहले से भी बदतर हो गयी। किसानों में अलगाव की प्रक्रिया और स्पष्ट दिखाई देने लगी। किसान कुलकों से टक्कर लेने लगे।

इसके साथ ही, किसानों ने अनुभव किया कि वे रियासती जमीन पर तब तक क़ब्जा न पायेंगे जब तक कि ज़ार सरकार, जमींदारों और कॉन्स्टीट्यूशनल डेमोक्रेटों की राज्य दूमा बनी रहेगी।

जिस समय एक बड़ी तादाद में कुलक फ़ार्म बन रहे थे, उस समय (1907–'09) किसान आन्दोलन मन्द पड़ने लगा था। लेकिन तुरंत बाद ही, 1910, 1911 में और

उसके बाद गांव के कम्यून के सदस्यों और कुलकों की टक्करों की वजह से जमींदारों और कुलकों के खिलाफ किसान आन्दोलन की तेज़ी बढ़ गयी।

क्रान्ति के बाद, उद्योग–धंधों में भी बड़े परिवर्तन हुए। उद्योग–धंधों का केन्द्रीयकरण, यानी दिन पर दिन शक्तिशाली, बनते हुए पूंजीवादी गुटों के हाथ में उद्योग–धंधों का केन्द्रीयकरण और कारखानों का विशाल बनना, और तेज़ी के साथ हुआ। 1905 की क्रांति के पहले भी, पूंजीपति इस उद्देश्य से संघ बनाने लगे थे कि देश में चीजों का भाव ऊंचा किया जाये और इस तरह जो भारी मुनाफे मिलें उनसे निर्यात व्यापार में बढ़ती की जाये। इस तरह, वे चाहते थे कि विदेश में कम कीमत पर अपना माल भर दें और विदेशी बाज़ारों पर क़ब्जा कर लें। पूंजीपतियों के ये संघ (मोनोपली), ट्रस्ट और सिण्डिकेट कहलाते थे। क्रांति के बाद, उनकी संख्या और भी बढ़ गयी। बड़े बैंकों की तादाद में भी बढ़ती हुई। उद्योग–धंधों में इनकी भूमिका और महत्वपूर्ण हो गयी। रूस में विदेशी पूंजी का आयात बढ़ गया।

इस तरह, रूस में पूंजीवाद बढ़ते हुए पैमाने पर इज़ारेदार पूंजीवाद, साम्राज्यवादी पूंजीवाद बन रहा था। कई साल के गतिरोध के बाद, उद्योग–धंधे फिर से चेतने लगे। कोयला, धातुएं, तेल, सूती कपड़ा और शक्कर की पैदावार बढ़ गयी। गल्ले का निर्यात व्यापार बहुत बड़े पैमाने पर होने लगा।

हालांकि रूस ने इस समय कुछ औद्योगिक उन्नति की, फिर भी पच्छिमी यूरोप के मुकाबिले में वह पिछड़ा हुआ था और अब भी विदेशी पूंजीपतियों पर निर्भर था। रूस मशीनें और मशीनों के पुर्जे न बनाता था – वे बाहर से मंगवाये जाते थे। उसके पास मोटरों के या रसायन के धंधे न थे। नकली खाद भी वहां तैयार न होती थी। लड़ाई का सामान तैयार करने में भी रूस दूसरे पूंजीवादी देशों से पिछड़ा हुआ था।

लेनिन ने बतलाया था कि धातुओं के खर्च के स्तर का नीचा होना देश के पीछड़े होने की निशानी है। लेनिन ने लिखा था :

> "किसानों की मुक्ति के बाद, पचास साल में रूस में लोहे का खर्च 5 गुना बढ़ा है। फिर भी, रूस अभूतपूर्व ढंग से और अविश्वसनीय रूप से पिछड़ा हुआ निर्धन और अर्द्ध–संस्कृत है। इंग्लैंड के मुकाबिले में, पैदावार के आधुनिक साधन उसके पास एक चौथाई है, जर्मनी के मुकाबिले में 1/5 और अमरीका के **मुकाबिले** में 1/10 है।" (*लेनिन ग्रंथावली*, रू•सं•, खण्ड 16, पृष्ठ 543)।

रूस के आर्थिक और राजनीतिक रूप से पिछड़े होने का एक सीधा परिणाम यह था कि रूसी पूंजीवादी और खुद ज़ारशाही दोनों ही पच्छिमी यूरोप के पूंजीवाद पर निर्भर थे।

यह इस बात से ज़ाहिर होता था कि ऐसे महत्वपूर्ण उद्योग–धंधे जैसे कि कोयला, तेल, बिजली का सामान और धातुओं की पैदावार – ये सब विदेशी पूंजी के हाथ में थे। ज़ारशाही रूस को अपने लिये लगभग सभी मशीनें और मशीनों का सामान बाहर से मंगवाना पड़ता था।

यह इससे भी ज़ाहीर होता था कि विदेशी ऋण की बेड़ी पड़ी हुई थी। इस ऋण का ब्याज देने के लिये, ज़ारशाही हर साल जनता से करोड़ों रूबल दुह लेती थी।

इसके अलावा, यह इस बात से ज़ाहिर होता था कि रूस के 'मित्रों' से गुप्त संधियां की गयी थीं जिनसे ज़ार सरकार ने वायदा किया था कि लड़ाई होने पर लाखों रूसी सिपाही साम्राज्यवादी मोर्चों पर 'मित्रों' की मदद के लिये और अंग्रेज और फ्रांसीसी पूंजीपतियों के भारी मुनाफों की रक्षा करने के लिये पहुंच जायेंगे।

स्तोलिपिन प्रतिक्रियावाद के दौर में, हथियारबन्द सिपाहियों और पुलिस ने खास तौर से मज़दूर वर्ग पर खूंखार हमले किये। ज़ार के उकसावा पैदा करने वाले जासूसों ने और यमराज सभा के गुण्डों ने हमले किये। लेकिन, अकेले ज़ार के लगुओं–भगुओं ने ही मजदूरों को परेशान नहीं किया और सताया बल्कि इस मामले में कारखानेदारों और मिलमालिकों ने भी कम जोश नहीं दिखलाया। औद्योगिक गतिरोध और बढ़ती हुई बेकारी के दिनों में मजदूर वर्ग के खिलाफ़ इनके हमले ने खास तौर से जोर पकड़ा। कारखानेदारों ने तालेबन्दी का ऐलान किया और वर्ग चेतन मजदूरों की, जो हड़तालों में सक्रीय हिस्सा लेते थे, काली फ़ेहरिस्तें बनाई। एक बार आदमी का नाम इन फ़ेहरिस्तों में आ जाये तो किसी खास धंधे के कारखानेदारों के संघ के कारखाने में उसे काम न मिल सकता था। 1908 में ही, तनख्वाह में दस से पन्द्रह फ़ीसदी तक कटौती हुई। हर जगह काम के घण्टे 10 से 12 तक बढ़ा दिए गये। भारी जुर्माने करने की प्रथा फिर ज़ोरों से चल पड़ी।

1905 की क्रांति की पराजय से, क्रांति के सहयात्रियों की पांति में विघटन और पतन का सिलसिला शुरू हो गया। खास तौर से बुद्धिजीवियों में अस्वस्थ और पतनशील रुझान बढ़ चले। जो सहयात्री पूंजीवादी खेमें से क्रांति की उठान के दिनों में आन्दोलन के साथ आ गये थे, वे प्रतिक्रियावाद के दिनों में पार्टी से अलग हो गये। उनमें से कुछ ने क्रांति के खुले दुश्मनों का साथ दिया। दूसरे लोग अब तक

के बचे–खुचे क़ानूनी तौर से चलने वाले मजदूर वर्ग के सभा–समाजों में जम गये। वे कोशिश करने लगे कि सर्वहारा वर्ग को क्रान्ति के रास्ते से हटा दें और सर्वहारा वर्ग की क्रांन्तिकारी पार्टी को बदनाम करें। क्रांति का साथ छोड़ कर, सहयात्री कोशिश करने लगे कि वे प्रतिक्रियावादियों के स्नेहभाजन बनें और ज़ारशाही के साथ शान्ति का सम्बन्ध कायम करके दिन बितायें।

ज़ार सरकार ने क्रान्ति की हार से फायदा उठाकर, क्रांति के सहयात्रियों में से जो ज्यादा कायर और स्वार्थी थे, उन्हें अपना उकसावा पैदा करने वाला जासूस बनाया। ये नीच गद्दार ज़ार की ***ओखराना*** की तरफ से मजदूर वर्ग और पार्टी–संगठनों में भेजे जाते थे, जहां वे भीतर घुस कर जासूसी करते थे और क्रांतिकारियों को पकड़वा देते थे।

क्रांति–विरोध का हमला सैद्धान्तिक मोर्चे पर भी हुआ। ऐसे फ़ैशनेबिल लेखकों का पूरा गिरोह सामने आया जो मार्क्सवाद की 'आलोचना' करता था और उसका 'खण्डन' करता था। यह गिरोह क्रान्ति का मज़ाक बनाता था, उसकी खिल्लियां उड़ाता था, गद्दारी की तारीफ़ करता था और 'व्यक्तिवाद' के नाम पर कामुक दुराचार की तारीफ करता था।

दर्शन के क्षेत्र में मार्क्सवाद की 'आलोचना' करने और उसमें संशोधन करने की कोशिशें बढ़ती गयीं। अर्द्ध–वैज्ञानिक सिद्धांतों का नक़ाब ओढ़े, तरह–तरह के मज़हबी सुझाव भी सामने आये।

मार्क्सवाद की 'आलोचना' करना फ़ैशन में शामिल हो गया।

इन सभी सज्जनों का उद्देश्य एक ही था, हालांकि उनके लिबास अलग–अलग थे। वह उद्देश्य था – जनता को क्रान्ति के रास्ते से हटाना।

पतनशीलता और सन्देहवाद का असर पार्टी–बुद्धीजीवियों के एक हिस्से पर भी पड़ा। ये वे लोग थे जो अपने को मार्क्सवादी कहते थे, लेकिन मार्क्सवाद के कभी दृढ़ समर्थक न रहे थे। इनमें बुग्दानोव, बज़ारोव लूनाचार्स्की (जिसने 1905 में बोल्शेविकों का साथ दिया था), यूश्केविच और वलेन्तिनोव (ये दोनों मेन्शेविक थे) जैसे लेखक थे। इन्होंने एक तरफ़ तो अपनी आलोचना का हल्ला मार्क्सवादी सिद्धांत के दार्शनिक आधार, यानी द्वंद्वात्मक भौतिकवाद, के खिलाफ़ बोला और साथ ही दूसरी तरफ़ ऐतिहासिक विज्ञान के बुनियादी मार्क्सवादी उसूलों यानी ऐतिहासिक भौतिकवाद के खिलाफ़ बोला। आम तौर से जो आलोचना होती थी, उससे यह आलोचना इस बात में भिन्न थी कि वह खुलकर और मैदान में आकर न की जाती थी। वह नक़ाब डाल कर

और बेईमानी से मार्क्सवाद के बुनियादी उसूलों के 'समर्थन' के बहाने की जाती थी। ये लोग दावा करते थे कि मुख्यतः वे मार्क्सवादी हैं, लेकिन मार्क्सवाद को और 'उन्नत' करना चाहते हैं। वे उसे उन्नत करना चाहते थे, उसके कुछ बुनियादी उसूलों को निकाल कर। वास्तव में, वे मार्क्सवाद के विरोधी थे। उन्होंने उसके सैद्धांतिक आधार को कमज़ोर बनाने की कोशिश की, हालांकि वे बेईमानी से मार्क्सवाद का विरोधी होना मंजूर न करते थे। वे दुरंगी नीति से अपने को मार्क्सवादी कहते थे। इस बेईमानी से भरी हुई आलोचना का खतरा इस बात में था कि उससे पार्टी के साधारण सदस्य बरगलाये जा सकते थे और वे रास्ते से भटक सकते थे। मार्क्सवाद के सैद्धांतिक आधार को कमज़ोर बनाने के उद्देश्य से, यह आलोचना जितनी ही धूर्ततापूर्ण बनती गयी, उतनी ही वह पार्टी के लिये ज्यादा खतरनाक बनती गयी। कारण यह कि वह उतनी ही पार्टी के खिलाफ, क्रान्ति के खिलाफ, प्रतिक्रियावादियों के आम आन्दोलन से घुल–मिल गयी। कुछ बुद्धिजीवी, जो मार्क्सवाद से नाता तोड़ चुके थे, एक नया धर्म तक क़ायम करने का समर्थन करने लगे (ये लोग 'देवताओं को खोजने वाले' और 'देवताओं को बनाने वाले' कहलाये)।

मार्क्सवादियों के लिये यह बहुत जरूरी हो गया कि मार्क्सवादी सिद्धांत के प्रति इन गद्दारी करने वालों को मुंहतोड़ जवाब दिया जाये, उनके चेहरों से नक़ाब खींच ली जाये, पूरी तरह उनका पर्दाफाश किया जाये और इस तरह मार्क्सवादी पार्टी के सैद्धांतिक आधार की रक्षा की जाये।

उम्मीद की जा सकती थी कि प्लेखानोव और उसके मेन्शेविक दोस्त, जो अपने को 'उच्चकोटि का मार्क्सवादी सिद्धांतकर' समझते थे, यह काम उठायेंगे, लेकिन उन्होंने अखबारी किस्म के एक दो आलोचनात्मक टिप्पणियों के छर्रे दाग कर ही मैदान छोड़ देना ज्यादा अच्छा समझा।

1909 में प्रकाशित अपनी प्रसिद्ध कृति ***भौतिकवाद और अनुभवसिद्ध आलोचना*** में, यह काम लेनिन ने किया।

लेनिन ने लिखा था :

"छः महीने से भी कम में चार किताबें निकली हैं, जिनमें, मुख्यतः और करीब–करीब अकेले द्वंद्वात्मक भौतिकवाद पर हमले किये गये हैं। इनमें सबसे पहले बज़ारोव, बुग्दानोव, लूनाचार्स्की, बरमान, हेलफोण्ड, यूश्केविच और सुवोरोव का लेख–संग्रह है। इसका नाम है – ***मार्क्सीय दर्शन का*** (ज्यादा उचित होता कि मार्क्सीय दर्शन के 'खिलाफ') अध्ययन यह शीर्षक होता (पीतरबुर्ग,

1908)। दूसरी किताब यूश्केविच की ***भौतिकवाद और आलोचनात्मक यथार्थवाद*** है। तीसरी बरमान की ***आधुनिक ज्ञान–मीमांसा के प्रकाश में द्वंद्ववाद*** है, और चौथी वलैन्तिनोव की ***मार्क्सवाद की दार्शनिक रूपरेखा...*** । ये सभी लोग तीव्र राजनीतिक मतभेद होते हुए भी द्वंद्वात्मक भौतिकवाद का विरोध करने में एक हैं। इसके साथ ही, वे अपने को दर्शन में मार्क्सवादी भी कहते हैं! बरमान का कहना है कि एंगेल्स का द्वंद्ववाद 'रहस्यवाद' है। बज़ारोव ने चलते–फिरते कहा है कि "एंगेल्स के विचार पुराने पड़ गये हैं", मानों यह कोई स्वयंसिद्ध बात हो। इस तरह, मालूम होता है कि हमारे साहसी योद्धाओं ने भौतिकवाद का खण्डन कर दिया है। ये लोग गर्व के साथ 'आधुनिक ज्ञान–मीमांसा' 'नवीन दर्शन' (या 'पिछले दिनों का पौजिटिविज्म'), 'आधुनिक प्रकृति–विज्ञान के दर्शन', या 'बीसवीं सदी के प्रकृति–विज्ञान का दर्शन' का भी हवाला देते हैं। (लेनिन, ***"भौतिकवाद और अनुभवसिद्ध आलोचना"***, ***अं•सं•***, मास्को, 1947, पृष्ठ 9)।

लूनाचार्स्की ने अपने दोस्तों – दर्शन शास्त्र के संशोधनवादियों – की हिमायत में कहा था : "शायद हम भटक गये हैं, लेकिन रास्ता ढूंढ़ रहे हैं।" लेनिन ने लूनाचार्स्की को जवाब देते हुए कहा था :

"जहां तक मेरा सम्बन्ध है, मैं भी दर्शन शास्त्र में कुछ "ढूंढ रहा हूं।" इन टिप्पणियों (यानि ***भौतिकवाद और अनुभवसिद्ध आलोचना*** – सं•) में, मैंने अपने सामने यह काम रखा है कि इस बात का पता लगाऊं कि इन लोगों के सामने ऐसी कौन सी अड़चनें थीं जिनकी वजह से मार्क्सवाद के लिबास में इन्होंने जो कुछ पेश किया है, वह इतना उलझा हुआ, घपले में पड़ा हुआ और प्रतिक्रियावादी है कि उस पर विश्वास नहीं होता।" (***उप•***, पृष्ठ 10)।

वास्तव में लेनिन की किताब इस विनम्र कर्तव्य से बहुत आगे जा पहुंची। दरअसल, यह किताब बुग्दानोव, यूश्केविच, बज़ारोव और वलैन्तिनोव और उनके दर्शन–गुरुओं – अवेनारियस और माख – की आलोचना से बढ़ कर भी कुछ और है। ये दर्शन–गुरु कोशिश करते थे कि अपनी कृतियों में मार्क्सवादी भौतिकवाद के खिलाफ़ नफ़ीस और सुसंस्कृत भाववाद पेश करें। लेनिन की किताब में मार्क्सवाद के सैद्धांतिक आधार – द्वंद्वात्मक और ऐतिहासिक भौतिकवाद – का समर्थन भी है। एंगेल्स की मृत्यु से लेकर लेनिन की भौतिकवाद और अनुभवसिद्ध आलोचना के निकलने तक, इस समूचे ऐतिहासिक दौर में विज्ञान ने जो कुछ तत्व और महत्व की बातें ढूंढ निकाली थीं, और खास तौर से प्रकृती–विज्ञान ने ढूंढ निकाली थीं, उन सबसे लेनिन ने भौतिकवादी ढंग से आम नतीजे निकाल कर इस किताब में इकट्ठे किये थे।

इस किताब में रूसी अनुभवसिद्ध आलोचकों और उनके विदेशी गुरूओं की समुचित आलोचना करने के बाद, लेनिन ने दार्शनिक और सैद्धांतिक संशोधनवाद के बारे में निम्नलिखित नतीजे निकाले हैं :

(1) "मार्क्सवाद के लिबास में मार्क्सवाद को और भी चतुराई से झुठलाना, भौतिकवाद–विरोधी सिद्धान्तों को और भी चतुराई से पेश करना अर्थ शास्त्र में, कार्यनीति के सवालों पर और दर्शन शास्त्र में आम तौर से आधुनिक संशोधनवाद की यह विशेषता है।" (***उप.***, पृष्ठ 342–43)।

(2) "माख और अवेनारियस की पूरी–पूरी विचारधारा भाववाद की तरफ़ बढ़ रही है।" (***उप.***, पृष्ठ 370)।

(3) "हमारे सभी माखवादी भाववाद के जाल में फंस गये हैं।" (***उप.***, पृष्ठ 359)।

(4) "अनुभवसिद्ध आलोचना के तमाम ज्ञान सम्बन्धी शास्त्रार्थ के पीछे दर्शन के क्षेत्र में पार्टियों के संघर्ष को न देखना असंभव है। यह संघर्ष ऐसा है जो छानबीन करने पर अंत में मौजूदा समाज के विरोधी वर्गों के रुझान और विचारधारा को ज़ाहिर करता है।" (***उप.***, पृष्ठ 371)।

(5) "अनुभवसिद्ध आलोचना की वस्तुगत, वर्गगत भूमिका पूरी तरह इस बात में है कि वह श्रद्धावादियों (प्रतिक्रियावादियों, जो श्रद्धा को विज्ञान से बढ़ कर मानते थे – सं.) की वफादारी से सेवा करती है यह सेवा भौतिकवाद के खिलाफ आम तौर से, और ऐतिहासिक भौतिकवाद के खिलाफ खास तौर से, श्रद्धावादियों के संघर्ष में प्रकट होती है।" (***उप.***, पृष्ठ 371)।

(6) "दार्शनिक भाववाद... धर्म सम्बन्धी अंधविश्वास तक पहुंचने के लिये एक सड़क है।" (**लेनिन ग्रन्थावली**, रूसी संस्करण, खण्ड 13, पृष्ठ 304)।

यह जानने के लिए कि हमारी पार्टी के इतिहास में लेनिन की पुस्तक ने कैसी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की और यह समझने के लिये कि स्तोलिपिन प्रतिक्रियावाद के दौर में संशोधनवादियों और गद्दारों की रंगबिरंगी जमात से लेनिन ने किस सैद्धान्तिक निधि की रक्षा की, हमें द्वंद्वात्मक और ऐतिहासिक भौतिकवाद के बुनियादी उसूलों से संक्षेप में ही सही, परिचित हो जाना चाहिये।

यह सब इसलिये और भी जरूरी है कि द्वंद्वात्मक और ऐतिहासिक भौतिकवाद कम्युनिज्म का सैद्धांतिक आधार है, वह मार्क्सवादी पार्टी का सैद्धांतिक आधार है और

इसलिये, हमारी पार्टी के हर सक्रिय सदस्य का कर्तव्य है कि वह इन उसूलों को जाने और इसलिये उनका अध्ययन करे।

तब, (1) द्वंद्वात्मक भौतिकवाद और (2) ऐतिहासिक भौतिकवाद हैं क्या?

2. द्वंद्वात्मक और ऐतिहासिक भौतिकवाद।

द्वंद्वात्मक भौतिकवाद मार्क्सवादी लेनिनवादी पार्टी का विश्व–दर्शन है। इसे द्वंद्वात्मक भौतिकवाद इसलिये कहते हैं कि प्रकृति के घटना प्रवाह की तरफ़ इसका रुख, उसका अध्ययन करने और उसे समझने का इसका तरीका द्वंद्ववादी है। प्रकृति के घटना प्रवाह की व्याख्या करने, इस घटना प्रवाह के बारे में उसके विचार, उसके सिद्धांत भौतिकवादी हैं।

ऐतिहासिक भौतिकवाद सामाजिक जीवन में द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के उसूलों को लागू करता है। वह सामाजिक जीवन के घटना प्रवाह में, समाज और उसके इतिहास के अध्ययन में द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के उसूलों को लागू करता है।

मार्क्स और एंगेल्स जब अपने द्वंद्वात्मक तरीके का वर्णन करते हैं तो वे आम तौर से दार्शनिक हेगेल का हवाला देते हैं, जिसने द्वन्द्ववाद के मुख्य लक्षण बतलाये थे। लेकिन, इसका यह मतलब नहीं है कि मार्क्स और एंगेल्स का द्वंद्ववाद हेगेल के द्वंद्ववाद से बिल्कुल मिलता–जुलता है। दरअसल, मार्क्स और एंगेल्स ने हेगेल के द्वंद्ववाद से उसका 'बुद्धिसंगत तत्व' ही लिया था। उन्होंने हेगेल के भाववाद का छिलका अगल कर दिया था। उन्होंने द्वंद्ववाद को और आगे विकसित किया था, जिससे उसे एक आधुनिक वैज्ञानिक रूप मिले।

मार्क्स ने कहा था :

> "मेरा द्वन्द्ववादी तरीका हेगेल के तरीके से भिन्न ही नहीं है, बल्कि उसका ठीक उल्टा है। हेगेल ... विचार करने की प्रक्रिया को 'विचार' के नाम पर एक स्वतंत्र विषय तक बना देता है। उसके लिये यही चिंतन वास्तविक संसार की प्रेरणा–शक्ति (उसका रचयिता) है। उसके लिये वास्तविक संसार सिर्फ़ 'विचार' का बाहरी, घटना प्रवाह वाला रूप है। इसके विपरीत, मेरे लिये विचार इसके सिवा कुछ नहीं है कि भौतिक संसार ही इंसान के दिमाग में प्रतिबिम्बित हुआ है और विचार के रूपों में तब्दील हो गया है।" (कार्ल मार्क्स, ***पूंजी***, खण्ड 1, पृष्ठ 30, जार्ज ऐलेन एण्ड अनविन लिमिटेड, 1938)।

अपने भौतिकवाद का वर्णन करते हुए, मार्क्स और एंगेल्स अक्सर दार्शनिक फ़ायरबाख का हवाला देते हैं, जिसने भौतिकवाद को उसके उचित अधिकार दिलाये थे। लेकिन, इसका यह मतलब नहीं है कि मार्क्स और एंगेल्स का भौतिकवाद फ़ायरबाख के भौतिकवाद से बिल्कुल मिलता–जुलता है। दरअसल, मार्क्स और एंगेल्स ने फ़ायरबाख के भौतिकवाद से उसका 'आंतरिक तत्व' निकाल लिया था। उन्होंने उसे भौतिकवाद के वैज्ञानिक दार्शनिक सिद्धांत के रूप में विकसित किया। उन्होंने उसके भाववादी और धार्मिक–नैतिक लवाजमे को फेंक दिया। फ़ायरबाख बुनियादी तौर से भौतिकवादी था, लेकिन हम जानते हैं कि वह भौतिकवाद, इस नाम पर आपत्ति करता था। एंगेल्स ने कई बार कहा था कि भौतिकवादी "बुनियाद के बावजूद 'फायरबाख' भाववाद की परम्परागत, बेड़ियों में जकड़ा रहा" और "फ़ायरबाख का असली भाववाद वैसे ही ज़ाहिर हो जाता है जैसे ही हम धर्म और नैतिकता के उसके दर्शन के नज़दीक पहुंचते हैं।" (कार्ल मार्क्स, ***सं•ग्रं•***, अं•सं•, मास्को, 1946, खण्ड 1, पृष्ठ 373–375)।

दियालेक्तिका (द्वंद्ववाद) शब्द ग्रीक धातु दियालेगो से बना है, जिसका अर्थ है चर्चा करना, वाद–विवाद करना। पुराने ज़माने में, द्वंद्ववाद वह कला थी जिससे विरोधी की दलीलों में असंगतियां दिखला कर और उन असंगतियों को दूर करके सत्य तक पहुंचा जा सकता था। पुराने ज़माने में, ऐसे दार्शनिक थे जो समझते थे कि चिन्तन की असंगतियां प्रकट करना और विरोधी विचारों का टकराना सच्चाई तक पहुंचने का सबसे अच्छा तरीक़ा है। चिन्तन का यह द्वंद्ववादी तरीका, जो बाद में के घटना प्रवाह पर भी लागू किया गया, विकसित होकर प्रकृति को जानने–पहचानने का द्वंद्ववादी तरीका बन गया। इस तरीक़े के अनुसार, प्रकृति का घटना प्रवाह सदा ही गतिशील है और सदा ही परिवर्तनशील है। इस तरीक़े के अनुसार, प्रकृति का विकास प्रकृति की असंगतियों के विकास का ही नतीजा है, प्रकृति के भीतर विरोधी शक्तियों के घात–प्रतिघात का ही नतीजा है।

तत्व रूप से, द्वंद्ववाद अधिभूतवाद (मेटाफ़िजिक्स) का ठीक उल्टा है।

(1) मार्क्सीय द्वंद्वात्मक तरीक़े के मुख्य लक्षण ये हैं :

(क) अधिभूतवाद के खिलाफ, द्वंद्ववाद प्रकृति को वस्तुओं का आकस्मिक संग्रह नहीं मानता, उसे एक–दूसरे से विच्छिन्न, एक–दूसरे से अलग और स्वतंत्र घटना प्रवाह नहीं मानता। उसके अनुसार, प्रकृति एक सुसम्बद्ध और अविच्छिन्न इकाई है जिसमें वस्तुएं, घटना प्रवाह एक–दूसरे से आंतरिक रूप से सम्बंधित हैं, एक–दूसरे पर निर्भर हैं और एक–दूसरे की रूपरेखा निश्चित करती हैं।

इसलिये द्वंद्ववादी तरीक़े के अनुसार, प्रकृति के किसी भी घटना प्रवाह को अकेले लेकर, आसपास के घटना प्रवाह से अलग करके नहीं समझा जा सकता। कारण यह कि प्रकृति के क्षेत्र में कोई भी घटना प्रवाह आसपास की परिस्थितियों के संदर्भ में न देखा जाये, बल्कि उनसे अलग करके देखा जाये तो वह हमारे लिये अर्थहीन हो जाता है। इसी तरह, कोई भी घटना प्रवाह यदि अपने आसपास के घटना प्रवाह के अटूट संदर्भ में देखा जाये, आसपास के घटना प्रवाह से उसकी रूपरेखा निश्चित होती है, यह ध्यान में रख कर देखा जाये, तो वह समझा जा सकता है और उसकी व्याख्या की जा सकती है।

(ख) अधिभूतवाद के खिलाफ, द्वंद्ववाद का कहना है कि प्रकृति स्थिरता और गतिहीनता, ठहराव और अपरिवर्तनशीलता की दशा नहीं है। वह सतत गतिशीलता और परिवर्तनशीलता, सतत नवीनता और विकास की दशा है। वह ऐसी दशा है जिसमें कोई चीज हमेशा उगती और विकसित होती रहती है और कोई चीज हमेशा जर्जर होती और मरती रहती है।

इसलिये, द्वंद्ववादी तरीक़े की मांग है कि घटना प्रवाह पर इसी दृष्टि से विचार न किया जाये कि वह दूसरे से सम्बन्धित और उस पर निर्भर है, बल्कि इस दृष्टि से भी कि वह गतिशील है, बदलता है, विकसित होता है, **जन्मता** है और मरता है।

द्वंद्वात्मक तरीक़े के अनुसार, सबसे ज्यादा महत्व उस चीज का नहीं है जो किसी खास समय टिकाऊ तो मालूम होती है लेकिन जिसका ह्रास शुरू हो चुका है। सबसे महत्व की चीज वह है जो उग रही है और विकसित हो रही है, भले ही किसी खास समय वह टिकाऊ न मालूम होती हो। द्वंद्ववादी तरीका उसी को अजेय मानता है जो उग रही हो और विकासमान हो।

एंगेल्स ने लिखा है :

"छोटी से छोटी चीज से लेकर बड़ी से बड़ी तक, बालू के कण से लेकर सूरज तक, प्रोस्टिटा (मूल जीवन सैल – सम्पादक) से लेकर मनुष्य तक, प्रकृति जन्म और निर्वाण की निरंतर दशा में है। वह एक चिरन्तन गतिशीलता, गति और परिवर्तन की अविराम दशा में है।" (एंगेल्स, ***प्रकृति–सम्बन्धी द्वंद्ववाद***)।

इसलिये, एंगेल्स का कहना है कि द्वंद्ववाद "वस्तुओं को और उनके गोचर प्रतिरूपों को तत्व रूप से एक–दूसरे से सम्बन्धित, उनके संयोग, उनकी गतिशीलता उनके जन्म और निर्वाण की दशा में देखता है।" (एंगेल्स ***ड्यूरिंग मत–खण्डन***)।

(ग) अधिभूतवाद के विपरीत, द्वंद्ववाद के लिये विकास का सिलसिला साधारण प्रगति का सिलसिला नहीं है। वह ऐसा सिलसिला नहीं है जिसमें परिमाण की तब्दीली से गुण में तब्दीली नहीं होती। वह ऐसा विकास है जो परिमाण में बहुत ही मामूली और क़रीब–क़रीब न दिखाई देने वाली तब्दीली से खुली, बुनियादी तब्दीली की तरफ़, गुण में तब्दीली की तरफ़ बढ़ जाता है। वह ऐसा विकास है जिसमें गुण में तब्दीली धीरे–धीरे नहीं होती, बल्कि तेज़ी से और सहसा होती है, वह एक दशा से दूसरी दशा तक छलांग का रूप लेती है। यह तब्दीली आकस्मिक नहीं होती, बल्कि परिमाण में प्रायः अस्पष्ट और धीरे–धीरे होने वाली तब्दीली के संचय का स्वाभाविक नतीजा होती है।

इसलिये, द्वंद्ववादी तरीक़े का कहना है कि विकास के सिलसिले को एक ही चक्र में घूमने वाली गति की तरह, जो पहले ही हो चुका है उसी के मामूली दुहराने की तरह, न समझना चाहिये। विकास के सिलसिले को आगे की तरफ़ और ऊपर की तरफ़ गति के रूप में समझना चाहिये। उसे पुरानी गुणात्मक दशा से एक नयी गुणात्मक दशा की तरफ़ आगे बढ़ने के रूप में समझना चाहिये। उसे ऐसा विकास समझना चाहिये जो साधारण से संश्लिष्ट की तरफ़, निम्न से उच्चतर की तरफ़ होता है।

एंगेल्स का कहना है :

"द्वंद्ववाद की कसौटी प्रकृति है। कहना पड़ेगा कि आधुनिक प्रकृति विज्ञान ने इस कसौटी के लिये बहुत ही भरीपूरी सामग्री दी है, जो दिन पर दिन बढ़ती जाती है। इस तरह, आधुनिक प्रकृति–विज्ञान ने साबित कर दिया है कि आखिर तक छानबीन करने पर प्रकृति का क्रम द्वंद्ववादी है, न कि अधिभूतवादी। यह क्रम सदा के लिये समान और सदा ही दुहराये जाने वाले घेरे में नहीं होता, बल्कि उसके विकास का सच्चा इतिहास है। यहां पर सबसे पहले डारविन का जिक्र करना चाहिये, जिसने प्रकृति के बारे में अधिभूतवादी विचार पर करारी चोट की। उसने साबित किया कि आज का जीवित संसार, पौधे और पशु और फलतः मनुष्य भी, सभी ऐसे विकास क्रम की उपज हैं जिसकी प्रगति लाखों साल से होती आयी है।" *(उप०)*।

द्वंद्वात्मक विकास परिमाण की तब्दीली से गुण की तब्दीली की तरफ़ बढ़ता है, यह बतलाते हुए एंगेल्स ने कहा है :

"भौतिक विज्ञान (फ़िजिक्स) में... हर तब्दीली परिमाण की गुण में तब्दीली है। यह तब्दीली गति के किसी रूप की परिमाण सम्बन्धी तब्दीली का नतीजा होती है। गति का यह रूप या तो किसी वस्तु में निहित होता है या बाहर से उसे दिया

जाता है। मिसाल के लिये, पानी की गरमी का पहले उसकी तरलता पर कोई असर नहीं होता। लेकिन जैसे–जैसे द्रवित जल की गरमी बढ़ती या कम होती है, एक क्षण ऐसा आता है जब यह भीतरी दशा बदल जाती है और पानी या तो भाप बन जाता है या बरफ़ बन जाता है।... प्लैटिनम के तार को एक निश्चित अल्पतम करेण्ट की जरूरत होती है। हर धातु तापमान के किसी बिन्दु पर पहुंच कर गलने लगती है। हर एक द्रव पदार्थ एक बिन्दु पर पहुंच कर जमने लगता है और एक निश्चित दबाव पड़ने पर खौलने लगता है। और, हम प्राप्य साधनों से इन आवश्यक तापमानों तक पहुंच सकते हैं। इसी तरह, हरेक गैस का भी एक ऐसा विशेष बिन्दु होता है जहां जरूरी दबाव या ठण्डक पहुचाने से उसे हम द्रव पदार्थ में बदल सकते हैं। ... भौतिक विज्ञान में जिन्हें हम 'कॉन्स्टेण्ट' (स्थिर बिन्दु) [वह बिन्दु जहां एक दशा दूसरी में तब्दील हो जाती है – सम्पादक] कहते हैं, वे ज्यादातर 'नोडल पॉइंट' (चरम बिन्दु) के नाम हैं, जहां पर परिमाण की (तब्दीली – सम्पादक) गति की घटती या बढ़ती किसी वस्तु की दशा में गुणात्मक तब्दीली पैदा कर देती है और इसके फलस्वरूप जहां पर परिमाण गुण में बदल जाता है।" ***(प्रकृति सम्बन्धी द्वंद्ववाद)***।

आगे, रसायन विज्ञान (केमिस्ट्री) की तरफ़ आकर एंगेल्स कहते हैं :

"रसायन के लिये कहा जा सकता है कि यह गुणात्मक तब्दीलियों का विज्ञान है। परिमाण सम्बन्धी बनावट की तब्दीली के फलस्वरूप, वस्तुओं में गुणात्मक तब्दीली होती है। हेगेल को इस बात का तभी पता था।... मिसाल के लिये, 'ऑक्सिजन' लीजिये। अगर परमाणु (मॉलीक्यूल) में सहज दो के बदले तीन अणु (एटम) हों तो 'ओज़ोन' बन जाता है। यह वस्तु अपनी गंध और प्रतिक्रिया में मामूली 'ऑक्सीजन' से निश्चित रूप से भिन्न होती है। और, इस बात का जिक्र ही क्या कि अलग–अलग तादाद में अगर 'ऑक्सीजन' को 'नाइट्रोजन' या गंधक से मिलाया जाये तो हर बार ऐसी चीज बनेगी जो गुण में उसे बनाने वाली सभी चीजों से भिन्न होगी।" (उप•)।

अंत में, एंगेल्स ने इस सिलसिले में डूयरिंग की आलोचना की है। डूयरिंग ने पूरा जोर लगा कर हेगेल को डांट–फटकार बतलाई थी, लेकिन उसने चोरी–चोरी हेगेल का यह प्रसिद्ध विचार ले लिया था कि अचेतन संसार से चेतन की तरफ़ प्रगति, निर्जीव पदार्थों के संसार से सजीव पदार्थों के संसार की तरफ प्रगति, एक नयी दिशा की तरफ़ छलांग भरना है।

एंगेल्स ने लिखा है :

"यह हेगेल की माप सम्बन्धी 'नोडल लाइन' (चरम रेखा) ही है। किसी निश्चित चरम बिन्दु तक पहुंच कर सिर्फ़ परिमाण की घटती या बढ़ती से **गुणात्मक छलांग** पैदा हो जाती है। मिसाल के लिये, जब पानी को गरम करते हैं या ठण्डा करते हैं तो उसके खौलने और जमने के बिन्दु वे चरम बिन्दु हैं जहां पर – सहज दबाव पड़ने पर – एक पूर्ण नयी दशा की तरफ़ छलांग भरी जाती है और इसके फलस्वरूप, जहां परिमाण गुण में बदल जाता है।" (एंगेल्स, ***ड्यूरिंग मत–खण्डन***)।

(घ) अधिभूतवाद के खिलाफ, द्वंद्ववाद का कहना है कि सभी वस्तुओं और प्रकृति के सभी घटना प्रवाहों में अंतर्विरोध निहित हैं। उन सभी का आस्ति पक्ष और नास्ति पक्ष होता है, भूत और भविष्य होता है, कुछ तत्व मरते और कुछ तत्व विकासमान होते हैं। इन विरोधी तत्वों का संघर्ष, पुराने और नये का संघर्ष मरणशील और अभ्युदयशील का संघर्ष, निर्वाणशील और विकासमान का संघर्ष विकास–क्रम की भीतरी विषय–वस्तु है, वह परिमाण में तब्दीलियों के गुण में तब्दीलियां बनने की भीतरी विषय–वस्तु है।

इसलिये, द्वंद्ववादी तरीक़े का कहना है कि निम्न से उच्चतर की तरफ़ विकास का सिलसिला घटना प्रवाह की शान्तिमय प्रगति का रूप नहीं लेता। वह वस्तुओं और घटना प्रवाह में निहित असंगतियों के प्रकट होने का रूप लेता है, वह उन विरोधी रुझानों के 'संघर्ष' का रूप लेता है जो रुझान इन असंगतियों के आधार पर क्रियाशील होते हैं।

लेनिन का कहना है :

"अपने सही अर्थ में, द्वंद्ववाद **वस्तुओं के मूल तत्व में ही** असंगतियों का अध्ययन है।" (लेनिन, ***दर्शन सम्बन्धी नोटबुक,*** रूसी संस्करण, पृष्ठ 263)।

और आगे :

"विकास विरोधी तत्वों का 'संघर्ष' है।" (***लेनिन ग्रन्थावली,*** रूसी संस्करण, खण्ड 13, पृष्ठ 301)।

मार्क्सीय द्वंद्वात्मक प्रणाली के मुख्य लक्षण, संक्षेप में, ये हैं :

यह समझना आसान है कि द्वंद्वात्मक तरीक़े के उसूलों को सामाजिक जीवन और समाज के इतिहास के अध्ययन पर लागू करना कितना महत्वपूर्ण है और समाज के

इतिहास और सर्वहारा वर्ग की पार्टी की अमली कार्यवाही पर उन्हें लागू करना कितने भारी महत्व की बात है।

अगर संसार में अलग–अलग घटना प्रवाह नहीं हैं, अगर सभी घटना प्रवाह परस्पर निर्भर और सम्बन्धित हैं, तो यह बात साफ़ है कि किसी समाज–व्यवस्था या इतिहास के किसी सामाजिक आन्दोलन का मूल्यांकन 'शाश्वत न्याय' के विचार से और किसी पूर्व निश्चित धारणा के अनुसार न करना चाहिये, जैसा कि इतिहासकार बहुत बार करते हैं। यह मूल्यांकन उन परिस्थितियों के लिहाज से करना चाहिये जिन्होंने उस व्यवस्था को या उस सामाजिक आन्दोलन को जन्म दिया था और जिससे वे सम्बन्धित हैं।

आजकल की परिस्थितियों में गुलामी की प्रथा निरर्थक, मूर्खतापूर्ण और अस्वाभाविक होगी। लेकिन उन परिस्थितियों में, जब आदिम साम्यवादी व्यवस्था टूट रही थी, तब गुलामी की प्रथा बिल्कुल सार्थक और एक स्वाभाविक घटना प्रवाह थी। कारण यह कि उस समय वह आदिम साम्यवादी व्यवस्था से आगे बढ़ी हुई व्यवस्था थी।

जब ज़ारशाही और पूंजीवादी समाज 1905 के रूस में मौजूद थे, तब पूंजीवादी–जनवादी प्रजातंत्र की मांग एक बिल्कुल सार्थक, उचित और क्रांतिकारी मांग थी क्योंकि उस समय पूंजीवादी प्रजातंत्र एक आगे बढ़ा हुआ क़दम होता। लेकिन, अब सोवियत संघ की परिस्थितियों में पूंजीवादी–जनवादी प्रजातंत्र की मांग एक निरर्थक और क्रान्ति–विरोधी मांग होगी; क्योंकि सोवियत प्रजातंत्र के मुकाबिले में पूंजीवादी प्रजातंत्र पीछे की तरफ़ क़दम होगा।

सब कुछ परिस्थितियों पर, देश और काल पर निर्भर है।

यह बात साफ़ है कि सामाजिक घटना–प्रवाह की तरफ़ इस **ऐतिहासिक** रूख के बिना इतिहास–विज्ञान का अस्तित्व और विकास नामुमकिन है। यही रुख इतिहास–विज्ञान को इस बात से बचाता है कि वह केवल घटना–संग्रह और बेहद भद्दी भूलों की सूची न बन जाये।

और भी, अगर संसार सतत गतिशीलता और विकास की दशा में है, अगर प्राचीन का मरना और नवीन की बढ़ती विकास का नियम है, तो यह बात साफ़ है कि कोई भी समाज–व्यवस्था 'अजर–अमर' नहीं है, व्यक्तिगत सम्पत्ति और शोषण के कोई भी 'अमर सिद्धांत' नहीं हैं, कोई भी ऐसे 'शाश्वत विचार' नहीं हैं जिनके अनुसार किसान जमींदार की, और मजदूर पूंजीपति की गुलामी करे।

इसलिये, समाजवादी व्यवस्था पूंजीवादी व्यवस्था की जगह ले सकती है, ठीक जैसे एक समय पूंजीवादी व्यवस्था ने सामन्ती व्यवस्था की जगह ली थी।

इसलिये, हमें अपने दृष्टिकोण का आधार समाज के उन स्तरों को न बनाना चाहिये जो अब विकसित नहीं हो रहे हैं, भले ही वह इस समय एक प्रमुख शक्ति हों। हमें उन स्तरों को अपना आधार बनाना चाहिये जो विकसित हो रहे हैं और जिनके सामने भविष्य है, भले ही इस समय वे प्रमुख शक्ति न बन पाये हों।

1880 के लगभग, जब मार्क्सवादियों और लोकवादियों में संघर्ष हो रहा था तब रूस का सर्वहारा वर्ग आबादी का एक तुच्छ अल्पसंख्यक भाग था, और निजी मिल्कियत वाले किसान आबादी का भारी बहुसंख्यक हिस्सा थे। लेकिन, वर्ग रूप में सर्वहारा विकसित हो रहा था, जबकि वर्ग रूप में किसान टूट रहे थे। और, इसी वजह से कि वर्ग रूप में सर्वहारा विकसित हो रहा था, मार्क्सवादियों ने सर्वहारा को अपने दृष्टिकोण का आधार बनाया। और, इसमें उन्होंने भूल न की थी क्योंकि, जैसा हम जानते हैं, सर्वहारा वर्ग आगे चल कर एक नगण्य शक्ति से बढ़ कर प्रथम कोटि की ऐतिहासिक और राजनीतिक शक्ति बन गया।

इसलिये नीति में ग़लती न करने के लिये, यह जरूरी है कि हमारी दृष्टि आगे की तरफ़ हो न कि पीछे की तरफ़।

और भी, अगर धीरे–धीरे होने वाली परिमाण की तब्दीली तेज़ी से और सहसा होने वाली गुण की तब्दीली बन जाती है और यह विकास का नियम है तो, यह बात साफ़ है कि पीड़ित वर्ग जब क्रांति करते हैं तो यह काम एकदम स्वाभाविक और लाज़िमी घटना होता है।

इसलिये, पूंजीवाद से समाजवाद की तरफ़ प्रगति और पूंजीवाद की गुलामी से मज़दूर वर्ग की मुक्ति धीमी–धीमी तब्दीली से, सुधारों से, नहीं हो सकती बल्कि पूंजीवादी व्यवस्था के गुण में ही तब्दीली से, क्रान्ति से ही हो सकती है।

इसलिये नीति में ग़लती न करने के लिये, यह जरूरी है कि हम क्रान्तिकारी हों न कि सुधारवादी।

और भी, अगर विकास का सिलसिला भीतरी असंगतियों के उभर कर सामने आने से चलता है, इन असंगतियों के आधार पर विरोधी शक्तियों की टक्कर से होता है और इन असंगतियों को खत्म करके होता है, तो यह बात साफ़ है कि सर्वहारा का वर्ग–संघर्ष एक बिल्कुल स्वाभाविक और लाज़िमी घटना है।

इसलिये, हमें पूंजीवादी व्यवस्था की असंगतियों पर पर्दा न डालना चाहिये बल्कि उन्हें उभारना और प्रकट करना चाहिये। हमें वर्ग–संघर्ष को रोकना न चाहिये, बल्कि उसके परिणाम तक उसे ले जाना चाहिये।

इसलिये नीति में ग़लती न करने के लिए, जरूरी है कि हम बिना समझौते की सर्वहारा की वर्ग–नीति का पालन करें, हम मज़दूरों और पूंजीपतियों के हितों के सामंजस्य की सुधारवादी नीति का पालन न करें, हम समझौतावादियों की इस नीति का पालन न करें कि "पूंजीवाद बढ़ते–बढ़ते समाजवाद में बदल जायेगा।"

सामाजिक जीवन पर, समाज के इतिहास पर लागू किया जाने वाला मार्क्सीय द्वंद्वात्मक तरीक़ा यही है।

जहां तक मार्क्सवादी दार्शनिक भौतिकवाद का सम्बन्ध है, वह बुनियादी तौर से दार्शनिक भाववाद का ठीक उल्टा है।

(2) मार्क्सीय दार्शनिक भौतिकवाद के मुख्य लक्षण इस प्रकार हैं :

(क) भाववाद के अनुसार, संसार एक 'निरपेक्ष विचार', एक 'सर्व–व्यापी आत्मा', 'चेतना' का मूर्त स्वरूप है। इसके खिलाफ, मार्क्स के दार्शनिक भौतिकवाद का कहना है कि संसार अपने स्वभाव से ही **भौतिक** है, संसार के नाना घटना प्रवाह गतिशील भूत (पदार्थ) के विभिन्न रूप हैं। द्वंद्ववादी पद्धति ने घटना प्रवाहों का जो परस्पर सम्बन्ध और निर्भरता क़ायम की है, वह गतिशील भूत के विकास का नियम है। संसार भूत की गति के नियमों के अनुसार विकसित होता है और उसे 'विश्वव्यापी आत्मा' की कोई जरूरत नहीं है।

एंगेल्स ने लिखा है :

> "प्रकृति के बारे में भौतिकवादी दर्शन का इसके सिवा कोई मतलब नहीं है कि प्रकृति जैसी है, बिना किसी बाहरी मिलावट के, वैसी ही समझी जाये।" (एंगेल्स, ***लुडविग फ़ायरबाख़,*** अं• सं•, मास्को, 1934, पृष्ठ 79)।

प्राचीन दार्शनिक हिरैक्लाइटस का मत था कि "संसार को, अनेक की एकता को, किसी देवता या मनुष्य ने न रचा था बल्कि वह एक सजीव ज्योति थी, है और हमेशा रहेगी, जो नियमित रूप से जल उठती है और नियमित रूप से ही ठण्डी पड़ जाती है।" इस मत की चर्चा करते हुए, लेनिन ने टिप्पणी लिखी थी : "द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के मूल तत्वों की यह बहुत अच्छी व्याख्या है।" (लेनिन, ***दर्शन सम्बन्धी नोट बुक,*** रूसी संस्करण, पृष्ठ 318)।

(ख) भाववाद का दावा है कि वास्तव में केवल हमारी चेतना की ही सत्ता है; भौतिक संसार, सत्ता, प्रकृति, केवल हमारी चेतना में, हमारे संवेदनों में, विचारों और गोचरता में रहती है। इसके खिलाफ़, मार्क्सीय भौतिकवादी दर्शन का कहना है कि भूत, प्रकृति, सत्ता एक वस्तुगत सच्चाई है। उसका अस्तित्व हमारी चेतना से बाहर और स्वतंत्र होता है। मूल वस्तु भूत है क्योंकि वही संवेदनों, विचारों और चेतना का स्त्रोत है। चेतना गौण है, उसी से उत्पन्न है क्योंकि वह भूत का प्रतिबिंब है, सत्ता का प्रतिबिम्ब है। विचार भूत की ही उपज है, ऐसा भूत जो अपने विकास में पूर्णता के ऊंचे स्तर तक, यानी दिमाग तक, पहुंच गया है। दिमाग़ चिंतन करने की इंद्रिय है। इसलिये चिंतन को भूत से अलग करना भारी ग़लती करना है। एंगेल्स ने लिखा था :

"चिंतन से सत्ता के सम्बन्ध का सवाल, प्रकृति से आत्मा के सम्बन्ध का सवाल, तमाम दर्शन का मुख्य सवाल है। ... इस सवाल का दार्शनिकों ने जो जवाब दिया, उससे वे दो बड़े दलों में बंट गये। जो कहते थे कि प्रकृति के मुकाबिले में आत्मा मूल है... वे **भाववाद** के दल में शामिल हुए। दूसरे लोग जो कहते थे कि प्रकृति मूल है, वे **भौतिकवाद** के विभिन्न स्कूलों में शामिल हैं।" (कार्ल मार्क्स, ***सं•ग्रं•***, अं•सं•, मास्को, 1946, खण्ड 1, पृष्ठ 366–67)।

और आगे :

"वह संसार जो भौतिक है, इन्द्रियों से जाना जाता है, जिसमें हम स्वयं हैं, एकमात्र सच्चाई है। हमारी चेतना और चिंतन, वे इन्द्रियों से जितने चाहे परे अतीन्द्रिय मालूम पडें, वे एक भौतिक, शारीरिक इन्द्रिय – दिमाग – की उपज है। भूत चेतना की उपज नहीं है, बल्कि चेतना ही खुद भूत की सबसे उंची उपज है।" (कार्ल मार्क्स, ***सं•ग्रं•***, रू•सं•, खण्ड 1 पृष्ठ 332)।

भूत और चिंतन के सवाल पर, मार्क्स ने लिखा है :

"चिन्तनशील भूत से चिंतन को अलग करना असंभव है। तमाम परिवर्तनों की विषय–वस्तु भूत ही है।" (***उप•***, पृष्ठ 335)।

मार्क्सीय दार्शनिक भौतिकवाद का वर्णन करते हुए, लेनिन ने लिखा है :

"आम तौर से भौतिकवाद वस्तुगत रूप से वास्तविक सत्ता (भूत) को चेतना, संवेदना और अनुभव से स्वतंत्र मानता है। ... चेतना सत्ता का ही प्रतिबिम्ब है,

अधिक से अधिक वह सत्ता का लगभग सच्चा (पर्याप्त, बिल्कुल वैसा ही) प्रतिबिम्ब है।" (लेनिन, ***भौतिकवाद और अनुभव सिद्ध आलोचना,*** अं•सं•, मास्को, 1947, पृष्ठ 337–38)।

और आगे :

–"भूत वह है जो हमारी इन्द्रियों पर आघात करके संवेदना पैदा करता है। भूत वह वस्तुगत सच्चाई है जो हमें संवेदना से मिलती है... भूत, प्रकृति, सत्ता, भौतिक जगत – मूल है; और आत्मा, चेतना, संवेदन, मानसिक जगत – गौण है।" (***उप•,*** पृष्ठ 145–146)।

–"संसार का दृष्य इस बात का दृश्य है कि भूत में गति कैसे होती है और **'भूत चिंतन'** कैसे करता है।" (***उप•*** 367)।

–"दिमाग चिंतन की इन्द्रिय है।" (***उप•*** 152)।

(ग) **भाववाद** इस बात को अस्वीकार करता है कि हम संसार और उसके नियमों को जान सकते हैं। उसे हमारे ज्ञान की प्रामाणिकता पर विश्वास नहीं है। वह वस्तुगत सच्चाई को स्वीकार नहीं करता, उसका कहना है कि संसार 'अज्ञेय वस्तुओं' से भरा हुआ है, जिन्हें विज्ञान कभी नहीं जान सकता। भाववाद के खिलाफ़, मार्क्सीय भौतिकवाद का कहना है कि संसार और उसके नियम पूरी तरह से जाने जा सकते हैं। प्रकृति के नियमों का हमारा ज्ञान, जिसे हम प्रयोग और अभ्यास से परखते हैं, सच्चा ज्ञान है। उसकी प्रामाणिकता वस्तुगत सच्चाई की सी है। संसार में ऐसी वस्तुएं नहीं हैं जो जानी न जा सकें। संसार में केवल ऐसी वस्तुएं हैं जो अभी तक जानी नहीं गयीं, लेकिन जो विज्ञान और अमल के प्रयत्नों से प्रकट की जायेंगी और जानी जायेंगी।

ऐंगेल्स ने काण्ट और दूसरे भाववादियों की इस धारणा की आलोचना की थी कि संसार अज्ञेय है और उसमें ऐसी 'अज्ञेय वस्तुएं' हैं जो जानी नहीं जा सकतीं। एंगेल्स ने इस प्रसिद्ध भौतिकवादी धारणा का समर्थन किया था कि हमारा ज्ञान प्रामाणिक ज्ञान है। इस सिलसिले में, उन्होंने लिखा था :

"इस धारणा और इसी तरह की दूसरी दार्शनिक उड़ानों का सबसे ज़ोरदार खण्डन व्यवहार है, यानी प्रयोग और उद्योग है। किसी प्राकृतिक क्रम की अपनी समझ को अगर हम खुद उस क्रम को रच कर सही साबित कर दें, उसकी परिस्थितियों से उसे निकाल कर उसे जन्म दे दें और घाते में उससे अपना काम भी निकाल लें, तो उससे काण्ट की न समझ में आने वाली, 'अज्ञेय वस्तु'

का खात्मा हो जाता है। पौधों और पशुओं की देह में पैदा होने वाले रासायनिक पदार्थ ऐसी ही 'अज्ञेय वस्तुएं' रहीं जब तक कि जैविक रसायन शास्त्र **(ऑरगैनिक कैमिस्ट्री)** ने उन्हें एक के बाद एक बनाना शुरू नहीं कर दिया। उसके बाद, वे 'अज्ञेय वस्तुएं' हमारे लिये वस्तुएं बन गयीं? मिसाल के लिये, मज़ीठ का रंग देने वाला पदार्थ 'अलीज़रीन' होता है। उसे हम खेत में मज़ीठ की जड़ों में नहीं उगाते। अब उसे हम ज्यादा सस्ते और सीधे ढंग से बना लेते हैं। तीन सौ साल तक कोपरनिकस का सौर मण्डल एक कल्पना रहा। उसके पक्ष में सौ, हज़ार, या दस हज़ार बातें हो सकती थीं और विपक्ष में एक ही, फिर भी वह कल्पना ही रहा। लेकिन, जब लवेरियर ने सौर मण्डल से प्राप्त सामग्री के ज़रिये एक अज्ञात नक्षत्र के होने की ज़रूरत ही न निकाल ली बल्कि उस जगह का भी हिसाब लगा लिया जहां आकाश में इस नक्षत्र को ज़रूर ही होना था और जब गाले ने सचमुच वह नक्षत्र ढूंढ निकाला तब कोपरनिकस का सौर मण्डल सिद्ध हो गया।" (कार्ल मार्क्स, ***सं•ग्रं•***, अं•सं•, मास्को, 1946, खं• 1 पृ• 368)।

लेनिन ने बुग्दानोव, बजारोव, यूश्केविच और माख के दूसरे अनुयायियों पर श्रद्धावादी होने का आरोप लगाया था। उन्होंने इस, प्रसिद्ध भौतिकवादी स्थापना का समर्थन किया कि प्रकृति के नियमों का हमारा विज्ञान सम्मत ज्ञान प्रामाणिक ज्ञान है और विज्ञान के नियम वस्तुगत सत्य जाहिर करते हैं। इस सिलसिले में, लेनिन ने लिखा था :

"आजकल का श्रद्धावाद विज्ञान को तो नहीं ठुकराता। वह सिर्फ़ 'बढ़े–चढ़े दावों' को ठुकराता है, यानी यह दावा कि विज्ञान वस्तुगत सच्चाई दे सकता है। अगर वस्तुगत सच्चाई है (जैसा कि भौतिकवादी समझते हैं), अगर मनुष्य के 'अनुभव' में, बाहरी संसार को प्रतिबिम्बित करते हुए, प्रकृति–विज्ञान ही हमें वस्तुगत सचाई दे सकता है, तो सभी श्रद्धावाद का पूरी तरह खण्डन हो जाता है।" (लेनिन, ***भौतिकवाद और अनुभवसिद्ध आलोचना,*** अं•सं•, मास्को, 1947, पृष्ठ 123–24)।

संक्षेप में, मार्क्सीय दार्शनिक भौतिकवाद के मुख्य लक्षण ये हैं।

यह समझना आसान है कि सामाजिक जीवन के अध्ययन पर, समाज के इतिहास के अध्ययन पर, दार्शनिक भौतिकवाद के उसूलों को लागू करना कितने भारी महत्व की बात है और समाज के इतिहास और सर्वहारा वर्ग की पार्टी की अमली कार्यवाही पर उन्हें लागू करना कितने भारी महत्व की बात है।

अगर प्रकृति के घटना प्रवाह परस्पर सम्बन्धित और निर्भर हैं और यह प्रकृति के विकास का नियम है, तो उससे नतीजा निकलता है कि सामाजिक जीवन के घटना प्रवाहों का परस्पर सम्बन्ध और निर्भरता समाज के विकास का नियम है और आकस्मिक बात नहीं है।

इसलिये सामाजिक जीवन, समाज का इतिहास, 'आकस्मिक घटनाओं' का संग्रह नहीं है। वह निश्चित नियमों के अनुसार समाज के विकास का इतिहास बन जाता है और सामाजिक इतिहास के अध्ययन का विज्ञान बन जाता है।

इसलिये, सर्वहारा वर्ग की पार्टी की अमली कार्यवाही का आधार 'महापुरुषों' की शुभ कामनाओं को न बनाना चाहिये, 'बुद्धि' की पुकार को न बनाना चाहिये, 'विश्वजनीन नैतिकता' वगैरह को न बनाना चाहिये, बल्कि सामाजिक विकास के नियमों को और इन नियमों के अध्ययन को बनाना चाहिये।

और भी, अगर संसार जाना जा सकता है और प्रकृति के विकास के नियमों की हमारी जानकारी प्रामाणिक जानकारी है, जिसकी प्रामाणिकता वस्तुगत सच्चाई जैसी है, तो उससे नतीजा निकलता है कि सामाजिक जीवन, सामाजिक विकास भी जाना जा सकता है और सामाजिक विकास के नियमों के बारे में विज्ञान की दी हुई सामग्री सच्ची सामग्री है जिसकी प्रामाणिकता वस्तुगत सच्चाई जैसी है।

इसलिये, समाज के इतिहास का विज्ञान, सामाजिक जीवन के पेचीदे घटना प्रवाह के बावजूद, उतना ही निश्चयात्मक विज्ञान हो सकता है जितना, मिसाल के लिये, प्राणि–शास्त्र (बायलॉजी), और वह अमली उद्देश्य के लिये सामाजिक विकास के नियमों से लाभ उठा सकता है।

इसलिये, सर्वहारा वर्ग की पार्टी को अपनी अमली कार्यवाही में अनिश्चित उद्देश्यों से अपना रास्ता न निश्चित करना चाहिये बल्कि सामाजिक विकास के नियमों से, और इन नियमों से अमली नतीजे निकाल कर, निश्चित करना चाहिये।

इसलिये, समाजवाद मानव जाति के सुन्दर भविष्य के लिये एक सपना न रह कर विज्ञान बन जाता है।

इसलिये, विज्ञान और अमली कार्यवाही का सम्बन्ध, सिद्धांत और अमल का सम्बन्ध, उनकी एकता, सर्वहारा वर्ग की पार्टी के लिये ध्रुव नक्षत्र बन जानी चाहिये।

और भी, अगर प्रकृति, सत्ता, भौतिक संसार मूल है और चेतना, विचार गौण है। उससे उत्पन्न है, अगर भौतिक संसार ऐसी वस्तुगत सच्चाई है जो मनुष्यों की

चेतना से स्वतंत्र है, जबकि चेतना इसी वस्तुगत सच्चाई का प्रतिबिम्ब है; तो नतीजा यह निकलता है कि समाज का भौतिक जीवन, उसकी सत्ता भी मूल है और उसका मानसिक जीवन गौण है, उससे उत्पन्न है, और समाज का भौतिक जीवन ऐसी वस्तुगत सच्चाई है जो मनुष्यों की इच्छा से स्वतंत्र है, जबकि समाज का मानसिक जीवन इस वस्तुगत सच्चाई का प्रतिबिम्ब है, सत्ता का प्रतिबिम्ब है।

इसलिये, समाज के मानसिक जीवन के निर्माण का स्रोत, सामाजिक विचारों, सामाजिक सिद्धांतों, राजनीतिक मतों और राजनीतिक संस्थाओं का स्रोत्र खुद विचारों, सिद्धांतों, मतों और राजनीतिक संस्थाओं में न ढूंढना चाहिये बल्कि समाज के भौतिक जीवन की परिस्थितियों में, सामाजिक सत्ता में ढूंढ़ना चाहिये, जिनका प्रतिबिम्ब ये विचार, सिद्धांत, मत वगैरह हैं।

इसलिये, सामाजिक इतिहास के विभिन्न युगों में विभिन्न सामाजिक विचार, सिद्धांत, मत और राजनीतिक संस्थायें देखी जाती हैं। अगर गुलामी की प्रथा वाले समाज में कोई खास सामाजिक विचार, सिद्धांत, मत और राजनीतिक संस्थायें मिलती हैं, सामंतशाही में दूसरी मिलती हैं और पूंजीवाद में और भी दूसरी, तो इसका कारण विचारों, सिद्धांतों, मतों और राजनीतिक संस्थाओं की खुद उनकी 'प्रकृति' उनके 'गुणों' में नहीं है बल्कि इसका कारण सामाजिक विकास के विभिन्न युगों में, समाज के भौतिक जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में है।

समाज की जो भी सत्ता होती है, समाज के भौतिक जीवन की जो भी परिस्थितियां होती हैं, वैसे ही उस समाज के विचार, सिद्धांत, राजनीतिक मत और राजनीतिक संस्थायें होती हैं।

इस सिलसिले में, मार्क्स ने लिखा है :

"मनुष्य की चेतना उनकी सत्ता की नियामक नहीं है बल्कि इसके विपरीत, उनकी सामाजिक सत्ता उनकी चेतना की नियामक है।" (कार्ल मार्क्स, ***सं•रं•***, अं•सं•, मास्को, 1946, खण्ड 1, पृष्ठ 300)।

इसलिये नीति में ग़लती न करने के लिये जरूरी है, हम निष्क्रिय सपने देखने वालों की जगह न ले लें। इसके लिये जरूरी है कि सर्वहारा वर्ग की पार्टी अपनी कार्यवाही का आधार 'मानव विवेक के' हवाई 'सिद्धांतों' को न बनाये बल्कि समाज के भौतिक जीवन की ठोस परिस्थितियों को बनाये, जो कि सामाजिक विकास की नियामक शक्ति हैं; 'महापुरुषों' की शुभ कामनाओं को न बनाये बल्कि समाज के भौतिक जीवन के विकास की सच्ची आवश्यकताओं को बनाये।

कल्पनावादियों, जिनमें लोकवादी शामिल हैं, अराजकवादियों और समाजवादी क्रांतिकारियों का पतन इसलिये भी हुआ कि वे सामाजिक विकास में समाज के भौतिक जीवन की परिस्थितियों की प्रमुख भूमिका को नामंजूर करते थे। भाववाद की सतह तक उतर कर, वे अपनी अमली कार्यवाही का आधार समाज के भौतिक जीवन के विकास की आवश्यकताओं को न बनाते थे बल्कि इन आवश्यकताओं से स्वतंत्र और उनके बावजूद 'आदर्श योजनाओं' और 'व्यापक कार्यक्रम' को बनाते थे, जो समाज के वास्तविक जीवन से दूर थे।

मार्क्सवाद–लेनिनवाद की शक्ति और सजीवता इस बात में है कि उनकी अमली कार्यवाही का आधार समाज के भौतिक जीवन के विकास की आवश्यकताएं हैं। वह अपने को समाज के वास्तविक जीवन से कभी अलग नहीं करता।

लेकिन, मार्क्स के शब्दों से यह नतीजा नहीं निकलता कि समाज के जीवन में सामाजिक विचारों, सिद्धांतों, राजनीतिक मतों और राजनीतिक संस्थाओं का कोई महत्व नहीं, और वे बदले में सामाजिक सत्ता, सामाजिक जीवन की भौतिक परिस्थितियों के विकास पर असर नहीं डालतीं। अभी तक हम सामाजिक विचारों, सिद्धांतों, मतों और राजनीतिक संस्थाओं के स्रोत की बात कर रहे थे, उनका जन्म कैसे होता है – इसकी चर्चा कर रहे थे, समाज का मानसिक जीवन उसके भौतिक जीवन की परिस्थितियों का प्रतिबिम्ब है, – इसकी चर्चा कर रहे थे। जहां तक सामाजिक विचारों, सिद्धांतों, मतों और राजनीतिक संस्थाओं के महत्व का सवाल है, इतिहास में उनकी **भूमिका** का सवाल है, वहां उसे अस्वीकार करना तो दूर, ऐतिहासिक भौतिकवाद सामाजिक जीवन में, समाज के इतिहास में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका और उनके महत्व पर ज़ोर देता है।

सामाजिक विचार और सिद्धांत तरह–तरह के होते हैं। पुराने विचार और सिद्धांत होते हैं, जिनके दिन बीत चुके हैं और जो समाज की उन शक्तियों का हित साधते हैं जिनकी गति रुक गयी है। उनका महत्व इस बात में है कि वे समाज के विकास, उसकी प्रगति को रोकते हैं। फिर, नये और आगे बढ़े हुए विचार और सिद्धांत होते हैं, जो समाज की आगे बढ़ी हुई शक्तियों का हित साधते हैं। उनका महत्व इस बात में है कि वे समाज के विकास, उसकी प्रगति को आसान बनाते हैं। उनका महत्व उतना ही बढ़ जाता है जितना ही सही–सही वे समाज के भौतिक जीवन के विकास की आवश्यकताओं को प्रकट करते हैं।

नये सामाजिक विचार और सिद्धांत तभी पैदा होते हैं जब समाज के भौतिक जीवन का विकास समाज के सामने नये काम पेश कर चुका होता है। लेकिन, एक बार पैदा हो

जाने पर वह बहुत ही समर्थ शक्ति बन जाते हैं। यह शक्ति उन नये कामों को पूरा करने में मदद देती है जिन्हें समाज के भौतिक जीवन के विकास ने पेश किया था। वह ऐसी शक्ति है जो समाज की प्रगति में मदद देती है। ठीक यहीं पर नये विचारों, नये सिद्धांतों, नये राजनीतिक मतों और नयी राजनीतिक संस्थाओं का भारी संगठन करने वाला, बटोरने वाला और तब्दीली करने वाला मूल्य प्रकट होता है। नये सामाजिक विचार ठीक इसीलिये पैदा होते हैं कि वे समाज के लिये जरूरी हैं, इसलिये कि अगर वह संगठित करने, बटोरने और तब्दील करने का काम न करें तो समाज के भौतिक जीवन के विकास के लिये जरूरी काम पूरे करना **नामुमकिन** हो जाये। नये सामाजिक विचार और सिद्धांत उन नये कामों से पैदा होते हैं जिन्हें समाज के भौतिक जीवन का विकास पेश करता है। फिर, वे अपना रास्ता बना लेते हैं, वे आम जनता की सम्पत्ति बन जाते हैं, समाज की गतिहीन शक्तियों के खिलाफ़ उसे बटोरते और संगठित करते हैं और इस तरह, समाज के भौतिक जीवन को रोकने वाली इन शक्तियों को परास्त करने में मदद देते हैं।

इस तरह, सामाजिक विचार, सिद्धांत और राजनीतिक संस्थाएं समाज के भौतिक जीवन के विकास, सामाजिक सत्ता के विकास के जरूरी कामों के आधार पर पैदा होते हैं। उसके बाद वे खुद सामाजिक सत्ता पर, समाज के भौतिक जीवन पर असर डालते हैं। वे ऐसी परिस्थितियां तैयार करते हैं जो समाज के भौतिक जीवन के लिये जरूरी कामों को पूरी तरह करने के लिये और समाज के भौतिक जीवन का अगला विकास मुमकिन बनाने के लिये आवश्यक होते हैं।

इस सिलसिले में, मार्क्स ने लिखा है :

"जनता के हृदय में घर कर लेने पर, सिद्धांत एक भौतिक शक्ति बन जाते हैं।" (***हेगेल के दर्शन की आलोचना***)।

इसलिये, समाज के भौतिक जीवन की परिस्थितियों पर असर डालने के लिये और उनके विकास और सुधार की गति को तेज़ करने के लिये, सर्वहारा वर्ग की पार्टी को ऐसे सामाजिक सिद्धांत का भरोसा करना चाहिये जो सही तौर पर समाज के भौतिक जीवन के विकास की आवश्यकताओं को ज़ाहिर करता हो और इसलिये, जो इस योग्य हो कि विशाल जनता को गतिशील बना सके और सर्वहारा पार्टी की भारी फ़ौज के रूप में उन्हें बटोर सके और संगठित कर सके। यह ऐसी फौज होगी जो प्रतिक्रियावादी शक्तियों का ध्वंस करने के लिये और समाज की प्रगतिशील शक्तियों का रास्ता साफ़ करने के लिये तैयार हो।

'अर्थवादियों' और मेन्शेविकों का पतन इसलिये भी हुआ कि वे प्रगतिशील सिद्धांत, प्रगतिशील विचारों को बटोरने वाली, संगठित करने वाली और तब्दीली करने वाली भूमिका को नामंजूर करते थे। घटिया भौतिकवाद की सतह पर आकर, उन्होंने इन चीजों की भूमिका नहीं के बराबर कर दी थी और इस तरह पार्टी को निष्क्रिय और निठल्ली बनी रहने के लिये छोड़ दिया था।

मार्क्सवाद–लेनिनवाद की शक्ति और सजीवता इस बात में है कि वह प्रगतिशील सिद्धांत का सहारा लेता है, ऐसे सिद्धांत का जो समाज के भौतिक जीवन के विकास की आवश्यकताओं को सही तौर पर प्रतिबिम्बित करता है। वह सिद्धांत को उचित सतह तक उठाता है और अपना कर्तव्य समझता है कि इस सिद्धांत में जो बटोरने, संगठित करने और तब्दील करने की ताक़त है, उसे रत्ती–रत्ती इस्तेमाल कर ले। सामाजिक सत्ता और सामाजिक चेतना का सम्बन्ध क्या है, भौतिक जीवन के विकास की परिस्थितियों और समाज के मानसिक जीवन के विकास का सम्बन्ध क्या है, इस सवाल का यही जवाब ऐतिहासिक भौतिकवाद देता है।

(3) ऐतिहासिक भौतिकवाद।

अब एक सवाल का जवाब देना बाक़ी रह गया है : ऐतिहासिक भौतिकवाद के दृष्टिकोण से 'समाज के भौतिक जीवन की परिस्थितियों' का क्या मतलब है, जो आखिरी छानबीन में समाज का रूप, उसके विचार, मत, राजनीतिक संस्थायें वग़ैरह निश्चित करती हैं।

आखिर, यह 'समाज के भौतिक जीवन की परिस्थितियां' हैं क्या, उनके विशेष लक्षण क्या हैं?

इसमें कोई सन्देह नहीं कि 'समाज के भौतिक जीवन की परिस्थितियां' – इस धारणा में प्रकृति शामिल है जो समाज को घेरे हुए है, भौगोलिक परिस्थितियां शामिल हैं जो समाज के भौतिक जीवन के लिए एक लाज़िमी और सदा रहने वाली शर्त हैं और जो अवश्य ही समाज के विकास पर असर डालती हैं। सामाजिक विकास में भौगोलिक परिस्थिति कौन सा पार्ट अदा करती है? क्या भौगोलिक परिस्थिति वह मुख्य शक्ति है जो समाज के रूप को, मनुष्य की समाज–व्यवस्था के रूप को, एक व्यवस्था से दूसरी व्यवस्था की ओर प्रगति को निश्चित करती है?

ऐतिहासिक भौतिकवाद इस सवाल के जवाब में कहता है – नहीं।

निस्संदेह, भौगोलिक परिस्थितियां सामाजिक विकास के लिये एक लाज़िमी और हमेशा रहने वाली शक्ति हैं और अवश्य ही सामाजिक विकास पर असर डालती हैं, उस विकास की गति तेज़ करती हैं, या उसे रोकती हैं। लेकिन, उनका असर **नियामक** नहीं है। कारण यह कि समाज के परिवर्तन और विकास, भौगोलिक परिस्थितियों के परिवर्तन और विकास से निस्बतन कहीं ज्यादा तेज होते हैं। तीन हज़ार साल की अवधि में, तीन विभिन्न समाज–व्यवस्थायें यूरोप में एक के बाद एक आ चुकी हैं : आदिम साम्यवादी व्यवस्था, गुलामी की व्यवस्था और सामन्ती व्यवस्था। यूरोप के पूर्वी हिस्से में, सोवियत संघ में चार व्यवस्थायें एक के बाद एक आ चुकी हैं। लेकिन, इसी अवधि में, यूरोप की भौगोलिक परिस्थितियां या तो बदली ही नहीं हैं या इतनी कम बदली हैं कि भूगोल ने उन पर ध्यान ही नहीं दिया है, और यह बिल्कुल स्वाभाविक है। भौगोलिक परिस्थिति में महत्वपूर्ण तब्दीली के लिये लाखों वर्ष चाहिये, जब कि मानव समाज की व्यवस्था में बहुत ही महत्वपूर्ण तब्दीलियों के लिये भी कुछ शताब्दियां या एक–दो हज़ार साल काफ़ी होते हैं।

इससे नतीजा यह निकलता है कि भौगोलिक परिस्थितियां सामाजिक विकास का मुख्य कारण, उसका नियामक नहीं कही जा सकतीं। जो वस्तु स्वयं लाखों साल तक अपरिवर्तित रहे, वह उस चीज के विकास का मुख्य कारण नहीं हो सकती जिसमें कुछ शताब्दियों में ही बुनियादी तब्दीली हो।

और भी, इसमें सन्देह नहीं कि 'समाज के भौतिक जीवन की परिस्थितियां' – इस धारणा में जनसंख्या की बढ़ती भी शामिल है, आबादी का कमोवेश घना होना भी शामिल है, क्योंकि इंसान समाज के भौतिक जीवन की परिस्थितियों का जरूरी तत्व है और बिना एक निश्चित अल्पतम जनसंख्या के समाज का भौतिक जीवन हो ही नहीं सकता। तब क्या जनसंख्या की बढ़ती वह मुख्य शक्ति नहीं है जो मनुष्य की समाज–व्यवस्था का रूप निश्चित करती है?

ऐतिहासिक भौतिकवाद इस सवाल के जवाब में भी कहता है – नहीं।

अवश्य ही, जनसंख्या की बढ़ती समाज के विकास पर असर डालती है, समाज के विकास की गति को तेज़ करने या रोकने में मदद देती है। लेकिन, वह सामाजिक विकास की मुख्य शक्ति नहीं हो सकती और सामाजिक विकास पर उसका असर **नियामक** नहीं हो सकता। कारण यह कि सिर्फ जनसंख्या की वृद्धि से इस सवाल का जवाब नहीं मिलता कि किसी समाज–व्यवस्था के बदले कोई, विशेष नयी समाज–व्यवस्था ही क्यों आती है और कोई दूसरी क्यों नहीं आती; आदिम साम्यवादी व्यवस्था के बदले ठीक गुलामी की व्यवस्था ही क्यों आती है, गुलामी की व्यवस्था के

बदले सामंती व्यवस्था और सामंती व्यवस्था के बदले पूंजीवादी व्यवस्था ही क्यों आती है, कोई दूसरी क्यों नहीं आती।

अगर जनसंख्या की बढ़ती सामाजिक विकास की नियामक शक्ति हो तो जनसंख्या के अधिक घने होने से वैसी ही ऊंचे स्तर की समाज–व्यवस्था भी पैदा हो जाये। लेकिन, हम देखते हैं कि ऐसा नहीं होता। चीन की आबादी अमरीका से चार गुना ज्यादा घनी है, फिर भी सामाजिक विकास–क्रम में अमरीका चीन से ऊपर है। कारण यह कि चीन में अर्द्ध–सामन्ती व्यवस्था अब भी चालू है जब कि अमरीका बहुत पहले पूंजीवाद के उच्चतम विकास की मंजिल तक पहुंच गया है। बेल्जियम की आबादी अमरीका से 19 गुना घनी है और सोवियत संघ से 26 गुना घनी है। फिर भी, अमरीका सामाजिक विकास–क्रम में बेल्जियम से ऊपर है। जहां तक सोवियत संघ का सवाल है, बेल्जियम हमारे देश से एक ऐतिहासिक युग पीछे है; क्योंकि बेल्जियम में पूंजीवादी व्यवस्था चालू है जब कि सोवियत संघ ने पहले ही पूंजीवादी व्यवस्था खत्म कर दी है और समाजवादी व्यवस्था क़ायम कर ली है।

इससे यह नतीजा निकलता है कि जनसंख्या की बढ़ती सामाजिक विकास की मुख्य शक्ति, ऐसी शक्ति जो समाज का रूप, समाज–व्यवस्था का रूप निश्चित करती हो, न है और न हो सकती है।

(क) तब समाज के भौतिक जीवन की परिस्थितियों के व्यूह में वह मुख्य शक्ति कौन सी है जो समाज का रूप, समाज–व्यवस्था का रूप निश्चित करती है, जो एक से दूसरी व्यवस्था की ओर समाज की प्रगति निश्चित करती है।

ऐतिहासिक भौतिकवाद का कहना है कि यह शक्ति मानव जीवन के लिये आवश्यक **ज़िन्दगी के साधनों को हासिल करने का तरीका है,** यह **भौतिक मूल्यों की पैदावार का तरीक़ा है** – खाना, कपड़ा, जूते, घर, ईंधन, पैदावार के साधन वगैरह – जो सामाजिक जीवन और विकास के लिये अनिवार्य हैं।

जिन्दा रहने के लिये जरूरी है कि लोगों के पास खाना, कपड़ा, जूते, रहने की जगह, ईंधन वगैरह हों। इन भौतिक मूल्यों को हासिल करने के लिये, यह ज़रूरी है कि लोग उन्हें पैदा करें। उन्हें पैदा करने के लिये ज़रूरी है कि लोगों के पास पैदावार के साधन हों, जिनसे कि खाना–कपड़ा, जूते, रहने की जगह ईंधन वगैरह पैदा किये जाते हों। यह जरूरी है कि लोग इन साधनों को पैदा कर सकें और उन्हें काम में ला सकें।

पैदावार के औज़ार, जिनसे भौतिक मूल्य पैदा किये जाते हैं, **वे लोग** जो पैदावार के औज़ारों को काम में लाते हैं और एक निश्चित **पैदावार के अनुभव** और **श्रम–कौशल** से भौतिक मूल्यों की पैदावार करते जाते हैं – ये सब तत्व कुल मिलाकर समाज की **उत्पादक शक्तियां** हैं।

लेकिन, उत्पादक शक्तियां पैदावार का सिर्फ़ एक पहलू हैं, पैदावार के तरीक़े का सिर्फ़ एक पहलू हैं। यह ऐसा पहलू है जो मनुष्यों के और प्रकृति की वस्तुओं और शक्तियों के सम्बन्ध को प्रकट करता है। इन वस्तुओं और शक्तियों को इन्सान भौतिक मूल्य पैदा करने के लिये काम में लाते हैं। पैदावार का दूसरा पहलू, पैदावार के तरीक़े का दूसरा पहलू उत्पादन–क्रम में मनुष्यों का आपसी सम्बन्ध है, मनुष्यों के **उत्पादन–सम्बन्ध** हैं। भौतिक मूल्यों को पैदा करने के लिये मनुष्य जब प्रकृति से संघर्ष करते हैं और प्रकृति को काम में लाते हैं तो वे एक–दूसरे से अलग–थलग रह कर, व्यक्तिगत रूप से अलग रहकर नहीं करते बल्कि मिलकर, गुटों में, समाजों में ऐसा करते हैं। इसलिये, उत्पादन सभी समय और सभी परिस्थितियों में **सामाजिक** उत्पादन होता है। भौतिक मूल्यों की पैदावार में उत्पादन के भीतर मनुष्य आपस में एक या दूसरी तरह के सम्बन्ध क़ायम करते हैं, वे एक या दूसरी तरह के उत्पादन–सम्बन्ध क़ायम करते हैं। ये संबंध इस तरह के लोगों में, जो शोषण से मुक्त हैं, सहयोग और परस्पर सहायता के संबंध हो सकते हैं। वे प्रभुत्व और पराधीनता के संबंध हो सकते हैं, और अंत में उत्पादन–सम्बन्धों के एक रूप से दूसरे रूप की तरफ़ बढ़ने की दशा के हो सकते हैं। लेकिन, उत्पादन–सम्बन्धों का जो भी रूप हो, वे हमेशा और हर व्यवस्था में पैदावार का वैसा ही ज़रूरी हिस्सा होते हैं, जैसा कि समाज की उत्पादक शक्तियां।

मार्क्स ने लिखा था :

"पैदावार में इंसान प्रकृति पर ही नहीं बल्कि एक–दूसरे पर भी अपना प्रभाव डालते हैं। किसी निश्चित तरीक़े से सहयोग करके ही और अपनी कार्यवाही की परस्पर अदला–बदली करके ही, वह पैदावार कर सकते हैं। पैदावार करने के लिये, वे एक–दूसरे से निश्चित सम्पर्क और सम्बन्ध स्थापित करते हैं और इन सामाजिक सम्पर्क और सम्बन्धों के भीतर ही प्रकृति पर प्रभाव पड़ता है, उनकी पैदावार होती है।" (कार्ल मार्क्स, ***सं•ग्रं•***, अं• सं•, मास्को, 1946, खण्ड 1, पृष्ठ 211)।

नतीजा यह कि पैदावार में, पैदावार के तरीक़े में, दोनों चीजें शामिल हैं – समाज की उत्पादक शक्तियां और मनुष्यों के उत्पादक–सम्बन्ध। इस तरह, पैदावार, पैदावार का तरीक़ा, भौतिक मूल्यों के उत्पादन–क्रम में उत्पादक शक्तियों और उत्पादन–सम्बन्धों की एकता का मूर्त रूप है।

(ख) पैदावार का **पहला लक्षण** यह है कि वह ज्यादा समय के लिये किसी एक जगह स्थिर नहीं रहती। वह हमेशा परिवर्तन और विकास की दशा में रहती है। इसके सिवा, पैदावार के तरीक़े में तब्दीली होने से लाज़िमी तौर पर समूची समाज–व्यवस्था में, सामाजिक विचारों, राजनीतिक मतों और राजनीतिक संस्थाओं में तब्दीली होती है; समूची सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था की फिर से रचना होती है। विकास की विभिन्न मंजिलों में लोग पैदावार के विभिन्न तरीक़े इस्तेमाल करते हैं, या मोटे रूप में कहें, विभिन्न तरह की जिन्दगी बसर करते हैं। आदिम कम्यून में, पैदावार का एक तरीक़ा होता है, गुलामी की प्रथा में पैदावार का दूसरा तरीक़ा होता है, सामन्तशाही में पैदावार का तीसरा तरीक़ा होता है, इत्यादि। और, इसी के अनुकूल मनुष्यों की समाज–व्यवस्था, मनुष्यों का मानसिक जीवन उनके मत और राजनीतिक संस्थायें भी बदलती हैं।

किसी समाज के पैदावार का तरीक़ा जैसा होता है, मुख्य रूप से वैसा ही वह समाज होता है, वैसे ही उसके विचार और सिद्धांत, उसके राजनीतिक मत और संस्थायें होती हैं।

या, मोटे रूप में कहें – इंसान की जैसी जिन्दगी होती है, वैसे ही उसके विचार होते हैं।

इसका अर्थ यह है कि सामाजिक विकास का इतिहास सबसे पहले पैदावार के विकास का इतिहास है, पैदावार के उन तरीक़ों का इतिहास है जो शताब्दियों के दौरान में एक के बाद एक आते हैं, उत्पादक शक्तियों और मनुष्यों के उत्पादन–सम्बन्धों के विकास का इतिहास है।

इसलिये, सामाजिक विकास का इतिहास साथ ही खुद भौतिक मूल्य पैदा करने वालों का भी इतिहास है, उस श्रमिक जनता का इतिहास है जो उत्पादन–क्रम की मुख्य शक्ति है और जो समाज की जिन्दगी के लिये आवश्यक भौतिक मूल्यों की पैदावार जारी रखती है।

इसलिये, अगर इतिहास के विज्ञान को सचमुच विज्ञान बनना है तो वह सामाजिक विकास के इतिहास को घटाकर राजाओं और सेनापतियों की कार्यवाही, 'विजेताओं' और दूसरे राज्यों को 'पराधीन करने वालों' का इतिहास नहीं बनाया जा सकता। इतिहास–विज्ञान को सबसे पहले भौतिक मूल्य पैदा करने वालों के इतिहास, श्रमिक जनता के इतिहास, जन–साधारण के इतिहास की तरफ़ ध्यान देना होगा।

इसलिये, समाज के इतिहास के नियमों का अध्ययन करने के लिये इंसान के दिमागों में, समाज के मतों और विचारों में सूत्र न खोजना चाहिये बल्कि पैदावार के

तरीके में ढूंढना चाहिये, जो किसी विशेष ऐतिहासिक युग में समाज के अन्दर चालू हों। वह सूत्र समाज के आर्थिक जीवन में ढूंढना चाहिये।

इयलिये, इतिहास–विज्ञान का मुख्य काम यह है कि पैदावार के नियमों, उत्पादक शक्तियों और उत्पादन–सम्बन्धों के विकास के नियमों, समाज के आर्थिक विकास के नियमों का अध्ययन करे और उन्हें जाहिर करे।

इसलिये, सर्वहारा वर्ग की पार्टी को अगर सच्ची पार्टी बनना है तो उसे सबसे पहले पैदावार के विकास के नियमों का, समाज के आर्थिक विकास के नियमों का ज्ञान प्राप्त करना चाहिये।

इसलिये नीति में ग़लती न करने के लिये, यह जरूरी है कि सर्वहारा वर्ग की पार्टी अपने प्रोग्राम का मसौदा बनाने में और अमली कार्यवाही में भी सबसे पहले पैदावार के विकास के नियमों के आधार पर, समाज के आर्थिक विकास के नियमों के आधार पर आगे बढ़े।

(ग) पैदावार का **दूसरा लक्षण** यह है कि उसकी तब्दीली और विकास हमेशा उत्पादक शक्तियों की तब्दीली और विकास से शुरू होता है और, सबसे पहले, पैदावार के साधनों में तब्दीली और विकास से शुरू होता है। इसलिये, उत्पादक शक्तियां पैदावार का सबसे गतिशील और क्रांतिकारी तत्व हैं। पहले समाज की उत्पादक शक्तियां बदलतीं और विकसित होती हैं और उसके बाद, इन्हीं तब्दीलियों पर **निर्भर** और **इन्हीं के अनुकूल**, मनुष्यों के उत्पादन–सम्बन्ध, उनके आर्थिक सम्बन्ध बदलते हैं। लेकिन, इसका यह मतलब नहीं है कि उत्पादन–सम्बन्धों का असर उत्पादक शक्तियों के विकास पर नहीं पड़ता और ये उत्पादक शक्तियां उत्पादन–सम्बंधों पर निर्भर नहीं हैं। उत्पादन–सम्बन्धों का विकास उत्पादक शक्तियों के विकास पर निर्भर जरूर है, लेकिन वे खुद अपनी बार उत्पादक शक्तियों के विकास पर असर डालते हैं, उनकी गति को तेज़ करते हैं या रोकते हैं। इस सिलसिले में, इस बात पर ध्यान देना चाहिये कि पैदावार के सम्बन्ध बहुत दिनों तक उत्पादक शक्तियों की बढ़ती से पीछे और उनसे विरोध की दशा में नहीं रह सकते। कारण यह कि उत्पादक शक्तियां पूरी तरह से तभी बढ़ सकती हैं जब उत्पादन के सम्बन्ध उनके रूप से, उनकी दशा से मेल खाते हों और उन्हें पूरी तरह विकसित होने का मौका देते हों। इसलिये, पैदावार के सम्बन्ध उत्पादक शक्तियों के विकास के चाहे जितने पीछे रहें, उन्हें आगे–पीछे उत्पादक शक्यिों के विकास की सतह के अनुकूल, उत्पादक शक्तियों के रूप के अनुकूल बनना ही पड़ेगा – और दरअसल वे उसके अनुकूल बन जाते हैं। ऐसा न हो तो पैदावार की व्यवस्था में उत्पादक शक्तियों और पैदावार के सम्बन्धों की एकता

बुनियादी तौर से टूट जाये, समूची पैदावार में तोड़–फोड़ हो जाये, पैदावार में संकट आ जाये, उत्पादक शक्तियों का नाश हो जाये।

इस बात की मिसाल, जबकि पैदावार के सम्बन्ध उत्पादक शक्तियों के रूप के अनुकूल नहीं होते, उनसे टक्कर लेते हैं, पूंजीवादी देशों का आर्थिक संकट है। वहां पैदावार के साधनों की निजी पूंजीवादी मिल्कियत उत्पादन–क्रम के सामाजिक रूप, उत्पादक शक्तियों के रूप की खुल्लमखुल्ला विरोधी है। इससे आर्थिक संकट पैदा होते हैं, जिनसे उत्पादक शक्तियों का नाश होता है। और भी, यह विरोध खुद सामाजिक क्रांति का आर्थिक आधार बन जाता है। इस क्रांति का उद्देश्य होता है, पैदावार के मौजूदा सम्बन्धों को खत्म करना और पैदावार के ऐसे नये सम्बन्ध रचना जो उत्पादक शक्यिों के रूप के अनुकूल हों।

इसके विपरीत, इस बात की मिसाल, जहां पैदावार के सम्बन्ध उत्पादक शक्तियों के रूप के पूरी तरह अनुकूल हैं, सोवियत संघ की समाजवादी राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था है। यहां पर पैदावार के साधनों की सामाजिक मिल्कियत उत्पादन–क्रम के सामाजिक रूप के पूरी तरह अनुकूल है और इस वजह से, यहां आर्थिक संकट और उत्पादक शक्तियों के विनाश का नाम नहीं है।

नतीजा यह कि उत्पादक शक्तियां न सिर्फ़ पैदावार का सबसे गतिशील और क्रान्तिकारी तत्व हैं, बल्कि पैदावार के विकास का नियामक तत्व भी हैं।

जैसी उत्पादक शक्तियां होती हैं, वैसे ही पैदावार के सम्बन्ध होते हैं।

उत्पादक शक्तियों की दशा क्या है, इससे इस बात का पता चलता है कि मनुष्य अपने लिये आवश्यक भौतिक मूल्यों को पैदावार के किन साधनों से उत्पन्न करते हैं। पैदावार के साधनों की दशा क्या है, इससे एक दूसरी बात का पता चलता है कि पैदावार के साधनों (जमीन, जंगल, जलाशय, खानें, कच्चा माल, पैदावार के साधन, पैदावार की जगह, यातायात और समाचार भेजने के साधन वगैरह) का मालिक कौन है; पैदावार के साधन किसके अधिकार में हैं, पूरे समाज के अधिकार में हैं या अलग–थलग लोगों, गुटों या वर्गों के हाथ में है, जो उन्हें दूसरे लोगों, गुटों या वर्गो का शोषण करने के लिये इस्तेमाल करते हैं?

पुराने ज़माने से लेकर आज तक उत्पादक शक्तियों के विकास की एक मोटी रूपरेखा यह है। भोंड़े पत्थर के औज़ारों से लोग धनुष–बाण की तरफ़ बढ़े और उसके साथ ही, शिकारियों की जिन्दगी छोड़ कर पशुपालन और आदिम चारागाहों की तरफ़ बढ़े। लोग पत्थर के औज़ार छोड़ कर धातुओं के औज़ार (लोहे की कुल्हाड़ी, लोहे का

फाल लगा हुआ लकड़ी का हल वगैरह) की तरफ़ बढ़े और उसके साथ ही जोतने, बोने और खेती की तरफ़ बढ़े। इसके बाद, सामान तैयार करने के लिये धातु के औज़ारों में और सुधार हुआ, लोहार की धौंकनी काम में लायी जाने लगी, मिट्टी का बर्तन बनना शुरू हुआ, उसके साथ ही दस्तकारी का विकास हुआ, दस्तकारी खेती से जुदा हुई, दस्तकारी के स्वतंत्र उद्योग विकसित हुए और आगे चल कर कारख़ाने कायम हुए। दस्तकारी से औज़ार छोड़ कर लोग मशीनों की तरफ़ आये और दस्तकारी और कारखानों की पैदावार मशीनों के उद्योग–धंधों में बदल गयी। इसके बाद, लोग मशीनों की व्यवस्था की तरफ बढ़े और आधुनिक, बड़े पैमाने पर मशीनों से चलने वाले उद्योग–धंधे क़ायम हुए। मानव इतिहास के दौर में समाज की उत्पादक शक्तियों के विकास की यह मोटी और अपूर्ण रूपरेखा है। इससे साफ हो जायेगा कि पैदावार के साधनों का विकास और उनमें सुधार उन लोगों ने किया जिनका पैदावार से संबंध था, यह विकास और सुधार उनसे स्वतंत्र नहीं हुआ। यह काम मनुष्यों से स्वतंत्र नहीं हुआ। नतीजा यह कि पैदावार के साधनों की तब्दीली और विकास के साथ उत्पादक शक्तियों के सबसे महत्वपूर्ण तत्व इंसानों में तब्दीली और विकास हुए, उनके पैदावार के अनुभव, उनके श्रम–कौशल, पैदावार के औज़ारों को इस्तेमाल करने की उनकी योग्यता में तब्दीली और विकास हुआ।

इतिहास के दौर में, समाज की उत्पादक शक्तियों के विकास और परिवर्तन के अनुकूल, मनुष्यों के उत्पादन–सम्बन्ध, उनके आर्थिक सम्बन्ध भी बदले और विकसित हुए।

इतिहास में उत्पादन–सम्बन्धों के पांच मुख्य रूप मिलते हैं : आदिम साम्यवादी, गुलामी की प्रथा, सामन्ती, पूंजीवादी और समाजवादी।

आदिम साम्यवादी व्यवस्था में पैदावार के सम्बन्धों की बुनियाद यह है कि पैदावार के साधनों पर सामाजिक मिल्कियत होती है। यह बात उस समय की उत्पादक शक्तियों के रूप से मुख्यतः मेल खाती है। पत्थर के औज़ारों से और आगे चल कर तीर–कमान से लोग अलग–थलग रह कर प्रकृति की शक्तियों और हिंसक जंतुओं का मुक़ाबिला न कर सकते थे। जंगल से फल इकट्ठे करने के लिये, मछली पकड़ने के लिये, किसी तरह की रहने की जगह बनाने के लिये मनुष्यों को मिलकर काम करने पर मजबूर होना पड़ा वर्ना वे भूख से मरते या हिंसक जंतुओं या पड़ोसी समाजों के शिकार होते। एक साथ मेहनत करने से पैदावार के साधनों पर और पैदावार की उपज पर भी मिली–जुली मिल्कियत हुई। यहां अभी पैदावार के साधनों की निजी मिल्कियत का भाव पैदा न हुआ था। लोगों के पास निजी मिल्कियत के नाम पर सिर्फ़ पैदावार

के कुछ औज़ार होते थे, जो साथ ही हिंसक जंतुओं से रक्षा करने के साधन का काम देते थे। यहां अभी न शोषण था, न वर्ग थे।

गुलामी की प्रथा वाली व्यवस्था में पैदावार के सम्बन्धों की बुनियाद यह थी कि पैदावार के साधनों का मालिक गुलामों का स्वामी होता था। पैदावार में काम करने वाले, यानी गुलाम, पर भी उसका अधिकार होता था, जिसे वह खरीद या बेच सकता था या जान से मार सकता था, मानो वह जानवर हो। इस तरह के उत्पादन–सम्बन्ध उस समय की उत्पादक–शक्तियों की दशा के मुख्यतः अनुकूल थे। पत्थर के औज़ारों के बदले, अब लोगों के हाथ में धातु के औज़ार थे। शिकारी की गयी–बीती और आदिम गिरिस्ती के बदले, जो न जोतना–बोना जानता था न चरागाह रखना जानता था, अब चरागाह, खेती, दस्तकारी सामने आयी और पैदावार की इन शाखाओं में मेहनत का बंटवारा हुआ। अब व्यक्तियों और समाजों के बीच में उपज की अदला–बदली मुमकिन हुई, मुट्ठी भर लोगों के हाथ में दौलत का इकट्ठा होना, अल्पसंख्यक लोगों के हाथ में पैदावार के साधनों का सचमुच केन्द्रित हो जाना और बहुसंख्यक लोगों का थोड़े से लोगों द्वारा पराधीन बनाया जाना और बहुसंख्यक लोगों का दासों में तब्दील होना – यह सब मुमकिन हुआ। अब उत्पादन–क्रम में समाज के सभी लोग मिलजुल कर और आज़ादी से मेहनत न करते थे। यहां अब गुलामों की बेगार चालू हो गयी, जिन्हें उनके खुद मेहनत न करने वाले मालिक शोषित करते थे। इसलिये, यहां पैदावार के साधनों या पैदावार की उपज की मिलीजुली मिल्कियत न रह गयी थी। उसकी जगह, निजी मिल्कियत ने ले ली। यहां गुलामों का मालिक अक्षरशः सम्पत्ति के पहले और मुख्य स्वामी के रूप में प्रकट होता है।

धनी और ग़रीब, शोषक और शोषित, अधिकारयुक्त और अधिकारहीन लोग और इनके बीच घोर वर्ग–संघर्ष – गुलामी की व्यवस्था की यही तस्वीर है।

सामन्ती व्यवस्था में उत्पादन–सम्बन्धों की बुनियाद यह है कि सामन्ती मालिक पैदावार के साधनों का स्वामी होता है और पैदावार में काम करने वाले भूदास का पूरी तरह मालिक नहीं होता। वह अब उसकी जान नहीं मार सकता, लेकिन उसे बेच और खरीद सकता है। सामन्ती मिल्कियत के साथ, किसान और दस्तकार की निजी मिल्कियत भी रहती है। यह मिल्कियत पैदावार के औज़ारों और उसकी अपनी मेहनत पर चलने वाले निजी धंधे की होती है। इस तरह के उत्पादन–संबन्ध उस समय की उत्पादक शक्तियों के मुख्यतः अनुकूल होते हैं। लोहे के गलाने और उसकी चीजें बनाने में और तरक्क़ी, लोहे के हल और करघे का प्रसार; खेती, बागबानी, अंगूरबानी

और डेरी के काम का और विकास; दस्तकारों की दुकान के साथ–साथ कारखानों का बनना – उत्पादक शक्तियों की दशा की ये अपनी विशेषतायें हैं।

नयी उत्पादक शक्तियों की मांग होती है कि मेहनत करने वाला पैदावार में किसी तरह की पहलक़दमी और काम के लिये रुझान, काम से दिलचस्पी ज़ाहिर करे। इसलिये, सामन्ती मालिक गुलाम से नाता तोड़ लेता है। गुलाम ऐसा मेहनत करने वाला है जिसे काम से कोई दिलचस्पी नहीं होती और जो क़तई पहलक़दमी नहीं करता। उसके बदले, सामन्ती मालिक भूदास से नाता जोड़ना पसन्द करता है। भूदास की अपनी गिरिस्ती होती है, पैदावार के अपने औज़ार होते हैं और काम में इतनी दिलचस्पी होती है जितनी ज़मीन की काश्तकारी के लिये और सामन्ती मालिक को फ़सल का एक हिस्सा ग़ल्ले के रूप में देने के लिये जरूरी हो।

यहां निजी मिल्कियत का और विकास होता है। शोषण क़रीब–क़रीब वैसा ही कठोर होता है जैसा गुलामी में – अब वह जरा सा मद्धिम होता है। शोषक और शोषितों के बीच वर्ग–संघर्ष सामन्ती व्यवस्था का मुख्य लक्षण है।

पूंजीवादी समाज में पैदावार के सम्बन्धों की बुनियाद यह है कि पैदावार के साधनों के मालिक पूंजीपति होते हैं न कि पैदावार में काम करने वाले मजदूर, जो पगार पर मजदूरी करते हैं। इन्हें पूंजीपति न मार सकता है, न बेच सकता है क्योंकि वे निजी तौर पर आज़ाद हैं। लेकिन, उनके पास पैदावार के साधन नहीं होते और भूख से न मर जायें, इसलिये उन्हें मजबूर होकर अपनी श्रम–शक्ति पूंजीपति को बेचनी पड़ती है और शोषण का जुआं बर्दाश्त करना पड़ता है। पैदावार के साधनों में पूंजीवादी सम्पत्ति के साथ–साथ, पैदावार के साधनों में, पहले एक बड़े पैमाने पर, किसानों और दस्तकारों की निजी सम्पत्ति दिखाई देती है। ये किसान और दस्तकार भूदास नहीं होते और उनकी निजी सम्पत्ति उनकी अपनी मेहनत का फल होती है। दस्तकारों की दूकानों और कारखानों के बदले, अब बड़ी–बड़ी मिलें और मशीनों से लैस कारखाने उठ खड़े होते हैं। जमींदारों की रियासतों के बदले, जिन्हें किसान पैदावार के आदिम औज़ारों से जोतते–बोते थे, अब बड़े–बड़े पूंजीवादी फ़ार्म सामने आ जाते हैं, जिनमें वैज्ञानिक ढंग से काम होता है और जिनके पास खेती करने की मशीनें होती हैं।

नयी उत्पादक शक्तियों की मांग होती है कि पैदावार में काम करने वाले, कुचले हुए अनपढ़ भूदासों के मुकाबिले में, ज्यादा शिक्षित और ज्यादा चतुर हों, वे मशीनों का काम समझ सकें और उन्हें ठीक से चला सकें। इसलिये, पूंजीपति पगार पाने वाले मज़दूरों से काम लेना ज्यादा पसन्द करते हैं। ये मज़दूर भूदास प्रथा के बन्धनों से मुक्त होते हैं और इतने शिक्षित होते हैं कि मशीनों से सही तौर पर काम ले सकें।

लेकिन उत्पादक शक्तियों को जबर्दस्त सीमा तक विकसित करने के बाद, पूंजीवाद ऐसी असंगतियों में फंस गया है जिन्हें वह हल नहीं कर पाता। अधिकाधिक तादाद में बिकाऊ माल पैदा करके और उनके भाव गिराकर, पूंजीवाद होड़ को तेज करता है, छोटे और मध्यम श्रेणी के निजी मिल्कियत वालों को तबाह कर देता है, उन्हें सर्वहारा में तब्दील कर देता है और उनकी खरीदने की ताक़त कम कर देता है। नतीजा यह होता है कि जो बिकाऊ माल तैयार किया जाता है, उसे ठिकाने लगाना असंभव हो जाता है। दूसरी तरफ़, पैदावार को फैलाकर और लाखों मज़दूरों को बड़ी–बड़ी मिलों और कारखानों में केन्द्रित करके पूंजीवाद उत्पादन–क्रम को एक सामाजिक रूप दे देता है और इस तरह, खुद अपनी जड़ कमज़ोर करता है। कारण यह कि उत्पादन–क्रम के सामाजिक रूप की मांग होती है कि पैदावार के साधनों की मिल्कियत भी सामाजिक हो। लेकिन, पैदावार के साधन पूंजीपतियों की निजी दौलत ही रहते हैं, जो उत्पादन–क्रम के सामाजिक रूप के बिल्कुल प्रतिकूल होता है।

उत्पादक शक्तियों के रूप और उत्पादन–सम्बन्धों के बीच दूर न होने वाले ये अंतर्विरोध समय–समय पर अति–पैदावार के संकटों के रूप में ज़ाहिर होते हैं। उस समय खुद अपनी तरफ़ से तबाह किये हुए आम लोगों की ग़रीबी की वजह से अपने माल की खासी मांग न देखकर पूंजीपतियों को मजबूरन अपनी उपज जला देनी पड़ती है, कारखानों में तैयार किया हुआ माल नष्ट कर देना होता है, पैदावार का काम मुल्तवी कर देना पड़ता है और ऐसे समय उत्पादक शक्तियों का नाश करना पड़ता है जब लाखों लोग मजबूरन बेकारी और भुखमरी के शिकार होते हैं, इसलिये नहीं कि काफ़ी माल है, नहीं, बल्कि इसलिये कि माल की अति–पैदावार हो गयी है।

इसका अर्थ यह होता है कि पैदावर के पूंजीवादी सम्बन्ध समाज की उत्पादक शक्तियों की दशा से अब मेल नहीं खाते और उन शक्तियों से अब उनका कभी न सुलझने वाला विरोध पैदा हो गया है।

इसका अर्थ यह होता है कि पूंजीवाद के गर्भ में क्रांति पुष्ट हो रही है, जिसका काम है – पैदावार के साधनों की मौजूदा पूंजीवादी मिल्कियत की जगह समाजवादी मिल्कियत क़ायम करना।

इसका अर्थ यह होता है कि पूंजीवादी व्यवस्था का मुख्य लक्षण शोषक और शोषितों के बीच बहुत ही तीव्र वर्ग–संघर्ष है।

समाजवादी व्यवस्था में, जो अभी तक सिर्फ़ सोवियत संघ में क़ायम हुई है, पैदावार के साधनों की बुनियाद यह है कि पैदावार के साधनों की मिल्कियत सामाजिक

होती है। यहां पर अब और शोषित नहीं हैं। जो माल पैदा किया जाता है वह लोगों की मेहनत के अनुसार बांट दिया जाता है। इसका असूल है : "जो काम न करेगा वह खायेगा भी नहीं।" यहां उत्पादन–क्रम में लोगों के आपसी सम्बन्धों की विशेषता यह है कि शोषण से मुक्त मजदूर भाईचारे का सहयोग करते हैं और समाजवादी ढंग से एक–दूसरे की मदद करते हैं। यहां पैदावार के सम्बन्ध पूरी तरह उत्पादक शक्तियों के अनुकूल होते हैं, क्योंकि उत्पादन–क्रम के सामाजिक रूख को पैदावार के साधनों की सामाजिक मिल्कियत और मज़बूत कर देती है।

इस वजह से, सोवियत संघ में समाजवादी पैदावार न तो अति–पैदावार के समय–समय पर आने वाले संकट जानती है और न उनके साथ की यहां बेहूदगियां होती हैं।

इस वजह से, यहां उत्पादक शक्तियां और तेज़ तफ्तार से विकसित होती हैं, क्योंकि उनसे मेल खाने वाले सम्बन्ध ऐसे विकास के लिये उन्हें पूरा मौक़ा देते हैं।

मानव इतिहास के दौरान में, मनुष्यों के उत्पादन–सम्बन्धों के विकास की यही तस्वीर है।

पैदावार के सम्बन्धों का विकास समाज की उत्पादक शक्तियों के विकास पर इस तरह निर्भर है और सबसे पहले पैदावार के औज़ारों के विकास पर निर्भर है। इस निर्भरता की वजह से, उत्पादक शक्तियों की तब्दीली और विकास आगे–पीछे उत्पादन–सम्बन्धों में वैसी ही तब्दीली और विकास पैदा कर देते हैं।

मार्क्स ने लिखा था :

"मेहनत करने के औज़ारों"[1] का इस्तेमाल और उनका निर्माण बीज रूप में कुछ खास तरह के पशुओं में जरूर मौजूद रहता है, लेकिन मनुष्य की मेहनत का जो सिलसिला होता है, उसकी यह अपनी विशेषता है। इसलिये, फ्रेंकलिन ने मनुष्य की यह व्याख्या की थी कि वह औज़ार बनाने वाला पशु है। मेहनत करने के पुराने औज़ारों के अवशेष खत्म हो चुकने वाले समाज के आर्थिक रूपों की जांच–पड़ताल के लिये उतने ही महत्वपूर्ण हैं जितने कि पशुओं की खत्म हो चुकी जातियां पहचानने के लिये हड्डियों के अवशेष। विभिन्न आर्थिक युगों को हम इस बात से नहीं पहचानते कि उस समय कौन सी चीजें बनायी जातीं थीं, बल्कि इससे पहचानते हैं कि वे कैसे और किन औज़ारों से बनायी जाती थीं। मेहनत

---

1. **मेहनत करने के औज़ारों से मार्क्स का लक्ष्य मुख्यतः पैदावार के औज़ार हैं – संपादक**

करने के औज़ारों से इसी का माप–दण्ड नहीं मिलता कि मनुष्य की मेहनत किस हद तक विकसित हुई है, बल्कि उनसे उन सामाजिक परिस्थितियों का भी पता चलता है जिनमें वह मेहनत की गयी थी।" (कार्ल मार्क्स, ***पूंजी***, लंदन, 1908, खण्ड 1, पृष्ठ 159)।

और आगे :

–"उत्पादक शक्तियों से सामाजिक सम्बन्धों का नज़दीकी सम्बन्ध है। नयी उत्पादक शक्तियां हासिल करने में मनुष्य अपनी पैदावार के तरीके बदल देते हैं। पैदावार का अपना तरीका बदलने में, अपनी रोजी हासिल करने का तरीका बदलने में, वे अपने तमाम सामाजिक सम्बन्ध भी बदल देते हैं। हाथ की चक्की हमें ऐसा समाज देती है जिसमें सामन्ती स्वामी होता है। मशीन से चलने वाली मिल ऐसा समाज देती है जिसमें औद्योगिक पूंजीपति होता है।" (कार्ल मार्क्स, ***दर्शनशास्त्र का दारिद्रय***, अं•सं•, मास्को, 1935, पृष्ठ 92)।

–"उत्पादक शक्तियों की बढ़ती में सामाजिक सम्बन्धों के विनाश में, विचारों के निर्माण में निरंतर गति होती है। एक ही चीज गतिहीन है और वह गतिशीलता का भाव है।" (***उप•***, पृष्ठ 93)।

कम्युनिस्ट घोषणापत्र में ऐतिहासिक भौतिकवाद की जो व्यवस्था की गयी है, उसकी चर्चा करते हुए एंगेल्स ने लिखा है :

"हर ऐतिहासिक युग की आर्थिक पैदावार और उससे लाज़िमी तौर से पैदा होने वाली समाज की बनावट उस युग के राजनीतिक और बौद्धिक इतिहास की बुनियाद है। ...इसलिये, (जबसे, जमीन की आदिम पंचायती मिल्कियत खत्म हुई), सभी इतिहास वर्ग–संघर्षों का इतिहास रहा है, सामाजिक विकास की विभिन्न मंजिलों में शोषक और शोषितों, सत्तारूढ़ और शासित वर्गों के संघर्षों का इतिहास रहा है। ...लेकिन, यह संघर्ष अब ऐसी मंजिल तक पहुंच गया है जहां कि शोषित और पीड़ित वर्ग (सर्वहारा) अपना शोषण और उत्पीड़न करने वाले वर्ग (पूंजीपतियों) से अपना छुटकारा बिना इस बात के हासिल नहीं कर सकता कि वह साथ–साथ हमें शक्ति के लिये समूचे समाज को शोषण, उत्पीड़न और वर्ग–संघर्षों से हमेशा के लिये मुक्त कर दे।" (**कम्युनिस्ट घोषणापत्र** के जर्मन संस्करण की भूमिका, कार्ल मार्क्स, ***सं•ग्रं•***, मास्को, 1946, खं• 1, पृष्ठ100–01)।

(घ) पैदावार का **तीसरा लक्षण** यह है कि नयी उत्पादक शक्तियों और उनके अनुकूल पैदावार के सम्बन्धों का जन्म पुरानी व्यवस्था से अलग, उस व्यवस्था के

खत्म हो जाने पर नहीं होता बल्कि पुरानी व्यवस्था के अन्दर ही होता है। यह जन्म मनुष्य की सोच–विचार वाली और सचेत कार्यवाही के फलस्वरूप नहीं होता बल्कि अपने–आप, अचेत रूप से, मनुष्य की इच्छा से स्वतंत्र होता है। उसके मनुष्य की इच्छा से स्वतंत्र और अपने–आप होने के दो कारण हैं।

पहला कारण यह है कि मनुष्य इस बात में स्वतंत्र नहीं हैं कि वे पैदावार का एक तरीक़ा अपनायें या दूसरा। जब कोई भी नयी पीढ़ी जीवन में प्रवेश करती है तो वह ऐसी उत्पादक शक्तियों और उत्पादन–सम्बन्धों को पहले से ही मौजूद पाती है जो पहले की पीढ़ियों की मेहनत का फल हैं। इसलिये, पैदावार के क्षेत्र में उसे जो कुछ पहले से तैयार चीज मिलती है, उसे मजबूरन उसे पहले स्वीकार करना पड़ता है और अपने को उसके अनुकूल बनाना पड़ता है, जिससे कि वह भौतिक मूल्य पैदा कर सके।

दूसरा कारण यह है कि जब मनुष्य पैदावार का कोई औज़ार सुधारते हैं, उत्पादक शक्तियों का कोई तत्व सुधारते हैं, तब वे महसूस नहीं करते, समझते नहीं हैं, या सोचने के लिये रुकते नहीं हैं कि इन सुधारों का **सामाजिक परिणाम** क्या होगा। वे सिर्फ अपने दैनिक हितों की बात सोचते हैं, अपनी मेहनत को हल करने और अपने लिये कोई सीधा और प्रत्यक्ष लाभ हासिल करने की बात सोचते हैं।

जब धीरे–धीरे और टटोलते हुए आदिम साम्यवादी समाज के कुछ सदस्य पत्थर के हथियारों से लोहे के हथियारों के प्रयोग की तरफ बढ़े, तब अवश्य ही वे न जानते थे और यह सोचने के लिये वे न रुके थे कि इन आविष्कार से कौन से **सामाजिक** परिणाम निकलेंगे। वे यह न जानते थे या न महसूस करते थे कि धातु के औज़ारों की तरफ बढ़ना पैदावार में एक क्रांति करना होगा, कि आगे चलकर उससे गुलामी की प्रथा पैदा होगी, वे सिर्फ अपनी मेहनत हल्की करना चाहते थे। उनकी सचेत कार्यवाही उनके दैनिक हितों के तंग दायरे में सीमित थी।

जब सामंती व्यवस्था के युग में छोटी पंचायती दूकानों के साथ–साथ यूरोप का तरूण पूंजीपति वर्ग बड़े कारखाने बनाने लगा और इस तरह उसने समाज की उत्पादक शक्तियों को आगे बढ़ाया, तब अवश्य ही वह यह न जानता था और यह सोचने के लिये वह न रूका था कि इस आविस्कार के कौन से **सामाजिक परिणाम** निकलेंगे। उसने यह न महसूस किया था या न समझा था कि इस 'छोटे से' आविष्कार का फल यह होगा कि सामाजिक शक्तियां नयी तरह से संगठित होंगी और इससे राजाओं की शक्ति के खिलाफ, जिनकी कृपा को वह इतना महत्व देता था, क्रांति होगी और उन सरदारों के खिलाफ क्रान्ति होगी जिनकी पांति में बैठने के लिये उसके प्रमुख प्रतिनिधि अक्सर लालायित रहते

थे। वह सिर्फ माल पैदा करने की क़ीमत कम करना चाहता था, एशिया और अभी हाल में ढूंढे हुए अमरीका के बाज़ारों में माल ज्यादा तादाद में भेजना चाहता था और ज्यादा मुनाफ़े कमाना चाहता था। उसकी सचेत कार्यवाही इस मामूली व्यवहारिक उद्देश्य के तंग दायरे में सीमित थी।

जब रूसी पूंजीपतियों ने विदेशी पूंजीपतियों से मिल कर रूस में जोर–शोर से आधुनिक बड़े पैमाने के मशीनों वाले उद्योग–धंधे क़ायम किये और ज़ारशाही को बरकरार रहने दिया और किसानों को जमींदारों के कृपा–कटाक्ष पर छोड़ दिया, तब अवश्य ही वे यह न जानते थे और न यह सोचने के लिये वे रुके थे कि उत्पादक शक्तियों की इस विशाल बढ़ती से कौन से **सामाजिक** परिणाम निकलेंगे। उन्होंने यह महसूस न किया या न समझे थे कि समाज की उत्पादक शक्तियों के क्षेत्र में इस भारी छलांग का फल यह होगा कि सामाजिक शक्तियां फिर से संगठित होंगी, जिससे कि सर्वहारा वर्ग किसानों से एका कायम कर सकेगा और विजयी समाजवादी क्रांति कर सकेगा। वे सिर्फ़ उद्योग–धंधों की पैदावार आखिरी हद तक बढ़ाना चाहते थे, विशाल घरेलू बाज़ार पर कब्जा करना चाहते थे, इज़ारेदार बनना चाहते थे और राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था से जितना भी हो सके मुनाफ़ा खींचना चाहते थे। उनकी सचेत कार्यवाही उनके मामूली और एकदम व्यवहारिक हितों के दायरे के बाहर नहीं गयी।

इसीलिये मार्क्स ने लिखा था :

"अपने जीवन की सामाजिक पैदावार में (यानी मनुष्यों के जीवन के लिये आवश्यक भौतिक मूल्यों की पैदावार में – सम्पादक) मनुष्य ऐसे निश्चित सम्बन्ध कायम करते हैं जो लाजिमी होते हैं और उनकी इच्छा से **स्वतंत्र**[1] होते हैं। पैदावार के ये सम्बन्ध उत्पादन की अपनी भौतिक शक्तियों के विकास की एक निश्चित मंजिल से मेल खाते हैं।" (कार्ल मार्क्स, ***सं•ग्रं•***, अं•सं•, मास्को 1946, खण्ड 1 पृष्ठ 300)।

लेकिन, इसका यह मतलब नहीं है कि उत्पादन–सम्बन्धों में तब्दीली और पैदावार के पुराने सम्बन्धों से नये उत्पादन–सम्बन्धों की तरफ़ प्रगति शांतिमय ढंग से, बिना संघर्षों के और बिना हलचल के हो जाती है। इसके विपरीत, इस तरह की प्रगति आम तौर से पुराने उत्पादन–सम्बन्धों को क्रांतिकारी ढंग से खत्म करके और पैदावार के नये सम्बन्ध क़ायम करके होती है। एक वक़्त तक उत्पादक शक्तियों का विकास और पैदावार के संबंधों के क्षेत्र में तब्दीली अपने–आप होती है, मनुष्यों की इच्छा से स्वतंत्र होती है। लेकिन, ऐसा एक वक्त तक ही होता है जब तक कि नयी और विकसित होती हुई उत्पादक शक्तियां बढ़ कर अच्छी तरह पुष्ट नहीं हो जातीं। नयी उत्पादक शक्तियों

के पुष्ट हो जाने के बाद, पैदावार के मौजूदा सम्बन्ध और उनके हिमायती – शासक वर्ग – एक 'भारी' अड़चन बन जाते हैं, जिसे नये वर्गों की सचेत कार्यवाही से ही हटाया जा सकता है, जिसे इन वर्गों की बलपूर्वक कार्यवाही से, क्रांति से ही हटाया जा सकता है। यहां नये सामाजिक विचारों, नयी राजनीतिक संस्थाओं और नयी राजनीतिक सत्ता की **ज़बरदस्त भूमिका**[1] बहुत ही स्पष्ट दिखाई देती है। इनका काम होता है कि पैदावार के पुराने सम्बन्धों को बलपूर्वक खत्म कर दें। नयी उत्पादक शक्तियों और पैदावार के पुराने सम्बन्धों के संघर्ष से, समाज की नयी आर्थिक मांगों से, नये सामाजिक विचार पैदा होते हैं। नये विचार आम जनता को और संगठित करते हैं। आम जनता एक राजनीतिक सेना में सुगठित हो जाती है। वह एक नयी क्रांतिकारी सत्ता रचती है और उसका इसलिये इस्तेमाल करती है कि उत्पादन–सम्बन्धों की पुरानी व्यवस्था को बलपूर्वक खत्म कर दे और दृढ़ता से नयी व्यवस्था क़ायम करे। विकास के अपने–आप होने वाले सिलसिले की जगह मनुष्यों की सचेत कार्यवाही ले लेती है, शान्तिमय विकास की जगह बलपूर्वक होने वाली हलचल ले लेती है, विकास की जगह क्रांति ले लेती है।

मार्क्स ने लिखा था :

"पूंजीपतियों से संघर्ष करते समय, परिस्थितियों की वजह से सर्वहारा वर्ग को एक वर्ग रूप में अपने को संगठित करना पड़ता है। ...क्रांति के जरिये वह अपने को शासक वर्ग बनाता है और इस तरह पैदावार की पुरानी परिस्थितियों को बलपूर्वक खत्म कर देता है।" (**कम्युनिस्ट घोषणापत्र,** कार्ल मार्क्स, ***सं॰ग्रं॰,*** अं॰सं॰, मास्को, 1946, खण्ड 1, पृष्ठ 131)।

और भी आगे :

–"सर्वहारा वर्ग अपने राजनीतिक प्रभुत्व का इस्तेमाल इसलिये करेगा कि क्रमशः पूंजीपतियों से सभी पूंजी छीन ले और राज्य के, यानी शासक वर्ग के, रूप में संगठित सर्वहारा वर्ग के हाथ में पैदावार के सभी साधन केन्द्रित कर ले और जहां तक हो सके कुल उत्पादक शक्तियों को बढ़ाये।" (***उप॰,*** पृष्ठ 129)।

–"पुरानी समाज–व्यवस्था के गर्भ में जब नयी समाज–व्यवस्था आ जाती है, तब उसके जन्म के लिये धाय के रूप में बल आवश्यक होता है।" (कार्ल मार्क्स, ***पूंजी,*** खण्ड 1, पृष्ठ 776)।

---

1. **ज़ोर हमारा है – संपादक**

अपनी प्रसिद्ध पुस्तक ***अर्थशास्त्र की आलोचना*** की ऐतिहासिक भूमिका में, मार्क्स ने 1859 में ऐतिहासिक भौतिकवाद के सार तत्व का मसौदा दिया था जो एक प्रतिभाशाली दिमाग की उपज है :

"अपने जीवन की सामाजिक पैदावार में मनुष्य ऐसे निश्चित सम्बन्ध कायम करते हैं जो लाजिमी होते हैं और उनकी इच्छा से स्वतंत्र होते हैं। पैदावार के ये सम्बन्ध उत्पादन की भौतिक शक्तियों के विकास की एक निश्चित मंजिल से मेल खाते हैं। इन उत्पादन–सम्बन्धों का कुल जोड़ समाज की आर्थिक बनावट है – वह सच्ची बुनियाद जिस पर कानून और राजनीति की सारी इमारत खड़ी होती है और जिसके अनुकूल सामाजिक चेतना के विभिन्न रूप होते हैं। भौतिक जीवन की पैदावार का तरीका आम तौर से सामाजिक, राजनीतिक और बौद्धिक जीवन का क्रम निश्चित करता है। मनुष्यों की चेतना उनकी सत्ता को निश्चित नहीं करती बल्कि इसके विपरित उनकी सामाजिक सत्ता उनकी चेतना को निश्चित करती है। विकास की एक मंजिल तक पहुंच कर, समाज की भौतिक उत्पादक शक्तियां उस समय के उत्पादन–सम्बन्धों से टकराती हैं, या – उसी चीज को क़ानूनी शब्दावली में यों कहा जा सकता है – वे अब तक सम्पत्ति के जिन सम्बन्धों में काम करती आती थीं, उनसे टकराती हैं। उत्पादक शक्तियों के विकास के रूप न रह कर, ये सम्बन्ध उनके लिये बेड़ियां बन जाते हैं। तब सामाजिक क्रांति का युग शुरू होता है। आर्थिक बुनियाद बदलने के साथ, ऊपर की समूची भारी इमारत भी बहुत कुछ जल्द ही बदल जाती है। इस तरह की तब्दीलियों पर विचार करते हुए, एक भेद ध्यान में रखना चाहिये। एक तो पैदावार की आर्थिक परिस्थितियों की, जो प्रकृति–विज्ञान के नपे तुले तरीके से निश्चित की जा सकती हैं, भौतिक तब्दीली होती है। दूसरी कानूनी, राजनीतिक, धार्मिक, सौंदर्य सम्बन्धी या दार्शनिक तब्दीली – संक्षेप में, विचारधारा के रूप बदलते हैं, जिन रूपों में मनुष्य इस संघर्ष के प्रति सचेत होते हैं और निपटारे के लिये लड़ते हैं। जैसे किसी व्यक्ति के बारे में हमारी धारणा इस बात पर निर्भर नहीं होती कि वह अपने बारे में क्या सोचता है, उसी तरह तब्दीली के दौर के बारे में खुद उसकी चेतना के आधार पर हम राय क़ायम नहीं कर सकते। इसके विपरीत, भौतिक जीवन की असंगतियों के आधार पर, समाज की उत्पादक शक्तियों और पैदावार के सम्बन्धों की मौजूदा टक्कर के आधार पर, इस चेतना की व्याख्या करनी चाहिये। कोई भी समाज–व्यवस्था तब तक खत्म नहीं होती जब तक कि उसके अन्दर गूंजाइश रहते हुए तमाम उत्पादक शक्तियां विकसित नहीं हो जातीं। पैदावार के नये और उच्चतर सम्बन्ध तब तक कभी सामने नहीं आते जब तक कि उनके जीवन की भौतिक परिस्थितियां पुराने समाज के गर्भ में ही पुष्ट न हो चुकी हों। इसलिये, मनुष्य जाति अपने सामने हमेशा

ऐसे ही काम रखती है जिन्हें वह कर सकती है। कारण यह कि इस विषय को नज़दीक से देखने पर हमेशा हम यही पायेंगे कि काम हमेशा तभी सामने आता है जब उसे पूरा करने के लिये ज़रूरी भौतिक परिस्थितियां पहले ही मौजूद हों, या कम से कम निर्माण की हालत में हों।" (कार्ल मार्क्स, ***सं•ग्रं•***, अं•सं•, मास्को, 1946, खण्ड ! पृष्ठ 300–01)।

सामाजिक जीवन, समाज के इतिहास पर लागू किया जाने वाला मार्क्सीय भौतिकवाद इस तरह का है।

द्वंद्वात्मक और ऐतिहासिक भौतिकवाद के मुख्य लक्षण इस तरह के हैं।

इससे स्पष्ट हो जायेगा कि लेनिन ने पार्टी के लिये कौन सी सैद्धांतिक निधि की रक्षा की थी और संशोधनवादियों और गद्दारों के हमलों से उसे बचाया था और हमारी पार्टी के विकास के लिये लेनिन की पुस्तक ***भौतिकवाद और अनुभवसिद्ध आलोचना*** का प्रकाशन कितना महत्वपूर्ण था।

3. स्तोलिपिन प्रतिक्रियावाद के दौर में बोल्शेविक और मेन्शेविक। विसर्जनवादियों और बहिष्कारवादियों (ओत्जोविस्ट) के खिलाफ़ बोल्शेविकों का संघर्ष।

जिस समय क्रांति का विकास हो रहा था, उसके मुकाबिले में प्रतिक्रियावाद के दिनों पार्टी–संगठनों में काम करना बहुत मुश्किल हो गया था। पार्टी सदस्यों की तादाद बहुत तेजी से घट गयी थी। पार्टी के बहुत से निम्नपूंजीवादी सहयात्री, और खास तौर से बुद्धिजीवी, ज़ार सरकार के दमन से डर कर उसकी पांति छोड़ कर भाग खड़े हुए थे।

लेनिन ने कहा था कि ऐसे मौकों पर क्रांतिकारी पार्टियों को अपना ज्ञान भरा–पूरा बनाना चाहिये। क्रांति की उठान के दौर में, उन्होंने आगे बढ़ना सीखा था। प्रतिक्रियावाद के दौर में, उन्हें यह सीखना चाहिये कि सही तौर पर किस तरह पीछे हटें, अंडरग्राउंड (भूमिगत) किस तरह से हो जायें, गैरकानूनी पार्टी को किस तरह बनाये रखें और मजबूत करें, कानूनी सुविधाओं को कैसे काम में लायें, आम जनता से अपना सम्बन्ध दृढ़ करने के लिये किस तरह तमाम कानूनी संगठनों, खास तौर से जन संगठनों का उपयोग करें।

मेन्शेविक होशहवास खोकर पीछे हटने लगे। उन्हें वह भरोसा नहीं था कि क्रान्ति का नया ज्वार फिर आयेगा उन्होंने बेशर्मी से कार्यक्रम की क्रान्तिकारी मांगों और पार्टी

के क्रांतिकारी नारों को तज दिया। वे सर्वहारा वर्ग की क्रांतिकारी ग़ैरकानूनी पार्टी का विसर्जन करना चाहते थे, उसे खत्म करना चाहते थे। इस वजह से, इस तरह के मेन्शेविक **विसर्जनवादी** कहलाये।

मेन्शेविकों के विपरीत, बोल्शेविकों को विश्वास था कि अगले कुछ वर्षो में क्रान्ति का ज्वार फिर उठेगा। उनका कहना था कि इस नयी उठान के लिये आम जनता को तैयार करना पार्टी का फर्ज़ है। क्रान्ति की बुनियादी समस्यायें हल न हुई थीं। किसानों को जमींदारों की जमीन न मिली थी। मज़दूरों के काम करने का दिन आठ घण्टे का न हुआ था। जिससे जनता इतनी नफरत करती थी, उस निरंकुश ज़ारशाही का तख्ता उल्टा न गया था और 1905 में जनता ने उससे जो थोड़े से राजनीतिक अधिकार पाये थे, उसने उन्हें फिर खत्म कर दिया था। इसलिये जिन कारणों से 1905 की क्रांति का जन्म हुआ था, वह अब भी मौजूद थे। यही सबब है कि बोल्शेविकों को विश्वास था कि क्रान्तिकारी आन्दोलन का नया ज्वार आयेगा। वे उसके लिये तैयारी करने लगे और मज़दूर वर्ग की शक्तियों को बटोरने लगे।

क्रान्ति का ज्वार निश्चय ही फिर उठेगा, बोल्शेविकों के इस विश्वास का कारण यह भी था कि 1905 की क्रांति ने मजदूर वर्ग को अपने अधिकारों के लिये आम क्रांतिकारी संघर्ष चलाना सिखा दिया था। प्रतिक्रियावाद के दौर में, जब पूंजीपतियों ने हमला शुरू किया तब, मजदूर 1905 के सबक भूल न सकते थे। लेनिन ने मजदूरों के खतों से उद्धरण दिये, जिनमें उन्होंने बतलाया था कि कारखानेदार किस तरह उन्हें सता रहे हैं और उन्हें अपमानित कर रहे हैं। इन खतों में मजदूरों ने कहा था : **"ठहरो, 1905 फिर आयेगा।"**

बोल्शेविकों का बुनियादी राजनीतिक उद्देश्य वही रहा जो 1905 में था, यानि ज़ारशाही का खात्मा, पूंजीवादी–जनवादी क्रान्ति को आखिरी मंजिल तक ले जाना और समाजवादी क्रांति की तरफ़ बढ़ना। बोल्शेविक एक क्षण के लिये भी यह उद्देश्य न भूले और वे आम जनता के सामने मुख्य क्रांतिकारी नारे रखते रहे – जनवादी प्रजातंत्र, रियासतों की जमीन जब्त करना और काम के दिन के आठ घंटे तय करना।

लेकिन, पार्टी की **कार्यनीति** वही न हो सकती थी जो 1905 में क्रान्ति के उठते हुए ज्वार के समय थी। मिसाल के लिये, निकट भविष्य में आम जनता से आम राजनीतिक हड़ताल करने के लिये या सशस्त्र विद्रोह करने के लिये कहना गलत होता, क्योंकि क्रांतिकारी आन्दोलन मंद पड़ रहा था, मजदूर वर्ग बहुत ही थकान की हालत में था और प्रतिक्रियावादी वर्गों की स्थिति काफ़ी मजबूत हो चुकी थी। पार्टी को यह नयी हालत ध्यान में रखनी थी। हमलावर कार्यनीति के बदले रक्षा की कार्यनीति, शक्तियों

को बटोरने की कार्यनीति, कार्यकर्ताओं को अंडरग्राउंड में हटा ले जाने की कार्यनीति, अंडरग्राउंड रह कर पार्टी का काम चलाने की कार्यनीति और कानूनी मजदूर संगठनों में काम करने के साथ ग़ैर क़ानूनी काम चलाने की कार्यनीति से काम लेना था।

और, बोल्शेविकों ने साबित कर दिया कि वे यह काम कर सकते हैं।

लेनिन ने लिखा था :

"क्रान्ति से पहले के लम्बे वर्षों में कैसे काम करना चाहिये, यह हम जानते थे। लोग यों ही नहीं कहते कि हम चट्टान की तरह दृढ़ हैं। सोशल–डेमोक्रेटों ने एक सर्वहारा पार्टी बनाई है जो पहले हथियारबन्द आक्रमण की असफलता से हिम्मत न हारेगी, अपने होशहवास न खो देगी और मुहीमबाजी में न फंसेगी।" (लेनिन, ***सं•ग्रं•***, अं•सं•, मास्को 1947, खण्ड 1, पृष्ठ 467)।

बोल्शेविकों ने कोशिश की कि गैर क़ानूनी पार्टी–संगठनों को बनाये रखें और उन्हें मजबूत करें। इसके साथ ही, वे जरूरी समझते थे कि हर कानूनी मौके, हर कानूनी सुविधा से फ़ायदा उठा कर आम जनता से सम्बन्ध बनाये रखें और इस सम्बन्ध की हिफ़ाजत करें और इस तरह से पार्टी को मजबूत करें।

"यह वह दौर था जब हमारी पार्टी ज़ारशाही के खिलाफ खुले क्रान्तिकारी संघर्ष का रास्ता छोड़ कर संघर्ष के टेढ़े–मेढ़े तरीकों की तरफ़ आयी, जब वह परस्पर–सहयोग–समितियों से लेकर दूमा के मंच तक हर कानूनी मौक़ा इस्तेमाल करने लगी। यह 1905 की क्रान्ति में हमारी पराजय के बाद पीछे हटने का दौर था। इस मोड़ ने हमारे लिये जरूरी कर दिया कि हम संघर्ष के नये तरीकों में माहिर हों, जिससे कि हम अपनी शक्ति बटोर सकें और ज़ारशाही के खिलाफ़ खुला क्रान्तिकारी संघर्ष चला सकें।" (स्तालिन, ***15 वीं पार्टी कांग्रेस की शब्दशः रिपोर्ट,*** रूसी संस्करण, पृष्ठ 366–67, 1935)।

बचे हुए कानूनी संगठन एक तरह का पर्दा थे, जिनकी आड़ में पार्टी के गुप्त संगठन काम करते थे और जिनके जरिये आम जनता से सम्बन्ध क़ायम रखा जाता था। आम जनता से सम्बन्ध कायम रखने के लिये, बोल्शेविकों ने ट्रेड यूनियनों और दूसरी कानूनी तौर पर चलने वाली सार्वजनिक संस्थाओं से काम लिया – जैसे रोगी–सहायक–सभा, मजदूरों की सहयोग–समितियां, क्लबें, शिक्षा–सभाएं और जन–सभायें वगैरह। बोल्शेविकों ने राज्य दूमा के मंच से काम लिया, जिससे कि वे ज़ारशाही नीति का पर्दाफाश कर सकें, कॉस्टीट्यूशनल डेमोक्रेटों का भंडाफोड़ कर सकें और सर्वहारा वर्ग के लिये किसानों का समर्थन हासिल कर सकें। गैर

कानूनी पार्टी–संगठन बनाये रखने से और इस संगठन के जरिये और सभी तरह का राजनीतिक काम चलाने की वजह से, पार्टी एक सही नीति पर चल सकी और क्रान्ति के ज्वार की नयी उठान के लिये तैयारी करने की शक्ति बटोर सकी।

बोल्शेविकों ने **दो मोर्चों** पर लड़ाई करके, अपनी क्रान्तिकारी लाइन चालू रखी। यह लड़ाई पार्टी के अन्दर दो तरह के अवसरवाद के खिलाफ थी : **विसर्जनवादियों** के खिलाफ़ थी, जो पार्टी के खुले दुश्मन थे और उन लोगों के खिलाफ थी, जो **बहिष्कारवादी** कहलाते थे और पार्टी के छिपे हुए दुश्मन थे।

लेनिन ने, बोल्शेविकों ने, विसर्जनवाद के जन्म लेते ही, इस अवसरवादी रुझान के खिलाफ डट कर संघर्ष किया। लेनिन ने कहा कि विसर्जनवादी पार्टी के अन्दर उदारपंथी पूंजीपतियों के प्रतिनिधि हैं।

दिसम्बर 1908 में, रू•सो•डे•ले•पा• की पांचवीं (अखिल रूसी) कांफ्रेंस पैरिस में हुयी। लेनिन के प्रस्ताव पर, इस कांफ्रेंस ने विसर्जनवाद की निन्दा की यानी पार्टी बुद्धिजीवियों के एक हिस्से (मेन्शेविकों) की इन कोशिशों की निन्दा की कि "रू•सो•डे•ले•पा• के मौजूदा संगठन को खत्म कर दिया जाये और किसी भी कीमत पर, सीधे–सीधे प्रोग्राम छोड़ देने की कीमत पर भी पार्टी की कार्यनीति और परम्परायें छोड़ देने की कीमत पर भी, पार्टी के बदले कानूनी तौर से काम करता हुआ एक रूपरेखाहीन सम्मेलन कायम किया जाये।" ***(सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) के प्रस्ताव,*** रूसी संस्करण, पहला भाग, पृ• 128)।

कांफ्रेंस ने सभी पार्टी संगठनों का आह्वान किया कि विसर्जनवादियों की कोशिशों के ख़िलाफ़ डट कर संघर्ष करें।

लेकिन, मेन्शेविकों ने कांफ्रेंस का यह फैसला न माना और दिन पर दिन विसर्जनवाद में गहरे पैठते गये, उन्होंने क्रान्ति से गद्दारी की और कॉस्टीट्यूशनल डेमोक्रेटों से सहयोग किया। दिन पर दिन मेन्शेविक खुल कर सर्वहारा पार्टी के क्रान्तिकारी प्रोग्राम को छोड़ रहे थे, वे जनवादी प्रजातंत्र, काम के आठ घंटे और रियासती जमीन को जब्त करने की मांगें छोड़ रहे थे। वे चाहते थे कि पार्टी का प्रोग्राम और कार्यनीति छोड़ने की कीमत पर ज़ार सरकार से इस बात की मंजूरी ले लें कि एक खुली, क़ानूनी और तथा कथित 'लेबर' पार्टी काम कर सके। स्तोलिपिन शासन से सुलह करने और अपने को उसके माफ़िक बनाने के लिये वे तैयार थे। इसीलिये, विसर्जनवादियों को 'स्तोलिपिन' की लेबर पार्टी कहा जाने लगा।

विसर्जनवादी क्रान्ति के खुले विरोधी थे। इनके नेता दान, ऐक्सेलरोद और पोत्रेसोव थे, और मारतोव, त्रात्स्की और दूसरे मेन्शेविक इनके मददगार थे। इनके खिलाफ़ लड़ने के अलावा, बोल्शेविकों ने छिपे हुए विसर्जनवादियों, बहिष्कारवादियों (अत्जोवपंथियों) के खिलाफ़ भी डट कर संघर्ष किया। ये लोग अपने अवसरवाद को 'वामपंथी' लफ्फ़ाजी से छिपाते थे। कुछ पहले के बोल्शेविक यह मांग कर चुके थे कि राज्य दूमा से मजदूरों के प्रतिनिधियों को वापस बुला लिया जाये और मौजूदा कानूनी संगठनों में काम करना कतई बन्द कर दिया जाये। इसलिये, ये लोग बहिष्कारवादी (अत्जोवपंथी) कहलाये, (अत्ज्व, वापस बुलाना)।

1908 में, कुछ बोल्शेविकों ने राज्य दूमा से सोशल–डेमोक्रेटिक प्रतिनिधियों को वापस बुलाने की मांग की। इसलिये, वे बहिष्कारवादी कहलाये। इन्होंने अपना अलग गुट बनाया (बुग्दानोव, लूनाचार्स्की, एलेक्सेन्स्की, पत्रोक्व्स्की, बुबनोव, वगैरह), जिसने लेनिन और लेनिन की नीति के खिलाफ़ संघर्ष शुरू किया। बहिष्कारवादियों ने जिद की कि मज़दूरों के ट्रेड यूनियनों में और दूसरी क़ानूनी तौर से चलने वाली सभाओं में काम करेंगे ही नहीं। इस हरकत से, उन्होंने मजदूरों के उद्देश्य को काफ़ी नुकसान पहुंचाया। बहिष्कारवादी पार्टी और मजदूर वर्ग के बीच दरार डाल रहे थे, जिससे गैर पार्टी जनता से पार्टी के सम्बन्ध टूट जाते। वे अपने को गुप्त संगठन में अलग कर लेना चाहते थे ; साथ ही कानूनी पर्दे को इस्तेमाल करने के अवसर को नामंजूर करके उन्होंने गुप्त संगठनों को भी खतरे में डाल दिया था। बहिष्कारवादी यह न समझते थे कि राज्य दूमा में, और राज्य दूमा के जरिये, बोल्शेविक किसानों पर असर डाल सकते थे, ज़ार सरकार की नीति का पर्दाफाश कर सकते थे और कॉस्टीट्यूशनल डेमोक्रेटों की भी नीति का पर्दाफ़ाश कर सकते थे, जो फ़रेब से किसानों को अपनी तरफ लाना चाहते थे। बहिष्कारवादी क्रान्ति की नयी प्रगति के लिये शक्ति बटोरने के काम में बाधा डाल रहे थे। इसलिये, बहिष्कारवादी 'छिपे हुये विसर्जनवादी' थे। वे कोशिश करते थे कि कानूनी तौर से चालू संगठनों को इस्तेमाल करने की संभावना खत्म हो जाये और दरअसल उन्होंने आम ग़ैर पार्टी जनता के सर्वहारा–नेतृत्व का काम छोड़ दिया, क्रान्तिकारी काम छोड़ दिया।

बोल्शेविक अखबार ***प्रोलेतरी (सर्वहारा)*** के विस्तृत सम्पादक–मण्डल की कांफ्रेंस 1909 में बुलायी गयी कि वह बहिष्कारवादियों के व्यवहार पर विचार करे। कांफ्रेंस ने उनकी निन्दा की। बोल्शेविकों ने ऐलान किया कि उनमें और विसर्जनवादियों में कोई साम्य नहीं है और उन्हें बोल्शेविक संगठन से निकाल दिया।

विसर्जनवादी और बहिष्कारवादी, दोनों ही सर्वहारा वर्ग और उसकी पार्टी के निम्नपूंजीवादी सहयात्रियों के अलावा और कुछ न थे। जब सर्वहारा वर्ग के लिये मुश्किल वक्त आया तब विसर्जनवादियों का सही रूप खास तौर से स्पष्ट होकर सामने आ गया।

4. त्रात्स्कीवाद के खिलाफ़ बोल्शेविकों का संघर्ष। पार्टी–विरोधी अगस्त गुट।

जिस समय बोल्शेविक दो मोर्चों पर – विसर्जनवादियों के खिलाफ़ और बहिष्कारवादियों के खिलाफ – डट कर संघर्ष कर रहे थे और सर्वहारा पार्टी की सुसंगत नीति की रक्षा कर रहे थे, उस समय त्रात्स्की मेन्शेविक विसर्जनवादियों की मदद कर रहा था। इस समय लेनिन ने उसे 'जूडास'[1] त्रात्स्की', कहा था। त्रात्स्की ने वियना, (ऑस्ट्रिया) में लेखकों का एक गुट बनाया और वहां से, कहने को गुटबंदी से अलग लेकिन वास्तव में, एक मेन्शेविक अख़बार निकालना शुरू किया। उस समय लेनिन ने लिखा था : "त्रात्स्की का व्यवहार महापतित, अपनस्वार्थी और गुटबाज़ का है। ... वह मुंह से पार्टी का भक्त बनता है लेकिन उसका व्यवहार किसी भी गुटबाज से बदतर है।"

आगे चल कर 1912 में, त्रात्स्की ने अगस्त गुट का संगठन किया। यह गुट सभी बोल्शेविक–विरोधी गुटों और रुझानों की जमात था, जो लेनिन के खिलाफ़ और बोल्शेविक पार्टी के खिलाफ था। विसर्जनवादियों और बहिष्कारवादियों ने इस बोल्शेविक–विरोधी गुट से एका कर लिया और इस तरह सबको अपनी जात बता दी। सभी बुनियादी मसलों पर त्रात्स्की और त्रात्स्की पंथियों ने विसर्जनवादी रुख अपनाया। लेकिन, त्रात्स्की ने अपने विसर्जनवाद को केन्द्रवाद के लिबास में छिपाया, यानी दोनों में मेल–मिलाप कराने का बहाना किया। वह कहता था कि न तो वह बोल्शेविकों के साथ है, न मेन्शेविकों के साथ है, बल्कि वह दोनों में समझौता कराना चाहता है। इस सिलसिले में, लेनिन ने कहा था कि त्रात्स्की खुले विसर्जनवादियों से ज्यादा नीच और हानिकर है, इसलिये कि वह मज़दूरों को यह विश्वास दिला कर धोखा देना चाहता है कि वह 'गुटबाजी से परे' है, जबकि वह दरअसल मेन्शेविक विसर्जनवादियों का पूरी तरह समर्थन करता है। त्रात्स्कीपंथी वह मुख्य गुट थे जो केन्द्रवाद का समर्थन करते थे।

---

1. जूडास – ईसा मसीह का एक शिष्य, जिसने चांदी के 30 टुकड़ों के लोभ में पड़ कर उन्हें रोमन सिपाहियों से पकड़वा दिया था – अनुवादक

कॉमरेड स्तालिन ने लिखा है :

"केन्द्रवाद एक राजनीतिक धारणा है। उसकी विचारधारा यह है कि **एक ही पार्टी के अन्दर** सर्वहारा वर्ग के हितों को निम्नपूंजीवादियों के हितों के अनुकूल बनाया जाये, उनके मातहत किया जाये। यह विचारधारा लेनिनवाद के लिये गैर और हेय है।" (स्तालिन, ***लेनिनवाद की समस्याएं*** नवां रूसी संस्करण, पृ• 379)।

इस दौर में, कामेनेव, जिनोवियेव और राइकोव दरअसल त्रात्स्की के छिपे हुए दलाल थे, क्योंकि वे अक्सर लेनिन के खिलाफ़ उसकी मदद करते थे। जिनोवियेव, कामेनेव, राइकोव और त्रात्स्की के दूसरे छिपे हुए साथियों की मदद से, लेनिन की इच्छाओं के खिलाफ़, जनवरी 1910 में केन्द्रीय समिति का विस्तृत अधिवेशन बुलाया गया। उस समय तक कई बोल्शेविकों की गिरफ्तारी की वजह से, केन्द्रीय समिति की बनावट बदल चुकी थी और उसमें ढुलमुल यकीन लोग अपने लेनिनवाद–विरोधी फ़ैसले पास करा सके। इस तरह, इस अधिवेशन में तय हुआ कि बोल्शेविक अखबार ***प्रोलेतरी*** बन्द कर दिया जाये और वियना से प्रकाशित होने वाले त्रात्स्की के अखबार ***प्राव्दा*** की आर्थिक सहायता की जाये। कामेनेव त्रात्स्की के अखबार के सम्पादक–मण्डल में शामिल हो गया और जिनोवियेव के साथ मिल कर, उसने कोशिश की कि उसे केन्द्रीय समिति का मुखपत्र बना दे।

लेनिन के जोर देने पर ही, केन्द्रीय समिति के जनवरी अधिवेशन में विसर्जनवाद और बहिष्कारवाद की निन्दा करते हुए एक प्रस्ताव पास किया। लेकिन, यहां भी जिनोवियेव और कामेनेव त्रात्स्की के इस प्रस्ताव पर अड़े रहे कि विसर्जनवादियों का इस तरह नाम लेकर हवाला न होना चाहिये।

जैसा कि लेनिन ने पहले ही देख लिया था और आगाह कर दिया था : सिर्फ़ बोल्शेविकों ने केन्द्रीय समिति के अधिवेशन का फ़ैसला माना और अपना मुखपत्र ***प्रोलेतरी*** बन्द कर दिया, जब कि मेन्शेविक अपना गुटबाज विसर्जनवादी अख़बार ***गोलोस सोत्सियाल देमोक्राता*** **(सोशल–डेमोक्रैट की आवाज़)** प्रकाशित करते रहे।

कॉमरेड स्तालिन ने लेनिन की बात का पूरी तरह समर्थन किया। ***सोत्सियाल देमोक्रात*** के 11वें अंक में उन्होंने एक लेख प्रकाशित किया। इसमें उन्होंने त्रात्स्कीवाद के साथी–संघातियों के व्यवहार की निन्दा की और इस जरूरत की चर्चा की कि बोल्शेविक गुट के अन्दर कामेनेव, जिनोवियेव और राईकोव की गद्दारी से जो अस्वाभाविक परिस्थिति पैदा हो गयी है, उसे खत्म किया जाये। लेख में जो फ़ौरी काम बताये गये, वे प्राग की पार्टी कान्फ्रेन्स में पूरे किये गये। वे काम ये थे : आम

पार्टी कांफ्रेंस बुलाना, कानूनी तौर से निकलने वाले पार्टी अख़बार का प्रकाशन और रूस में एक गैरकानूनी व्यवहारिक पार्टी केन्द्र की रचना। कॉमरेड स्तालिन का लेख बाकू–कमिटी के फ़ैसलों पर आधारित था। बाकू–कमिटी ने लेनिन का पूरी तरह समर्थन किया था।

त्रात्स्की के पार्टी–विरोधी अगस्त गुट में विसर्जनवादियों और त्रात्स्की पंथियों से लेकर बहिष्कारवादियों और देवनिर्माताओं तक विशुद्ध पार्टी–विरोधी तत्व भरे हुऐ थे। इनका मुकाबिला करने के लिये, एक पार्टी गुट बनाया गया जिसमें ऐसे लोग थे जो सर्वहारा वर्ग की ग़ैरकानूनी पार्टी की हिफ़ाजत करना चाहते थे और उसे मजबूत करना चाहते थे। इस गुट में बोल्शेविक थे, जिनके अगुवा लेनिन थे और कुछ थोड़े से पार्टी का पक्ष करने वाले मेन्शेविक थे, जिनके अगुआ प्लेखानोव थे। प्लेखानोव और पार्टी का पक्ष करने वाले मेन्शेविकों का उसका गुट कई सवालों पर मेन्शेविक दृष्टिकोण क़ायम रखते थे, लेकिन उन्होंने ज़ोरदार तरीक़े से अगस्त गुट और विसर्जनवादियों से अपने को अलग कर लिया था और वे बोल्शेविकों से समझौता करना चाहते थे। लेनिन ने प्लेखानोव का प्रस्ताव मान लिया और पार्टी–विरोधी लोगों के खिलाफ़ उसके साथ एक अस्थायी गुट बनाने के लिये राजी हो गये। कारण यह था कि इस तरह का गुट पार्टी के लिये लाभदायी और विसर्जनवादियों के लिये घातक होता।

कॉमरेड स्तालिन ने इस गुट का पूरी तरह समर्थन किया। वह उस समय निर्वासन में थे और वहां से लेनिन को एक खत लिखा। उसमें उन्होंने लिखा था :

"मेरी राय में गुट की (लेनिन–प्लेखानोव की) नीति एकमात्र सही नीति है।

"(1) यह नीति और केवल यही नीति रूस में काम के सच्चे हित प्रकट करती है। काम के हितों की मांग है कि पार्टी के सभी सच्चे तत्व एकजुट हों ;

"(2) यह लाइन और केवल यही लाइन मेक[1] "कार्यकर्ताओं और विसर्जनवादियों के बीच दरार डाल कर और विसर्जनवादियों को तितर–बितर करके और ठिकाने लगाकर कानूनी संगठनों को विसर्जनवादियों के चंगुल से आजाद करेगी।" (*लेनिन और स्तालिन,* रू•सं•, खं• 1, पृष्ठ 529–30)।

क़ानूनी और गैर क़ानूनी काम को चतुराई से मिलाने की वजह से, बोल्शेविक कानूनी मजदूर संगठनों में भारी शक्ति बन सके। यह बात इससे भी ज़ाहिर हुई कि इस समय जो क़ानूनी तौर पर चार कांग्रेसें हुईं, उनमें मजदूरों के गुटों पर बोल्शेविक

---

1. **मेक – मेंसेविक का संक्षिप्त रूप – संपादक**

भारी असर डाल सके। एक कांग्रेस जन विश्वविद्यालयों की थी, दूसरी स्त्रियों की, तीसरी मिलों के डाक्टरों की और चौथी शराबबन्दी की। इन कांग्रेसों में, बोल्शेविकों के भाषण बहुत ही राजनीतिक महत्व के होते थे और समूचे देश में उसका असर हुआ। मिसाल के लिये, जन विश्वविद्यालयों की कांग्रेस में बोल्शेविक मजदूरों के प्रतिनिधि–मण्डल ने ज़ारशाही की नीति का पर्दाफ़ाश किया, जो सभी सांस्कृतिक कार्यवाही का गला घोंटती थी। प्रतिनिधि–मण्डल ने दावा किया कि जब तक ज़ारशाही का खात्मा न होगा, तब तक सच्ची सांस्कृतिक प्रगति देश में हो ही नहीं सकती। मिल–डाक्टरों की कांग्रेस, में मज़दूरों के प्रतिनिधि–मण्डल ने उन भयानक गन्दगी से भरी हुई परिस्थितियों का बयान किया जिनमें मज़दूरों को रहना और काम करना पड़ता था और यह नतीजा निकाला कि कारखानों में स्वास्थ्य–रक्षा तब तक नहीं हो सकती जब तक ज़ारशाही का खात्मा न किया जाये।

बोल्शेविकों ने बचे हुए विभिन्न कानूनी संगठनों से धीरे–धीरे विसर्जनवादियों को निकाल फेंका। प्लेखानोव के पार्टी–पक्षी गुट के साथ संयुक्त मोर्चे की विशेष कार्यनीति से बोल्शेविक कई मेन्शेविक मजदूर संगठनों को (विबोर्ग जिले में, एकातेरीनोस्लाव वगैरह में) अपनी तरफ़ कर सके। इन मुश्किल दिनों में, बोल्शेविकों ने इस बात की मिसाल पेश की कि क़ानूनी काम के साथ किस तरह ग़ैरकानूनी काम करना चाहिये।

5. प्राग पार्टी कांफ्रेंस, 1912। बोल्शेविकों द्वारा अपनी स्वतंत्र मार्क्सवादी पार्टी का निर्माण।

विसर्जनवादियों और बहिष्कारवादियों के खिलाफ, साथ ही त्रात्स्की पंथियों के खिलाफ़ संघर्ष ने बोल्शेविकों के सामने यह तीव्र आवश्यकता पैदा की कि सभी बोल्शेविकों को एक करें और उनकी एक स्वतंत्र बोल्शेविक पार्टी बनायें। यह काम इसीलिये क़तई जरूरी नहीं था कि पार्टी के अन्दर जो अवसरवादी रुझान मजदूर वर्ग में फूट डाल रहे थे, उन्हें खत्म किया जाये बल्कि इसलिये भी कि मजदूर वर्ग की शक्तियों को बटोरने का काम और उसे क्रान्ति की नयी उठान के लिये तैयार करने का काम पूरा किया जा सके।

यह काम पूरा हो, इसके पहले जरूरी था कि पार्टी को अवसरवादियों से, मेन्शेविकों से मुक्त किया जाये।

किसी बोल्शेविक को अब संदेह नहीं था कि बोल्शेविकों के लिये, मेन्शेविकों के साथ एक ही पार्टी में रहना असंभव है। स्तोलिपिन प्रतिक्रियावाद के दौर में, मेन्शेविकों

के विश्वासघातक व्यवहार ने सर्वहारा पार्टी को खत्म करने और एक नयी सुधारवादी पार्टी संगठित करने की उनकी कोशिशों ने उनका साथ छोड़ना अनिवार्य कर दिया। मेन्शेविकों के साथ एक ही पार्टी में रहकर किसी न किसी तरह बोल्शेविक उनके व्यवहार की नैतिक जिम्मेदारी मंजूर करते थे। लेकिन, बोल्शेविकों के लिये यह स्वप्न में भी असंभव था कि मेन्शेविकों की खुली गद्दारी की नैतिक जिम्मेदारी लेते जब तक कि वे खुद ही पार्टी और मजदूर वर्ग से ग़द्दारी न करना चाहते। इस तरह, मेन्शेविकों के साथ एक ही पार्टी में एकता का मतलब यह हो रहा था कि मजदूर वर्ग और उसकी पार्टी से ग़द्दारी की जाये। इसलिये, मेन्शेविकों से जो वास्तविक अलगाव था, उसे आखिरी मंजिल तक ले जाना था : बाक़ायदा संगठन में उनसे अलगाव करना और पार्टी से मेन्शेविकों को निकालना।

सिर्फ़ इसी तरह यह मुमकिन था कि सर्वहारा की क्रान्तिकारी पार्टी सही तौर से काम करे, जिसका एक ही प्रोग्राम हो, एक ही कार्यनीति और एक ही वर्ग संगठन हो।

सिर्फ़ इसी तरह यह मुमकिन था कि पार्टी की सच्ची (न कि सिर्फ़ ऊपरी) एकता क़ायम की जाये, जिसे मेन्शेविकों ने नष्ट कर दिया था।

यह काम छठी आम पार्टी कांफ्रेंस के जरिये पूरा होना था, जिसके लिये बोल्शेविक तैयारी कर रहे थे।

लेकिन, यह समस्या का सिर्फ़ एक पहलू था। मेन्शेविकों से बाक़ायदा अलगाव और बोल्शेविकों द्वारा अलग पार्टी का निर्माण अवश्य ही एक बहुत महत्वपूर्ण राजनीतिक काम था। लेकिन, बोल्शेविकों के सामने एक दूसरा और उससे भी महत्वपूर्ण राजनीतिक काम था। बोल्शेविकों के सामने यही काम न था कि मेन्शेविकों से नाता तोड़ लें और बाक़ायदा अपनी एक अलग पार्टी बना लें। सबसे मुख्य काम यह था कि मेन्शेविकों से नाता तोड़ने के बाद एक **नयी** पार्टी बनायें, एक **नयी तरह** की पार्टी बनायें जो पच्छिम की आम सोशल–डेमोक्रेटिक पार्टियों से भिन्न हो, जो अवसरवादी लोगों से मुक्त हो और जो सत्ता के लिये संघर्ष में सर्वहारा वर्ग का नेतृत्व कर सकती हो।

बोल्शेविकों से संघर्ष करने में, ऐक्सेलरोद और मार्तिनोव से लेकर मारतोव और त्रात्स्की तक सभी तरह के मेन्शेविक लामुहाला वही हथियार इस्तेमाल करते थे जिन्हें पच्छिमी यूरोप के सोशल–डेमोक्रेटों की टकसाल से उन्होंने उधार लिया था। वे रूस में ऐसी पार्टी चाहते थे जो मसलन जर्मन या फ्रांसीसी सोशल–डेमोक्रेटिक पार्टी से मिलती–जुलती हो। वे बोल्शेविकों से ठीक इसीलिये लड़ते थे कि उन्हें उनमें कोई

नयी चीज दिखाई देती थी, कोई असाधारण चीज़ और पच्छिम के सोशल–डेमोक्रेटों से भिन्न चीज। और, उस समय पच्छिम की सोशल–डेमोक्रेटिक पार्टियों का हुलिया क्या था? ये पार्टियां तरह–तरह के तत्वों के मेल से बनी थीं। इनमें मार्क्सवादी और अवसरवादी लोग थे, क्रान्ति के दोस्त और दुश्मन थे, पार्टी सिद्धांत के हिमायती और विरोधी थे और ये हिमायती धीरे–धीरे सैद्धांतिक रूप से विरोधियों की बात मानते जाते थे और वस्तुतः उनके अधीन हो गये थे। पच्छिमी यूरोप के सोशल–डेमोक्रेटों से बोल्शेविक पूछते थे : अवसरवादियों से, क्रान्ति से गद्दारी करने वालों से मेल–मिलाप किसके लिये? वे जवाब देते थे : 'पार्टी में शान्ति' के लिये, 'एकता' के लिये। एकता किसके साथ, अवसरवादियों के साथ? वे जवाब देते थे : हां, अवसरवादियों के साथ। यह स्पष्ट था कि इस तरह की पार्टियां क्रान्तिकारी पार्टियां न हो सकती थीं।

बोल्शेविकों से यह छिपा न रहा कि एंगेल्स की मृत्यु के बाद पच्छिमी यूरोप की सोशल–डेमोक्रेटिक पार्टियां सामाजिक क्रान्ति की पार्टियों से घट कर 'समाज सुधार' की पार्टियां बनने लगी थीं। संगठन के तौर पर, इनमें से हरेक पार्टी प्रमुख शक्ति के बदले अपने पार्लियामेंटरी गुट का पुछल्ला बन चुकी थी। बोल्शेविकों की जानकारी से यह छिपा न रहा कि इस तरह की पार्टी से सर्वहारा वर्ग का भला नहीं हो सकता, इस तरह की पार्टी क्रान्ति में मजदूर वर्ग का नेतृत्व नहीं कर सकती।

बोल्शेविकों की जानकारी से यह छिपा न रहा कि सर्वहारा वर्ग को ऐसी पार्टी नहीं बल्कि दूसरी तरह की पार्टी चाहिये, एक नयी और वास्तविक मार्क्सवादी पार्टी, जो अवसरवादियों से कभी मेल–मिलाप न करे और पूंजीपतियों के प्रति क्रान्तिकारी हो, जो मजबूती से संगठित और अपनी एकता में अटूट हो, जो सामाजिक क्रान्ति की पार्टी हो, जो सर्वहारा वर्ग की डिक्टेटरशिप की पार्टी हो।

बोल्शेविक यह नयी तरह की पार्टी चाहते थे। और, बोल्शेविकों ने ऐसी पार्टी बनाने के लिये काम किया। 'अर्थवादियों', मेन्शेविकों, त्रात्स्की पंथियों, बहिष्कारवादियों और सभी तरह के भाववादियों, अनुभवसिद्ध आलोचकों के खिलाफ़ संघर्ष का समूचा इतिहास, ऐसी ही पार्टी बनाने का इतिहास था। बोल्शेविक एक नयी पार्टी, एक **बोल्शेविक** पार्टी बनाना चाहते थे जो उन सब लोगों के लिये आदर्श हो जो एक सच्ची क्रान्तिकारी मार्क्सवादी पार्टी चाहते थे। पुराने ***इस्क्रा*** के दिनों से ही, बोल्शेविक ऐसी ही पार्टी बनाने का काम कर रहे थे। उन्होंने इसके लिये जमकर, लगातार और हर चीज के बावजूद काम किया। इस काम में, लेनिन की रचनाओं ***क्या करें?*** **दो** ***कार्यनीतियां*** वगैरह ने एक बुनियादी और फ़ैसलाकुन पार्ट अदा किया। लेनिन की पुस्तक **क्या करें?** ने ऐसी पार्टी के लिये सैद्धांतिक तैयारी की। लेनिन की पुस्तक ***एक क़दम आगे तो दो***

क़दम पीछे ने ऐसी पार्टी के लिये **संगठनात्मक** तैयारी की। लेनिन की पुस्तक ***जनवादी क्रान्ति में सोशल–डेमोक्रेसी की दो कार्यनीतियां*** ने ऐसी पार्टी के लिये **राजनीतिक** तैयारी की। और अन्त में, लेनिन की पुस्तक ***भौतिकवाद और अनुभवसिद्ध आलोचना*** ने ऐसी पार्टी के लिये **सिद्धांत सम्बन्धी** तैयारी की।

यह बात बेखटके कही जा सकती है कि कभी भी इतिहास में किसी भी राजनीतिक दल ने अपनी पार्टी बनाने के लिये ऐसी भरी–पूरी तैयारी न की थी जैसी बोल्शेविक दल ने की।

इसलिये, बोल्शेविकों द्वारा अपनी पार्टी बनाने के लिये परिस्थितियां पूरी तरह तैयार हो चुकी थीं और पक चुकी थीं।

छठी पार्टी कांफ्रेंस का यह काम था कि मेन्शेविकों को निकाल कर इस पूरे हो चुके काम पर मुहर लगा दे और बाक़ायदा नयी पार्टी, बोल्शेविक पार्टी का निर्माण कर दे।

छठी अखिल रूसी पार्टी कांफ्रेंस जनवरी 1912 में प्राग में हुई। बीस से ऊपर पार्टी–संगठनों के प्रतिनिधि उसमें मौजूद थे। इसलिये, कांफ्रेंस का महत्व एक नियमित पार्टी कांग्रेस जैसा ही था।

कांफ्रेंस के बयान में कहा गया कि पार्टी की टूटी हुई केन्द्रीय मशीन फिर बहाल कर दी गयी है और एक केन्द्रीय समिति स्थापित कर दी गयी है। इसी बयान में कहा गया कि जब से पार्टी ने एक निश्चित संगठन का रूप लिया था, तब से रूसी सोशल–डेमोक्रेटिक पार्टी को कभी इतने कठिन समय से नहीं गुजरना पड़ा जितना प्रतिक्रियावाद के दौर में। तमाम दमन के बावजूद, बाहर से होने वाले कठिन प्रहार और भीतर के अवसरवादियों की गद्दारी और ढुलमुलपन के बावजूद, सर्वहारा वर्ग की पार्टी ने अपना झण्डा और अपना संगठन कायम रखा था।

कांफ्रेंस के बयान में कहा गया :

"न सिर्फ़ सोशल–डेमोक्रेटिक पार्टी का झण्डा, उसका कार्यक्रम और उसकी क्रान्तिकारी परम्परायें सुरक्षित हैं बल्कि उसका संगठन भी सुरक्षित है, जिसे दमन ने कमज़ोर और निर्बल भले बना दिया हो, लेकिन जिसे पूरी तरह से यह नष्ट नहीं कर पाया।"

कांफ्रेंस ने रूस में मजदूर आन्दोलन की नयी उठान और पार्टी काम के पुनर्जीवन के पहले चिन्ह नोट किये।

स्थानीय संगठनों द्वारा पेश की हुई रिपोर्टों पर अपने प्रस्ताव में कांफ्रेंस ने नोट किया कि "हर जगह सोशल–डेमोक्रेटिक मजदूरों के अन्दर जोरदार काम किया जा रहा है, जिसका उद्देश्य स्थानीय गैर कानूनी सोशल–डेमोक्रेटिक संगठनों और गुटों को मजबूत करना है।"

कांफ्रेंस ने नोट किया कि पीछे हटने के दौर में बोल्शेविक कार्यनीति के सबसे महत्वपूर्ण नियम का लोग सभी जगह पालन कर रहे थे। यह नियम था : क़ानूनी तौर पर चलने वाले विभिन्न यूनियनों और मजदूर सभाओं में कानूनी काम के साथ गैरकानूनी काम को मिलाना।

प्राग कांफ्रेंस ने पार्टी की एक बोल्शेविक केन्द्रीय समिति चुनी, जिसमें लेनिन, स्तालिन, और्जोनिकित्से, स्वेर्दलोव, स्पान्दरियान और दूसरे लोग थे। कॉमरेड स्तालिन और स्वेर्दलोव केन्द्रीय समिति में अपनी गैरहाजिरी में चुने गये, क्योंकि वे उस समय निर्वासन में थे। केन्द्रीय समिति के चुने हुए एवजी सदस्यों में कॉमरेड कालिनिन थे।

रूस में क्रान्तिकारी काम का संचालन करने के लिये एक अमली केन्द्र (केन्द्रीय समिति की रूसी ब्यूरो) कायम किया गया। उसके अगुआ कॉमरेड स्तालिन थे और उसमें कामरेड स्वेर्दलोव, स्पान्दरियान, और्जोनिककित्से, कालिनिन शामिल थे।

प्राग कांफ्रेंस ने अवसरवाद के खिलाफ़ बोल्शेविकों के तमाम पिछले संघर्ष का सिंहावलोकन किया और मेन्शेविकों को पार्टी से निकाल देने का फ़ैसला किया।

पार्टी से मेन्शेविकों को निकाल कर, प्राग कांफ्रेंस ने बोल्शेविक पार्टी के स्वतंत्र जीवन का बाक़ायदा श्रीगणेश किया।

मेन्शेविकों को सैद्धांतिक और संगठनात्मक तरीके से परास्त करके और पार्टी से निकाल कर, बोल्शेविकों ने पार्टी के पुराने झण्डे, रू•सो•डे•ले•पा• के झण्डे को क़ायम रखा। यही सबब है कि 1912 तक बोल्शेविक पार्टी अपने को रूसी सोशल–डेमोक्रेटिक लेबर पार्टी ही कहती रही और 'बोल्शेविक' शब्द वह कोष्ठ में जोड़ देती थी।

1912 के आरंभ में प्राग कांफ्रेंस के नतीजों के बारे में, गोर्की को एक पत्र में लेनिन ने लिखा था :

> "विसर्जनवादी कीचड़ के बावजूद, आखिर हम पार्टी और उसकी केन्द्रीय समिति को बहाल करने में कामयाब हुए हैं। मुझे उम्मीद है कि हमारे साथ तुम इस बात पर खुश होंगे। (***लेनिन ग्रन्थावली, रू• सं•,*** खण्ड 29, पृष्ठ 19)।

प्राग कांफ्रेंस के महत्व की चर्चा करते हुए, कॉमरेड स्तालिन ने कहा था :

"हमारी पार्टी के इतिहास में इस कांफ्रेंस का बेहद महत्व है, क्योंकि उसने बोल्शेविकों और मेन्शेविकों के बीच एक सीमा–रेखा खींच दी है और तमाम देश के बोल्शेविक संगठनों को एक संयुक्त बोल्शेविक पार्टी में मिला दिया है।" (***सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) की 15वीं कांग्रेस की शब्दशः रिपोर्ट,*** रूसी संस्करण, पृष्ठ 361–62)।

मेन्शेविकों को निकालने और बोल्शेविकों की स्वतंत्र पार्टी बनाने के बाद, बोल्शेविक पार्टी और ज्यादा मजबूत और दृढ़ हुई। *पार्टी अपनी सफ़ों से अवसरवादी लोगों को निकाल कर मजबूत होती है* – बोल्शेविक पार्टी का यह एक सिद्धांत है; उस बोल्शेविक पार्टी का जो दूसरी इन्टरनेशनल की सोशल डेमोक्रेटिक पार्टियों से बुनियादी तौर से भिन्न है। हालांकि दूसरी इन्टरनेशनल की पार्टियां अपने को मार्क्सवादी पार्टियां कहती थीं, लेकिन वे दरअसल अपनी सफ़ों में मार्क्सवाद के दुश्मनों, खुले अवसरवादियों को बर्दाश्त करती थीं और उन्होंने दूसरी इन्टरनेशनल को उन्हें खराब और तबाह करने दिया था। इसके विपरीत, बोल्शेविकों ने अवसरवादियों के खिलाफ़ जम कर लड़ाई की। सर्वहारा वर्ग की पार्टी से अवसरवाद का कूड़ा–करकट निकाल फेंका और एक ऐसी पार्टी बनाने में कामयाब हुए जो नयी तरह की पार्टी थी, एक लेनिनवादी पार्टी थी, ऐसी पार्टी जिसने आगे चल कर सर्वहारा वर्ग की डिक्टेटरशिप क़ायम की।

अगर सर्वहारा वर्ग की पार्टी की सफ़ों में अवसरवादी बने रहते तो बोल्शेविक पार्टी मैदान में न आ सकती और सर्वहारा वर्ग का नेतृत्व न कर सकती, वह सत्ता पर अधिकार न कर सकती और सर्वहारा वर्ग की डिक्टेटरशिप न क़ायम कर सकती; वह गृह–युद्ध में विजयी न हो सकती और समाजवाद का निर्माण न कर सकती।

प्राग कांफ्रेंस ने फ़ैसला किया कि अल्पतम प्रोग्रम में जो मांगें थीं, उन्हें पार्टी के मुख्य फ़ौरी राजनीतिक नारों के रूप में पेश किया जाये : जनवादी प्रजातंत्र, आठ घण्टे का दिन और तमाम रियासती जमीन का जब्त करना।

इन क्रान्तिकारी नारों पर बोल्शेविकों ने चौथी राज्य दूमा के लिये चुनाव के सिलसिले में अपना आन्दोलन चलाया।

इन नारों ने 1912–'14 सालों में मज़दूर जनता के क्रांतिकारी आन्दोलन की नयी उठान को रास्ता दिखलाया।

सारांश

क्रांतिकारी काम के लिये 1908–'12 के साल बहुत ही कठिन साल थे। क्रान्ति की पराजय के बाद, जब क्रान्तिकारी आन्दोलन मन्द पड़ गया और जनता थकी हुई थी, बोल्शेविकों ने अपनी कार्यनीति बदल दी और ज़ारशाही के खिलाफ़ सीधे संघर्ष के बदले घुमावदार संघर्ष की तरफ बढे। स्तोलिपिन प्रतिक्रियावाद के दौर में जो कठिन परिस्थितियां थीं, उनमें आम जनता से अपना सम्बन्ध बनाये रखने के लिये, बोल्शेविकों ने छोटे से छोटे कानूनी मौक़े का (रोगी–सहायक समितियों और ट्रेड यूनियनों से लेकर दूमा के मंच तक का) इस्तेमाल किया। बोल्शेविकों ने क्रान्तिकारी आन्दोलन की नयी उठान के लिये शक्ति बटोरने में अथक रूप से काम किया।

क्रान्ति की पराजय के बाद कठिन परिस्थितियां सामने आयीं ? विरोधी रुझान टूट–फूट गये। क्रान्ति से निराशा हुई। जो बुद्धिजीवी पार्टी से भाग खड़े हुए थे (बुग्दानोव, बजारोव, वगैरह), उन्होंने अधिकाधिक कोशिश की कि पार्टी की सैद्धांतिक बुनियादों को दुहरायें। उस समय, पार्टी के अन्दर बोल्शेविक ही ऐसी ताक़त थे जिन्होंने पार्टी के झण्डे को झुकने न दिया, जो पार्टी प्रोग्राम के प्रति वफ़ादार रहे और जिन्होंने मार्क्सवादी सिद्धांत के आलोचकों के हमलों को खदेड़ दिया। (लेनिन की पुस्तक ***भौतिकवाद और अनुभविद्धि आलोचना***)। लेनिन के चारों ओर जो बोल्शेविकों का प्रमुख गुट था, वह पार्टी और उसके क्रान्तिकारी उसूलों की इसलिये हिफ़ाजत कर सका कि वह मार्क्सवादी–लेनिनवादी विचारधारा में परिपक्व हो चुका था और क्रान्ति की प्रगति की दिशा को समझ चुका था। बोल्शेविकों के बारे में, लेनिन ने कहा था : "लोग यों ही नहीं कहते कि हम चट्टान की तरह दृढ़ हैं।"

उस समय, मेन्शेविक क्रान्ति से बराबर दूर हटते जा रहे थे। वे विसर्जनवादी हो गये और सर्वहारा वर्ग की गैरकानूनी क्रान्तिकारी पार्टी के विसर्जन की, उसके खात्में की मांग करने लगे। उन्होंने अधिकाधिक पार्टी प्रोग्राम और पार्टी के क्रान्तिकारी उद्देश्यों और नारों को खुल्लमखुल्ला तजना शुरू कर दिया। उन्होंने खुद अपनी सुधारवादी पार्टी संगठित करने की कोशिश की, जिसका नाम मज़दूरों ने 'स्तोलिपिन लेबर पार्टी' रखा था। त्रात्स्की विसर्जनवादियों का समर्थन करता था और धूर्तता से पर्दे की तरह 'पार्टी–एकता' का नारा इस्तेमाल करता था। दरअसल, उसकी एकता का मतलब विसर्जन–वादियों से एकता था।

दूसरी तरफ़ कुछ बोल्शेविक, जो ज़ारशाही का मुकाबिला करने के लिये नये और घुमावदार रास्ते अपनाने की जरूरत महसूस न करते थे, यह मांग करने लगे कि

क़ानूनी अवसरों से लाभ न उठाया जाये और राज्य दूमा से मजदूरों के प्रतिनिधियों को वापस बुला लिया जाये। ये बहिष्कारवादी पार्टी को आम जनता से अलग जा पड़ने की तरफ़ ठेल रहे थे। वे क्रान्ति की नयी उठान के लिये शक्तियों को बटोरने के काम में बाधा डाल रहे थे। 'वाम पंथी' लफ़्फाजी को पर्दे की तरह इस्तेमाल करके, विसर्जनवादियों की तरह, बहिष्कारवादियों ने भी तत्व रूप में क्रान्तिकारी संघर्ष तज दिया था।

विसर्जनवादी और बहिष्कारवादी लेनिन के खिलाफ़ एक ही गुट में शामिल हो गये। यह अगस्त गुट कहलाता था और इसका संगठन त्रात्स्की ने किया था।

विसर्जनवादियों और बहिष्कारवादियों के खिलाफ़ संघर्ष में, अगस्त गुट के खिलाफ़ संघर्ष में, बोल्शेविक जीते और ग़ैरकानूनी सर्वहारा पार्टी की हिफ़ाजत करने में कामयाब हुए।

इस दौर की महत्वपूर्ण घटना (जनवरी 1912 में) रू•सो•डे•ले•पा• की प्राग कांफ्रेंस थी। इस कांफ्रेंस में, मेन्शेविक पार्टी से निकाल दिये गये और एक पार्टी के अन्दर मेन्शेविकों के साथ बोल्शेविकों की ऊपरी एकता सदा के लिये खत्म कर दी गयी। एक राजनीतिक गुट से आगे बढ़ कर, बोल्शेविक बाक़ायदा एक स्वतंत्र पार्टी, रूसी सोशल–डेमोक्रेटिक लेबर पार्टी (बोल्शेविक) बने। प्राग कांफ्रेंस ने एक नयी तरह की पार्टी, लेनिनवाद की पार्टी, बोल्शेविक पार्टी की शुरूआत की।

प्राग कांफ्रेंस में सर्वहारा पार्टी की सफ़ों से जो अवसरवादी, मेन्शेविक निकाले गये, उसका पार्टी और क्रान्ति के अगले विकास पर महत्वपूर्ण और निर्णायक असर पड़ा। अगर बोल्शेविक मज़दूरों के उद्देश्य से ग़द्दारी करने वालों, मेन्शेविक समझौतावादियों को पार्टी से न निकाल देते तो सर्वहारा पार्टी 1917 में सर्वहारा वर्ग की डिक्टेटरशिप के लिये लड़ने को आम जनता को न जगा सकती।

पांचवा अध्याय

प्रथम साम्राज्यवादी युद्ध के पहले मज़दूर आन्दोलन की नयी उठान के दौर में बोल्शेविक पार्टी।

(1912–1914)

1. 1912–'14 के दौर में क्रान्तिकारी आन्दोलन की उठान।

स्तोलिपिन प्रतिक्रियावाद की जीत थोड़े दिनों तक कायम रही। वह हुकूमत, जो जनता को लाठी और फांसी के सिवा कुछ और न दे सकती थी, कायम न रह सकती थी। दमन इतना आम हो गया कि लोगों में उसका डर न रहा। क्रान्ति की पराजय के बाद, हाल के वर्षों में मजदूरों में जो थकान फैल गयी थी, वह खत्म होने लगी। मजदूरों ने लड़ाई फिर शुरु की। बोल्शेविकों ने पहले से ही कहा था कि क्रान्ति के ज्वार में नयी उठान आयेगी। उनका यह कहना सच साबित हुआ। 1911 में हड़तालियों की तादाद एक लाख से ऊपर थी, जबकि इससे पहले के वर्षों में पचास हजार या साठ हजार से ज्यादा नहीं हुई थी। जनवरी 1912 में होने वाली प्राग पार्टी कांफ्रेंस ने ही मजदूर आन्दोलन के पुनर्जीवन की शुरुआत नोट की थी। लेकिन, क्रान्तिकारी आन्दोलन की असली उठान अप्रैल और मई 1912 में शुरु हुई, जबकि साइबेरिया में लीना की सोने की खानों में मजदूरों पर गोली चलाने के सिलसिले में आम राजनीतिक हड़तालें होने लगीं।

4 अप्रैल 1912 को, साइबेरिया में लीना की सोने की खानों में एक हड़ताल के दौर में हथियारबन्द पुलिस के एक ज़ारशाही अफ़सर के हुकूम से 500 से ऊपर मजदूर मारे गये या घायल हुए। लीना के खान–मजदूरों की एक निहत्थी जमात

प्रबन्धकों से बातचीत करने जा रही थी। उस पर गोली चलाने से सारे देश में हलचल पैदा हुई। निरंकुश ज़ारशाही ने यह नया खूनी कांड खान–मजदूरों की एक आर्थिक हड़ताल तोड़ने के लिये और इस तरह लीना की सोने की खानों के मालिकों, अंग्रेज पूंजीपतियों को खुश करने के लिये किया था। अंग्रेज पूंजीपतियों और उनके रूसी साझीदारों को मजदूरों का बहुत ही शर्मनाक शोषण करके लीना की सोने की खानों से भारी मुनाफ़ा – सत्तर लाख रुबल सालाना से ऊपर – मिलता था। वे मजदूरों को बहुत ही कम तनख़ाह देते थे और सड़ा हुआ खाना देते थे जो खाया न जा सकता था। इस उत्पीड़न और अपमान को और ज्यादा न सह पाकर, लीना की सोने की खानों के छः हजार मजदूरों ने हड़ताल कर दी।

पीतरबुर्ग, मास्को और दूसरे औद्योगिक केन्द्रों और प्रदेशों के सर्वहारा वर्ग ने लीना के गोलीकांड का जवाब आम हड़तालों, प्रदर्शनों और सभाओं से दिया।

कारखानों के एक गुट के मजदूरों ने अपने प्रस्ताव में ऐलान किया : "हमको इतना सदमा और ताज्जुब हुआ कि हमें अपने भाव प्रकट करने के लिये पहले शब्द नहीं मिले। हम लोग जो भी विरोध करेंगे, वह हमारे दिलों में जो गुस्सा घुमड़ रहा है, उसकी हल्की छाया भर होगा। न आँसू, न विरोध, संगठित आम लड़ाई के अलावा और कोई चीज़ कारगर नहीं हो सकती।"

ज़ार के मंत्री माकारोव से लीना गोलीकांड के विषय में राज्य दूमा में जब सोशल–डमोक्रैटिक गुट ने सवाल पूछे तो उसने बदतमीज़ी से कहा : "ऐसा ही हुआ है, ऐसा ही होगा! इससे मजदूरों की क्रोधाग्नि और भी भड़क उठी। लीना के मजदूरों के खूनी हत्याकांड के खिलाफ़, राजनीतिक विरोध–हड़तालों में हिस्सा लेने वालों की तादाद तीन लाख से ऊपर पहुंच गयी।

लीना की घटनायें एक तूफ़ान की तरह थीं, जिन्होंने स्तोलिपिन शासन की रची हुई 'शान्ति' के वातावरण को झकझोर दिया।

इस सिलसिले में, 1912 में कॉमरेड स्तालिन ने पीतरबुर्ग के बोल्शेविक अख़बार ***ज्वेज्दा (नक्षत्र)*** में लिखा था :

> "लीना की हत्याकांड से खामोशी की बर्फ़ पिघल गयी है और जन आन्दोलन की धारा फिर बह चली है। बर्फ टूट चुकी है! ...मौजूदा शासन में जो कुछ बुराई और नीचता थी, सताये हुए रूस की जो तमाम तकलीफ़ें थीं वे सब एक ही घटना में झलक उठीं – लीना का गोलीकांड। यही सबब है कि यह कांड हड़तालों और प्रदर्शनों के लिये एक सिगनल बन गया।"

विसर्जनवादियों और त्रात्स्की पंथियों ने क्रान्ति को दफ़ना देने की जो तमाम कोशिशें कीं, वे बेकार गयीं। लीना की घटनाओं ने दिखा दिया कि क्रान्ति की शक्तियां जीवित हैं, मजदूर वर्ग ने क्रान्तिकारी शक्ति की भारी निधि इकट्ठा कर ली थी। 1912 में, मई दिवस की हड़तालों में लगभग चार लाख मजदूरों ने हिस्सा लिया। इन हड़तालों का राजनीतिक रूप काफी स्पष्ट था। वे बोल्शेविकों के क्रान्तिकारी नारों की छाया में हुई थीं : जनवादी–प्रजातंत्र कायम हो काम के आठ घंटे हों, और सभी रियासती जमीन जब्त कर ली जाये। इन मुख्य नारों का उद्देश्य यह था कि न सिर्फ आम मजदूरों को एक किया जाये बल्कि निरंकुश सत्ता पर क्रान्तिकारी धावा करने के लिये किसानों और सैनिकों को भी एक करें।

> "तमाम रूस के सर्वहारा वर्ग की विशाल मई दिवस की हड़ताल में और उसके साथ होने वाले सड़कों पर प्रदर्शनों, क्रान्तिकारी ऐलानों और मजदूरों की सभाओं में क्रान्तिकारी भाषणों ने साफ दिखला दिया कि रूस क्रान्ति के उभार की मंजिल में पहुँच गया है।" – लेनिन ने "क्रान्तिकारी उठान" नाम के एक लेख में यह लिखा था। (लेनिन ***सं•रचं•*** अं•सं•, मास्को, 1947, खण्ड 1, पृष्ठ 537)।

मजदूरों की क्रान्तिकारी भावना से घबड़ा कर विसर्जनवादियों ने हड़ताल–आन्दोलन का विरोध किया। उन्होंने उसे 'हड़तालों का बुखार' कहा। विसर्जनवादी और उनका साथी त्रात्सकी सर्वहारा वर्ग के क्रान्तिकारी संघर्ष की जगह 'अर्जी देने का आन्दोलन' चलाना चाहते थे। उन्होंने मजदूरों को बुलावा दिया कि वे एक अर्जी पर, एक काग़ज के टुकड़े पर, दस्तख़त करें और उसमें 'अधिकार' बख्शने की प्रार्थना करें (सभा करने के अधिकार पर से रोक हटायी जाये, हड़ताल करने के अधिकार पर से रोक हटाई जाये, इत्यादि)। उसके बाद, यह अर्जी राज्य दूमा को भेजी जाती। विसर्जनवादी ऐसे समय में 1,300 दस्तख़त इकट्ठे कर पाये, जबकि लाखों मजदूर बोल्शेविकों के क्रान्तिकारी नारों का समर्थन कर रहे थे।

> मजदूर वर्ग ने बोल्शेविकों की दिखाई हुई राह को पसन्द किया।

उस समय देश की आर्थिक हालत यह थी।

1910 में, औद्योगिक ठहराव के बाद, पुनर्जीवन आ चुका था, मुख्य उद्योग–धंधों में पैदावार बढ़ी थी। 1910 में, कच्चे लोहे की पैदावार 18 करोड 60 लाख पूड थी; 1912 में, 25 करोड़ 60 लाख पूड थी और 1913 में, वह 28 करोड़ 30 लाख पूड तक पहुँच गयी। कोयले की पैदावार 1910 में 1 अरब 52 करोड़ 20 लाख पूड से बढ़कर 1913 में 2 अरब 21 करोड़ 40 लाख पूड तक पहुँच गयी।

पूंजीवादी उद्योग–धंधों के प्रसार के साथ, सर्वहारा वर्ग की तेज़ी से बढ़ती हुई। उद्योग–धंधों के विकास की एक अपनी विशेषता यह थी कि विशाल और भारी भरकम कारखानों में पैदावार और भी केन्द्रित हो गयी। 1901 में, बड़े कारखानों में, जिनमें 500 या उससे ऊपर मजदूर काम करते थे, कुल मजदूरों के 46.7 फ़ीसदी लोग काम करते थे, लेकिन 1910 में यह तादाद बढ़ कर 54 फीसदी हो गयी, यानी कुछ मजदूरों में आधे से ज्यादा बड़े कारखानों में काम करते थे। उद्योग–धंधों में इस तरह का केन्द्रीयकरण अभूतपूर्व था। संयुक्त राष्ट्र अमरीका जैसे आगे बढ़े हुए देश में भी कुल मजदूरों की सिर्फ़ एक–तिहाई तादाद उस समय बड़े कारखानों में काम करती थी।

सर्वहारा वर्ग की बढ़ती और उसका बड़े कारखानों में केन्द्रित होना और उसके साथ ही बोल्शेविक पार्टी जैसी क्रान्तिकारी पार्टी का होना रूस के मजदूर वर्ग को देश के राजनीतिक जीवन की सबसे बड़ी शक्ति बना रहा था। कारखानों में मजदूरों का जो भयानक रूप से शोषण होता था और उसके साथ ज़ार के पिट्ठुओं ने जो असहनीय पुलिस राज कायम कर रखा था, उससे हर बड़ी हड़ताल राजनीतिक रूप ले लेती थी। इसके सिवा, आर्थिक और राजनीतिक संघर्षों के घुलमिल जाने से आम हड़तालों में जबर्दस्त क्रान्तिकारी शक्ति पैदा हो जाती थी।

क्रान्तिकारी मजदूर आन्दोलन की अगली सफ़ों में पीतरबुर्ग का वीर सर्वहारा वर्ग चलता था। पीतरबुर्ग के बाद बाल्टिक प्रदेश, मास्को और मास्को प्रान्त, बोल्गा प्रदेश और दक्खिनी रूस थे। 1913 में, आन्दोलन पच्छिमी प्रदेश, पोलैंड और काकेशस में फैल गया। कुल मिलाकर सरकारी आकड़ों के अनुसार, 7 लाख 25 हजार मजदूरों ने, और ज्यादा सही आंकड़ों के अनुसार 10 लाख मजदूरों ने, 1912 की हड़तालों में हिस्सा लिया। 1913 की हड़तालों में सरकारी आंकड़ों के अनुसार 8 लाख 61 हजार मजदूरों ने, और ज्यादा सही आँकड़ों के अनुसार 12 लाख 72 हजार मजदूरों ने, हिस्सा लिया। 1914 के पूर्वार्द्ध में ही, हड़ताली मजदूरों की संख्या 15 लाख तक पहुँच चुकी थी।

1912–'14 की क्रान्तिकारी उठान में, हड़ताल–आन्दोलन के प्रवाह ने देश में ऐसी हालत पैदा कर दी जो 1905 की क्रान्ति के शुरु होने से पहले की हालत से मिलती–जुलती थी।

सर्वहारा वर्ग की क्रान्तिकारी आम हड़तालों का महत्व **तमाम जनता** के लिये था। ये हड़तालें निरंकुश सत्ता के खिलाफ़ थीं और उनके प्रति बहुसंख्यक मेहनतकश जनता ने हमदर्दी दिखाई। कारखानेदारों ने तालेबन्दी से मजदूरों को बाहर रखकर इसका जवाब दिया। 1913 में, मास्को प्रान्त में पूंजीपतियों ने 50,000 सूती मजदूरों

को सड़कों पर निकाल दिया। मार्च 1914 में, पीतरबुर्ग में अकेले एक दिन में 70,000 मजदूर निकाले गये। दूसरे कारखानों और उद्योग–धधों के मजदूरों ने आम चन्दे करके और कभी–कभी हमदर्दी में हड़तालें करके तालेबन्दी से निकाले हुए साथियों और हड़तालियों की मदद की।

उठते हुए मजदूर आन्दोलन ने और आम हड़तालों ने किसानों को भी उभारा और उन्हें संघर्ष में खींच लिया। किसान फिर जमींदारों के खिलाफ़ बग़ावत करने लगे। उन्होंने जमींदारों की गढ़ियों और कुलक–खेतियों का नाश किया। 1910–'14 के सालों में किसानों का असन्तोष 13,000 बार से भी अधिक बार फूट पड़ा।

फ़ौज के अन्दर भी क्रान्तिकारी विद्रोह हुए। 1912 में, तुर्किस्तान में सशस्त्र विद्रोहों का जन्म हुआ। बाल्टिक समुद्री बेड़े में और सेवास्तोपोल में भी विद्रोह की आग सुलग रही थी।

बोल्शेविक पार्टी के नेतृत्व में चलने वाले क्रान्तिकारी हड़ताल–आन्दोलन और प्रदर्शनों ने दिखला दिया कि मजदूर वर्ग आंशिक मांगों के लिये नहीं लड़ रहा, 'सुधारों' के लिये नहीं लड़ रहा बल्कि ज़ारशाही से जनता को आज़ाद करने के लिये लड़ रहा है। देश नयी क्रान्ति की तरफ बढ़ रहा था।

1912 की गर्मियों में, रूस के और नज़दीक आने के लिये लेनिन पैरिस से गैलीशिया (भूतपूर्व ऑस्ट्रिया) में चले आये। यहाँ उन्होंने केन्द्रीय समिति और प्रमुख पार्टी कार्यकर्ताओं के दो सम्मेलनों का सभापतित्व किया। इनमें से पहला 1912 के अंत में क्रेकाऊ में हुआ और दूसरा 1913 की शरद् में क्रैकाऊ के नज़दीक पोरोनीनो नाम के कस्बे में हुआ। इन सम्मेलनों ने मजदूर आन्दोलन के अहम सवालों पर फैसले किये : क्रान्तिकारी आन्दोलन की उठान, हड़तालों के सिलसिले में पार्टी के काम, गैर कानूनी संगठनों को मजबूत करना, दूमा का सोशल–डेमोक्रैटिक गुट, पार्टी प्रेस, मजदूरों का बीमा कराने का आन्दोलन।

2. बोल्शेविक अख़बार 'प्राव्दा'। चौथी राज्य दूमा में बोल्शेविक गुट।

अपने संगठनों को मजबूत करना और आम जनता में अपना असर फैलाने के लिये, बोल्शेविक पार्टी ने जो एक शक्तिशाली हथियार इस्तेमाल किया, वह दैनिक बोल्शेविक अखबार ***प्राव्दा (सत्य)*** था। यह पीतरबुर्ग से प्रकाशित होता था। लेनिन के निर्देश के अनुसार, स्टालिन, ओलमिंस्की और पोलेतायेव की पहलकदमी पर इसकी

स्थापना की गयी। ***प्राव्दा*** आम मजदूर जनता का अखबार था, जिसकी स्थापना क्रान्तिकारी आन्दोलन की नयी उठान के साथ ही हुई थी। उसका पहला अंक 22 अप्रैल (नयी शैली, 5 मई) 1912 को प्रकाशित हुआ। मजदूरों के लिये यह दरअसल उत्सव का दिन था। ***प्राव्दा*** के प्रकाशन के सम्मान में यह फैसला किया गया कि आगे से 5 मई को मजदूर–प्रेस–दिवस मनाया जायेगा।

प्राव्दा के प्रकाशन के पहले ही, बोल्शेविकों के पास ***ज्वेज्दा*** नाम का साप्ताहिक अखबार था। यह आगे बढ़े हुए मज़दूरों के लिये था। लीना कांड के समय, ***ज्वेज्दा*** ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। उसने लेनिन और स्टालिन के लिखे हुए कई सतेज राजनीतिक लेख छापे, जिन्होंने संघर्ष के लिये मजदूर वर्ग को बटोरा। लेकिन उठते हुए क्रान्तिकारी ज्वार को देखते हुए, बोल्शेविक पार्टी की जरूरतें साप्ताहिक पत्र से पूरी न होती थीं। ज्यादा से ज्यादा आम मजदूर जनता के लिये एक राजनीतिक दैनिक अखबार जरूरी था। **प्राव्दा** ऐसा ही अखबार था।

इस दौर में, ***प्राव्दा*** की भूमिका बहुत ही महत्वपूर्ण थी। आम मजदूर जनता में उसने बोल्शेविज़्म के लिये समर्थन हासिल किया। पुलिस बराबर दमन करती थी, जुर्माने होते थे और जो लेख और ख़त सेन्सर को पसन्द न आते थे, उनके प्रकाशन पर अंक ज़ब्त कर लिये जाते थे। ऐसी हालत में, लाखों आगे बढ़े हुए मजदूरों की मदद से ही ***प्राव्दा*** जिन्दा रह सकता था। मजदूरों में भारी चन्दा इकट्ठा होने से ही ***प्राव्दा*** बड़े–बड़े जुर्माने अदा कर पाया। अक्सर ऐसा होता था कि ***प्राव्दा*** के जब्त किये हुए अंकों की काफी प्रतियाँ पाठकों के हाथों में पहुंच ही जाती थीं। ज्यादा सक्रिय मजदूर रात में ही छापेखाने आते थे और अख़बार के बंडल बाँध ले जाते थे।

ढाई साल की अवधि में, ज़ार सरकार ने ***प्राव्दा*** को आठ बार बन्द कर दिया। लेकिन, हर बार मजदूरों की मदद से नये और मिलते–जुलते नामों से वह फिर निकल आया, जैसे ***जो प्राव्दा (सत्य के लिए), पूत प्राव्दी (सत्य का रास्ता), त्रुदोवाया प्राव्दा (मजदूर सत्य)।***

प्राव्दा का दैनिक औसत चालीस हजार कापियों का था, लेकिन मेन्शेविक दैनिक **लूच (किरण)** की पन्द्रह या सोलह हजार से ज्यादा कापियाँ न निकल पाती थीं।

मज़दूर ***प्राव्दा*** को अपना ही अख़बार समझते थे। उन्हें उस पर बहुत भरोसा था और उसकी पुकार का वे तुरंत जवाब देते थे। बीसियों पाठक एक ही प्रति पढ़ते थे और वह प्रति हाथों–हाथ घूमा करती थी। ***प्राव्दा*** ने उनकी वर्ग–चेतना का निर्माण किया, उन्हें शिक्षित किया, उन्हें संगठित किया और संघर्ष के लिये उन्हें बुलावा दिया।

प्राव्दा किन चीज़ों के बारे में लिखता था?

हर अंक में मजदूरों के दर्जनों ख़त छपते थे। इनमें वे अपनी जिन्दगी बयान करते थे, पूंजीपति, मैनेजर और फोरमैन जिस बुरी तरह उनका शोषण करते थे और तरह–तरह से उन्हें सताते और बेइज्जत करते थे, उसे वे बयान करते थे। इन पत्रों में पूंजीवादी परिस्थिति की तीखी और ज़ोरदार आलोचना होती थी। ***प्राव्दा*** अक्सर बेकार और **भूखे** मरते हुए मजदूरों की आत्महत्या की रिपोटें छापता था। ये वह मजदूर थे जो फिर काम पाने की आशा छोड़ बैठे थे।

प्राव्दा विभिन्न कारखानों और उद्योग–धंधों के मजदूरों की मांगों और जरूरतों के बारे में लिखता था। वह बतलाता था कि मजदूर अपनी माँगों के लिये किस तरह लड़ रहे हैं। लगभग हर अंक में विभिन्न कारखानों में होने वाली हड़तालों की रिपोर्टें छपती थीं। बड़ी और लंबी चलने वाली हड़तालों में हड़तालियों की मदद करने के लिये, अख़बार दूसरे कारखानों और दूसरे उद्योग–धंधों के **मजदूरों में चन्दे** इकट्ठे करने में मदद देता था। कभी–कभी हड़ताल–फ़ंड में लाखों रूबल इकट्ठे हो जाते थे। उन दिनों के लिये, जबकि ज्यादातर मजदूरों को हर रोज 70 या 80 कोपैक न मिलता था, तब ये रकमें बहुत भारी थीं। इससे मजदूरों में सर्वहारा भाईचारा और तमाम मजदूरों के हितों की एकता का भाव पुष्ट हुआ।

मजदूर हर राजनीतिक घटना, हर जीत या हार की तरफ **प्राव्दा** को चिट्ठियां, अभिनन्दन या विरोध–पत्र भेज कर अपने भाव प्रकट करते थे। अपने लेखों में, **प्राव्दा** सुसंगत बोल्शेविक दृष्टिकोण से मजदूर आन्दोलन के कामों की चर्चा करता था। कानूनी तौर से छपने वाला अख़बार ज़ारशाही का खात्मा करने के लिये खुल्लमखुल्ला बुलावा न दे सकता था। उसे इशारे करने पड़ते थे, जिन्हें वर्ग–चेतन मजदूर बहुत अच्छी तरह समझ लेते थे और जिन्हें वे आम जनता को समझाते थे। मिसाल के लिये, जब **प्राव्दा** ने 'वर्ष 5 की पूरी और बिना कटी–छंटी मांगों' के बारे में लिखा तो मजदूर समझ गये कि इसका मतलब बोल्शेविकों के क्रान्तिकारी नारे हैं, यानी ज़ारशाही का खात्मा, जनवादी प्रजातंत्र, रियासती जमीन की जब्ती और काम के आठ घण्टे।

चौथी दूमा के चुनाव के पहले, ***प्राव्दा*** ने आगे बढ़े हुए मजदूरों को संगठित किया। उसने उन लोगों की गद्दारी का पर्दाफाश किया जो उदारपंथी पूंजीपतियों से समझौते की हिमायत करते थे, जो 'स्तोलिपिन लेबर पार्टी' के हिमायती थे, यानी मेन्शेविक। ***प्राव्दा*** ने मजदूरों से कहा कि वे उनको वोट दें जो 'वर्ष 5 की पूरी और बिना कटी–छंटी मांगों' का समर्थन करते थे, यानी बोल्शेविकों को वोट दें। चुनाव का तरीका सीधा न था बल्कि कई मंजिलों से होता था। पहले मजदूरों की सभायें

प्रतिनिधि चुनती थीं। इसके बाद, प्रतिनिधि निर्वाचक चुनते थे। ये निर्वाचक की दूमा के लिये मजदूर प्रतिनिधियों के चुनाव में हिस्सा लेते थे। निर्वाचकों के चुनाव के दिन ***प्राव्दा*** ने बोल्शेविक उम्मीदवारों की एक सूची छापी और मजदूरों से सिफारिश की कि उस सूची के लिये वोट दें। सूची पहले न छप सकती थी वर्ना सूची में दिये हुए लोगों के गिरफ्तार होने का ख़तरा पैदा हो जाता।

प्राव्दा ने सर्वहारा वर्ग की आम कार्यवाही का संगठन करने में मदद दी। 1914 के वसन्त में, पीतरबुर्ग में एक बड़ी तालेबन्दी के वक्त, जबकि आम हड़ताल का ऐलान करना उचित न होता, ***प्राव्दा*** ने मजदूरों से कहा कि संघर्ष के दूसरे तरीके अपनाओ जैसे कि कारखानों में आम सभायें करना और प्रदर्शन करना। यह बात अख़बार में खुल कर न कही जा सकती थी। यह बात वर्ग–चेतन मजदूरों ने समझ ली जब उन्होंने लेनिन का लेख पढ़ा उसका सिरनामा बहुत ही सीधा–सादा था – "मजदूर आन्दोलन के रूप"। उसमें कहा गया था कि उस समय हड़तालों की जगह मजदूर आन्दोलन के और नये रूप अपनाने चाहिये, जिसका मतलब था कि सभायें और प्रदर्शन किये जायें।

इस तरह से, बोल्शेविकों की गैरकानूनी क्रान्तिकारी कार्यवाही के साथ ***प्राव्दा*** के जरिये आम मजदूरों के संगठन और आन्दोलन के कानूनी रूप मिला दिये गये।

प्राव्दा मजदूरों की जिन्दगी के बारे में, उनकी हड़तालों और प्रदर्शनों के ही बारे में न लिखता था बल्कि बराबर किसानों की जिन्दगी, उन्हें सताने वाले अकाल और सामन्ती जमींदारों के शोषण का भी वर्णन करता था। वह बतलाता था कि किस तरह स्तोलिपिन 'सुधारों' की बदौलत कुलकों ने किसानों से उनकी सबसे अच्छी जमीन छीन ली थी। ***प्राव्दा*** ने वर्ग–चेतन मजदूरों का ध्यान गाँव में फैले हुए घोर असंतोष की तरफ खींचा। उसने सर्वहारा वर्ग को सिखलाया कि 1905 की क्रान्ति के उद्देश्य अभी हासिल नहीं हुए और एक नयी क्रान्ति होने वाली है। उसने सिखलाया कि इस दूसरी क्रान्ति में सर्वहारा वर्ग को जनता के सच्चे नेता और पथ–दर्शक का काम करना चाहिये और इस क्रान्ति में उसे क्रान्तिकारी किसानों जैसा ताकतवर साथी मिलेगा।

मेन्शेविक इस कोशिश में लगे थे कि मजदूर क्रान्ति का विचार छोड़ दें, जनता के बारे में सोचना बन्द कर दें, किसानों की भुखमरी के बारे में, यमराज सभा के सामन्ती ज़मींदारों के प्रभुत्व के बारे में सोचना छोड़ दें और केवल 'सभा करने की आजादी' के लिये लड़ें, इसके लिये ज़ार सरकार को 'अर्ज़ियाँ' भेजें। बोल्शेविकों ने मजदूरों को समझाया कि क्रान्ति को छोड़ने के इस मेन्शेविक शास्त्र का प्रचार, किसानों से सहयोग करने की नीति को छोड़ने का प्रचार, पूंजीपतियों के हित में किया जा रहा

है। अगर मजदूर किसानों को अपना साथी बना लेंगे तो वे जरूरी ही ज़ारशाही को हरा देंगे। इसलिये, वे मेन्शेविकों जैसे बुरे रहबरों को क्रान्ति का दुश्मन समझ कर बाहर निकाल दें।

अपने "किसान जीवन" **स्तम्भ** में, ***प्राव्दा*** किन चीज़ों के बारे में लिखता था?

मिसाल के लिये, 1913 के साल के बारे में हम कुछ ख़त ले सकते हैं।

समारा से एक ख़त आया था, जिसका शीर्षक था – "किसान जीवन का नमूना"। उसमें लिखा था कि बुगुल्मा ज़िले के नोवोखासबुलात गाँव के 45 किसानों पर यह दोष लगाया गया था कि उन्होंने पैमायश करने वाले के काम में दखल दिया। वह पैमायश करने वाले कम्यून से निकलने वाले किसानों के लिये उनके हिस्से में पड़ी हुई कम्यून की ज़मीन की हदें बाँध रहा था। ज्यादातर किसानों को लम्बी क़ैद की सज़ा दी गयी।

प्सकोस सूबे से एक छोटे से ख़त में लिखा था कि "(ज़बाल्ये स्टेशन के पास) प्सित्सा गाँव के किसानों ने देहाती पुलिस का हथियारबन्द विरोध किया। कई आदमी घायल हो गये। लड़ाई एक खेती के झगड़े को लेकर हुई थी। देहाती पुलिस प्सित्सा को भेज दी गई है और वाइस गवर्नर और प्रोक्यूरेटर गाँव की तरफ आ रहे हैं।"

ऊफ़ा सूबे से एक ख़त में लिखा था कि किसानों के हिस्से बड़ी तादाद में बेचे जा रहे थे। अकाल और गाँव के कम्यून से निकलने की आज्ञा देने वाले कानून की वजह से, दिन पर दिन ज़्यादा किसान अपनी ज़मीन से हाथ धो रहे थे। मिसाल के लिये, बोरिसोव्का नाम का खेड़ा लीजिये। यहां पर 27 किसान परिवार हैं और उनके पास कुल मिलाकर 543 देसियातिन खेत हैं। अकाल में, पाँच किसानों ने 31 देसियातिन ज़मीन तुरंत ही बेच डाली। यह ज़मीन फ़ी देसियातिन 25 से 33 रुबल के भाव बिकी, हालांकि उसकी कीमत इससे तीन या चार गुनी थी। इसी गाँव में, सात किसानों ने कुल मिलाकर 177 देसियातिन खेत गिरवी रख दिये थे। छः साल तक 12 फ़ीसदी सालाना के हिसाब से उन्हें फ़ी देसियातिन 18–20 रुबल तक मिलते। जब जनता की गरीबी और ब्याज की भारी दर पर ध्यान देते हैं, तो यह निश्चत कहा जा सकता है कि 177 देसियातिन की आधी ज़मीन जरूर महाजन के पास चली जायेगी क्योंकि यह मुमकिन नहीं है कि आधे क़र्जदार भी इतनी बड़ी रक़म छः साल में दे पायेंगे।

प्राव्दा में प्रकाशित "रूस में बड़े जमींदारों और छोटे किसानों की ज़मीन की मिल्कियत" में, लेनिन ने मजदूरों और किसानों को बड़ी खूबी से दिखा दिया कि जांगरचोर ज़मींदारों के हाथ में कितनी ज्यादा रियासती ज़मीन है। 30,000 बड़े

ज़मींदारों के बीच में ही 7 करोड़ देसियातिन ज़मीन घिरी हुई थी। इतनी ही ज़मीन एक करोड़ किसान कुनबों में घिरी थी। औसतन बड़े ज़मींदारों में हरेक के पास 2,300 देसियातिन ज़मीन थी, जबकि कुलकों को मिलाकर किसान परिवारों के पास फ़ी परिवार सात देसियातिन ही थी। इसके अलावा, छोटे किसानों के 50 लाख परिवार, यानि आधे किसान ऐसे थे जिनके पास फी आदमी एक या दो देसियातिन से ज़्यादा न होता था। इन आंकड़ों से साफ़ मालूम होता था कि किसानों की गरीबी और बार–बार पड़ने वाले अकालों की जड़ भूदास प्रथा की अवशेष ये बड़ी–बड़ी रियासतें ही हैं, जिनसे किसान–मजूदर वर्ग के नेतृत्व में होने वाली क्रान्ति के ज़रिये ही वे छुटकारा पा सकते हैं।

जिन मज़दूरों को देहात से सम्बन्ध था, उनके ज़रिये ***प्राव्दा*** गाँवों में पहुँच जाता था और राजनीतिक रूप से आगे बढ़े हुए किसानों को क्रान्तिकारी संघर्ष के लिये उभारता था। जिस समय ***प्राव्दा*** की स्थापना हुई, उस समय ग़ैर कानूनी सोशल–डेमाक्रैटिक संगठन पूरी तरह बोल्शेविकों के नेतृत्व में थे। दूसरी तरफ़, संगठन के कानूनी रूप – जैसे कि दूमा गुट, प्रेस, रोगी–सहायता–समिति, ट्रेड यूनियन – अभी पूरी तरह मेन्शेविकों के हाथ से न निकाले गये थे। बोल्शेविकों को मजदूर वर्ग के मौजूदा कानूनी संगठनों से विसर्जनवादियों को निकालने के लिये डट कर मोर्चा लेना पड़ा। ***प्राव्दा*** की वजह से, इस लड़ाई का अंत जीत में हुआ।

पार्टी सिद्धान्त के लिये, आम मजदूर वर्ग की क्रान्तिकारी पार्टी बनाने के लिये संघर्ष में ***प्राव्दा*** बीचों–बीच में था। ***प्राव्दा*** ने बोल्शेविक पार्टी के गैरकानूनी केन्द्रों के चारों तरफ मौजूदा कानूनी संगठनों को इकट्ठा किया और एक निश्चित उद्देश्य की तरफ मजदूर आन्दोलन का संचालन किया – क्रान्ति की तैयारी के लिये। ***प्राव्दा*** के मजदूर संवाददाताओं की तादाद बहुत बड़ी थी। एक साल में ही, उसने मजदूरों के एक हजार से ऊपर ख़त छापे। लेकिन, ***प्राव्दा*** मजदूर जनता से सिर्फ ख़तों के ज़रिये सम्पर्क कायम न रखता था। रोज कारखानों से ढेरों मजदूर सम्पादकीय दफ्तर में आते थे। ***प्राव्दा*** के सम्पादकीय दफ़्तर में पार्टी के संगठनात्मक कार्य का एक बड़ा हिस्सा केन्द्रित था। यहां पर पार्टी केन्द्रों के प्रतिनिधियों की मीटिंगों का इंतजाम किया जाता था। यहाँ पर मिलों और कारखानों में पार्टी के काम की रिपोर्टें ली जाती थीं। यहीं से पार्टी की पीतरबुर्ग–कमिटी और केन्द्रीय समिति के निर्देश बाहर भेजे जाते थे।

मजदूर वर्ग की आम क्रान्तिकारी पार्टी बनाने के लिये ढाई साल तक विसर्जनवादियों के खिलाफ़ डट कर मोर्चा लेने के फलस्वरूप, 1914 की गर्मियों तक बोल्शेविक पार्टी के लिये और ***प्राव्दा*** की कार्यनीति के लिये बोल्शेविक रूस के राजनीतिक तौर से सक्रिय मजदूरों में से 80 फीसदी का समर्थन हासिल करने में सफल हुए। यह बात,

मिसाल के लिये, इससे साबित हुई कि 1914 में मजदूर प्रेस के लिये कुल 7,000 मजदूर मंडलों ने चन्दा इकट्ठा किया; इनमें से 5,600 मंडलों ने बोलशेविक प्रेस के लिये चन्दा इकट्ठा किया; और सिर्फ़ 1,400 मंडलों ने मेन्शेविकों के लिये। लेकिन दूसरी तरफ, उदारपंथी पूंजीपतियों और पूंजीवादी बुद्धिजीवियों में मेन्शेविकों के बहुत से 'अमीर दोस्त' थे। मेन्शेविक अख़बार चलाने के लिये जितने पैसे की जरूरत होती थी, उसमें आधे से ज्यादा यही लोग दे देते थे।

उस समय, बोल्शेविक ***'प्राव्दा पंथी'*** कहलाते थे। ***प्राव्दा*** ने क्रान्तिकारी मजदूरों की एक पूरी पीढ़ी पाल–पोस कर बड़ी की थी। यह वह पीढ़ी थी जिसने आगे चलकर अक्तूबर की समाजवादी क्रान्ति की। हजारों और लाखों मजदूर **प्राव्दा** की हिमायत करते थे। क्रान्तिकारी आन्दोलन की उठान के दिनों (1912–'14) में, एक जन बोल्शेविक पार्टी की पक्की बुनियाद डाल दी गयी। यह ऐसी बुनियाद थी जिसे साम्राज्यवादी युद्ध के दौर में ज़ारशाही का तमाम दमन कुचल न सका।

"1912 का ***प्राव्दा*** 1917 में बोल्शेविज़्म की विजय की नींव का पत्थर था।" (स्तालिन)।

पार्टी की दूसरी कानूनी तौर पर चलने वाली केन्द्रीय संस्था चौथी राज्य दूमा का बोल्शेविक गुट था।

1912 में, हुकूमत ने चौथी दूमा के चुनाव का ऐलान किया। हमारी पार्टी ने चुनाव में हिस्सा लेने को बहुत ही महत्वपूर्ण समझा। आम जनता में बोल्शेविक पार्टी के क्रान्तिकारी काम के मुख्य आधार दूमा का सोशल–डेमोक्रैटिक गुट और ***प्राव्दा*** थे, जो कुल देश के पैमाने पर कानूनी तौर से काम करते थे।"

बोल्शेविक पार्टी ने दूमा के चुनाव में स्वतंत्र रूप से काम किया और अपने अलग नारे दिये। उसने एक तरफ सरकारी पार्टियों पर हमला किया और साथ ही दूसरी तरफ उदारपंथी पूंजीपतियों (कॉन्स्टीट्यूशनल डेमोक्रैटों) पर हमला किया। चुनाव आन्दोलन में बोल्शेविकों के नारे थे : जनवादी प्रजातंत्र, काम के आठ घंटे और रियासती ज़मीन की ज़ब्ती।

1912 की शरद् में, चौथी दूमा के चुनाव हुए। अक्तूबर के शुरु में, पीतरबुर्ग में चुनाव की प्रगति की दिशा से असन्तुष्ट होकर हुकूमत ने कई बड़े कारखानों में मजदूरों के चुनाव–अधिकारों पर बन्दिश लगाने की कोशिश की। इसके जवाब में, कॉमरेड स्टालिन के प्रस्ताव पर हमारी पार्टी की पीतरबुर्ग–कमिटी ने बड़े कारखानों के मज़दूरों से एक दिन की हड़ताल करने को कहा। मुश्किल में पड़कर, हुकूमत को

झुकना पड़ा और मजदूर अपनी सभाओं में जिसे चाहते थे उसे चुन सके। मजदूरों के बहुसंख्यक हिस्से ने अपने प्रतिनिधियों और नुमायदों के लिये उस ***निर्देश–पत्र (मैन्डेट, नकाज़)*** पर वोट दिया, जिसे कॉमरेड स्तालिन ने तैयार किया था। "अपने मजदूर प्रतिनिधि के नाम पीतरबुर्ग के मजदूरों के निर्देश–पत्र" ने 1905 के अधूरे कामों को पूरा करने की तरफ ध्यान दिलाया।

निर्देश–पत्र में कहा गया था :

"...हम समझते हैं कि रूस में अब ऐसे जन आन्दोलन छिड़ने वाले हैं जो 1905 से ज्यादा गंभीर होंगे। ... 1905 की तरह, इन आन्दोलनों की पहली पांत में रूसी समाज का सबसे आगे बढ़ा हुआ वर्ग, रूसी सर्वहारा वर्ग होगा। उसका एक ही साथी बेहद सताये हुए किसान हो सकते हैं, जिन्हें रूस के उद्धार से भारी दिलचस्पी है।"

निर्देश–पत्र में कहा गया था कि जनता की अगली कार्यवाहियों को दो मोर्चों पर चलने वाले एक संघर्ष का रूप लेना चाहिये – ज़ारशाही सरकार के खिलाफ़ और उन उदारपंथी पूंजीपतियों के खिलाफ़ जो ज़ारशाही से समझौता करने की कोशिश कर रहे थे।

लेनिन ने निर्देश–पत्र (मैण्डेट) को बहुत महत्व दिया, जिसमें क्रान्तिकारी संघर्ष के लिये मजदूरों का आह्वान किया गया था। अपने प्रस्तावों में, मजदूरों ने इस आह्वान का स्वागत किया।

चुनावों में बोल्शेविकों ने एक जीत हासिल की और पीतरबुर्ग के मजदूरों ने दूमा के लिये कॉमरेड बादायेव को चुना।

दूमा के लिये चुनावों में मजदूरों ने आबादी के दूसरे हिस्सों से अलग वोट दिया (इसे मजदूर क्यूरिया कहते थे)। मजदूर क्यूरिया से जो 9 प्रतिनिधि चुने गये थे, उनमें से 6 बोल्शेविक पार्टी के सदस्य थे : बादायेव, पेत्रोव्स्की, मुरानोव, समाइलोव, शागोव और मालिनोव्स्की (यह आखिरी आदमी आगे चल कर उकसावा पैदा करने वाला दलाल सावित हुआ)। बोल्शेविक प्रतिनिधि बड़े औद्योगिक केन्द्रों से चुने गये थे, जिनमें कम से कम 80 फीसदी मजदूर केन्द्रित थे। दूसरी तरफ, कई चुने हुए विसर्जनवादी मजदूर क्यूरिया से मैण्डेट न लाये थे, यानी उन्हें मजदूरों ने नहीं चुना था। नतीजा यह कि दूमा में 6 बोल्शेविकों के मुकाबिले में 7 विसर्जनवादी थे। पहले तो दूमा में बोल्शेविकों और विसर्जनवादियों ने मिला–जुला सोशल–डेमोक्रेटिक गुट बनाया। विसर्जनवादी बोल्शेविकों के क्रान्तिवादी काम में अड़चन डालते थे। उनके

खिलाफ़ जबर्दस्त संघर्ष करने के बाद, अक्तूबर 1913 में, पार्टी की केन्द्रीय समिति के निर्देश से, बोल्शेविक प्रतिनिधि मिलेजुले सोशल–डेमोक्रेटिक गुट से अलग हो गये और उन्होंने एक स्वतंत्र बोल्शेविक गुट बनाया।

बोल्शेविक प्रतिनिधि दूमा में क्रान्तिकारी भाषण देते थे, जिनमें वे स्वेच्छाचारी व्यवस्था का पर्दाफाश करते थे और मजदूरों पर दमन और पूंजीपतियों द्वारा मजदूरों का बर्बर शोषण करने के बारे में हुकूमत से सवाल करते थे।

वे दूमा में खेती के सवाल पर भी बोलते थे। सामन्ती जमींदारों के खिलाफ़ लड़ने के लिये, वे किसानों को बुलावा देते थे और कॉन्स्टीट्यूनल डेमोक्रैटिक पार्टी का भंडाफोड़ करते थे, जो रियासती जमीन की ज़ब्ती और उसे किसानों को देने के खिलाफ़ थी।

बोल्शेविकों ने राज्य दूमा में काम के 8 घंटे करने के बारे में एक प्रस्ताव रखा। ज़ाहिर है कि इस यमराज सभा वालों की दूमा ने उसे मंजूर न किया, लेकिन प्रचार–आन्दोलन के लिये उसका भारी मूल्य था।

दूमा का बोल्शेविक गुट पार्टी की केन्द्रीय समिति और लेनिन से जनदीकी सम्बन्ध कायम रखता था। लेनिन उन्हें निर्देश भेजा करते थे। जिस समय कॉमरेड स्तालिन पीतरबुर्ग में रहते थे, वह खुद सीधे उनका पथ–दर्शन किया करते थे।

बोल्शेविक प्रतिनिधियों का काम दूमा के अन्दर ही सीमित न था। दूमा के बाहर भी वे बहुत सक्रिय रहते थे। वे मिलों और कारखानों में जाते थे और देश के मजदूर केन्द्रों का दौरा करते थे, जहाँ वे भाषण देते थे, गुप्त सभायें करते थे जिनमें वे पार्टी के फैसले समझाते थे, और नये पार्टी–संगठन बनाते थे। प्रतिनिधि बड़े कौशल से कानूनी काम के साथ गैरकानूनी, अंडरग्राउंड काम करते जाते थे।

3. कानूनी तौर से चलने वाले संगठनों में बोल्शेविकों की जीत। क्रान्तिकारी आन्दोलन की लगातार उठान। साम्राज्यवादी युद्ध से पहले।

इस दौर में, बोल्शेविक पार्टी ने मजदूरों के वर्ग–संघर्ष के सभी रूपों और सभी कार्यवाहियों में नेतृत्व करने की एक मिसाल रखी। उसने गैरकानूनी संगठन बनाये। उसने गैरकानूनी पर्चे निकाले। उसने आम जनता में गुप्त रूप से क्रान्तिकारी काम किया। इसके साथ ही, मजदूर वर्ग के विभिन्न कानूनी संगठनों का नेतृत्व बराबर हासिल करती रही। पार्टी ने कोशिश की कि ट्रेड यूनियनों को अपनी तरफ कर ले

और जन गृहों, शाम के विश्वविद्यालयों, क्लबों और रोगी–सहायक–समितियों में अपना असर कायम करे। ये कानूनी तौर से चलने वाले संगठन बहुत दिनों से विसर्जनवादियों के अड्डे बने हुए थे। बोल्शेविकों ने जोरदार लड़ाई शुरू की कि कानूनी तौर से चलने वाली संस्थायें पार्टी का गढ़ बन जाये। कानूनी और गैरकानूनी काम को चतुराई से मिलाकर, दोनों सबसे प्रमुख शहरों – पीतरबुर्ग और मास्को – के ट्रेड यूनियन संगठनों के बहुसंख्यक हिस्सों को बोल्शेविकों ने अपनी तरफ कर लिया। 1913 में, पीतरबुर्ग में धातु–मजदूरों के यूनियन की कार्यकारिणी समिति के चुनाव में खास तौर से शानदार जीत हासिल की गयी। जलसे में जो 3,000 धातु के मजदूर आये थे, उनमें मुश्किल से 150 ने विसर्जनवादियों को वोट दिया।

यही बात चौथी राज्य दूमा के सोशल–डेमोक्रैटिक गुट जैसे महत्वपूर्ण कानूनी संगठन के बारे में कही जा सकती है। हालांकि दूमा में मेन्शेविकों के 7 प्रतिनिधि थे और बोल्शेविकों के 6, फिर भी मेन्शेविक प्रतिनिधि मुख्य रूप से गैर मजदूर जिलों से चुने गये थे और वे मुश्किल से 20 फीसदी मजदूरों का प्रतिनिधित्व करते थे ; जबकि बोल्शेविक प्रतिनिधि देश के मुख्य औद्योगिक केन्द्रों (पीतरबुर्ग, मास्को, इवानोवोवज़्नेसेंस्क, कास्त्रोमा, एकातेरीनोस्लाव और खारकोव) से चुने गये थे और इस तरह, वे देश के 80 फ़ीसदी मजदूरों का प्रतिनिधित्व करते थे। मजदूर 6 बोल्शेविकों (बादायेव, पेत्रोव्स्की, वगैरह) को अपना प्रतिनिधि मानते थे, न कि 7 मेन्शेविकों को।

बोल्शेविक कानूनी तौर से चलने वाले संगठनों को अपनी तरफ कर सकने में इसलिये सफल हुए कि ज़ार सरकार के भयानक जुल्म और विसर्जनवादियों तथा त्रात्स्की पंथियों की गालियों के बावजूद, वे गैरकानूनी पार्टी को कायम रख सके और अपनी पांति में मजबूत अनुशासन बनाये रख सके। उन्होंने दृढ़ता से मजदूर वर्ग के हितों की रक्षा की। आम जनता से उनके नज़दीकी सम्बन्ध थे और वे मजदूर आन्दोलन के दुश्मनों के खिलाफ़ बिना समझौते के लड़ते थे।

इस तरह, कानूनी तौर से चलने वाले संगठनों में बोल्शेविकों की जीत और मेन्शेविकों की हार पूरे मोर्चे पर हुई। दूमा के मंच से आन्दोलन करने में और मजदूरों के अख़बार और कानूनी तौर से चलने वाले दूसरे संगठनों में, मेन्शेविकों को पीछे हटना पड़ा। मजदूर वर्ग में क्रान्तिकारी आन्दोलन ने जोर पकड़ लिया। मजदूर वर्ग निश्चित रूप से बोल्शेविकों के चारों तरफ सिमट आया और उसने मेन्शेविकों को दूर भगा दिया।

इस सबके बाद, जातियों के मसले पर भी मेन्शेविक पूरी तरह दिवालिये साबित हुए। रूस के सीमान्त प्रदेशों में क्रान्तिकारी आन्दोलन की माँग थी कि जातियों

के सवाल पर स्पष्ट कार्यक्रम हो। लेकिन, मेन्शेविकों के पास **बुन्द की** 'सांस्कृतिक खुदमुख़्तारी' के अलावा, जिससे किसी को संतोष न होता था, और कोई कार्यक्रम न था। सिर्फ़ बोल्शेविकों के पास जातियों के मसले पर एक मार्क्सवादी कार्यक्रम था।, जैसा कि वह कॉमरेड स्तालिन के लेख "मार्क्सवाद और जातियों का सवाल" और लेनिन के लेखों "जातियों के आत्मनिर्णय का अधिकार" तथा "जातीय प्रश्न पर टीका–टिप्पणी" में पेश किया गया था।

कोई ताज्जुब नहीं कि ऐसी हारें खाने के बाद मेन्शेविकों का अगस्त गुट टूटने लगा। भानमती का कुनबा वह था ही, वह बोल्शेविकों का धावा न सह सका और बिखरने लगा। वह बोल्शेविज़्म का विरोध करने के लिये बना था; अब बोल्शेविकों की मार से उसकी धज्जियाँ उड़ गयीं। सबसे पहले, उससे ***ल्यूदेपियोदपंथी*** (बुग्दानोव, लूनाचार्स्की) निकले उनके बाद लेत निकले और उनके पीछे बाकी सब हो लिये।

बोल्शेविकों के खिलाफ़ संघर्ष में हार खाकर, विसर्जनवादियों ने मदद के लिये दूसरी इन्टरनेशनल से अपील की। दूसरी इन्टरनेशनल उनकी मदद के लिए आ गई। बोल्शेविकों और विसर्जनवादियों के बीच 'समझौता कराने' और 'पार्टी में अमन' क़ायम करने के बहाने, दूसरी इन्टरनेशनल ने मांग की कि बोल्शेविक विसर्जनवादियों की समझौतापरस्त नीति की नुक्ताचीनी बन्द कर दें। लेकिन, बोल्शेविक समझौता करने के लिये तैयार न थे। उन्होंने अवसरवादी दूसरी इन्टरनेशनल के फ़ैसले मानने से इन्कार कर दिया और किसी भी तरह की रियायत करने को राजी न हुए।

क़ानूनी तौर से चलने वाले संगठनों में बोल्शेविकों की जीत आकस्मिक न थी, न हो सकती थी। सिर्फ़ बोल्शेविकों के पास सही मार्क्सवादी सिद्धान्त था, स्पष्ट कार्यक्रम था और एक क्रान्तिकारी सर्वहारा पार्टी थी जो युद्ध में पक्की और फ़ौलादी बन चुकी थी। लेकिन इसीलिये उनकी जीत आकस्मिक न हो, ऐसा न था। उनकी जीत इसलिये भी हुई कि उसमें क्रान्ति का उठता हुआ ज्वार प्रतिबिम्बित होता था।

मजदूरों का क्रान्तिकारी आन्दोलन बराबर बढ़ता गया और शहर के बाद शहर और प्रदेश के बाद प्रदेश में फैल गया। 1914 में आरम्भ में, मज़दूर हड़तालों का कम होना तो दूर, उन्होंने नया ज़ोर पकड़ा। वे अधिकाधिक डटकर लड़ी जाने लगीं और मज़दूरों की अधिकाधिक तादाद उनमें हिस्सा लेने लगी। 9 जनवरी को 92 लाख 50 हजार मजदूरों ने हड़ताल की, जिनमें अकेले पीतरबुर्ग में 1 लाख 40 हज़ार हड़ताली थे। पहली मई को 5 लाख मज़दूरों ने हड़ताल की, जिसमें पीतरबुर्ग के ढाई लाख मज़दूर थे। मज़दूरों ने हड़तालों में असाधारण मज़बूती दिखलाई। पीतरबुर्ग में ओबूखोव कारखाने की एक हड़ताल दो महीने से ऊपर चली और एक

दूसरी लैसनर कारखाने में लगभग तीन महीने चली। पीतरबुर्ग के कई कारखानों में मज़दूरों की एक जमात की जमात को ज़हर देने की वजह से 1 लाख 15 हजार मज़दूरों ने हड़ताल की, जिसके साथ प्रदर्शन भी हुए। आन्दोलन फैलता गया। 1914 के पूर्वार्द्ध में, (जुलाई शुरू के दिन मिला कर) कुल 14 लाख 25 हजार मज़दूरों ने हड़तालों में हिस्सा लिया।

मई में, बाकू में तेल–मज़दूरों की हड़ताल हुई। उसने रूस के तमाम मज़दूरों का ध्यान अपने पर केन्द्रित किया। हड़ताल संगठित ढंग से चलाई गयी। 20 जून को, 20 हज़ार मज़दूरों ने बाकू में प्रर्दशन किया। पुलिस ने बाकू के मज़दूरों के खिलाफ़ भारी जुल्मी क़दम उठाये। इसके विरोध में और बाकू मज़दूरों से भाईचारा ज़ाहिर करने के लिये, मास्को में हड़ताल हुई और दूसरे जिलों में फैल गयी।

3 जुलाई को, बाकू की हड़ताल के सिलसिले में पीतरबुर्ग के पुतिलोव कारखाने में एक सभा हुई। पुलिस ने मज़दूरों पर गोली चलाई। पीतरबुर्ग के सर्वहारा वर्ग में गुस्से की लहर दौड़ गयी। 4 जुलाई को, पीतरबुर्ग पार्टी कमिटी के बुलावे पर वहाँ के 90 हजार मज़दूरों ने विरोध में काम बन्द कर दिया। 7 जुलाई को उनकी तादाद बढ़ कर 1 लाख 30 हजार हो गयी, 8 जुलाई को डेढ़ लाख और 11 जुलाई को 2 लाख तक पहुंच गयी।

सभी कारखानों में असंतोष फैल गया और हर जगह सभायें और प्रदर्शन हुए। मज़दूरों ने सड़कों पर मोर्चेबन्दी भी शुरू कर दी। बाकू और लोत्स में भी मोर्चेबन्दी हुई। कई जगह पुलिस ने मज़दूरों पर गोली चलाई। हुकूमत ने आन्दोलन को दबाने के लिये 'संकटकालीन' क़दम उठाये। राजधानी एक हथियारबन्द खेमा बन गयी। *प्राव्दा* को बन्द कर दिया गया।

लेकिन, उसी समय मैदान में एक नयी घटना, एक अंतर्राष्ट्रीय महत्व की घटना हुई। यह साम्राज्यावादी युद्ध था, जिससे सारा घटना–चक्र ही बदल जाने को था। जुलाई के क्रान्तिकारी उभार के दिनों में ही, फ्रांस का राष्ट्रपति प्वान्कारे पीतरबुर्ग में शीघ्र छिड़ने वाली लड़ाई के बारे में ज़ार से बात करने आया था। कुछ दिन बाद ही, जर्मनी ने रूस के खिलाफ़ लड़ाई का ऐलान कर दिया बोल्शेविक संगठनों को कुचलने और मज़दूर आन्दोलनों को दबाने के लिये, ज़ार सरकार ने लड़ाई से फ़ायदा उठाया। विश्व युद्ध ने क्रान्ति की प्रगति में बाधा डाली और ज़ार सरकार ने क्रान्ति से बचने के लिये इसी युद्ध में शरण ढूंढी।

सारांश

क्रान्ति की नयी उठान के दिनों (1912–'14) में, बोल्शेविक पार्टी ने मज़दूर आन्दोलन का नेतृत्व किया और बोल्शेविक नारों पर उसे नयी क्रान्ति की तरफ़ ले गयी। पार्टी ने योग्यता से क़ानूनी काम के साथ ग़ैरकानूनी काम मिलाया। विसर्जनवादियों और उनके दोस्तों – त्रात्स्कीपंथियों और बहिष्कारवादियों – के विरोध को कुचल कर, पार्टी ने क़ानूनी आन्दोलन के सभी रूपों का नेतृत्व हासिल किया और क़ानूनी तौर से चलने वाले संगठनों को अपने क्रान्तिकारी काम का गढ़ बना दिया।

मज़दूर वर्ग के दुश्मनों और मज़दूर आन्दोलन में उनके दलालों के खिलाफ़ लड़ाई में, पार्टी ने अपनी पाँति मज़बूत की और मजूदर वर्ग से अपने सम्बन्ध बढ़ाई। क्रान्तिकारी प्रचार–आन्दोलन के मंच के तौर पर, दूमा का भरपूर इस्तेमाल करके और आम मज़दूरों के सुन्दर अख़बार ***प्राव्दा*** की स्थापना करके, पार्टी ने क्रान्तिकारी कार्यकर्ताओं की एक नई पीढ़ी – **प्राव्दा** पंथियों को शिक्षित किया। साम्राज्यवादी युद्ध में, मज़दूरों का यह हिस्सा अंतर्राष्ट्रीयता और सर्वहारा क्रान्ति के झंडे के प्रति वफ़ादार रहा। आगे चल कर अक्तूबर 1917 की क्रान्ति में, वह बोल्शेविक पार्टी की रीढ़ बन गया।

साम्राज्यवादी युद्ध छिड़ने से पहले, पार्टी ने क्रान्तिकारी कार्यवाहियों में मज़दूर वर्ग का नेतृत्व किया। यह अगली सफ़ों की मुठभेड़ थी, जो साम्राज्यवादी युद्ध से रुक गयी लेकिन तीन साल बाद ही वह फिर शुरू हुई और इस बार उसने ज़ारशाही का खात्मा ही कर डाला। बोल्शेविक पार्टी ने सर्वहारा अंतर्राष्ट्रीयता के झण्डे फहराते हुए साम्राज्यवादी युद्ध के मुश्किल दौर में प्रवेश किया।

छठा अध्याय

साम्राज्यवादी युद्ध में बोल्शेविक पार्टी। रूस में दूसरी क्रान्ति।

(1914–मार्च1917)

1. साम्राज्यवादी युद्ध का आरंभ और उसके कारण।

14 जुलाई (नई शैली, 27 जुलाई) 1914 को, ज़ार सरकार ने आम भर्ती का ऐलान किया। 19 जुलाई (नई शैली, 1 अगस्त) 1914 को, जर्मनी ने रूस के खिलाफ़ लड़ाई का ऐलान किया।

रूस युद्ध में शामिल हो गया।

युद्ध के सचमुच छिड़ने से बहुत पहले, लेनिन और बोल्शेविकों ने देख लिया था कि वह अनिवार्य है। अंतर्राष्ट्रीय समाजवादी कांग्रेसों में, लेनिन ने इस बात के लिये प्रस्ताव रखे थे कि युद्ध होने पर समाजवादियों की एक क्रांतिकारी नीति निश्चित कर ली जाये।

लेनिन ने बताया था कि युद्ध पूंजीवाद का एक अनिवार्य अंग है। दूसरे देशों को लूटना, उपनिवेशों पर कब्जा करना और लूटना–खसोटना और नये बाजारों पर कब्जा करना – ये सभी बातें पूंजीवादी राष्ट्रों के लिये दूसरों को जीतने वाले युद्धों का कारण बन चुकी थीं। पूंजीवादी राष्ट्रों के लिये युद्ध वैसी ही स्वाभाविक और उचित परिस्थिति है जैसी कि **मज़दूर वर्ग का शोषण**।

युद्ध खास तौर से तब अनिवार्य हो गये जब 19 वीं सदी के आखिर में और 20 वीं सदी के शुरू में पूंजीवाद ने निश्चित रूप से अपने विकास की सबसे ऊंची और आखिरी मंजिल, साम्राज्यवाद में प्रवेश किया। सम्राज्यवादी काल में, ताक़तवर पूंजीवादी संघों (मोनोपलियों) और बैंकों ने पूंजीवादी देशों के जीवन में एक प्रभुत्व की जगह बना ली। **महाजनी पूंजी, पूंजीवादी राष्ट्रों** की मालिक बन बैठी। इस महाजनी पूंजी के लिये नये बाज़ार, **नये उपनिवेशों** पर क़ब्जा, बाहर पूंजी भेजने के लिये नये क्षेत्र और कच्चा माल देने वाले नये देश जरूरी थे।

लेकिन 19वीं सदी के आखिर तक, सारी पृथ्वी पूंजीवादी राष्ट्रों में पहले ही बंट चुकी थी। फिर भी, साम्राज्यवादी युग में पूंजीवाद का विकास बहुत ही विषम गति से और छलांगें भर कर होता है : कुछ देश, जो पहले सबसे आगे थे, अब उद्योग–धंधे अपेक्षाकृत धीमी रफ्तार से विकसित करते हैं, दूसरे देश, जो पहले पिछड़े हुए थे, उनके बराबर आ जाते हैं और तेज छलांगें भरते हुए उनसे आगे बढ़ जाते हैं। **साम्राज्यवादी राष्ट्रों** की सापेक्ष आर्थिक और सैनिक शक्ति में परिवर्तन हो रहा था। दुनिया का फिर से बंटवारा करने के लिये कोशिश जारी हुई और फिर से इस बंटवारे के लिये संघर्ष ने साम्राज्यवादी युद्ध अनिवार्य कर दिया। 1914 का युद्ध दुनिया का और प्रभाव–क्षेत्रों का फिर से बंटवारा करने के लिये हुआ था। सभी साम्राज्यवादी राष्ट्र इसके लिये बहुत दिनों से तैयारी कर रहे थे। युद्ध के लिये सभी देशों के साम्राज्यवादी जिम्मेदार थे।

लेकिन खास तौर से, इस युद्ध के लिये एक तरफ़ तो जर्मनी और आस्ट्रिया ने तैयारी की थी और दूसरी तरफ़ फ्रांस और ग्रेट ब्रिटेन और इन दोनों पर निर्भर रूस ने की थी। ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस और रूस के त्रिगुट का सहयोग 1907 में क़ायम हुआ। आस्ट्रिया, हंगरी और इटली ने दूसरा साम्राज्यवादी गुट क़ायम किया था। लेकिन 1914 के युद्ध छिड़ने पर, इटली ने यह गुट छोड़ दिया और बाद को त्रिगुट में शामिल हो गया। बल्गारिया और तुर्की ने जर्मनी और आस्ट्रिया–हंगरी का समर्थन किया।

जर्मनी ने साम्राज्यवादी युद्ध के लिये इस उद्देश्य से तैयारी की थी कि ब्रिटेन और फ्रांस से उनके उपनिवेश और रूस से उक्रैन, पोलैण्ड और बाल्टिक प्रदेश छीन ले। बगदाद रेलवे बना कर, जर्मनी ने निकटपूर्व में ब्रिटेन के प्रभुत्व के लिये खतरा पैदा कर दिया। ब्रिटेन को जर्मन नौसेना की हथियारबन्दी से डर था।

ज़ार सरकार तुर्की का बंटवारा करना चाहती थी और कुस्तुन्तुनियां पर क़ब्जा करने का सपना देखती थी। वह काले सागर से भूमध्य सागर की तरफ़ जाने वाले जलडमरूमध्य (दर्रे दानियाल) पर क़ब्जा जमाने की सोच रही थी। ज़ार सरकार की योजनाओं में आस्ट्रिया–हंगरी के एक हिस्से – गैलिशिया – पर भी क़ब्जा करना शामिल था।

युद्ध के जरिये, ग्रेट ब्रिटेन चाहता था कि अपने खतरनाक प्रतिद्वंदी जर्मनी को कुचल दे। युद्ध के पहले, जर्मनी का माल दुनिया के बाजार से अंग्रेजी माल को लगातार बाहर करता जा रहा था। इसके सिवा, ब्रिटेन तुर्की के मैसोपोटामिया और फ़िलिस्तीन हड़पना चाहता था और मिश्र में मजबूती से पैर जमाना चाहता था।

फ्रांस के पूंजीपति जर्मनी से सार प्रदेश और अलसॉस–लॉरेन छीन लेने की कोशिश में थे। ये दोनों कोयले और लोहे के समृद्ध प्रदेश थे, जिनमें से दूसरे को जर्मनी ने 1870–'71 की लड़ाई में फ्रांस से छीन लिया था। इस तरह, साम्राज्यवादी युद्ध पूंजीवादी राष्ट्रों के दो दलों के बीच के गंभीर विरोधों से पैदा हुआ।

दुनिया का फिर से बंटवारा करने के लिये, इस लूट–मार की लड़ाई का असर सभी साम्राज्यवादी देशों के हितों पर पड़ा। नतीजा यह हुआ कि जापान, संयुक्त राष्ट्र अमरीका और दूसरे कई देश भी आगे चल कर उसमें शामिल हो गये।

युद्ध विश्वयुद्ध बन गया।

पूंजीपतियों ने साम्राज्यवादी युद्ध की तैयारियों को अपने देशों की जनता से खूब छिपा कर रखा। जब लड़ाई छिड़ गयी, तब हर साम्राज्यवादी हुकूमत ने यह साबित करने की कोशिश की कि उसने अपने पड़ोसियों पर हमला नहीं किया बल्कि उन्होंने ही उस पर किया था। पूंजीपतियों ने युद्ध के सच्चे उद्देश्य और उसके साम्राज्यवादी, राज्य हड़पने वाले रूप को छिपा कर जनता को धोखा दिया। हर साम्राज्यवादी हुकूमत ने ऐलान किया कि वह अपने देश की रक्षा के लिये युद्ध कर रही है।

जनता को धोखा देने में, दूसरी इन्टरनेशनल के अवसरवादियों ने पूंजीपतियों की मदद की। दूसरी इन्टरनेशनल के सोशल–डेमोक्रेटों ने समाजवाद के उद्देश्य से नीचतापूर्ण ग़द्दारी की, सर्वहारा वर्ग के अंतर्राष्ट्रीय भाईचारे के पक्ष से ग़द्दारी की। युद्ध का विरोध करना तो दरकिनार, वे लड़ाकू देशों के मजदूरों और किसानों को पितृभूमि की रक्षा के नाम पर एक–दूसरे के खिलाफ़ लड़ने के लिये उकसाने में पूंजीपतियों की मदद करते रहे।

रूस मित्र राष्ट्रों के त्रिगुट की तरफ़ से, फ्रांस और ग्रेट ब्रिटेन की तरफ़ से युद्ध में शामिल हुआ। यह कोई आकस्मिक बात नहीं थी। यह ध्यान रखना चाहिये कि 1914 के पहले रूसी उद्योग–धंधों की सबसे महत्वपूर्ण शाखायें विदेशी पूंजीपतियों के हाथ में थीं। खास तौर से फ्रांस, ग्रेट ब्रिटेन और बेल्जियम, यानी मित्र देशों के हाथ में थीं। रूस के सबसे महत्वपूर्ण धातु के कारखाने फ्रांस के पूंजीपतियों के हाथ में थे। कुल मिलाकर, लगभग तीन–चौथाई (72 फ़ीसदी) धातु के उद्योग–धंधे विदेशी पूंजी

पर निर्भर थे। यही बात दोन्येत्स प्रदेश के कोयले के उद्योग धंधों के बारे में भी सच थी। अंग्रेजी और फ्रांसीसी पूंजी के पास जो तेल के स्रोत थे, उनसे देश की लगभग आधी तेल की पैदावार होती थी। रूसी उद्योग–धंधों से मुनाफ़ों का काफ़ी हिस्सा विदेशी बैंकों में, मुख्य रूप से अंग्रेजी और फ्रांसीसी बैंकों में चला जाता था। इन सब कारणों से, और इनके सिवा ज़ार ने फ्रांस और ब्रिटेन से जो लाखों और करोड़ों रुपये उधार लिये थे उससे, ज़ारशाही ब्रिटिश और फ्रांसीसी साम्राज्यवाद से बंधी हुई थी और रूस इन देशों को खिराज देने वाला, अर्द्ध–उपनिवेश बन गया था।

रूसी पूंजीपति अपनी दशा सुधारने के ख़्याल से युद्ध में शामिल हुए थे। वे चाहते थे कि नये बाज़ारों पर क़ब्जा करें, लड़ाई के ठेकों से भारी मुनाफ़ा कमायें और साथ ही युद्ध परिस्थिति से ज़्यादा फ़ायदा उठा कर क्रांतिकारी आन्दोलन को कुचल दें।

ज़ारशाही रूस युद्ध के लिये तैयार न था। रूस के उद्योग–धंधें दूसरे पूंजीवादी देशों के मुकाबिले में बहुत पीछे थे। उद्योग–धंधों में मुख्यतः पुरानी पड़ चुकी मिलें और घिसी–पिटी मशीनों के कारखाने थे। अर्द्ध–भूदास प्रथा पर निर्भर जमीन की मिल्कियत की वजह से और ग़रीब और तबाह किसानों की भारी तादाद की वजह से, रूस की खेती लम्बी चलने वाली लड़ाई के लिये एक पक्का आर्थिक आधार न जुटा सकती थी।

ज़ार के मुख्य स्तम्भ सामन्ती जमींदार थे। बड़े पूंजीपतियों से मिलकर यमराज सभा वाले बड़े जमींदार देश और राज्य दूमा पर हावी थे। वे पूरी तरह ज़ार सरकार की घरेलू और विदेशी नीति का समर्थन करते थे। रूस के साम्राज्यवादी पूंजीपतियों ने अपनी उम्मीदें निरंकुश ज़ारशाही से बांध रखी थीं वे समझते थे कि ज़ारशाही ऐसा फौलादी घूंसा है जो निश्चय ही एक तरफ़ तो नये बाज़ार और नये प्रदेश जीतेगा और दूसरी तरफ़ मजदूरों और किसानों के क्रांतिकारी आन्दोलन को कुचल देगा।

उदारपंथी पूंजीपतियों की पार्टी–कॉन्स्टीट्यूशनल डेमोक्रेटिक पार्टी – ने विरोध का दिखावा किया, लेकिन बिना किसी शर्त के उसने ज़ार सरकार की विदेशी नीति का समर्थन किया।

लड़ाई के आरम्भ से ही, निम्नपूंजीवादी पार्टियों ने – समाजवादी क्रांतिकारियों और मेन्शेविकों ने – समाजवाद के झंडे को पर्दे की तरह इस्तेमाल करके युद्ध के साम्राज्यवादी लुटेरे रूप को छिपा कर, जनता को धोखा देने में पूंजीपतियों की मदद की। वे इस बात का प्रचार करते थे कि 'जर्मन बर्बरों' से पूंजीपतियों की 'पितृभूमि'

की रक्षा करना, उसे बचाना जरूरी है। वे 'घरेलू शांति' की नीति का समर्थन करते थे और इस तरह युद्ध चलाने में रूसी ज़ार की हुकूमत को सहायता देते थे, ठीक जैसे कि जर्मन सोशल–डेमोक्रेटों ने जर्मन क़ैसर की हुकूमत को 'रूसी बर्बरों' के खिलाफ़ लड़ाई चलाने में सहायता दी थी।

एक बोल्शेविक पार्टी ही क्रांतिकारी अंतर्राष्ट्रीयता के महान उद्देश्य के प्रति वफ़ादार रही। वह निरंकुश ज़ारशाही के खिलाफ, जमींदारों और पूंजीपतियों के खिलाफ़, साम्राज्यवादी युद्ध के खिलाफ़ जम कर लड़ने की मार्क्सवादी नीति पर दृढ़ता से चलती रही। युद्ध के आरंभ से ही, बोल्शेविक पार्टी कहती रही थी कि युद्ध इसलिये नहीं छेड़ा गया है कि देश की रक्षा की जाये बल्कि इसलिये कि दूसरे देशों का राज्य हड़प लिया जाये, जमींदारों और पूंजीपतियों के हितों में विदेशी जातियों को लूटा जाये। बोल्शेविक पार्टी का कहना था कि इस युद्ध के खिलाफ़ मज़दूरों को जम कर युद्ध करना चाहिये।

मजदूर वर्ग बोल्शेविक पार्टी का समर्थन करता था।

यह सही है कि युद्ध के शुरू में बुद्धिजीवियों और किसानों के कुलक हिस्सों ने जो पूंजीवादी अंधराष्ट्रवाद दिखलाया, उसका असर मजदूरों के एक हिस्से पर भी पड़ा। लेकिन, ये ज्यादातर गुंडा 'रूसी जनसंघ' के सदस्य थे और कुछ ऐसे मजदूर थे जो समाजवादी क्रान्तिकारियों और मेन्शेविकों के असर में थे। यह स्वाभाविक था कि वे मजदूर वर्ग की भावना को ज़ाहिर न करते थे, और न कर सकते थे। युद्ध के शुरू के दिनों में, ज़ार सरकार ने जो प्रदर्शन कराये थे, पूंजीपतियों के उन अंधराष्ट्रवादी प्रदर्शनों में इन्हीं लोगों ने हिस्सा लिया।

2. दूसरी इन्टरनेशनल की पार्टियां अपनी साम्राज्यवादी हुकूमतों का साथ देती हैं। दूसरी इन्टरनेशनल टूट कर अलग–अलग अंधराष्ट्रवादी पार्टियों में बंट जाती है।

लेनिन ने समय–समय पर दूसरी इन्टरनेशनल के अवसरवाद और उसके नेताओं के ढुलमुलपन के बारे में चेतावनी दी थी। उन्होंने हमेशा इस बात पर ज़ोर दिया था कि दूसरी इन्टरनेशनल के नेता युद्ध का विरोध करने की सिर्फ़ बातें करते हैं और अगर लड़ाई हो तो वे अपना रुख बदल देंगे, साम्राज्यवादी पूंजीपतियों से जा मिलेंगे और युद्ध के समर्थक बन जायेंगे। लेनिन ने, यह जो पहले ही कहा था, वह युद्ध की शुरूआत में ही ज़ाहिर हो गया।

1910 में दूसरी इन्टरनेशनल की कोपेनहागन कांग्रेस में यह फ़ैसला किया गया कि पार्लियामेंट में सोशलिस्टों को युद्ध–कर्जों के खिलाफ़ वोट देना चाहिये। 1912 में बल्कान युद्ध के समय, दूसरी इन्टरनेशनल की बासले विश्व कांग्रेस ने ऐलान किया था कि सभी देशों के मजदूर इसे पाप समझते हैं कि पूंजीपतियों के मुनाफों के लिये एक–दूसरे पर गोली चलायें। यही उन्होंने कहा था, इसी की अपने प्रस्तावों में घोषणा की थी।

लेकिन जब तूफ़ान फट पड़ा जब साम्राज्यवादी युद्ध शुरू हो गया और इन प्रस्तावों की अमल में लाने का वक्त आ गया, तब दूसरी इन्टरनेशनल के नेता ग़द्दार साबित हुए, सर्वहारा वर्ग से दगा करने वाले और पूंजीपतियों के चाकर साबित हुए। वे युद्ध के समर्थक बन गये।

4 अगस्त 1914 को, पार्लियामेंट में जर्मन सोशल–डेमोक्रेटों ने युद्ध कर्जों के पक्ष में वोट दिया। उन्होंने साम्राज्यवादी युद्ध के समर्थन के लिये वोट दिया। इसी तरह, फ्रांस, ग्रेट ब्रिटेन, बेल्जियम और दूसरे देशों के सोशलिस्टों ने भारी बहुमत से ऐसा ही किया।

दूसरी इन्टरनेशनल की जिन्दगी खत्म हो गयी। दरअसल, वह अलग–अलग एक–दूसरे के खिलाफ़ लड़ने लगे, अंधराष्ट्रवादी पार्टियों में बंट गये।

सोशलिस्ट पार्टियों के नेताओं ने सर्वहारा वर्ग से गद्दारी की, अंधराष्ट्रवादी दृष्टिकोण अपनाया। उन्होंने साम्राज्यवादी पूंजीपतियों का समर्थन करना शुरू किया। उन्होंने साम्राज्यवादी हुकूमतों की मदद की कि वे मजदूर वर्ग की आंखों में धूल झोंकें और उसमें राष्ट्रवाद का ज़हर फैलायें। पितृभूमि की रक्षा का बहाना बना कर, इन सामाजिक ग़द्दारों ने जर्मन मजदूरों को फ्रांसीसी मजदूरों के खिलाफ़ और अंग्रेज और फ्रांसीसी मजदूरों को जर्मन मजदूरों के खिलाफ़ भड़काना शुरू किया। दूसरी इन्टरनेशनल में सिर्फ़ एक नगण्य अल्पसंख्या ऐसे लोगों की थी जो अंतर्राष्ट्रीयता का दृष्टिकोण अपनाये रहे और हवा के रुख के खिलाफ़ चले। यह सच है कि बहुत विश्वास और निश्चय से उन्होंने ऐसा नहीं किया, फिर भी हवा के खिलाफ़ वे चले जरूर।

सिर्फ बोल्शेविक पार्टी ने बिना **किसी दुविधा** के और तुरंत ही साम्राज्यवादी युद्ध के खिलाफ़ जम कर लड़ने का झंडा ऊंचा किया। 1914 की शरद, में लेनिन ने युद्ध पर जो थीसिस (सैद्धांतिक निबन्ध) लिखी, उसमें उन्होंने बतलाया कि दूसरी इन्टरनेशनल का पतन आकस्मिक नहीं था। अवसरवादियों ने दूसरी इन्टरनेशनल को तबाह कर

दिया था, जिन अवसरवादियों के खिलाफ़ क्रांतिकारी मजदूरों के प्रमुख प्रतिनिधि बहुत दिनों से चेतावनी दे रहे थे।

युद्ध से पहले ही, अवसरवाद दूसरी इन्टरनेशनल की पार्टियों में घर कर गया था। अवसरवादियों ने खुल्लमखुल्ला प्रचार किया था कि क्रान्तिकारी संघर्ष छोड़ दिया जाये। उन्होंने इस सिद्धांत का प्रचार किया था कि 'शान्तिमय तरीके से, पूंजीवाद बढ़ कर समाजवाद हो जायेगा।' दूसरी इन्टरनेशनल अवसरवाद का मुकाबिला न करना चाहती थी। वह उससे सुलह करके रहना चाहती थी और उसने उसे जड़ें जमाने का मौक़ा दिया। अवसरवाद के प्रति मेल–मिलाप की नीति पर चलते हुए, दूसरी इन्टरनेशनल खुद अवसरवादी हो गयी।

साम्राज्यवादी पूंजीपतियों ने कौशल जानने वाले मजदूरों के ऊपरी स्तर को बाक़ायदा घूस दी थी। इन्हें 'लेबर एरिस्टॉक्रैसी' (मजदूर नवाब) कहा जाता था। ज्यादा तनखाहें देकर या ऐसे ही दूसरे टुकड़े फेंक कर, उन्हें घूस दी जाती थी। उपनिवेशों से, पिछड़े हुए देशों के शोषण से जो मुनाफ़ा आता था, उसका एक हिस्सा इसी के लिये इस्तेमाल किया जाता था। मजदूरों के इस हिस्से ने काफ़ी ट्रेड यूनियन और सहयोग–सभाओं के नेता पैदा किये थे, म्यूनिसिपल और पार्लियामेंटरी संस्थाओं के सदस्य, सोशल–डेमोक्रैटिक संगठनों के पत्रकार और कार्यकर्ता पैदा किये थे। जब युद्ध छिड़ा, तो इस डर से कि उनकी जगहें न छिन जाये, वे क्रान्ति के दुश्मन बन गये और अपने ही पूंजीपतियों के, अपनी ही साम्राज्यवादी हुकूमतों के बहुत जोशीले समर्थक बन गये।

अवसरवादी अंधराष्ट्रवादी बन गये।

अंधराष्ट्रवादी और उनमें शामिल होने वाले रूसी मेन्शेविक और समाजवादी क्रान्तिकारी अपने देश में मजदूरों और पूंजीपतियों में **वर्ग–शान्ति** बनाये रखने और विदेश के राष्ट्रों से युद्ध करने का प्रचार करते थे। वे आम जनता से यह छिपाते थे कि दरअसल युद्ध के लिये कौन जिम्मेदार है और कहते थे कि उनके अपने देश के पूंजीपतियों का दोष नहीं है। इस तरह, वे जनता को धोखा देते थे। बहुत से अंधराष्ट्रवादी अपने देशों की साम्राज्यवादी हुकूमतों के मंत्री बन गये।

मजदूर पक्ष के लिये छिपे हुए अंधराष्ट्रवादी, तथाकथित केन्द्रवादी कम खतरनाक नहीं थे। कॉटस्की, त्रात्स्की, मारतोव आदि केन्द्रवादी खुले अंधराष्ट्रवादियों को सही बताते थे और उनका समर्थन करते थे। इस तरह, मजदूरों से दगा करने में वे अंधराष्ट्रवादियों का साथ देते थे। युद्ध का मुकाबिला करने के बारे में 'वामपंथी' लफ्फ़ाजी करके, वे

अपनी ग़द्दारी छिपाते थे। इस लफ्फ़ाजी का उद्देश्य मजदूर वर्ग को धोखा देना था। असलियत यह थी कि केन्द्रवादी युद्ध का समर्थन करते थे। उनका यह प्रस्ताव कि युद्ध–कर्जों के खिलाफ वोट न दिया जाये बल्कि जब वोट लिये जा रहे हों तब तटस्थ रहा जाये, युद्ध का समर्थन करना ही था। अंधराष्ट्रवादियों की तरह, वे यह मांग करते थे कि युद्ध के दौर में वर्ग–संघर्ष छोड़ दिया जाये जिससे कि उनकी अपनी साम्राज्यवादी हुकूमत को लड़ाई चलाने में अड़चन का सामना न करना पड़े। केन्द्रवादी त्रात्स्की युद्ध और समाजवाद के सभी महत्वपूर्ण सवालों पर लेनिन और बोल्शेविकों का विरोध करता था।

युद्ध छिड़ते ही, लेनिन एक नयी इन्टरनेशनल – तीसरी इन्टरनेशनल – बनाने के लिये शक्तियों को बटोरने लगे। नवम्बर 1914 में, बोल्शेविक पार्टी की केन्द्रीय समिति ने युद्ध के खिलाफ़ जो घोषणापत्र निकाला था, उसी में उसने बुरी तरह दिवालिया हो चुकी दूसरी इन्टनरनेशनल की जगह तीसरी इन्टरनेशनल बनाने का बुलावा दिया।

फ़रवरी 1915 में, मित्र–देशों के समाजवादियों का सम्मेलन लन्दन में हुआ। लेनिन के निर्देश के अनुसार, इस सम्मेलन में कॉमरेड लितविनोव बोले। उन्होंने मांग की कि समाजवादी (वाण्डेरवेल्डे, सेम्बा और ग्वैसदे) बेल्जियम और फ्रांस की पूंजीवादी हुकूमतों से इस्तीफा दे दें, साम्राज्यवादियों से पूरी तरह नाता तोड़ लें और उनके साथ काम करने से इन्कार कर दें। उन्होंने मांग की कि समाजवादी अपनी साम्राज्यवादी हुकूमतों के खिलाफ, जम कर लड़ाई करें और युद्ध–कर्जों पर वोट देने की निन्दा करें। लेकिन, इस सम्मेलन में लितविनोव के समर्थन में एक भी आवाज न उठी।

सितम्बर 1915 के आरम्भ में, अंतर्राष्ट्रीयतावादियों का पहला सम्मेलन जिमिरवाल्ड में हुआ। लेनिन ने इस सम्मेलन को युद्ध के खिलाफ़ अंतर्राष्ट्रीय आन्दोलन के विकास में 'पहला कदम' कहा। इस सम्मेलन में, लेनिन ने जिमिरवाल्ड वामपंथी गुट बनाया। लेकिन, जिमिरवाल्ड वामपंथी गुट में लेनिन के नेतृत्व में सिर्फ बोल्शेविक पार्टी ने युद्ध के खिलाफ़ सही और पूरी तरह से संगत रूख अपनाया। जिमिरवाल्ड वामपंथी गुट ***फ़ोरबोटे(अग्रदूत)*** नाम की पत्रिका जर्मन में प्रकाशित करता था। लेनिन उसे लेख भेजते थे।

1916 में, अंतर्राष्ट्रीयतावादी स्विटजरलैंड के कियेन्थाल नाम के गांव में दूसरा सम्मेलन बुलाने में सफल हुए। इसे दूसरा जिमिरवाल्ड सम्मेलन कहा जाता है। इस वक्त तक, लगभग हर देश में अंतर्राष्ट्रीयतावादी गुट बन चुके थे और अंधराष्ट्रवादियों और अंतर्राष्ट्रीयतावादियों का भेद और ज्यादा स्पष्ट हो गया था। लेकिन, सबसे ज्यादा महत्व की बात यह थी कि युद्ध और उसके साथ की मुसीबतों के असर से खुद आम

जनता वामपक्ष की तरफ आयी थी। कियेन्थाल सम्मेलन ने जो घोषणापत्र बनाया, वह विभिन्न विरोधी गुटों के समझौते का परिणाम था। जिमिरवाल्ड घोषणापत्र के मुकाबिले में, यह आगे बढ़ा हुआ कदम था।

जिमिरवाल्ड सम्मेलन की तरह, कियेन्थाल सम्मेलन बोल्शेविक पार्टी के बुनियादी उसूलों को न मानता था, यानी साम्राज्यवादी युद्ध को गृह–युद्ध में बदलना, युद्ध में खुद अपनी साम्राज्यवादी हुकूमत को हराना और तीसरी इन्टरनेशनल बनाना। फिर भी, कियेन्थाल सम्मेलन ने अंतर्राष्ट्रीयतावादी तत्वों को निखारने में मदद की, जिनसे आगे चल कर कम्युनिस्ट तीसरी इन्टरनेशनल बनी।

लेनिन ने वामपंथी सोशल–डेमोक्रेटों में रोजा लुक्जेम्बुर्ग और कार्ल लीबक्नेख्त जैसे असंगत अंतर्राष्ट्रीयतावादियों की ग़लतियों की आलोचना की। साथ ही, लेनिन ने उन्हें सही दृष्टिकोण अपनाने में मदद भी दी।

3. युद्ध, शान्ति और क्रांति के सवालों पर बोल्शेविक पार्टी के सिद्धांत और उसकी कार्यनीति।

बोल्शेविक युद्ध शान्तिवादी नहीं थे, जो शान्ति के लिये आहें भरते और शान्ति का प्रचार ही करके रह जाते जैसा कि ज्यादातर वामपंथी सोशल–डेमोक्रेट किया करते थे। बोल्शेविक इस बात का प्रचार करते थे कि शान्ति के लिये सक्रिय क्रांतिकारी संघर्ष किया जाये और इस हद तक किया जाये कि युद्ध–प्रेमी साम्राज्यवादी पूंजीपतियों के शासन का तख्ता उलट दिया जाये। बोल्शेविकों ने शान्ति पक्ष को सर्वहारा शान्ति के विजय पक्ष से जोड़ा। उनका कहना था कि युद्ध को खत्म करने और न्यायपूर्ण शान्ति, ऐसी शान्ति जिसमें दूसरों का राज्य हड़पना और हर्जाने लेना न हो, हासिल करने का सबसे अच्छा तरीका साम्राज्यवादी पूजीपतियों के शासन का तख्ता उलटना है।

मेन्शेविक और समाजवादी क्रांतिकारी क्रांति का साथ छोड़ चुके थे और युद्ध के दौर में 'घरेलू शान्ति' कायम रखने का ग़द्दाराना नारा देते थे इनके खिलाफ, बोल्शेविक यह नारा देते थे : **'साम्राज्यवादी युद्ध को गृह–युद्ध में बदल दो।'** इस नारों का मतलब था कि मेहनतकश जनता, जिसमें फौजी वर्दी पहने हुए हथियारबन्द मजदूर और किसान शामिल थे, अपने हथियार अपने ही पूंजीपतियों की तरफ मोड़ दें और अगर वह युद्ध का खात्मा करना चाहती थी और न्यायपूर्ण शान्ति हासिल करना चाहती थी तो अपने ही पूंजीपतियों का राज्य खत्म कर दे।

मेन्शेविक और समाजवादी क्रांतिकारी इस नीति पर चल रहे थे कि पूंजीवादी पितृभूमि की रक्षा की जाये। इस नीति के खिलाफ, बोल्शेविकों ने यह नीति रखी कि **'साम्राज्यवादी युद्ध में अपनी ही सरकार को हराओ।'** इसका अर्थ यह था कि युद्ध–क़र्जों के खिलाफ़ वोट दो, फ़ौज के अन्दर ग़ैरकानूनी क्रांतिकारी संगठन बनाओ, मोर्चे पर सैनिकों के भाईचारे का समर्थन करो; युद्ध के खिलाफ मजदूरों और किसानों की क्रांतिकारी कार्यवाही का संगठन करो और इस कार्यवाही को अपनी ही साम्राज्यवादी हुकूमत के खिलाफ़ विद्रोह में बदल दो।

बोल्शेविकों का कहना था कि साम्राज्यवादी युद्ध में ज़ार सरकार की फ़ौजी हार जनता के लिये कम संकट की बात होगी। कारण यह कि इससे ज़ारशाही के खिलाफ़ जनता की विजय हासिल करने में आसानी होगी और पूंजीवादी गुलामी और साम्राज्यवादी युद्ध से मुक्ति के लिये मजदूर वर्ग का संघर्ष सफ़ल हो सकेगा। लेनिन का कहना था कि अपनी ही साम्राज्यवादी हुकूमत को हराने की मजदूर वर्ग की नीति पर रूसी क्रांतिकारियों को ही नहीं चलना चाहिये, बल्कि युद्ध करने वाले सभी देशों के मजदूर वर्ग की क्रांतिकारी पार्टियों को इसी नीति पर चलना चाहिये।

बोल्शेविक **हर किसी तरह** के युद्ध का विरोध न करते थे। वे सिर्फ़ दूसरे देशों को जीतने के लिये किये गये युद्धों का, साम्राज्यवादी युद्धों का विरोध करते थे। बोल्शेविकों का कहना था कि युद्ध दो तरह के होते हैं :

क) **न्यायपूर्ण** युद्ध, ऐसे युद्ध जो दूसरे देशों को जीतने के लिये नहीं बल्कि स्वाधीनता के युद्ध हैं, जो विदेशी हमले से या गुलाम बनाने की कोशिश से जनता की रक्षा करने के लिये या पूंजीवादी गुलामी से जनता को मुक्त करने के लिये या अंत में साम्राज्यवादी जुंए से उपनिवेशों और पराधीन देशों को आज़ाद करने के लिये होते हैं; और,

(ख) **अन्यायपूर्ण** युद्ध, दूसरे देशों को जीतने के लिये युद्ध, जो दूसरे देशों और दूसरी जातियों को जीतने और उन्हें गुलाम बनाने के लिये किये जाते हैं।

बोल्शेविक पहली तरह के युद्धों का समर्थन करते थे। जहां तक दूसरी तरह के युद्धों का सवाल था, बोल्शेविकों का कहना था कि उनके खिलाफ़ जम कर संघर्ष करना चाहिये, इस हद तक कि क्रांति हो जाये और अपनी ही साम्राज्यवादी हुकूमत का तख्ता उलट दिया जाये।

दुनिया के मजदूर वर्ग के लिये युद्ध के दौर में लेनिन का सिद्धांत सम्बन्धी काम बहुत महत्वपूर्ण था। 1916 के बसन्त में, लेनिन ने ***साम्राज्यवाद : पूंजीवाद की सबसे ऊंची मंजिल*** नाम की पुस्तक लिखी। इस किताब में, उन्होंने दिखलाया कि

साम्राज्यवाद पूंजीवाद की सबसे ऊंची मंजिल है, ऐसी मंजिल जब वह 'प्रगतिशील' पूंजीवाद से जांगरचोर पूंजीवाद, पतनशील पूंजीवाद में बदल चुका होता है, और यह कि साम्राज्यवाद गतिरुद्ध पूंजीवाद है। अवश्य ही इसका यह मतलब न था कि पूंजीवाद अपने–आप ही मजदूरों की क्रांति के बिना खत्म हो जायेगा, कि वह अपने डंठल पर खुद ही सड़ जायेगा। लेनिन हमेशा यही सिखाते थे कि मजदूर वर्ग की क्रांति के बिना पूंजीवाद का खात्मा नहीं हो सकता। इसलिये, साम्राज्यवाद की यह व्याख्या करते हुए कि वह गतिरुद्ध पूंजीवाद है, लेनिन ने साथ ही यह भी दिखाया कि "साम्राज्यवाद सर्वहारा की सामाजिक क्रांति का पूर्वकाल है"।

लेनिन ने दिखाया कि साम्राज्यवाद के युग में पूंजीवादी जुंआ और भी भारी होता जाता है। साम्राज्यवाद के दौर में, मजदूरों का विद्रोह पूंजीवाद की बुनियादों के खिलाफ़ ही बढ़ता जाता है। पूंजीवादी देशों में क्रांतिकारी विस्फोट के तत्व इकट्ठे होते जाते हैं।

लेनिन ने दिखाया कि साम्राज्यवाद के युग में उपनिवेशों और पराधीन देशों में क्रांतिकारी संकट और तेज हो जाता है, साम्राज्यवाद के खिलाफ़ विद्रोह के तत्व, साम्राज्यवाद के खिलाफ़ मुक्ति–संग्राम के तत्व इकट्ठे हो जाते हैं।

लेनिन ने दिखाया कि साम्राज्यवाद के दौर में पूंजीवाद के विकास की विषमता और उसकी असंगतियां खास तौर से तेज हो गयी हैं। बाज़ारों के लिये और बाहर पूंजी भेजने के क्षेत्रों के लिये संघर्ष से, उपनिवेशों के लिये, कच्चे माल के स्रोत के लिये संघर्ष से समय–समय पर दुनिया का फिर से बंटवारा करने के लिये साम्राज्यवादी युद्ध लाजिमी हो जाते हैं।

लेनिन ने दिखाया कि पूंजीवाद के विकास की विषमता ही साम्राज्यवादी युद्धों का कारण है। ये साम्राज्यवादी युद्ध साम्राज्यवाद की जड़ कमजोर कर देते हैं और यह संभव बनाते हैं कि साम्राज्यवाद जहां सबसे कमज़ोर हो, वहां उसका मोर्चा तोड़ दिया जाये।

इस सब से, लेनिन ने नतीजा निकाला था कि मजदूरों के लिये यह बिल्कुल संभव है कि वे साम्राज्यवादी मोर्चे को एक या कई जगह तोड़ दें, कि समाजवाद की जीत पहले कई देशों में या अकेले एक देश में भी **संभव** है, कि सभी देशों में एक ही साथ समाजवाद की जीत पूंजीवादी विकास की विषमता की वजह से **असंभव** है और समाजवाद पहले एक देश में या कई देशों में विजयी होगा जबकि दूसरे देश कुछ दिन तक और पूंजीवादी बने रहेंगे।

यह परिणाम, जो एक प्रतिभा की देन थी, साम्राज्यवादी युद्ध के दौर में लेनिन के लिखे हुए दो लेखों में इस तरह प्रकट किया गया था :

(1) "विषम आर्थिक और राजनीतिक विकास पूंजीवाद का अटूट नियम है। इसीलिये, समाजवाद की विजय कई पूंजीवादी देशों या अकेले एक पूंजीवादी देश में भी संभव है। उस देश का विजयी मजदूर वर्ग पूंजीपतियों की सम्पत्ति जब्त करके और अपनी समाजवादी पैदावार संगठित करके बाकी दुनिया, पूंजीवादी दुनिया के **खिलाफ़** खड़ा होगा और अपने पक्ष की तरफ़ दूसरे देशों के पीड़ित वर्गों को खींचेगा ...।" (अगस्त 1915 में लिखे हुए लेख "संयुक्त राष्ट्र यूरोप का नारा", लेनिन, ***सं•ग्रं•***, अं•सं•, मास्को, 1947, खण्ड 1, पृष्ठ 619)

(2) "पूंजीवाद का विकास विभिन्न देशों में बहुत ही विषम गति से होता है। बिकाऊ माल की पैदावार की व्यवस्था में, इसके अलावा दूसरी चीज नहीं हो सकती। इससे यह अकाट्य नतीजा निकलता है कि **सभी** देशों में समाजवाद की एक ही साथ विजय नहीं हो सकती। उसकी विजय पहले एक या कई देशों में होगी, जबकि दूसरे देश कुछ समय के लिये पूंजीवादी या उससे भी पहले की व्यवस्था में रहेंगे। इससे टक्कर ही न पैदा होगी बल्कि दूसरे देशों के पूंजीपति सीधे–सीधे कोशिश करेंगे कि समाजवादी राज्य के विजयी मजदूरों को कुचल दें। ऐसी हालत में, हमारी तरफ से युद्ध वैध और न्यायपूर्ण होगा। यह युद्ध समाजवाद के लिये होगा, दूसरी जातियों को पूंजीपतियों से मुक्त करने के लिये होगा।" (1916 की शरद् में लिखे हुए 'सर्वहारा क्रांति का युद्ध–कार्यक्रम" नाम के लेख से, लेनिन, ***सं•ग्र•***, रू•सं•, खं• 19 पृष्ठ 325)।

समाजवादी क्रांति का यह एक **नया** और पूर्ण सिद्धांत था। यह सिद्धांत इस संभावना को पुष्ट करता था कि अलग–अलग देशों में समाजवाद की विजय हो सकती है और वह इस विजय और उनकी संभावनाओं के लिये आवश्यक परिस्थितियां बतलाता था। इस सिद्धांत की नींव लेनिन ने 1905 में ही ***जनवादी क्रांति में सोशल–डेमोक्रेसी की दो कार्यनीतियां*** में रख दी थी।

यह सिद्धांत **साम्राज्यवाद से पूर्व** के पूंजीवाद के दौर में मार्क्सवादियों में प्रचलित मत से मूलतः भिन्न था। उस समय, मार्क्सवादियों का कहना था कि अलग एक देश में समाजवाद की विजय होना असंभव है और वह एक ही साथ सभी सभ्य देशों में होगी। अपनी अपूर्व पुस्तक ***साम्राज्यवाद : पूंजीवाद की सबसे ऊंची मंजिल*** में **साम्राज्यवादी** पूंजीवाद के सिलसिले में दिए हुए तथ्यों के आधार पर लेनिन ने इस मत को पुराना पड़ चुका दिखा कर हटा दिया, उसकी जगह उन्होंने एक नया सिद्धांत रखा जिससे

यह नतीजा निकलता था कि सभी देशों में समाजवाद की एक साथ ही विजय **असंभव** थी जबकि अकेले एक पूंजीवादी देश में समाजवाद की विजय संभव थी।

समाजवादी क्रांति के बारे में लेनिन के सिद्धांत का अमूल्य महत्व इसी बात में नहीं है कि उसने मार्क्सवाद को एक नये सिद्धांत से समृद्ध किया है और मार्क्सवाद को आगे बढ़ाया है बल्कि इस बात में भी है कि उसने अलग–अलग देशों के मजदूरों के लिये एक क्रांतिकारी रास्ता दिखलाया है, कि उसने खुद उन्हीं के राष्ट्रीय पूंजीपतियों पर हमला करने के लिये उनकी पहलकदमी को छूट दे दी है, कि वह युद्ध की हालत से फ़ायदा उठा कर उन्हें इस हमले का संगठन करना सिखलाती है और सर्वहारा क्रांति की विजय में उनके विश्वास को दृढ़ करती है।

युद्ध, शांति और क्रांति के सवालों पर, बोल्शेविकों का सिद्धांत और कार्यनीति सम्बन्धी दृष्टिकोण यही है।

इसी दृष्टिकोण के आधार पर बोल्शेविकों ने रूस में अपना अमली काम चलाया।

युद्ध के आरंभ में, पुलिस के घोर दमन के बावजूद, दूमा के बोल्शेविक सदस्यों – बादायेव, पेत्रोव्स्की, मोरानोव, समोइलोव और शागोव – ने कई संगठनों में जाकर युद्ध और क्रांति के बारे में बोल्शेविकों की नीति पर भाषण दिये। नवम्बर 1914 में, युद्ध के बारे में नीति पर विचार करने के लिये राज्य दूमा के बोल्शेविक गुट का एक सम्मेलन हुआ। सम्मेलन के तीसरे दिन वहां जितने भी लोग मौजूद थे, गिरफ्तार कर लिये गये। अदालत ने बोल्शेविक सदस्यों को यह सज़ा दी कि उनके नागरिक अधिकार छीन लिये जायें और उन्हें पूर्वी साइबेरिया में निर्वासित किया जाये। ज़ार सरकार ने उन पर 'राज–द्रोह' का आरोप लगाया।

अदालत में दूमा के सदस्यों की कार्यवाही की जो तसवीर सामने आयी, उससे पार्टी का गौरव बढ़ा। बोल्शेविक प्रतिनिधियों ने मर्दानगी का व्यवहार किया और ज़ार की अदालत को उन्होंने ऐसा मंच बना दिया जंहा से उन्होंने दूसरे देशों को हड़पने की ज़ारशाही नीति का पर्दाफ़ाश किया।

कामेनेव का व्यवहार इससे बिल्कुल भिन्न था। इस मुकदमें में वह भी था। खतरे के सामने आते ही, कायरता की वजह से उसने बोल्शेविक पार्टी की नीति को तिलांजलि दे दी। कामेनेव ने अदालत में ऐलान किया कि युद्ध के सवाल पर वह बोल्शेविकों से सहमत नहीं है और यह साबित करने के लिये, उसने प्रार्थना की कि मेन्शेविक जोरदात्स्की को गवाह के तौर पर बुलाया जाये।

लड़ाई की जरूरतें पूरी करने के लिये, युद्ध–उद्योग–समितियां कायम की गयी थीं। बोल्शेविकों ने इनके खिलाफ़ बहुत कारगर तरीके से काम किया। उन्होंने साम्राज्यवादी पूंजीपतियों के असर में मजदूरों को लाने के लिये मेन्शेविकों की कोशिशों का भी बहुत कारगर तरीक़े से विरोध किया। पूंजीपतियों को इस बात से बेहद दिलचस्पी थी कि हर आदमी को यह विश्वास दिलाया जाये कि साम्राज्यवादी युद्ध जनता का युद्ध है। लड़ाई के दौर में, पूंजीपति राज्य के कामों में काफ़ी प्रभाव जमाने में सफल हुए। उन्होने अपना एक देशव्यापी संगठन क़ायम किया, जिसका नाम था – जेम्स्त्वो और शहरों के संघ। पूंजीपतियों के लिये जरूरी था कि मजदूरों को भी अपने नेतृत्व और असर में लायें। ऐसा करने के लिये, उन्होंने एक तरीक़ा सोचा और वह यह कि युद्ध–उद्योग–समितियों के 'मजदूर गुट' बनाये जायें। मेन्शेविक इस विचार पर उछल पड़े। पूंजीपतियों को इस बात में लाभ था कि इन युद्ध–उद्योग–समितियों में मजदूरों के ऐसे प्रतिनिधि हों जो गोले, तोपें, राइफ़लें, कारतूस और दूसरा लड़ाई का सामान बनाने वाले कारखानों में आम मज़दूरों को इस बात के लिये प्रेरित करें कि वे श्रम की उत्पादकता बढ़ायें। पूंजीपतियों का नारा था : 'हर चीज युद्ध के लिये, हर कोई युद्ध के लिये !' वास्तव में, इस नारे का मतलब था : 'युद्ध के ठेकों से और दूसरे देशों की धरती हड़पने से जितना अमीर बन सकते हो, बनो।' मेन्शेविकों ने पूंजीपतियों की इस नीम देशभक्ति वाली योजना में सक्रिय हिस्सा लिया। उन्होंने पूंजीपतियों की इस बात से मदद की कि युद्ध–उद्योग–समितियों के 'मजदूर गुटों' के चुनाव में हिस्सा लिवानें के लिये मज़दूरों में जोरदार आन्दोलन किया। बोल्शेविक इस योजना के खिलाफ़ थे। वे युद्ध–उद्योग–समितियों का बायकाट करने का प्रचार करते थे और वे उनका बायकाट कराने में सफल हुए। लेकिन, एक प्रमुख मेन्शेविक गोज्देव और एक सरकारी दलाल अब्रोसिमोव के नेतृत्व में कुछ मज़दूरों ने युद्ध–उद्योग–समितियों की कार्यवाही में हिस्सा लिया ही। फिर भी सितम्बर 1915 में, युद्ध–उद्योग–समितियों के 'मजदूर गूटों' के अंतिम चुनाव के लिये जब मज़दूरों के प्रतिनिधि इकट्ठे हुए तो हुआ यह कि अधिकांश प्रतिनिधि उसमें हिस्सा लेने के खिलाफ़ हो गये। मजदूर प्रतिनिधियों के बहुमत ने युद्ध–उद्योग–समितियों में हिस्सा लेने के खिलाफ़ एक तीखा प्रस्ताव पास किया और ऐलान किया कि मज़दूरों ने शान्ति के लिये और ज़ारशाही का खात्मा करने के लिये लड़ना अपना ध्येय बना लिया है।

बोल्शेविकों ने फ़ौज और जल–सेना में भी बड़े पैमाने पर काम करना शुरू किया। उन्होंने सिपाहियों और मल्लाहों को समझाया कि युद्ध के भयानक हाहाकार और जनता की मुसीबतों के लिये कौन जिम्मेदार है। उन्होंने समझाया कि साम्राज्यवादी हत्याकाण्ड से बचने के लिये जनता के पास एक ही रास्ता है और वह क्रांति का रास्ता है। बोल्शेविकों ने फ़ौज और जल–सेना में, मोर्चे पर और मोर्चे के पीछे अपने केन्द्र बनाये और युद्ध के खिलाफ़ लड़ने के लिये बुलावा देते हुए पर्चे बांटे।

क्रोन्स्तात में बोल्शेविकों ने 'क्रोन्स्तात सैनिक संगठन का केन्द्रीय संघ' बनाया। इसका सम्बन्ध पार्टी की पेत्रोग्राद–कमिटी से था। छावनी में काम करने के लिये, पेत्रोग्राद पार्टी–कमिटी का एक सैनिक–संगठन क़ायम किया गया। अगस्त 1916 में, पेत्रोग्राद ***ओखराना*** के मुख्य अफ़सर ने यह रिपोर्ट दी कि "क्रोन्स्तात संघ में बहुत अच्छा संगठन है, संगठन गुप्त है और उसके सदस्य गंभीर और होशियार लोग हैं। इस संघ के प्रतिनिधि समुद्री किनारे पर भी हैं।"

युद्ध के मोर्चे पर पार्टी इस बात का आन्दोलन करती थी कि लड़ने वाली फ़ौजों के सिपाही आपस में भाईचारा पैदा करें। पार्टी इस बात पर ज़ोर देती थी कि दुनिया के पूंजीपति दुश्मन हैं और साम्राज्यवादी युद्ध गृह–युद्ध में बदल कर ही और अपने हथियार अपने ही पूंजीपतियों और उनकी हुकूमत के खिलाफ़ मोड़ कर ही, लड़ाई का खात्मा हो सकता है। फ़ौजी दस्ते हमला करने से अधिकाधिक इन्कार करने लगे। इस तरह की घटनायें 1915 में ही हुईं, और 1916 में तो और भी हुईं।

उत्तरी मोर्चे पर और बल्कान प्रान्तों की फ़ौजों में बोल्शेविकों की कार्यवाही खास तौर से ज्यादा फैली थी। 1917 के आरम्भ में, उत्तरी मोर्चे पर फ़ौज के सेनापति जनरल रूस्की ने हैड क्वार्टर को सूचना दी कि बोल्शेविकों ने उस मोर्चे पर ज़ोरदार क्रान्तिकारी काम चालू कर रखा है।

युद्ध से जनता के जीवन में, दुनिया के मज़दूर वर्ग के जीवन में भारी तब्दीली हुई। राष्ट्रों का भाग्य, जातियों का भाग्य, समाजवादी आन्दोलन का भाग्य दांव पर लगा हुआ था। इसलिये, सभी पार्टियों और रुझानों के लिये जो अपने को समाजवादी कहती थीं, युद्ध एक कसौटी, एक परीक्षा था। क्या ये पार्टियां और रुझान समाजवाद के पक्ष, अंतर्राष्ट्रीयता के पक्ष के प्रति वफ़ादार रहेंगे, या वे मजदूर वर्ग से दग़ा करना, अपना झंडा निकाल कर अपने राष्ट्रीय पूंजीपतियों के पैरों के नीचे डालना पसन्द करेंगे? उस समय सवाल का रूप यही था।

युद्ध ने दिखा दिया कि दूसरी इन्टरनेशनल की पार्टियां परीक्षा में खरी न उतरीं। उन्होंने मजदूर वर्ग से दग़ा की और अपने देशों के साम्राज्यवादी पूंजीपतियों के हाथ अपना झण्डा सौंप दिया।

और ये पार्टियां, जिन्होंने अपने भीतर अवसरवाद को पाला–पोसा था और जिन्हें अवसरवादियों के लिये, राष्ट्रवादियों के लिये रियायतें करना सिखलाया गया था कोई दूसरा अमल न कर सकती थीं।

युद्ध ने दिखा दिया कि बोल्शेविक पार्टी ही एक पार्टी है जिसने शान के साथ यह परीक्षा पास की है और समाजवाद के पक्ष के प्रति, सर्वहारा अंतर्राष्ट्रीयता के पक्ष के प्रति हमेशा वफ़ादार रही है।

और, इसी की उम्मीद भी की जा सकती थी। सिर्फ़ एक नयी तरह की पार्टी, सिर्फ़ एक ऐसी पार्टी जो अवसरवाद के खिलाफ़ बिना समझौते के संघर्ष करने की भावना में पाली–पोसी गई हो, सिर्फ़ ऐसी पार्टी जो अवसरवाद और राष्ट्रवाद से मुक्त हो, सिर्फ़ ऐसी पार्टी इस महान् परीक्षा में खरी निकल सकती थी और मजदूर वर्ग के पक्ष, समाजवाद और अंतर्राष्ट्रीयता के पक्ष के प्रति वफ़ादार रह सकती थी।

और, बोल्शेविक पार्टी ऐसी ही पार्टी थी।

4. ज़ारशाही फ़ौज की हार। आर्थिक विघटन। ज़ारशाही का संकट।

लड़ाई अब तीन साल तक चल चुकी थी। युद्ध में लाखों आदमी मारे गये थे, या घावों से मर गये थे, या युद्ध की हालत से पैदा होने वाली महामारियों में खप गये थे। पूंजीपति और जमींदार युद्ध से रक़में काट रहे थे। लेकिन, मजदूर और किसान दिन पर दिन बढ़ती हुई तबाही और भुखमरी के शिकार हो रहे थे। युद्ध रूस के आर्थिक जीवन की जड़ें कमज़ोर कर रहा था। लगभग 1 करोड़ 40 लाख हट्टे–कट्टे आदमी आर्थिक कामों से हटा लिये गये थे और फ़ौज में भर्ती कर लिये गये थे। मिलें और कारखाने ठप्प हो रहे थे। मजदूरों की कमी की वजह से, खेती का इलाक़ा कम हो गया था। आम जनता और मोर्चे के सिपाही भूखे, नंगे पैर और नंगे बदन थे। देश का माल–मसाला युद्ध में स्वाहा होता जा रहा था।

ज़ार की फ़ौज हार पर हार खा रही थी। जर्मन तोपखाना ज़ार की फ़ौजों को गोलों से तोप देता था, जबकि ज़ारशाही सेना के पास तोपों, गोलों और राइफलों तक का अभाव था। कभी–कभी तीन सिपाहियों को एक ही राइफल से काम चलाना पड़ता था। जब युद्ध चालू था, तभी पता लगा कि ज़ार का युद्ध–मंत्री सुखोमलिनोव ग़द्दार है, जिसका सम्बन्ध जर्मन जासूसों से है और जो लड़ाई का माल भेजने के काम को असंगठित करने और मोर्चे को तोपों और राइफ़लों के बिना छोड़ देने के लिये जर्मन जासूस–विभाग के निर्देश का पालन कर रहा था। ज़ार के कुछ मंत्री और ज़नरल चोरी–चोरी जर्मन फ़ौज की सफलता में मदद देते थे। ज़ारीना के साथ, जिसके जर्मन ताल्लुकात थे, वे जर्मनों को फ़ौजी भेद बतला देते थे। कोई ताज्जुब नहीं कि जार

की फ़ौज हारी और उसे पीछे हटना पड़ा। 1916 तक ही, जर्मन पोलैंड और बाल्टिक प्रान्तों का एक हिस्सा अपने क़ब्जे में कर चुके थे।

इन सब बातों से, ज़ार सरकार के खिलाफ़ मजदूरों, किसानों, सिपाहियों और बुद्धिजीवियों में नफ़रत और गुस्सा बढ़ा, युद्ध और ज़ारशाही के खिलाफ़ आम जनता का क्रांतिकारी आन्दोलन बढ़ा, और तेज हुआ। यह क्रान्तिकारी आन्दोलन युद्ध के मोर्चे पर और उसके पीछे भी था, केन्द्रीय भाग और सीमान्त प्रदेशों में भी था।

रूस के साम्राज्यवादी पूंजीपतियों में भी असंतोष फैलने लगा। वे इस बात से आग–बबूला हो गये थे कि रासपुतीन जैसे बदमाश, जो स्पष्टतः जर्मनी से अलग संधि करने की कोशिश कर रहे थे, ज़ार के दरबार पर हावी थे। पूंजीपतियों को और भी विश्वास होता गया कि ज़ार सरकार सफलता से युद्ध चलाने के आयोग्य है। उन्हें डर था कि अपनी रक्षा करने के लिये ज़ारशाही जर्मनों से अलग संधि न कर ले। इसलिये, रूसी पूंजीपतियों ने फ़ैसला किया कि महल के अन्दर ही बलात् सत्ता हासिल करने का काम किया जाये। इसका उद्देश्य यह था कि ज़ार निकोलस द्वितीय को हटाया जाये और उसके बदले उसके भाई माइकेल रोमानोव को बिठाया जाये जिसका पूंजीपतियों से संबंध था। इस तरह, वे एक ढेले से दो चिड़ियों का शिकार करना चाहते थे। पहले तो वे खुद सत्ता हासिल करना चाहते थे और साम्राज्यवादी युद्ध को आगे चलाने का काम पक्का कर लेना चाहते थे। दूसरे, वे महल के अन्दर सत्ता हथियाकर एक बड़ी लोकप्रिय क्रांति की बाढ़ को रोकना चाहते थे, जिसका ज्वार चढ़ता जा रहा था।

इस काम में, अंग्रेज और फ्रांसीसी हुकूमतें रूसी पूंजीपतियों का पूरी तरह समर्थन करती थीं। ये हूकूमतें देखती थीं कि ज़ार लड़ाई नहीं चला सकता। उन्हें डर था कि वह जर्मनों से अलग संधि करके लड़ाई खत्म न कर दे। अगर ज़ार सरकार अलग संधि पर दस्तख़त करती, तो अंग्रेज और फ्रांसीसी हुकूमतों के हाथ से युद्ध का एक साथी निकल जाता। यह साथी न सिर्फ़ दुश्मन की फ़ौजों को अपने मोर्चो की तरफ़ खींच लाता था बल्कि फ्रांस को लाखों चुने हुये रूसी सिपाही भी देता था। इसलिये, अंग्रेज और फ्रांसीसी हुकूमतों ने रूसी पूंजीपतियों की इन कोशिशों का समर्थन किया कि वे महल में बलात सत्ता हथियायें।

इस तरह, ज़ार अकेला पड़ गया।

उधर मोर्चे पर हार पर हार होती गयी, इधर आर्थिक विघटन और ज्यादा तीखा होता गया। जनवरी और फ़रवरी 1917 में खाद्य सामग्री, कच्चे माल और ईंधन देने की अव्यवस्था हद को पहुंच गयी। पेत्रोग्राद और मास्को को खाद्य सामग्री भेजना

क़रीब–क़रीब खत्म हो गया था। एक के बाद दूसरा कारखाना बन्द होता गया और इस तरह, बेकारी बढ़ गयी। मजदूरों की हालत खास तौर से असह्य थी। अधिकाधिक लोग इस नतीजे पर पहुंचते जाते थे कि इस असहनीय हालत को खत्म करने का एक ही तरीक़ा है कि निरंकुश ज़ारशाही को खत्म किया जाये।

स्पष्ट ही, ज़ारशाही मौत के संकट में पड़ी हुई थी।

पूंजीपतियों ने सोचा कि महल में बलात् सत्ता हथिया कर इस संकट को हल करें।

लेकिन, जनता ने उसे अपने ढंग से हल किया।

5. फ़रवरी क्रांति। ज़ारशाही का पतन। मजदूर और सैनिक प्रतिनिधियों की सोवियतों का निर्माण। अस्थाई सरकार का निर्माण। दुहरी सत्ता।

1917 के साल की शुरूआत 9 जनवरी की हड़ताल से हुई। इस हड़ताल के दौर में पेत्रोग्राद, मास्को, बाकू और निज्नीनवगरोद में प्रदर्शन हुए। मास्को में लगभग एक–तिहाई मजदूरों ने 9 जनवरी की हड़ताल में हिस्सा लिया। त्वेर्स्कोयी राज मार्ग पर दो हजार आदमियों के प्रदर्शन को पुलिस सवारों ने तितर–बितर कर दिया। पेत्रोग्राद में, विबोर्ग मार्ग पर एक प्रदर्शन में सैनिक भी शामिल हो गये।

पेत्रोग्राद की पुलिस ने रिपोर्ट दी : "आम हड़ताल का विचार नित नये लोगों के दिल में घर करता जा रहा है और उतना ही लोकप्रिय होता जाता है जितना वह 1905 में था।"

मेन्शेविकों और समाजवादी क्रांतिकारियों ने कोशिश की कि इस नवजात क्रांतिकारी आन्दोलन को उन्ही राहों में ले जायें जो उदारपंथी पूंजीतियों के लिये ज़रूरी थे। **मेन्शेविकों ने प्रस्ताव किया कि राज्य दूमा के आरंभ के दिन 14 फ़रवरी को, वहां मजदूरों का जुलूस बना कर ले जाया जाये। लेकिन, मजदूर जनता बोल्शेविकों के साथ थी और वह दूमा न जाकर प्रदर्शन के लिये निकल पड़ी।**

18 फ़रवरी 1917 को पेत्रोग्राद के पुतिलोव कारखाने में हड़ताल शुरू हो गयी। 22 फ़रवरी को, ज्यादातर बड़े कारखानों के मजदूरों ने हड़ताल कर दी। 23 फ़रवरी (8 मार्च) को, अंतर्राष्ट्रीय महिला–दिवस पर पेत्रोग्राद बोल्शेविक कमिटी के बुलावे पर, मेहनतकश औरतें **भुखमरी**, युद्ध और ज़ारशाही के खिलाफ़ प्रदर्शन करने के लिये सड़कों पर, आ गयीं। पेत्रोग्राद के मजदूरों ने नगरव्यापी हड़ताल–आन्दोलन

करके मेहनतकश औरतों के प्रदर्शन का समर्थन किया। राजनीतिक हड़ताल ज़ारशाही व्यवस्था के खिलाफ़ एक आम राजनीतिक प्रदर्शन का रूप लेने लगी।

24 फ़रवरी (9 मार्च) को, प्रदर्शन और भी जोरशोर से जारी किया गया। लगभग दो लाख मजदूर हड़ताल पर थे ही।

25 फ़रवरी (10 मार्च) को, समूचा मजदूरों का पेत्रोग्राद क्रांतिकारी आन्दोलन में शामिल हो गया। जिलों की राजनीतिक हड़तालें समूचे शहर की आम राजनीतिक हड़ताल में घुल–मिल गयीं। हर जगह प्रदर्शन और पुलिस से टक्करें हुईं। मजदूरों के जन समूह पर लाल झंडे लहराते थे, जिनके ऊपर लिखा था : **'जार का नाश हो!' 'युद्ध मुर्दाबाद!' 'हमें रोटी दो!'**

26 फ़रवरी (11 मार्च) के सबेरे, **राजनीतिक हड़ताल और प्रदर्शन** ने विद्रोह का रूप लेना शुरू किया। **मज़दूरों ने सादी और हथियारबन्द** पुलिस से हथियार छीन लिये और खुद हथियारों से लैस हो गये। फिर भी, पुलिस से हथियारबन्द टक्कर का अंत ज्नामेन्स्काया चौराहे पर एक प्रदर्शन पर गोलियां चलने में हुआ।

पेत्रोग्राद फ़ौजी इलाक़े के सेनापति जनरल खबालोव ने ऐलान किया कि मजदूर 28 फ़रवरी (13 मार्च) को काम पर जरूर वापस जायें, वर्ना वे सब युद्ध के मोर्चे पर भेज दिये जायेंगे। 25 फ़रवरी (10 मार्च) को ज़ार ने जनरल खबालोव को हुकुम दिया : "मैं तुम्हें हुकुम देता हूं कि ज्यादा से ज्यादा कल तक राजधानी की सब गड़बड़ बन्द कर दो!"

लेकिन, क्रांति को 'बन्द कर दो', अब यह सम्भव न था।

26 फ़रवरी (11 मार्च) को, पावलोस्की पलटन की रिजर्व बटालियन की चौथी कम्पनी ने गोली चलाई, लेकिन मज़दूरों पर नहीं बल्कि पुलिस सवारों के जत्थों पर जो मजदूरों से टक्कर ले रहे थे। **फ़ौजियों को अपनी तरफ़ करने के लिये बहुत ही जोरदार और जमकर कोशिश की गयी, खास तौर से मजदूर औरतों की तरफ़ से, जिन्होंने सीधे फ़ौजियों से अपील की, उनसे भाईचारा क़ायम किया और उन्हें बुलावा दिया कि घृणित ज़ारशाही का खात्मा करने में जनता का साथ दें।**

उस समय हमारी पार्टी की केन्द्रीय समिति की ब्यूरो बोल्शेविक पार्टी के अमली काम का संचालन करती थी। उसका हैड क्वार्टर पेत्रोग्राद में था और उसके अगुआ कॉमरेड मोलोतोव थे। 26 फ़रवरी (11 मार्च) को, केन्द्रीय समिति की ब्यूरो ने एक घोषणापत्र निकाला जिसमें लोगों को बुलावा दिया गया कि ज़ारशाही के खिलाफ़ हथियारबन्द संघर्ष जारी रखें और अस्थायी क्रांतिकारी सरकार बनायें।

27 फ़रवरी (12 मार्च) को, पेत्रोग्राद की फ़ौज ने मजदूरों पर गोली चलाने से इन्कार कर दिया और विद्रोह में जनता का साथ देने लगी। 27 फ़रवरी के सबेरे तक जितने सिपाही विद्रोह में शामिल हुए उनकी तादाद दस हजार से ज्यादा न थी, लेकिन उस दिन की शाम तक ही उनकी तादाद साठ हजार तक पहुच गयी।

जो मजदूर और सिपाही विद्रोह करने के लिये उठ खड़े हुए थे, उन्होंने ज़ार के मंत्रियों और जनरलों को गिरफ्तार करना और क्रांतिकारियों को जेल से छोड़ना शुरू कर दिया। छूटे हुए राजनीतिक बंदी क्रांतिकारी संघर्ष में शामिल हो गये।

सड़कों पर पुलिस और ऊंचे कोठों पर मशीनगनें लगाये हथियारबन्द दस्ते गोली चला रहे थे। लेकिन, फ़ौज तेजी से मजदूरों की तरफ़ आ गयी और इस बात ने निरंकुश जारशाही की तक़दीर का फ़ैसला कर दिया।

जब पेत्रोग्राद में क्रांति की विजय का सामाचार दूसरे शहरों और युद्ध के मोर्चे पर पहुंचा, तो मजदूर और सिपाही ज़ार के अफ़सरों को हटाने लगे।

फ़रवरी की पूंजीवादी–जनवादी क्रांति की जीत हुई।

क्रांति की जीत इसलिये हुई कि इसका हिरावल मजदूर वर्ग था फ़ौजी वर्दी पहने हुए और 'शान्ति, रोटी और आजादी' मांगते हुए, लाखों किसानों के आन्दोलन का मजदूर वर्ग ने नेतृत्व किया। सर्वहारा वर्ग के एकदम नेतृत्व ने ही क्रांति की सफलता निश्चित कर दी।

क्रांति के प्रारंभिक दिनों में, लेनिन ने लिखा था :

"क्रांति मज़दूरों ने की थी। मजदूरों ने वीरता दिखलायी; उन्होंने अपना खून बहाया; वे अपने साथ मेहनतकश और ग़रीब जनता को बहा ले गये।" (लेनिन, ***सं॰ग्रं॰,*** रू॰सं॰, खण्ड 20, पृष्ठ 23–24)।

पहली क्रांति ने, 1905 की क्रान्ति ने, दूसरी क्रान्ति, 1917 की क्रान्ति की तुरंत कामयाबी के लिये रास्ता साफ़ कर दिया था।

लेनिन ने लिखा था :

"1905–'07 के तीन वर्षों में, रूसी मजदूरों ने जो क्रांतिकारी शक्ति दिखलायी, उसके बिना और जबर्दस्त वर्ग–युद्धों के बिना दूसरी क्रांति संभवतः इतनी तेजी से न हो पाती। तेजी का मतलब यह कि इसकी **शुरू की** मंजिल कुछ दिनों में ही पूरी हो गयी।" (लेनिन, ***सं॰ग्रं॰,*** अंग्रेजी संस्करण, मास्को 1947, खण्ड 1, पृष्ठ 735)।

क्रांति के प्रारंभिक दिनों में ही सोवियतें बन गयीं। विजयी क्रांति को मजदूर और फौजी प्रनिनिधियों की सोवियतों के समर्थन का आधार मिला। जिन मजदूरों और सैनिकों ने विद्रोह किया, उन्होंने **मजदूर** और सैनिक प्रतिनिधियों की सोवियतें बना लीं। 1905 की क्रांति ने दिखा दिया था कि सोवियतें सशस्त्र विद्रोह का साधन थीं, और साथ ही एक नयी क्रांतिकारी सत्ता का बीज थीं। आम मजदूर जनता के मन में सोवियतों की बात जीवित रही और जैसे ही ज़ारशाही का तख्ता उल्टा गया, वैसे ही वह उसे अमल में ले आयी। अंतर इतना था कि 1905 में सिर्फ़ **मजदूर** प्रतिनिधियों की सोवियतें बनी थीं, जबकि फरवरी 1917 में बोल्शेविकों की पहलकदमी पर **मजदूर** और **सैनिक** प्रतिनिधियों की सोवियतें बनीं।

जबकि बोल्शेविक सीधे सड़कों पर जन संघर्षों का नेतृत्व कर रहे थे, समझौतावादी पार्टियां – मेन्शेविक और समाजवादी क्रांतिकारी – सोवियतों में सीटों पर क़ब्जा कर रही थीं और वहां अपना बहुमत बना रही थीं। आंशिक रूप में, उन्हें इस काम में इसलिये भी सफलता मिली कि बोल्शेविक पार्टी के अधिकांश नेता जेल या निर्वासन में थे (लेनिन विदेश में निर्वासित थे और स्तालिन तथा स्वेर्दलोव साईबेरिया में निर्वासित थे) जबकि मेन्शेविक और समाजवादी क्रांतिकारी आज़ादी से पेत्रोग्राद की सड़कों पर सैर करते थे। नतीजा यह हुआ कि पेत्रोग्राद–सोवियत और उसकी कार्यकारिणी समिति के अगुआ समझौतावादी पार्टियों के प्रतिनिधि, मेन्शेविक और समाजवादी क्रांतिकारी थे। मास्को और कई दूसरे शहरों में भी यही बात थी। सिर्फ़ इवानोवोवज्नेसेंस्क, क्रासनोयार्स्क और दूसरी कई जगहों में शुरू से ही सोवियतों में बोल्शेविकों का बहुमत था।

सशस्त्र जनता – मजदूर और सैनिक – सोवियतों को अपने प्रतिनिधि इस तरह भेजती थी कि जैसे जन सत्ता की संस्था को भेज रही हो। वे समझते थे और विश्वास करते थे कि मजदूर और सैनिक प्रतिनिधियों की सोवियत क्रांतिकारी जनता की सभी मांगे पूरी करेगी और सबसे पहले शान्ति क़ायम की जायेगी।

लेकिन, मजदूरों और सैनिकों के इस निराधार विश्वास ने उन्हें नुकसान पहुंचाया। समाजवादी क्रांतिकारी और मेन्शेविकों की जरा भी मंशा न थी कि युद्ध खत्म किया जाये, शांति हासिल की जाये। उन्होंने योजना बनायी थी कि क्रांति से फायदा उठाकर युद्ध चालू रखा जाये। जहां तक क्रांति और जनता की क्रांतिकारी मांगों का सवाल था, समाजवादी क्रांतिकारी और मेन्शेविक समझते थे कि क्रांति अब खत्म हो चुकी है। काम अब यह रह गया है कि उस पर मुहर लगा दी जाये और पूंजीपतियों के साथ–साथ 'साधारण' वैधानिक जीवन बिताया जाये। इसलिये, पेत्रोग्राद–सोवियत

के समाजवादी क्रांतिकारी और मेन्शेविक नेताओं ने भरसक कोशिश की कि युद्ध को खत्म करने का सवाल दबा दिया जाये, शान्ति का सवाल दबा दिया जाये और सत्ता पूंजीपतियों को सौंप दी जाये।

27 फ़रवरी (12 मार्च) 1917, चौथी राज्य दूमा के उदारपंथी सदस्यों ने समाजवादी क्रांतिकारी और मेन्शेविक नेताओं के साथ गुप्त समझौता करके राज्य दूमा की अस्थायी कमिटी बनायी। इस कमिटी का अगुआ दूमा का सभापति रोद्जियांको था, जो जमींदार और सम्राट्वादी था। और कुछ ही दिन बाद, राज्य दूमा की अस्थायी कमिटी और मजदूर और सैनिक प्रतिनिधियों की सोवियत की कार्यकारिणी समिति के समाजवादी क्रांतिकारी और मेन्शेविक नेताओं ने बोल्शेविकों से छिपाकर रूस में एक नयी सरकार बनाने के लिये समझौता कर लिया। यह एक पूंजीवादी अस्थायी सरकार थी, जिसका अगुआ प्रिंस ल्वोव था। यह वह आदमी था जिसे फ़रवरी क्रांति से पहले ही ज़ार निकोलस द्वितीय अपनी हुकूमत का प्रधान मंत्री बनाने वाला था। अस्थायी सरकार में कॉन्स्टीट्यूशनल डेमोक्रैटों का प्रधान मिल्यूकोव, अक्तूबर पंथियों का प्रधान गुचकोव और पूंजीवादी वर्ग के दूसरे प्रमुख प्रतिनिधि और 'जनतंत्र' का प्रतिनिधि समाजवादी क्रांतिकारी करैन्स्की – सभी शामिल थे।

और इस तरह, सोवियत की कार्यकारिणी समिति के समाजवादी क्रांतिकारी और मेन्शेविक नेताओं ने सत्ता पूंजीपतियों को सौंप दी। फिर भी, जब मजदूर और सैनिक प्रतिनिधियों ने यह सब जाना, तो उसके बहुमत ने, बाकायदा बोल्शेविकों के विरोध के बावजूद, समाजवादी क्रांतिकारी और मेन्शेविक नेताओं के काम को पास कर दिया।

इस तरह, रूस में एक नयी राज्य सत्ता पैदा हुई जिसमें, लेनिन के शब्दों में, 'पूंजीपतियों और पूंजीपति बन जाने वाले जमींदारों' के प्रतिनिधि शामिल थे।

लेकिन पूंजीवादी हुकूमत के साथ–साथ, एक दूसरी सत्ता मौजूद थी – मजदूर और सैनिक प्रतिनिधियों की सोवियत। सोवियत में सैनिक प्रतिनिधि ज्यादातर किसान थे, जो युद्ध के लिये भर्ती किये गये थे। मजदूर और सैनिक प्रतिनिधियों की सोवियत ज़ारशाही के खिलाफ़ मजदूरों और किसानों के सहयोग की संस्था थी और इसके साथ ही उनकी सत्ता की संस्था थी, मजदूर वर्ग और किसानों की डिक्टेटरशिप की संस्था थी।

इसका फल यह हुआ कि दो सत्तायें, दो डिक्टेटरशिप विचित्र ढंग से आपस में गुंथ गयीं : पूंजीपतियों की डिक्टेटरशिप, जिसकी प्रतिनिधि अस्थायी सरकार थी और मजदूरों और किसानों की डिक्टेटरशिप, जिसकी प्रतिनिधि मजदूर और सैनिक प्रतिनिधियों की सोवियत थी।

इसका नतीजा निकला – **दुहरी सत्ता**।

इसका क्या सबब है कि आरंभ में सोवियतों में बहुमत मेन्शेविकों और समाजवादी क्रांतिकारियों का था ?

इसका क्या सबब है कि विजयी मजदूरों और किसानों ने **खुद अपनी तरफ से** सत्ता पूंजीपतियों के प्रतिनिधियों को सौंप दी ?

लेनिन ने इसकी व्याख्या करते हुए बतलाया कि लाखों आदमी, जो राजनीति में अनुभवहीन थे, जाग उठे थे और राजनीतिक कार्यवाही में हिस्सा लेने के लिये ज़ोरों से आगे बढ़ आये थे। ये लोग ज्यादातर छोटे मालिक, किसान, कुछ दिन तक किसानी करने वाले मजदूर थे, ऐसे लोग जो पूंजीपतियों और सर्वहारा के बीच में थे। उस समय, यूरोप के सभी बड़े देशों में रूस सबसे ज्यादा निम्नपूंजीवादी देश था। और, इस देश में "एक विराट् निम्नपूंजीवादी लहर हर चीज पर छा गयी है और उसने न सिर्फ़ तादाद से बल्कि विचारधारा से भी वर्ग–चेतन सर्वहारा को मोह लिया है। उसने मजदूरों के बहुत बड़े हिस्से को निम्नपूंजीवादी राजनीतिक दृष्टिकोण की छूत लगा दी है और उसके मन में यह दृष्टिकोण बिठा दिया है।" (लेनिन, ***सं•रचं•***, अं•सं•, मास्को, 1947, खण्ड 2, पृष्ठ 29)।

इस शक्तिशाली निम्नपूंजीवादी लहर ने मेन्शेविक और समाजवादी क्रांतिकारी पार्टियों को सबसे आगे ला खड़ा किया।

लेनिन ने बतलाया कि एक दूसरा कारण यह है कि युद्ध के दौर में सर्वहारा की बनावट में तब्दीली हुई और क्रांति के आरंभ में सर्वहारा की वर्ग–चेतना और संगठन नाकाफ़ी थे। युद्ध के दौर में, खुद सर्वहारा के अन्दर भारी तब्दीली हुई थी। नियमित मजदूरों में से लगभग 40 फीसदी फ़ौज में भर्ती कर लिये गये थे। बहुत से छोटे मालिक, दस्तकार और दूकानदार भर्ती से बचने के लिये कारखानों में काम करने लगे थे, लेकिन उनके लिये सर्वहारा की जहनीयत एक ग़ैर चीज़ थी।

मज़दूरों के ये निम्नपूंजीवादी हिस्से ही वह जमीन थे जहां निम्न–पूंजीवादी राजनीतिक, मेन्शेविक और समाजवादी क्रांतिकारी पनपते थे।

यही सबब है कि राजनीति अनुभवहीन लोगों की भारी तादाद इस शक्तिशाली निम्नपूंजीवादी भंवर में सिमट आयी। क्रांति की पहली सफलताओं से मदहोश होकर, उन्होंने अपने को शुरू के महीने में समझौतावादी पार्टियों के असर में पाया और इस सीधे–सादे विश्वास में कि पूंजीवादी सत्ता सोवियतों का काम न रोकेगी, वे पूंजीपतियों को राज्य सत्ता सौंपने के लिये राजी हो गये।

बोल्शेविक पार्टी के सामने अब यह काम था कि धीरज के साथ व्याख्या करके लोगों की आंखें खोले कि अस्थायी सरकार का रूप साम्राज्यवादी है, समाजवादी क्रांतिकारियों और मेन्शेविकों की ग़द्दारी का पर्दाफ़ाश करे और यह दिखलाये कि शान्ति तब तक हासिल नहीं हो सकती जब तक कि अस्थायी सरकार की जगह सोवियतों की सरकार न ले।

और, बोल्शेविक पार्टी अपनी पूरी शक्ति से इस काम में जुट गई।

उसने अपनी कानूनी पत्रिकाओं को छापना फिर से जारी किया। फ़रवरी क्रांति के पांच दिन बाद, पेत्रोग्राद से प्राब्दा अखबार निकलने लगा और कुछ दिन बाद मास्को से ***सोत्सियाल देमोक्रात*** निकलने लगा। पार्टी आम जनता का नेतृत्व संभालने लगी। आम जनता उदारपंथी पूंजीपतियों और मेन्शेविकों और समाजवादी क्रांतिकारियों में अपना विश्वास खोने लगी थी। पार्टी ने धीरज से सैनिकों और किसानों को समझाया कि मजदूर वर्ग के साथ मिलकर काम करना, क्यों जरूरी है। उसने उन्हें समझाया कि किसानों को तब तक न तो शान्ति मिलेगी, न जमीन, जब तक कि क्रांति को और आगे न बढ़ाया जायेगा और पूंजीवादी अस्थायी सरकार की जगह सोवियतों की सरकार न कायम की जायेगी।

सारांश

साम्राज्यवादी युद्ध पूंजीवादी देशों के विषम विकास से, मुख्य शक्तियों का संतुलन खत्म होने से, युद्ध के ज़रिये दुनिया का फिर से बंटवारा करने और नया संतुलन कायम करने के लिये साम्राज्यवादियों की जरूरत से आरंभ हुआ।

युद्ध इतना विनाशकारी न होता और शायद इतना विशाल भी न बन पाता अगर दूसरी इन्टरनेशनल की पार्टियों ने मजदूर वर्ग के पक्ष से गद्दारी न की होती, अगर उन्होंने दूसरी इन्टरनेशनल की कांग्रेसों के युद्ध–विरोधी फैसलों को तोड़ा न होता, अगर अपनी साम्राज्यवादी हुकूमतों के खिलाफ, जंगबाजों के खिलाफ़, उन्होंने मज़दूर वर्ग को जमाने और काम करने में हिम्मत दिखाई होती।

बोल्शेविक पार्टी ही एक सर्वहारा पार्टी थी जो समाजवाद और अंतर्राष्ट्रीयता के पक्ष के प्रति वफ़ादार रही और जिसने अपनी ही साम्राज्यवादी हुकूमत के खिलाफ़ गृह–युद्ध का संगठन किया। दूसरी इन्टरनेशनल की सभी दूसरी पार्टियां अपने नेताओं के ज़रिये पूंजीपतियों से बंधी हुई थीं, इसलिये उन्होंने अपने ऊपर साम्राज्यवाद को हावी पाया और वे भाग कर साम्राज्यवादियों से जा मीलीं।

युद्ध पूंजीवाद के आम संकट का प्रतिबिम्ब था। इसके साथ ही, उसने इस संकट को और तेज किया और विश्वपूंजीवाद को कमजोर बनाया। दुनिया में सबसे पहले रूस के मजदूरों और बोल्शेविक पार्टी ने सफलता से पूंजीवाद की कमजोरी का फायदा उठाया। उन्होंने साम्राज्यवादी मोर्चे में दरार डाली, ज़ार का तख़्ता उलट दिया और मजदूर तथा सैनिक प्रतिनिधियों की सोवियतें कायम की।

क्रांति की प्रारंभिक सफलताओं से मदहोश होकर और मेन्शेविकों और समाजवादी क्रांतिकारियों के विश्वास दिलाने पर कि आगे से सब कुछ ठीक होगा ग़ाफिल होकर, निम्नपूंजीवादियों में से अधिकांश, सैनिक और मजदूर भी अस्थायी सरकार में विश्वास करने और उसका समर्थन करने लगे।

बोल्शेविक पार्टी के सामने यह काम था कि प्रारंभिक सफलताओं से मदहोश आम मजदूरों और सैनिकों को समझाये कि क्रांति की पूरी जीत अब भी बहुत दूर है कि जब तक सत्ता पूंजीवादी अस्थायी सरकार के हाथ में है और जब तक सोवियतों में समझौतावादियों – मेन्शेविकों और समाजवादी क्रांतिकारियों – का बोलबोला है, तब तक जनता को न शान्ति मिलेगी, न जमीन मिलेगी, न रोटी मिलेगी; और पूरी जीत हासिल करने के लिये एक कदम और उठाना होगा और सत्ता सोवियतों को सौंपनी होगी।

सातवां अध्याय

अक्तूबर समाजवादी क्रान्ति की तैयारी और विजय के दौर में बोल्शेविक पार्टी

(अप्रैल 1917–1918)

1. फरवरी क्रान्ति के बाद देश की परिस्थिति। गुप्त जीवन से पार्टी का निकलना और खुला राजनीतिक काम करना। लेनिन का पेत्रोग्राद आना। लेनिन की अप्रैल–थीसिस (सैद्धान्तिक निबंध)। समाजवादी क्रान्ति की ओर आगे बढ़ने की पार्टी नीति।

घटना–क्रम और अस्थायी सरकार के आचरण से, नित नये सबूत मिलने लगे कि बोल्शेविक नीति सही है। यह बात अधिकाधिक ज़ाहिर होती गयी कि अस्थायी सरकार जनता के पक्ष में नहीं है बल्कि जनता के खिलाफ़ है, शान्ति के पक्ष में नहीं है बल्कि युद्ध के पक्ष में है और वह जनता को शान्ति, ज़मीन या रोटी न तो दे सकती है, न देना चाहती है। बोल्शेविकों ने अपनी नीति समझाने के काम के लिये उपजाऊ ज़मीन पायी।

जबकि मजदूर और सैनिक ज़ार सरकार का तख़्ता उलट रहे थे और राज्यतंत्र की जड़ ही काट रहे थे, अस्थायी सरकार निश्चित रूप से राज्यतंत्र की रक्षा करना चाहती थी। 2 मार्च 1917 को, उसने गुप्त रूप से गुचकोव और शुल्गिन को ज़ार के पास जाने और उससे मिलने के लिये मुक़र्रर किया। पूंजीपति चाहते थे कि सत्ता निकोलस रोमानोव के भाई माइकेल के हाथ में आ जाये। लेकिन, जब रेल–मजदूरों

की एक सभा में गुचकोव ने अपने भाषण का अंत करते हुए कहा : 'सम्राट् माइकेल जिन्दाबाद', तो मजदूरों ने मांग की कि गुचकोव को तुरंत गिरफ्तार कर लिया जाये और उसकी खानातलाशी ली जाये। मजदूरों ने गुस्से में कहा : जैसे नागनाथ, वैसे साँपनाथ!'

ज़ाहिर था कि मजदूर राज्यतंत्र को बहाल न होने देंगे।

जबकि मजदूर और किसान, जो क्रांति करते हुये अपना खून बहा रहे थे, आशा करते थे कि युद्ध बंद कर दिया जायेगा ; जबकि वे रोटी और ज़मीन के लिये लड़ रहे थे और आर्थिक अव्यवस्था को खत्म करने के लिये ज़ोरदार उपाय करने की मांग कर रहे थे, अस्थायी सरकार जनता की इन बेहद ज़रूरी मांगों को अनसुनी कर रही थी। इस सरकार में पूंजीपतियों और ज़मींदारों के प्रतिनिधि तो थे ही, उसका कोई इरादा न था कि किसानों को ज़मीन देने की उनकी मांग पूरी की जाये। न वह मेहनतकश जनता को रोटी दे सकती थी; क्योंकि ऐसा करने के लिये उसे गल्ले के बड़े व्यापारियों के हितों में हाथ लगाना पड़ता और हर मुमकिन उपाय से ज़मींदारों और कुलकों से गल्ला लेना पड़ता। और हुकूमत यह करने की हिम्मत न करती थी, क्योंकि वह खुद इन वर्गों के हितों से बंधी हुई थी। वह जनता को शान्ति नहीं दे सकती थी। अंग्रेज और फ्रांसीसी साम्राज्यवादियों से उसका गठबंधन तो था ही। अस्थाई सरकार की ज़रा भी मंशा न थी कि युद्ध खत्म किया जाये, उल्टा वह क्रांति से फायदा उठा कर साम्राज्यवादी युद्ध में रूस के और सक्रिय रूप से भाग लेने की कोशिश कर रही थी और इस तरह, कुस्तुन्तुनिया, दर्रे दानियाल और गैलीशिया पर कब्ज़ा करने के अपने साम्राज्यवादी मंसूबे पूरे करना चाहती थी।

यह स्पष्ट था कि अस्थाई सरकार की नीति में जनता का विश्वास अवश्य ही जल्द खत्म हो जायेगा।

यह बात साफ़ थी कि फरवरी क्रांति के बाद जिस दुहरी सत्ता का जन्म हुआ, वह ज्यादा दिन तक न चल सकती थी। घटना–क्रम की मांग थी कि सत्ता एक ही अधिकारी के हाथ में केंद्रित हो : या तो अस्थाई सरकार के हाथ में, या सोवियतों के हाथ में।

यह ठीक था कि मेन्शेविकों और समाजवादी क्रांतिकारियों की समझौतावादी नीति को अब भी आम जनता में समर्थन मिल जाता था। ऐसे काफ़ी मज़दूर थे और इनसे भी ज्यादा सैनिक और किसान थे जो अब भी समझते थे कि 'विधानसभा जल्द ही आयेगी और सब कुछ शान्तिमय ढंग से ठीक कर देगी।' और, ये लोग समझते

थे कि युद्ध दूसरे देश जीतने के लिये नहीं, बल्कि ज़रूरत के लिये, राज्य की रक्षा करने के लिये हो रहा है। लेनिन ने ऐसे आदमियों को ईमानदारी से ग़लती करने वाले सुरक्षावादी कहा था। ये लोग अब भी समझते थे कि समाजवादी क्रांतिकारी और मेन्शेविक नीति, जो वादों और फुसलाने की नीति थी, सही नीति है। लेकिन, ज़ाहिर था कि वादे करने और फुसलाने से ज़्यादा दिन काम न चल सकता था, जैसा कि घटनाक्रम और अस्थायी सरकार के व्यवहार से आये दिन प्रकट हो रहा था। इससे साबित हो रहा था कि समाजवादी क्रांतिकारियों और मेन्शेविकों की समझौतावादी नीति काम को टालने और सीधे–सादे लोगों को बरगलाने की नीति है।

अस्थाई सरकार आम जनता के क्रांतिकारी आन्दोलन के खिलाफ़ हमेशा छिपे संघर्ष से ही काम न लेती थी, क्रांति के खिलाफ़ छिपकर साजिशें करने से ही संतुष्ट न थी। वह कभी–कभी जनवादी अधिकारों पर खुला हमला करने की कोशिश करती थी, 'अनुशासन बहाल करने की कोशिश करती थी', खास तौर से सैनिकों में कोशिश करती थी, 'व्यवस्था कायम करने' यानि क्रांति को ऐसी धाराओं में बहाने की कोशिश करती थी जो पूंजीपतियों की ज़रूरतों के माकूल थीं। लेकिन, इस दिशा में उसकी सभी कोशिशें नाकाम हुईं। लोग आतुरता से अपने जनवादी अधिकारों का यानि भाषण, प्रेस, सभा–संगठन बनाने, मीटिंगें और प्रदर्शन करने की आजादी का इस्तेमाल करते थे। मजदूरों और सैनिकों ने कोशिश की कि हाल में जीते हुये जनवादी अधिकारों को पूरा उपयोग करें, जिससे कि वे देश के राजनीतिक जीवन में सक्रिय हिस्सा ले सकें, हालात को समझदारी से पहचान सकें और आगे क्या करना चाहिये इसका फैसला कर सकें।

फरवरी क्रांति के बाद, बोल्शेविक पार्टी के संगठन, जो ज़ारशाही की बेहद कठिन परिस्थितियों में ग़ैरकानूनी तौर पर काम करते रहे थे, गुप्त जीवन से बाहर निकले और खुल कर राजनीतिक तथा संगठनात्मक काम आगे बढ़ने लगे। उस समय, बोल्शेविक संगठनों के चालीस या पैंतालीस हजार से ज्यादा सदस्य न थे। लेकिन, ये सब संघर्ष में निखरे हुये पक्के क्रांतिकारी थे। पार्टी–कमिटियां जनवादी केन्द्रियता के उसूल पर फिर से संगठित की गयीं। ऊपर से लेकर नीचे तक, सभी पार्टी संस्थाओं का निर्वाचित होना ज़रूरी हो गया।

जब पार्टी ने अपना कानूनी जीवन शुरू किया, तो उसके भीतर मतभेद स्पष्ट होकर सामने आये। कामेनेव और मास्को–संगठन के कई मज़दूर, मिसाल के लिये राइकोव, बुबनोव और नोगिन यह अर्द्ध–मेन्शेविक विचार पेश करते थे कि कुछ शर्तों के साथ अस्थायी सरकार और सुरक्षावादियों को नीति का समर्थन किया जाये। स्तालिन,

जो हाल ही में, निर्वासन से लौटे थे, मोलोतोव और दूसरों ने पार्टी के बहुमत के साथ अस्थाई सरकार में अविश्वास की नीति का समर्थन किया, सुरक्षावाद का विरोध किया और शांति के लिये सक्रिय संघर्ष करने के लिये, साम्राज्यवादी युद्ध के खिलाफ़ संघर्ष करने के लिये बुलावा दिया। पार्टी के कुछ कार्यकर्ताओं ने ढुलमुलपन दिखाया, जो उनके राजनीतिक पिछड़ेपन की निशानी था, बहुत दिन तक जेल में या निर्वासन में रहने का नतीजा था।

पार्टी के नेता लेनिन का अभाव महसूस हो रहा था।

3 (16) अप्रैल 1917 को, निर्वासन की लम्बी अवधि के बाद लेनिन रूस लौटे।

लेनिन का आना पार्टी और क्रांति के लिये अत्यंत महत्व की बात थी।

लेनिन जब स्विट्जरलैंड में थे, तभी उन्होंने क्रांति की पहली ख़बर मिलने पर पार्टी और रूस के मजदूर वर्ग के नाम "सुदूर के पत्र" लिखे थे, जिनमें उन्होंने कहा था :

> "मजदूरों, तुमने ज़ारशाही के खिलाफ़ गृहयुद्ध में सर्वहारा की वीरता, जनता की वीरता के चमत्कार दिखलाये हैं। अब क्रांति की दूसरी मंजिल में अपनी जीत के लिये रास्ता साफ करने के लिये तुम्हें संगठन के चमत्कार, सर्वहारा और तमाम जनता के संगठन के चमत्कार दिखाने चाहिये।" (लेनिन, ***सं•ग्रं•***, अं•सं•, मास्को, 1947, खण्ड 1, पृष्ठ741)

3 अप्रैल की रात को, लेनिन पेत्रोग्राद आये। फ़िनलैंड रेलवे स्टेशन पर और स्टेशन के चौराहे पर उनका स्वागत करने के लिये हजारों मजदूर, सैनिक और मल्लाह इकट्ठे हुये। लेनिन जब ट्रेन से उतरे, तब जनता का उत्साह अवर्णनीय था। उसने अपने नेता को कंधों तक ऊंचा उठा लिया और स्टेशन के मुख्य वेटिंगरूम तक ले गयी। वहां पेत्रोग्राद–सोवियत की तरफ से मेन्शेविक चखाइत्जे और स्कोबलेव ने 'स्वागत' भाषण आरंभ कर दिये, जिसमें उन्होंने 'आशा प्रकट की' कि वे और लेनिन एक 'मुश्तर्का जुबान' पा सकेंगे। लेकिन, लेनिन उनकी बात सुनने के लिये रुके नहीं। उनके पास से तेजी से निकलते हुये, वह आम मजदूरों और सैनिकों के पास पहुंच गये। हथियारबंद गाड़ी पर चढ़कर उन्होंने अपना प्रसिद्ध भाषण दिया, जिसमें उन्होंने समाजवादी क्रांति की विजय के लिये आम जनता को लड़ने के लिये बुलावा दिया। 'समाजवादी क्रांति जिन्दाबाद!' – इन शब्दों के साथ, निर्वासन की लम्बी अवधि के बाद लेनिन ने अपना पहला भाषण खत्म किया।

रूस में वापस आकर, लेनिन जोरशोर से क्रांतिकारी काम में जुट गये। आने के दूसरे दिन ही, युद्ध और क्रांति के विषय पर बोल्शेविकों की एक मीटिंग में उन्होंने रिपोर्ट दी और उसके बाद मेन्शविकों और बोल्शेविकों की एक मिली–जुली मीटिंग में रिपोर्ट की **सैद्धांतिक स्थापनाओं (थीसिस)** को दुहराया।

ये लेनिन की मशहूर अप्रैल थीसिस थी, जिससे पार्टी और सर्वहारा वर्ग को पूंजीवादी क्रांति से समाजवादी क्रांति की तरफ बढ़ने के लिये स्पष्ट क्रांतिकारी नीति मिली।

लेनिन की सैद्धान्तिक स्थापनायें क्रांति के लिये और पार्टी के अगले काम के लिये भारी महत्व रखती थीं। क्रांति देश के जीवन में बहुत ही महत्वपूर्ण मोड़ थी। ज़ारशाही के खात्मे के बाद, संघर्ष की जो नयी हालत पैदा हुई, उसमें पार्टी के लिये एक नया दृष्टिकोण ज़रूरी था, जिससे कि वह हिम्मत और विश्वास के साथ नयी राह पर आगे बढ़ सके। लेनिन की इन स्थापनाओं ने पार्टी को यही दृष्टिकोण दिया।

लेनिन की अप्रैल की सैद्धांतिक स्थापनाओं ने पूंजीवादी–जनवादी क्रांति से समजवादी क्रांति की तरफ, क्रांति की पहली मंजिल से दूसरी मंजिल की तरफ़ – समाजवादी क्रांति की मंजिल की तरफ़–बढ़ने के लिये संघर्ष की एक सुन्दर योजना रखी। पार्टी के समूचे इतिहास ने इस महान कार्य के लिये उसे तैयार किया था। 1905 के दिनों में भी, लेनिन ने अपनी पुस्तिका ***जनवादी क्रांति में सोशल–डेमोक्रेसी की दो कार्यनीतियां*** में कहा था कि ज़ारशाही का खात्मा होने के बाद सर्वहारा वर्ग समाजवादी क्रांति के लिये बढ़ेगा। इन स्थापनाओं में नई बात यह थी कि समाजवादी क्रांति की तरफ बढ़ने की प्रारंभिक मंजिल के लिये ठोस और सिद्धांत पर आधारित योजना दी गयी थी।

आर्थिक क्षेत्र में, बीच के दौर के ये कदम उठाने थे : सारी ज़मीन का राष्ट्रीयकरण और रियासती ज़मीन की ज़ब्ती, सभी बैंकों को मिलाकर एक राष्ट्रीय बैंक बनाना जो मज़दूर प्रतिनिधियों की सोवियत के नियंत्रण में हो, और चीज़ों की सामाजिक पैदावार और उनके वितरण पर नियंत्रण कायम करना।

राजनीतिक क्षेत्र में, लेनिन ने प्रस्ताव किया कि पार्लियामेंटरी प्रजातंत्र से सोवियतों के प्रजातंत्र की तरफ़ बढ़ा जाये। मार्क्सवाद के सिद्धांत और अमल में यह एक आगे बढ़ा हुआ महत्वपूर्ण कदम था। अभी तक मार्क्सवादी सिद्धांतकार यह समझते रहे थे कि समाजवाद की तरफ़ बढ़ने के लिये पार्लियामेंटरी प्रजातंत्र सबसे अच्छा राजनीतिक रूप है। अब लेनिन ने प्रस्ताव किया कि पूंजीवाद से समाजवाद की तरफ बढ़ने के

दौर में पार्लियामेंटरी प्रजातंत्र की जगह पर सोवियात प्रजातंत्र ले, जो इस दौर के लिये समाज के राजनीतिक संगठन का सबसे उपयुक्त रूप होगा।

इन स्थापनाओं में कहा गया था :

"रूस की मौजूदा हालत की अपनी विशेषता यह है कि वह क्रांति की पहली मंजिल से – जबकि मजदूरों में वर्ग–चेतना और संगठन नाकाफ़ी होने से सत्ता पूंजीपतियों के हाथ में सौंप दी गयी – **दूसरी मंजिल की तरफ़ बढ़ना है,** जबकि सत्ता सर्वहार वर्ग और किसानों के सबसे ग़रीब हिस्से के हाथ में ज़रूर आयेगी"। (***उप.,*** खण्ड 2, पृष्ठ 18)।

और आगे भी :

"पार्लियामेंटरी प्रजातंत्र नहीं – मजदूर प्रतिनिधियों की सोवियातों से पार्लियामेंटरी प्रजातंत्र की तरफ लौटना पीछे क़दम उठाना होगा – बल्कि समूचे देश में, ऊपर से नीचे तक, मजदूर, खेत–मजदूर और किसान प्रतिनिधियों की सोवियतों का प्रजातंत्र।" (***उप.,*** पृष्ठ 18)।

नयी हुकूमत में, अस्थाई सरकार के राज में, लेनिन ने कहा कि युद्ध का रूप अब भी लुटेरा साम्राज्यवादी बना हुआ है। पार्टी का यह काम था कि आम जनता को समझाये और उसे यह दिखलाये कि जब तक पूंजीपतियों का तख्ता न उल्टा जायेगा तब तक एक सच्ची जनवादी शांति करके, न कि लूट–खसोट की शांति करके, युद्ध खत्म करना असंभव होगा।

जहां तक अस्थाई सरकार का सवाल था, लेनिन ने यह **नारा दिया : 'अस्थाई सरकार को कोई मदद न दो!'**

इन स्थापनाओं में, लेनिन ने और आगे बताया कि सोवियतों में हमारी पार्टी अब भी अल्पसंख्या में है : सोवियतों पर मेन्शेविकों और समाजवादी क्रांतिकारियों का गुट हावी है, जो कि सर्वहारा वर्ग पर पूंजीवादी असर फैलाने का साधन है। इसलिये, पार्टी का काम यह है :

> "आम जनता को यह समझाना चाहिये कि क्रान्तिकारी हुकूमत का **एक ही मुमकिन** रूप है, और वह है – मजदूर प्रतिनिधियों की सोवियतें। इसलिये, हमारा काम है कि जब तक यह हुकूमत पूंजीपतियों के असर के सामने घुटने टेकती जाती है, तब तक उसकी ग़लतियां और उसकी कार्यनीति धीरज के साथ,

बाकायदा और लगातार जनता को **समझायें** और जनता की अमली ज़रूरतों को खास तौर से ध्यान में रखते हुये समझायें। जब तक हम अल्पसंख्या में हैं, तब तक हम आलोचना करने और ग़लतियों का पर्दाफाश करने का काम करते रहेंगे और साथ ही इस बात का प्रचार करेंगे कि पूरी राज्य–शक्ति मजदूर प्रतिनिधियों की सोवियतों को सौंपना ज़रूरी है...।" (लेनिन, ***सं•ग्रं•***, रू•सं•, खण्ड 20, पृष्ठ 88)

इसका मतलब यह था कि लेनिन अस्थाई सरकार के ख़िलाफ़ विद्रोह करने का बुलावा न दे रहे थे। उस समय, उसे सोवियतों का विश्वास प्राप्त था। लेनिन उसका तख्ता उलटने की मांग न कर रहे थे, बल्कि वह चाहते थे कि समझाने और भर्ती करने के काम के ज़रिये सोवियतों में बहुमत क़ायम किया जाये, सोवियतों की नीति बदली जाये और सोवियतों के ज़रिये हुकूमत की बनावट और नीति बदली जाये।

यह ऐसी नीति थी जो अपने तईं क्रान्ति का शान्तिमय विकास देखती थी।

लेनिन ने यह मांग की कि 'पुरानी वर्दी' उतार फेंकी जाये, यानी पार्टी अब अपने को सोशल–डेमोक्रेटिक पार्टी न कहे। दूसरी इन्टरनेशनल की पार्टियाँ और रूसी मेन्शेविक अपने को सोशल–डेमोक्रेट कहते थे। अवसरवादियों ने, समाजवाद से दगा करने वालों ने इस नाम को ज़लील किया था और उस पर कालिख पोत दी थी। लेनिन ने प्रस्ताव किया कि बोल्शेविकों की पार्टी **कम्युनिस्ट पार्टी** कहलाये, जो नाम मार्क्स और एंगेल्स ने अपनी पार्टी को दिया था। यह नाम वैज्ञानिक रूप से सही था, क्योंकि बोल्शेविक पार्टी का अंतिम उद्देश्य कम्युनिज़्म हासिल करना था। मनुष्य जाति पूंजीवाद से सीधी बढ़कर समाजवाद की तरफ ही जा सकती है, यानी पैदावार के साधनों की मिलीजुली मिल्कियत और हरेक के काम के अनुसार उपज के बँटवारे की तरफ ही जा सकती है। लेनिन ने कहा कि हमारी पार्टी इससे और आगे देखती है। यह लाज़िमी है कि समाजवाद क्रमशः कम्युनिज़्म की मंजिल में प्रवेश करे, जिसके झंडे पर यह उसूल लिखा हुआ था : 'हरेक से उसकी योग्यता के अनुसार, हरेक को उसकी जरूरत के अनुसार !'

अंत में, लेनिन ने अपनी सैद्धान्तिक स्थापनाओं में मांग की कि एक नयी इन्टरनेशनल, तीसरी, कम्युनिस्ट इन्टरनेशनल बनायी जाये, जो अवसरवाद और अंधराष्ट्रवाद से मुक्त हो।

लेनिन की सैद्धान्तिक स्थापनायें देख कर, पूंजीपति, मेन्शेवकि और समाजवादी क्रान्तिकारी झल्लाकर चीख उठे।

मेन्शेविकों ने मजदूरों के नाम एक ऐलान निकाला, जिसकी शुरुआत इस चेतावनी से होती थी : 'क्रान्ति खतरे में है!' मेन्शेविकों की राय में, खतरा इस बात में था कि बोल्शेविकों ने मजदूर और सैनिक प्रतिनिधियों को सत्ता देने का नारा पेश किया था।

प्लेखानोव ने अपने अख़बार ***येदीम्स्त्वो (एकता)*** में एक लेख लिखा, जिसमें लेनिन के भाषण को **'पागल का प्रलाप'** बतलाया। उसने मेन्शेविक चखाइत्जे के इन शब्दों को उद्धृत किया : "अकेला लेनिन क्रान्ति से बाहर रहेगा और हम अपने रास्ते पर बढ़ते ही जायेंगे।"

14 अप्रैल को, बोल्शेविकों का पेत्रोग्राद नगर–सम्मेलन हुआ।

सम्मेलन ने लेनिन की सैद्धान्तिक स्थापनाओं को मंजूर किया और उन्हें अपने काम का आधार बनाया।

थोड़े ही समय में, पार्टी के स्थानीय संगठनों ने भी लेनिन की स्थापनाओं को मंजूर कर लिया।

कामेनेव, राइकोव और प्याताकोव जैसे कुछ व्यक्तियों को छोड़कर, **समूची पार्टी** ने लेनिन की स्थापनाओं को बहुत ही संतोष के साथ स्वीकार किया।

2. अस्थायी सरकार के संकट की शुरुआत। बोल्शेविक पार्टी की अप्रैल कान्फ्रेन्स।

जबकि बोल्शेविक क्रान्ति को और आगे बढ़ाने की तैयारी कर रहे थे, तब अस्थायी सरकार जनता के खिलाफ़ काम करती जा रही थी। 18 अप्रैल को अस्थायी सरकार के वैदेशिक मंत्री मिल्यूकोव ने मित्र–देशों को सूचित किया कि "तमाम जनता विश्वयुद्ध को तब तक चालू रखना चाहती है जब तक कि निश्चित विजय न मिल जाये; और अस्थायी सरकार मित्र–देशों के प्रति ली हुई अपनी जिम्मेदारी पूरी तरह से निबाहेगी।"

इस तरह, अस्थायी सरकार ने ज़ार की संधियों के प्रति अपनी वफ़ादारी की कसम खाई और जनता का उतना खून बहाते जाने का वायदा किया जितना कि साम्राज्यवादियों को 'निश्चित विजय' के लिये दरकार हो।

19 अप्रैल को, मजदूरों और सैनिकों को इस बयान ("मिल्यूकोव के नोट") का पता लगा। 20 अप्रैल को, बोल्शेविक पार्टी की केन्द्रीय समिति ने अस्थायी सरकार की साम्राज्यवादी नीति के खिलाफ़ विरोध प्रदर्शित करने के लिये कहा। 20–21 अप्रैल (3–4 मई) 1917 को, कम से कम एक लाख मजदूरों और सैनिकों ने "मिल्यूकोव के नोट" पर गुस्से में भर कर, प्रदर्शन में भाग लिया। उनके झंडों पर ये मांगें लिखी हुई थीं : **'गुप्त संधियाँ प्रकाशित करो!' – 'युद्ध मुर्दाबाद' – 'सारी सत्ता सोवियतों को दो!'** मजदूर और सैनिक शहर के छोर से केन्द्र की तरफ़ चले, जहाँ अस्थायी सरकार की बैठक हो रही थी। नेव्स्की प्रॉस्पैक्ट और दूसरी जगहों पर पूंजीवादी गुटों से टक्करें हुईं।

ज्यादा खुले हुए क्रान्ति–विरोधियों, जैसे कि जनरल कॉनिलोव, ने मांग की कि प्रदर्शनकारियों पर गोली चलायी जाये और इसके लिये हुकुम भी दे दिया, लेकिन सैनिकों ने हुकुम मानने से इन्कार कर दिया।

प्रदर्शन के दौर में, पेत्रोग्राद पार्टी–कमिटी के सदस्यों के एक छोटे से गुट (बग़दात्येव वग़ैरह) ने यह नारा दिया कि अस्थायी सरकार को तुरंत खत्म कर दिया जाये। बोल्शेविक पार्टी की केन्द्रीय समिति ने इन 'वाम पंथी' मुहीमबाज़ों के व्यवहार की तीव्र निन्दा की और इस नारे को असामयिक और गलत समझा, जो सोवियतों में बहुमत बनाने की पार्टी की कोशिशों में बाधा डालता था और क्रान्ति के शान्तिमय विकास की पार्टी की नीति के खिलाफ़ पड़ता था।

20–21 अप्रैल की घटनाओं ने दिखला दिया कि अस्थायी सरकार का संकट शुरु हो गया है।

मेन्शेविकों और समाजवादी क्रान्तिकारियों की समझौतावादी नीति में यह पहली गंभीर फूट पड़ी।

2 मई 1917 को, आम जनता के दबाव से मिल्यूकोव और गुचकोव अस्थायी सरकार से अलग कर दिये गये।

पहली **संयुक्त** अस्थायी सरकार बनायी गयी। पूंजीपतियों के प्रतिनिधियों के अलावा, इसमें मेन्शेविक (स्कोबेलेव और त्सेरेतेली) और समाजवादी क्रान्तिकारी (चरनोव, करैन्स्की वगैरह) भी थे।

इस तरह, जिन मेन्शेविकों ने 1905 में ऐलान किया था कि सोशल डेमोक्रैटिक पार्टी के प्रतिनिधियों के लिये **क्रान्तिकारी** अस्थायी सरकार में हिस्सा लेना अनुचित

है, उन्होंने अब अपने प्रतिनिधियों के लिये **क्रान्ति–विरोधी** अस्थायी सरकार में हिस्सा लेना उचित समझा।

इस तरह, मेन्शेविक और समाजवादी क्रान्तिकारी क्रान्ति–विरोधी पूंजीपतियों के खेमे से जा मिले थे।

24 अप्रैल 1917 को, बोल्शेविक पार्टी की सातवीं (अप्रैल) कान्फ्रेन्स शुरु हुई। पार्टी के जीवन में पहली बार खुले आम बोल्शेविक कांफ्रेंस हुई। पार्टी के इतिहास में, इस कांफ्रेंस का महत्व पार्टी कांग्रेस के बराबर है।

अखिल रूसी अप्रैल कांफ्रेंस ने दिखला दिया कि पार्टी प्रबल वेग से बढ़ रही है। कांफ्रेंस में 133 प्रतिनिधि ऐसे आये जो वोट दे सकते थे, और 18 ऐसे थे जो बोल सकते थे मगर वोट न दे सकते थे। ये पार्टी के 80,000 संगठित सदस्यों के प्रतिनिधि थे।

युद्ध और क्रान्ति के सभी बुनियादी सवालों पर : मौजूदा हालत, युद्ध अस्थायी सरकार, सोवियतें, खेती का मसला, जातियों का सवाल वगैरह पर कांफ्रेंस ने विचार किया और पार्टी नीति निर्धारित की।

अपनी अप्रैल की स्थापनाओं में लेनिन ने जो सिद्धान्त पहले ही रखे थे, उन्हें अपनी रिपोर्ट में विस्तृत किया। पार्टी का काम था कि क्रान्ति की पहली मंजिल से दूसरी मंजिल की तरफ़ बढ़ना पूरा करे। पहली मंजिल ने "सत्ता पूंजीपतियों को सौंपी थी जबकि **दूसरी** मंजिल सर्वहारा वर्ग और किसानों के सबसे गरीब हिस्से के हाथ सत्ता सौंपेगी।" **(लेनिन)**। पार्टी को जिस रास्ते पर चलना था, वह समाजवादी क्रान्ति की तैयारी का रास्ता था। पार्टी का फौरी काम लेनिन ने इस नारे में पेश किया : 'सारी सत्ता सोवियतों को दो!'

'सारी सत्ता सोवियतों को दो!' – इस नारे का मतलब था कि दुहरी सत्ता को खत्म करना जरूरी है, यानी अस्थायी सरकार और सोवियतों के बीच सत्ता के बांटवारे को खत्म करना जरूरी है, सोवियतों को सारी सत्ता सौंपना ज़रूरी है और हुकूमत की संस्थाओं से जमींदारों और पूंजीपतियों के प्रतिनिधियों को निकाल बाहर करना जरूरी है।

कांफ्रेंस ने तय किया कि पार्टी का एक बहुत ही महत्वपूर्ण काम अथक रूप से जनता को यह सच्चाई समझाना है कि "अस्थायी सरकार स्वभाव से ही जमींदारों और पूंजीपतियों की शासन–संस्था है", और जनता को यह समझाना भी जरूरी है

कि समाजवादी क्रान्तिकारियों और मेन्शेविकों की समझौतावादी नीति कितनी घातक है, जो जनता को झूठे वादों से धोखा दे रहे थे और उन पर साम्राज्यवादी युद्ध और क्रान्ति–विरोध के प्रहार करवा रहे थे।

कांफ्रेंस में कामेनेव और राइकोव ने लेनिन का विरोध किया। मेन्शेविकों की बात दुहराते हुए, उन्होंने दावा किया कि रूस समाजवादी क्रान्ति के लिये तैयार नहीं है और पूंजीवादी प्रजातंत्र ही रूस में संभव है उन्होंने पार्टी और मजदूर वर्ग से सिफ़ारिश की कि वे अपना काम अस्थायी सरकार पर 'नियंत्रण' कायम रखने तक सीमित रखें। हक़ीक़त में, मेन्शेविकों की तरह वे पूंजीवाद और पूंजीपतियों की सत्ता को बनाये रखना चाहते थे।

कांफ्रेंस में ज़िनोवियेव ने भी लेनिन का विरोध किया। विरोध इस सवाल पर था कि बोल्शेविक पार्टी ज़िमेरवाल्ड मित्र–मण्डल के साथ रहे, या उससे नाता तोड़ ले और नयी इन्टरनेशनल बनाये। जैसा कि युद्ध–काल ने दिखला दिया था, यह मित्र–मण्डल शान्ति के लिये प्रचार तो करता था लेकिन वास्ताव में युद्ध के पूंजीवादी हिमायतियों से नाता न तोड़ता था। इसलिये लेनिन ने इस मित्र–मण्डल से तुरंत ही अलग हो जाने पर ज़ोर दिया और एक नयी कम्युनिस्ट इन्टरनेशनल बनाने पर ज़ोर दिया। ज़िनोवियेव ने प्रस्ताव किया कि पार्टी ज़िमेरवाल्ड मित्र–मण्डल में ही रहे। लेनिन ने ज़िनोवियेव के प्रस्ताव की ज़ोरों से निन्दा की और उसकी कार्यनीति को 'घोर अवसरवादी और हानिकर' बतलाया।

अप्रैल कांफ्रेंस ने खेती और जातियों के मसले पर भी विचार किया।

खेती के सवाल पर, लेनिन की रिपोर्ट के सिलसिले में कांफ्रेन्स ने रियासती जमीन को जब्त करने के लिये बुलावा देते हुए एक प्रस्ताव मंजूर किया। जब्त की हुई रियासती ज़मीन किसान–कमिटियों के हाथ में हो। प्रस्ताव में ज़मीन के राष्ट्रीयकरण की भी मांग की गयी। बोल्शेविकों ने किसानों से जमीन के लिये लड़ने को कहा और उन्हें दिखलाया कि बोल्शेविक पार्टी ही एक क्रांतिकारी पार्टी है, एक मात्र पार्टी है जो दरअसल जमींदारों का तख्ता उलटने में किसानों को मदद दे रही थी।

जातियों के सवाल पर, कॉमरेड स्तालिन की रिपोर्ट बहुत ही महत्वपूर्ण थी। क्रांति के पहले ही जब साम्राज्यवादी युद्ध शुरू होने लगा था, लेनिन और स्तालिन ने जातियों के मसले पर बोल्शेविक पार्टी की नीति के बुनियादी उसूलों को विस्तृत रूप से पेश किया था। लेनिन और स्तालिन का कहना था कि सर्वहारा पार्टी को साम्राज्यवाद के खिलाफ़ पीड़ित जनता के राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन का समर्थन

करना चाहिये। इसलिये, बोल्शेविक पार्टी जातियों के आत्मनिर्णय के अधिकार का इस हद तक समर्थन करती थी कि जातियां चाहें तो अगल भी हो जायें और अपने स्वतंत्र राज्य बना लें। कॉमरेड स्तालिन ने केन्द्रीय समिति की तरफ़ से कांफ्रेंस में जो रिपोर्ट पेश की, उसमें इसी मत का समर्थन किया।

लेनिन और स्तालिन का विरोध प्याताकोव ने किया। युद्ध–काल में ही, बुखारिन के साथ, उसने जातियों के मसले पर अंधराष्ट्रवादी रुख अपनाया था। प्याताकोव और बुखारिन जातियों के आत्मनिर्णय के अधिकार का विरोध करते थे।

जातियों के मसले पर, पार्टी का रुख दृढ़ और सुसंगत था। जातियों की पूर्ण समानता के लिये और हर तरह के जातीय उत्पीड़न और जातीय विषमता को खत्म करने के लिये पार्टी ने संघर्ष किया। इस वजह से, पार्टी पीड़ित जातियों की सहानुभूति और उनका समर्थन हासिल कर सकी।

जातियों के मसले पर अप्रैल कांफ्रेंस ने जो प्रस्ताव मंजूर किया, उसके शब्द ये थे :

"निरंकुश सत्ता और बादशाही से विरासत के तौर पर मिली हुई, जातीय उत्पीड़न की नीति का समर्थन जमींदार, पूंजीपति और निम्न–पूंजीवादी इसलिये करते हैं कि अपने वर्ग के विशेष अधिकारों को बनाये रखें और विभिन्न जातियों के मजदूरों में फूट डालें। आधुनिक साम्राज्यवाद, जो कमजोर जातियों को गुलाम बनाने के लिये अपनी कोशिशें बढ़ा देता है, एक नया तत्व है जो जातीय उत्पीड़न को तेज कर देता है।

"पूंजीवादी समाज में जातीय उत्पीड़न का खात्मा जिस हद तक भी मुमकिन है, वह एक सुसंगत जनवादी प्रजातंत्र की व्यवस्था और ऐसे राज्य के शासन में ही मुमकिन है जो सभी जातियों और भाषाओं के लिये पूर्ण समानता की गारंटी देता हो।

"रूस में जितनी भी जातियां शामिल हैं, उनके आज़ादी से अलग होने और स्वतंत्र राज्य बनाने के अधिकार को मंजूर करना चाहिये। उनके इस अधिकार को नामंजूर करना या अमल में उसे लागू करने की गारंटी देने के लिये उपाय न करना, दूसरों पर क़ब्जा करने और उन्हें अपने राज में मिलाने की नीति का समर्थन करने के बराबर है। सर्वहारा वर्ग जातियों के अलग होने के हक को माने, तभी विभिन्न जातियों के मजदूरों का सम्पूर्ण भाईचारा पक्का हो सकता है और वास्तविक जनवादी आधार पर जातियां एक–दूसरे के नज़दीक आ सकती हैं।...

"जातियों के अलग होने के हक को किसी खास समय किसी जाति के अलग होने की उपयोगिता से न उलझा देना चाहिये। सर्वहारा वर्ग की पार्टी को चाहिये कि इस दूसरे सवाल को हर बार स्वतंत्र रूप से समूचे सामाजिक विकास के हितों को और समाजवाद के लिये मजदूरों के वर्ग संघर्ष के हितों को ध्यान में रखकर हल करे।

"पार्टी मांग करती है कि बड़े पैमाने पर प्रादेशिक खुदमुख़्तारी हो, ऊपर से निगरानी का अंत हो, लाजिमी, राजभाषा खत्म की जाये और खुदमुख़्तार और स्वायत्त शासन के इलाकों की सीमायें स्थानीय जनता ही आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों, आबादी की जातीय बनावट वगैरह का ध्यान रखते हुए तय करे।

"सर्वहारा वर्ग की पार्टी, जिसे 'जातीय–सांस्कृतिक खुदमुख़्तारी' कहा जाता है, उसे दृढ़ता से नामंजूर करती है। इसके मातहत, शिक्षा वग़ैरह का काम राज्य के अधिकार से अलग कर दिया जाता है और किसी तरह की जातीय सभाओं के अधिकार में दे दिया जाता है। जातीय–सांस्कृतिक खुदमुख़्तारी एक ही जगह रहने वाले और एक ही धंधे में काम करने वाले मज़दूरों को उनकी विभिन्न 'जातीय संस्कृतियों' के अनुसार नकली तौर पर बांट देती है। दूसरे शब्दों में, वह मजदूरों और विभिन्न जातियों की पूंजीवादी संस्कृति के बंधन मजबूत कर देती है, जबकि सोशल–डेमोक्रैटों का लक्ष्य दुनिया के मजदूरों की अंतर्राष्ट्रीय संस्कृति को विकसित करना है।

"पार्टी मांग करती है कि विधान में एक ऐसा बुनियादी कानून रखा जाये जो किसी भी जाति को मिले हुए तमाम विशेषाधिकारों को खत्म कर दे और जातीय अल्पसंख्यकों के अधिकारों पर सभी तरह के आघात बन्द कर दे।

"मजदूर वर्ग के हितों की मांग है कि रूस की सभी जातियों के मजदूरों के सामान्य सर्वहारा संगठन हों : राजनीतिक, ट्रेड यूनियन, सहयोग–समितियों की शिक्षा–संस्थायें वगैरह। इस तरह, विभिन्न जातियों के मजदूरों के सामान्य संगठन होने से ही सर्वहारा वर्ग अंतर्राष्ट्रीय पूंजी और पूंजीवादी राष्ट्रवाद के खिलाफ़ सफलतापूर्वक संघर्ष कर सकेगा।" **(सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) के प्रस्ताव,** रू•सं•, खण्ड 1, पृष्ठ 239–40)।

इस तरह, अप्रैल कांफ्रेंस ने कामेनेव, जिनोवियेव, प्याताकोव, बुखारिन, राईकोव और उनके थोड़े से अनुयायियों के अवसरवादी, लेनिनवाद–विरोधी दृष्टिकोण का पर्दाफाश किया।

सभी महत्वपूर्ण सवालों पर एक स्पष्ट रुख अपनाकर और ऐसा रास्ता अपनाकर जिससे समाजवादी क्रांति की विजय हो, कांफ्रेंस ने एकराय होकर लेनिन का समर्थन किया।

3. राजधानी में बोल्शेविक पार्टी की सफलता। अस्थायी सरकार की फ़ौजों का असफल हमला। मज़दूरों और सैनिकों के जुलाई प्रदर्शन का दमन।

अप्रैल कांफ्रेंस के फ़ैसलों के आधार पर, आम जनता को अपनी तरफ़ करने के लिये और लड़ाई के लिये उसे शिक्षित और संगठित करने के लिये पार्टी ने बड़े पैमाने पर काम चलाया। उस दौर में, पार्टी की नीति यह थी कि धीरज से बोल्शेविक नीति समझाकर और मेन्शेविकों तथा समाजवादी क्रांतिकारियों की समझौतावादी नीति का पर्दाफाश करके इन पार्टियों को जनता से अलग कर दिया जाये और सोवियतों में बहुमत कायम किया जाये।

सोवियतों में काम करने के साथ–साथ, बोल्शेविकों ने ट्रेड यूनियनों और मिल–कमिटियों में बड़े पैमाने पर काम जारी रखा।

खास तौर से, बोल्शेविकों का काम फ़ौज में ज्यदा फैला हुआ था। हर जगह सैनिक संगठन बनने लगे। युद्ध के मोर्चे पर और उसके पीछे सैनिकों और मल्लाहों का संगठन करने के लिये, बोल्शेविक अथक रूप से काम करते रहे। सैनिकों को सक्रिय क्रांतिकारी बनाने में, युद्ध के मोर्चे पर बोल्शेविक अख़बार ***अकोपनाय प्राब्दा (ट्रेन्च सत्य)*** ने खास तौर से महत्वपूर्ण पार्ट अदा किया।

बोल्शेविक आन्दोलन और प्रचार की वजह से, क्रांति के प्रारंभिक महीनों में ही बहुत से शहरों में मज़दूरों ने सोवियतों के, खास तौर से जिला सोवियतों के, नये चुनाव किये, मेन्शेविकों और समाजवादी क्रांतिकारियों को निकाल बाहर किया और उनके बदले बोल्शेविक पार्टी के अनुयायियों को चुना।

बोल्शेविकों के काम का सुंदर फल निकला, खास तौर से पेत्रोग्राद में।

30 मई से 3 जून 1917 तक, मिल–कमिटियों की पेत्रोग्राद कांफ्रेस हुईं। इस कांफ्रेंस में ही तीन–चौथाई प्रतिनिधि बोल्शेविकों के समर्थक थे। लगभग समूचे पेत्रोग्राद का सर्वहारा वर्ग इस बोल्शेविक नारे का समर्थन करता था – 'सारी सत्ता सोवियतों को दो!'

3(16) जून 1917 को, सोवियतों की पहली अखिल रूसी कांग्रेस हुई। सोवियतों में बोल्शेविक अब भी अल्पसंख्या में थे। 700 या 800 मेन्शेविकों, समाजवादी क्रांतिकारियों वगैरह के मुकाबिले में, इस कांग्रेस में उनके 100 से कुछ ऊपर प्रतिनिधि थे।

सोवियतों की पहली कांग्रेस में, बोल्शेविकों ने पूंजीपतियों से समझौता करने के भयानक नतीजों पर लगातार ज़ोर दिया और युद्ध के साम्राज्यवादी रूप का पर्दाफाश किया। कांग्रेस में लेनिन ने भाषण दिया, जिसमें उन्होंने दिखलाया कि बोल्शेविक नीति क्यों सही है। उन्होंने कहा कि सोवियतों की सरकार ही मेहनतकश जनता को रोटी, किसानों को जमीन दे सकती है, शान्ति हासिल कर सकती है और अराजकता से देश को उबार सकती है।

उन दिनों, पेत्रोग्राद के मजदूर–जिलों में एक प्रदर्शन का संगठन करने के लिये और सोवियतों की कांग्रेस के सामने मांगे पेश करने के लिये आम जनता में आन्दोलन चलाया जा रहा था। इस चिंता में कि हमारी आज्ञा के बिना मजदूर प्रदर्शन न करें और इस उम्मीद में कि आम जनता के क्रांतिकारी भावों को अपने हित में इस्तेमाल करें, पेत्रोग्राद–सोवियत की कार्यकारिणी समिति ने फ़ैसला किया कि 18 जून (1 जुलाई) को प्रदर्शन कराया जाये। मेन्शेविकों और समाजवादी क्रांतिकारियों को आशा थी कि यह प्रदर्शन बोल्शेविक–विरोधी नारों के साथ होगा। बोल्शेविक पार्टी इस प्रदर्शन के लिये जोरदार तैयारियां करने लगी। कॉमरेड स्तालिन ने प्राव्दा में लिखा कि "...हमारा यह काम है कि इस बात को पक्का कर दें कि 18 जून को पेत्रोग्राद में होने वाला प्रदर्शन हमारे क्रांतिकारी नारों पर ही हो।"

क्रांति के शहीदों की समाधि पर, 18 जून 1917 का प्रदर्शन हुआ। यह प्रदर्शन बोल्शेविक पार्टी की शक्ति का सचमुच प्रदर्शन ही हुआ। उसने आम जनता की बढ़ती हुई क्रांतिकारी भावना और बोल्शेविक पार्टी में उसका बढ़ता हुआ विश्वास ज़ाहिर किया। अस्थायी सरकार में विश्वास प्रकट करने और युद्ध ज़ारी रखने पर जोर देने वाले मेन्शेविकों और समाजवादी क्रांतिकारियों के नारे बोल्शेविक नारों के समुद्र में डूब गये। चार लाख प्रदर्शनकारी झंडे लिये हुए थे, जिन पर ये नारे लिखे हुये थे : 'युद्ध मुर्दाबाद!', दसों पूंजीवादी मंत्री मुर्दाबाद!', 'सारी सत्ता सोवियतों को दो!'

मेन्शेविकों और समाजवादी क्रांतिकारियों की पूरी हार हुई। देश की राजधानी में अस्थायी सरकार की हार हुई।

फिर भी, अस्थायी सरकार को सोवियतों की पहली कांग्रेस का समर्थन मिला और उसने साम्राज्यवादी नीति चालू करने का फ़ैसला किया। उसी दिन 18 जून को,

अंग्रेज और फ्रांसीसी साम्राज्यवादियों का हुकुम मानते हुए अस्थायी सरकार ने युद्ध के मोर्चे पर सैनिकों को हमला करने के लिये हांक दिया। पूंजीपति समझते थे कि क्रांति को खत्म करने का यही एक रास्ता है। अगर हमला सफल होता तो पूंजीपति उम्मीद करते थे कि सारी सत्ता अपने ही हाथ में ले लेंगे, सोवियतों को मैदान से बाहर निकाल देंगे और बोल्शेविकों को कुचल देंगे। और अगर हमला असफल हुआ, तो सारा दोष बोल्शेविकों के माथे मढ़ा जा सकेगा कि उन्होंने फौज को भीतर से तोड़ दिया है।

इसमें कोई संदेह नहीं था कि हमला असफल होगा। और, वह असफल हुआ। सिपाही चूर हो चुके थे। हमला क्यों हो रहा है, वे न समझते थे। अपने अफसरों में जो उनके लिये गैर थे, उन्हें विश्वास न था। गोला–बारूद और तोपों की कमी थी। इन सब बातों से, हमले का असफल होना पहले से ही तय था।

युद्ध के मोर्चे पर हमले और उसके बाद उसकी असफलता की खबर ने राजधानी को उत्तेजित कर दिया। मजदूरों और सैनिकों के गुस्से का पार न था। यह बात स्पष्ट हो गयी कि जब अस्थायी सरकार शांति की नीति का ऐलान कर रही थी, तब वह जनता की आंखों में धूल झोंक रही थी और यह बात भी जाहिर हो गयी कि अस्थायी सरकार साम्राज्यवादी युद्ध चालू रखना चाहती है। यह बात स्पष्ट हो गयी कि सोवियतों की अखिल रूसी केन्द्रीय कार्यकारिणी समिति और पेत्रोग्राद–सोवियत अस्थायी सरकार की मुजरिमाना हरकत को रोकना नहीं चाहती, या रोक नहीं सकती और खुद उसके पीछे घिसट रही है।

पेत्रोग्राद के मजदूरों और सैनिकों का क्रांतिकारी गुस्सा उबल पड़ा।

3(16) जुलाई को, पेत्रोग्राद के विबोर्ग जिले में अपने–आप प्रदर्शन शुरू हुए। सारे दिन प्रदर्शन जारी रहे। अलग–अलग प्रदर्शन मिलकर एक विशाल आम हथियारबन्द प्रदर्शन बन गये, जिनकी मांग थी कि सत्ता सोवियतों की हो। उस समय बोल्शेविक पार्टी हथियारबन्द कार्यवाही के खिलाफ थी, क्योंकि उसका विचार था कि क्रांतिकारी संकट अभी पका नहीं है, राजधानी में विद्रोह का समर्थन करने के लिये फौज और सूबे अभी तैयार नहीं हैं और वक्त से पहले और अलग–अलग विद्रोह करने से क्रांति के हिरावल को कुचलने में क्रांति विरोधियों को आसानी ही हो सकती है। लेकिन, जब यह ज़ाहिर हो गया कि आम जनता को प्रदर्शन करने से रोकना नामुमकिन है तो पार्टी ने प्रदर्शन में हिस्सा लेने का फैसला किया, जिससे कि उसे शान्तिपूर्ण और संगठित रूप दे सके। बोल्शेविक पार्टी यह करने में कामयाब हुई। लाखों मर्द–औरत पेत्रोग्राद–सोवियत और सोवियतों की अखिल रूसी केन्द्रीय कार्यकारिणी के हैड क्वार्टर की तरफ बढ़े, जहां उन्होंने मांग की कि सोवियतें सत्ता अपने हाथ में लें, साम्राज्यवादी पूंजीपतियों से नाता तोड़ दें और शान्ति की सक्रिय नीति पर चलें।

प्रदर्शन के शान्तिमय रूप के बावजूद, उसके खिलाफ़ प्रतिक्रियावादी दस्ते – अफ़सरों और कैडेटों के दस्ते – लाये गये। पेत्रोग्राद की सड़कें मजदूरों और सैनिकों के खून से लाल हो गयीं। मजदूरों का दमन करने के लिये, युद्ध के मोर्चे से फौज के सबसे जाहिल और क्रांति–विरोधी दस्ते बुलाये गये।

मजदूरों और सैनिकों के प्रदर्शन का दमन करने के बाद, पूंजीपतियों और गद्दार जनरलों के सहयोग से मेन्शेविकों और समाजवादी क्रांतिकारियों ने बोल्शेविक पार्टी पर हमला किया। ***प्राव्दा*** के प्रकाशन की जगह तोड़–फोड़ डाली गयी। ***प्राव्दा, सोल्दात्स्काया प्राव्दा (सैनिक सत्य)*** और दूसरे कई बोल्शेविक अख़बार बन्द कर दिये गये। वोईनोव नाम के मजदूर को सिर्फ ***लिस्तोक प्राव्दी (प्राव्दा बुलेटिन)*** बेचने पर कैडेटों ने सड़क पर मार डाला। रेड गार्ड दस्तों के हथियार छीनना शुरू हुआ। पेत्रोग्राद छावनी के क्रांतिकारी दस्ते राजधानी से हटा दिये गये और मोर्चे पर भेज दिये गये। युद्ध के मोर्चे पर और उसके पीछे गिरफ्तारियां हुईं। 7 जुलाई को, लेनिन को पकड़ने के लिये वारंट जारी हुआ। बोल्शेविक पार्टी के कई प्रमुख सदस्य गिरफ्तार कर लिये गये। **त्रूद छापाखाना,** जहां बोल्शेविक अख़बार छपते थे, नष्ट कर दिया गया। पेत्रोग्राद की सेशन अदालत के सरकारी वकील (प्रोक्यूरेटर ने ऐलान किया कि लेनिन और दूसरे कई बोल्शेविकों पर 'राजद्रोह' और सशस्त्र विद्रोह के संगठन का जुर्म लगाया जा रहा है। लेनिन के खिलाफ़ जनरल देनीकिन के हेड क्वार्टर में अभियोग रचा गया और उसका आधार जासूसों और उकसावा पैदा करने वाले दलालों की गवाही था।

इस तरह, संयुक्त अस्थायी सरकार – जिसमें त्सेरेतेली, स्कोबेलेव, करैन्स्की और चर्नोव जैसे मेन्शेविकों और समाजवादी क्रांतिकारियों के प्रमुख प्रनिनिधि शामिल थे – ठेठ साम्राज्यवाद और क्रांति–विरोध की नीची सतह तक उतर आयी। शान्ति की नीति के बदले, उसने युद्ध चालू रखने की नीति अपनायी। जनता के जनवादी अधिकारों की रक्षा करने के बदले, उसने इन अधिकारों को खत्म करने और हथियारों की ताकत से मज़दूरों और सैनिकों का दमन करने की नीति अपनायी।

पूंजीपतियों के प्रतिनिधि गुचकोव और मिल्यूकोव जो कुछ करने में हिचकिचाते थे, उसे करैन्स्की और त्सेरेतेली, चर्नोव और स्कोबेलेव जैसे 'समाजवादियों' ने कर दिखाया।

दुहरी सत्ता खत्म हो गयी।

वह खत्म हुई पूंजीपतियों के हित में क्योंकि सारी सत्ता अस्थायी सरकार के हाथ में आ गयी और सोवियतें, अपने समाजवादी क्रांतिकारी और मेन्शेविक नेताओं के साथ, अस्थायी सरकार का पुछल्ला बन गयी थीं।

क्रांति का शान्तिमय दौर खत्म हो चुका था, क्योंकि अब कार्यक्रम में संगीन शामिल कर ली गयी थी।

बदली हुई हालत को ध्यान में रखते हुए, बोल्शेविक पार्टी ने अपनी कार्यनीति बदलने का फैसला किया। पार्टी अंडरग्राउंड हो गयी। अपने नेता लेनिन के लिये उसने एक हिफ़ाज़त की जगह छिपने के लिये तय की और इस उद्देश्य से विद्रोह की तैयारी में लग गयी कि पूंजीपतियों की सत्ता को हथियारों की ताकत से खत्म किया जाये और सोवियतों की सत्ता कायम की जाये।

4. बोल्शेविक पार्टी सशस्त्र विद्रोह की तैयारी का रास्ता अपनाती है। छठी पार्टी कांग्रेस।

बोल्शेविक पार्टी की कांग्रेस पेत्रोग्राद में उस समय हुई जब कि पूंजीवादी और निम्नपूंजीवादी अखबारों में बोल्शेविकों के खिलाफ़ धुआंधार प्रचार हो रहा था। पांचवीं (लन्दन) कांग्रेस के दस बरस बाद और बोल्शेविक की प्राग कांफ्रेंस के पांच साल बाद, यह कांफ्रेंस हो रही थी। कांग्रेस गुप्त रूप से हुई और 26 जुलाई से 3 अगस्त 1917 तक उसका अधिवेशन जारी रहा। अखबारों में इतना ही छपा कि कांग्रेस होगी, कहां होगी, यह गुप्त रखा गया। पहला अधिवेशन विबोर्ग जिले में हुआ, बाद के अधिवेशन नारवा फाटक के पास एक स्कूल में हुए, जहां पर अब संस्कृति–गृह है। पूंजीवादी अखबारों ने मांग की कि प्रतिनिधियों को गिरफ्तार कर लिया जाये। बदहवास जासूस शहर की खाक छानते रहे कि कांग्रेस कहां हो रही है, लेकिन सब बेकार।

और इस तरह, ज़ारशाही के खात्मे के पांच महीने बाद ही बोल्शेविकों की गुप्त रूप से मिलने के लिये मजबूर होना पड़ा जबकि सर्वहारा पार्टी के नेता लेनिन को छिपने के लिये विवश होना पड़ा और उन्होंने राजलिव स्टेशन के पास एक झोंपड़ी में आसरा ढूंढा।

अस्थायी सरकार के कुत्ते उन्हें हर तरफ़ खोजने में लगे हुए थे और इसलिये, लेनिन कांग्रेस में शामिल न हो सके। लेकिन, अपने छिपने की जगह से अपने नजदीकी साथी और शिष्य, जो पेत्रोग्राद में थे, स्तालिन, स्वेर्दलोव, मोलोतोव और और्जोनिकित्से के ज़रिये उसके काम का पथ–प्रदर्शन करते रहे।

कांग्रेस में 157 वोट देने वाले प्रतिनिधि थे, और 128 बोलने वाले, लेकिन वोट न देने वाले प्रतिनिधि थे। उस समय, पार्टी के लगभग 2 लाख 40 हजार सदस्य थे। 3 जुलाई को, यानी इसके पहले कि मजदूर प्रदर्शन भंग किया गया, जबकि बोल्शेविक

अभी कानूनी तौर से काम कर रहे थे, पार्टी के 41 प्रकाशन थे, जिनमें 29 रूसी में थे और 12 दूसरी भाषाओं में।

जुलाई के दिनों में, बोल्शेविकों और मजदूर वर्ग पर जो दमन हुआ, उससे पार्टी का असर कम होना तो दूर, वह और बढ़ा। सूबों से आये हुए प्रतिनिधियों ने बहुत से तथ्य दिये, जिनसे पता चलता था कि झुंड के झुंड मज़दूर और सैनिक मेन्शेविकों और समाजवादी क्रांतिकारियों से टूटने लगे हैं और नफ़रत से उन्हें 'सामाजिक जेलर' कहने लगे हैं। मेन्शेविक और समाजवादी क्रांतिकारी पार्टियों के मज़दूर और सैनिक गुस्से और नफ़रत से अपनी सदस्यता के कार्ड फाड़ कर फेंक रहे थे और वे बोल्शेविक पार्टी में भर्ती होने के लिये अर्जियां देने लगे थे।

कांग्रेस में जिन मुख्य बातों पर बहस हुई, वह केन्द्रीय समिति की राजनीतिक रिपोर्ट थी और राजनीतिक परिस्थिति थी। इन दोनों सवालों पर, कॉमरेड स्तालिन ने रिपोर्टें पेश की। उन्होंने बहुत ही स्पष्टता से दिखलाया कि क्रांति दबाने के लिये पूंजीपतियों की तमाम कोशिशों के बावजूद वह बढ़ रही है और विकसित हो रही है। उन्होंने बतलाया कि क्रांति ने फ़ौरी कार्यक्रम के लिये ये काम पेश कर दिये हैं : उपज की पैदावार और बंटवारे पर मज़दूरों का नियंत्रण कायम किया जाये, जमीन किसानों को दी जाये और सत्ता पूंजीपतियों से लेकर मज़दूर वर्ग और गरीब किसानों को दी जाये, उन्होंने कहा कि क्रांति समाजवादी क्रांति का रूप ले रही है।

देश की राजनीतिक हालत जुलाई के दिनों के बाद बुनियादी तौर से बदल गयी थी। दुहरी सत्ता का खात्मा हो चुका था समाजवादी क्रांतिकारियों और मेन्शेविकों द्वारा संचालित सोवियतों ने पूरी सत्ता लेना नामंजूर कर दिया था और इसलिये, अब सारी सत्ता उनके हाथ से निकल गयी थी। अब सत्ता पूंजीवादी अस्थायी सरकार के हाथ में केंद्रित थी और यह सरकार क्रांति को निश्शस्त्र करती जाती थी, उसके संगठनों को तोड़ती और बोल्शेविक पार्टी का नाश करती जा रही थी। क्रांति के शांतिमय विकास की संभावना खत्म हो चुकी थी। कॉमरेड स्तालिन ने कहा कि सिर्फ एक चीज बाकी रह गयी है और वह यह कि अस्थायी सरकार का तख़्ता उलट कर बल के बूते पर सत्ता छीनो। और ग़रीब किसानों के सहयोग से, सर्वहारा वर्ग ही बल के बूते पर सत्ता छीन सकता है।

जिन सोवियतों पर मेन्शेविक और समाजवादी क्रांतिकारी अब भी हावी थे, वे पूंजीपतियों के खेमें में पहुंच गयी थीं और उस समय की हालत में उनसे यही उम्मीद की जा सकती थी कि वे अस्थायी सरकार के पुछल्ले का काम करेंगी। कॉमरेड स्तालिन ने कहा कि अब जुलाई के दिनों के बाद 'सारी सत्ता सोवियतों को दो!'

– यह नारा वापस लेना था। लेकिन, अस्थायी तौर से इस नारे को वापस लेने का मतलब यह जरा भी न था कि सोवियतों का सत्ता के लिये संघर्ष छोड़ दिया जाये। सवाल क्रांतिकारी संघर्ष की संस्थाओं के रूप में आम सोवियतों का न था, बल्कि सिर्फ़ मौजूदा सोवियतों का था, उन सोवियतों का जिन पर मेन्शेविक और समाजवादी क्रांतिकारी हावी थे।

कॉमरेड स्तालिन ने कहा :

"क्रांति का शान्तिमय दौर खत्म हो चुका है ; एक गैर शान्तिमय दौर, टक्करों और विस्फोटों का दौर शुरू हुआ है।" ***(रू•सो•डे•ले•पा• की छठी कांग्रेस की शब्दशः रिपोर्ट,*** रू•सं•, पृ• 111)।

पार्टी सशस्त्र विद्रोह की तरफ़ बढ़ रही थी।

पार्टी में कुछ ऐसे लोग थे जो पूंजीवादी असर ज़ाहिर करते हुए समाजवादी क्रांति का रास्ता अपनाने का विरोध कर रहे थे।

त्रात्स्कीपंथी प्रेओब्राजेन्स्की ने प्रस्ताव रखा कि सत्ता हासिल करने के मसौदे में यह कहा जाये कि पच्छिम में सर्वहारा क्रांति होने पर ही देश समाजवाद की तरफ़ संचालित होगा।

कॉमरेड स्तालिन ने इस त्रात्स्कीपंथी प्रस्ताव का विरोध किया।

उन्होंने कहा :

"यह बात संभावना से परे नहीं है कि रूस ही वह देश होगा जो समाजवाद के लिये रास्ता बनायेगा। ... हमें यह घिसा–पिटा विचार छोड़ देना चाहिये कि यूरोप ही हमें रास्ता दिखा सकता है। एक कठमुल्लेपन का मार्क्सवाद होता है और दूसरा रचनात्मक मार्क्सवाद। मैं दूसरे का समर्थक हूं।" (**उप•**, पृष्ठ 233–34)।

बुखारिन का रुख त्रात्स्कीवादी था। उसने कहा कि किसान युद्ध का समर्थन करते हैं, उनकी गुटबंदी पूंजीपतियों से है और वे मजदूर वर्ग का साथ न देंगे।

बुखारिन को मुंहतोड़ जवाब देते हुए, कॉमरेड स्तालिन ने दिखाया कि किसान तरह–तरह के हैं। धनी किसान हैं जो साम्राज्यवादी पूजीपतियों का समर्थन करते हैं, और गरीब किसान हैं जो मजदूर वर्ग से मित्रता करना चाहते हैं और क्रांति की जीत के लिये लड़ाई में उसका समर्थन करेंगे।

कांग्रेस ने प्रेओब्राजेन्स्की और बुखारिन के संशोधन रद्द कर दिये और कॉमरेड स्तालिन के पेश किये हुए प्रस्ताव को मंजूर किया।

कांग्रेस ने बोल्शेविकों के आर्थिक कार्यक्रम पर विचार किया और उसे मंजूर किया। उसकी मुख्य बातें ये थीं : रियासती जमीन की जब्ती और तमाम जमीन का राष्ट्रीयकरण, बैंकों का राष्ट्रीयकरण, बड़े पैमाने के उद्योग–धंधों का राष्ट्रीयकरण और पैदावार तथा वितरण पर मजदूरों का नियंत्रण।

कांग्रेस ने पैदावार पर मजदूरों के नियंत्रण के लिये संघर्ष करने के महत्व पर जोर दिया। इस नियंत्रण को आगे चल कर बड़े कल–कारखानों के राष्ट्रीयकरण के दौर में महत्वपूर्ण पार्ट अदा करना था।

छठी कांग्रेस ने अपने सभी फैसलों में समाजवादी क्रांति की जीत के लिये एक शर्त के रूप में सर्वहारा और गरीब किसानों के सहयोग के लेनिन के सिद्धांत पर खास तौर से जोर दिया।

कांग्रेस ने इस मेन्शेविक मत की निन्दा की कि ट्रेड यूनियन तटस्थ रहें। उसने बताया कि रूस के मज़दूर वर्ग के सामने जो युगान्तरकारी कार्य हैं वे तभी पूरे हो सकते हैं जब ट्रेड यूनियन बोल्शेविक पार्टी का राजनीतिक नेतृत्व मानने वाले लड़ाकू वर्ग–संगठन बने रहें।

कांग्रेस ने नौजवान सभाओं पर, जो उस समय अक्सर अपने–आप बन जाया करती थीं, एक प्रस्ताव मंजूर किया। आगे चल कर पार्टी की कोशिशों के फलस्वरूप, यह तरुण निश्चित रूप से पार्टी के साथ हो गये और उसकी (रिजर्व) शक्ति बन गये।

कांग्रेस ने इस बात पर विचार किया कि लेनिन मुकदमें में हाज़िर हों या न हों। कामेनेव, राइकोव, त्रात्स्की वगैरह कांग्रेस से पहले भी कहते थे कि लेनिन को क्रांति–विरोधी अदालत के सामने आना चाहिये। कॉमरेड स्तालिन मुकदमें में लेनिन के हाज़िर होने का बहुत जोरों से विरोध करते थे। छठी कांग्रेस का मत भी यही था, क्योंकि उसका विचार था कि यह मुकदमा न होगा बल्कि जानमारी होगी। कांग्रेस को जरा भी शक न था कि पूंजीपति सिर्फ़ एक चीज चाहते हैं और वह यह कि पूंजीपतियों के सबसे खतरनाक दुश्मन – लेनिन को जान से मार डाला जाये। कांग्रेस ने क्रांतिकारी सर्वहारा के पूंजीपतियों द्वारा पुलिस–दमन का विरोध किया और लेनिन का अभिवादन करते हुए एक संदेश भेजा।

छठी कांग्रेस ने नयी पार्टी नियमावली मंजूर की। इस नियमावली में कहा गया था कि सभी पार्टी–संगठन जनवादी केन्द्रीयता के उसूल पर बनाये जायेंगे।

इसका मतलब यह था :

1) ऊपर से लेकर नीचे तक, पार्टी की सभी संचालक समितियां चुनी जायेंगी;

2) पार्टी संस्थायें अपने–अपने पार्टी–संगठनों को समय–समय पर अपनी कार्यवाही की रिपोर्ट देंगी;

3) पार्टी में कठोर अनुशासन होगा और अल्पमत बहुमत के मातहत रहेगा;

4) ऊंची समितियों के सभी फैसले नीचे की समितियों और सभी पार्टी सदस्यों के लिये कतई मान्य होंगे।

पार्टी नियमावली में कहा गया था कि दो पार्टी सदस्यों की सिफ़ारिश और स्थानीय संगठन के आम सदस्यों की सभा की मंजूरी पर पार्टी में नये सदस्य स्थानीय पार्टी–संगठनों के ज़रिये भर्ती किये जायेंगे।

छठी कांग्रेस ने मेजरायोन्त्सी और उसके नेता त्रात्स्की को पार्टी में भर्ती किया। यह एक छोटा सा गुट था, जो पेत्रोग्राद में सन् '13 से था और जिसमें त्रात्स्की पंथी मेन्शेविक और कुछ पहले के बोल्शेविक थे जो पार्टी से अलग हो गये थे। युद्ध–काल में मेजरायोन्त्सी एक केन्द्रवादी संगठन था। वे बोल्शेविकों से लड़ते थे, लेकिन बहुत सी बातों से मेन्शेविकों से असहमत थे और इस तरह उनकी स्थिति बीच की, केन्द्रवादी, ढुलमुलपन की थी। छठी कांग्रेस में मेजरायोन्त्सी ने ऐलान किया कि वे सभी बातों पर बोल्शेविकों से सहमत हैं और उन्होंने पार्टी में दाखिल होने की प्रार्थना की। कांग्रेस ने इस उम्मीद में उनकी प्रार्थना मंजूर की कि समय बीतने पर वे सच्चे बोल्शेविक बन जायेंगे। मेजरायोन्त्सी में से कुछ, जैसे वोलोदार्स्की और ऊरीत्स्की, दरअसल बोल्शेविक बन गये। जहां तक त्रात्स्की और उसके कुछ नजदीकी दोस्तों का सवाल था, ये लोग, जैसा कि आगे चल कर मालूम हुआ, पार्टी के हित में काम करने के लिये नहीं बल्कि उसे भीतर से तोड़ने और नष्ट करने के लिये पार्टी में शामिल हुए थे।

छठी कांग्रेस के सभी फ़ैसलों का उद्देश्य यह था कि सर्वहारा वर्ग और सबसे ग़रीब किसानों को सशस्त्र विद्रोह के लिये तैयार किया जाये। छठी कांग्रेस ने पार्टी को सशस्त्र विद्रोह के लिये, समाजवादी क्रांति के लिये आगे बढ़ाया।

कांग्रेस ने एक पार्टी घोषणापत्र निकाला, जिसमें पूंजीपतियों से निर्णायक युद्ध करने के लिये मजदूरों, सैनिकों और किसानों से अपनी शक्ति बटोरने के लिये कहा गया। उसके अंतिम शब्द ये थे : "इसलिये, साथियों, नयी लड़ाइयों के लिये तैयारी करो। दृढ़ता से, मर्दानगी से और शान्ति से, बिना उकसावे में आये हुए अपनी शक्ति बटोरो और अपनी लड़ाकू पांति बनाओ ! मजदूरों और सिपाहियों, पार्टी के झंडे के नीचे इकट्ठे हो ! गांव के सताये हुए लोगों हमारे झंडे के नीचे इकट्ठे हो !

5. क्रांति के खिलाफ़ जनरल कॉर्निलोव का षड्यंत्र। षड्यंत्र का दमन। पेत्रोग्राद और मास्को सोवियतों का बोल्शेविकों से जा मिलना।

समूची सत्ता हथियाकर, पूंजीपतियों ने अब यह कोशिश शुरू की कि कमजोर पड़ चुकी सोवियतों को कुचल दें और खुली क्रांति–विरोधी डिक्टेटरशिप कायम करें। करोड़पति रियाबुशिन्स्की ने बदतमीज़ी से ऐलान किया कि परिस्थिति से निकलने का एक ही चारा है कि 'अकाल और तबाही का फ़ौलादी पंजा जनता के झूठे दोस्तों – जनवादी सोवियतों और कमिटियों – का गला दबा दे।' युद्ध के मौक़े पर कोर्ट मार्शल करके, सैनिकों से भयानक बदला लिया जाता था और झुंड के झुंड लोगों को मौत की सज़ा दी जाती थी। 3 अगस्त 1917 को, प्रधान सेनापति जनरल कॉर्निलोव ने मांग की कि युद्ध के मोर्चे के पीछे भी मौत की सज़ा चालू की जाये।

12 अगस्त को, मास्को के बड़े नाटकघर में अस्थायी सरकार की बुलाई हुई राज्य समिति की बैठक शुरू हुई। उसका उद्देश्य पूंजीपतियों और जमींदारों की शक्ति को बटोरना था। उसमें ज्यादातर जमींदारों के प्रतिनिधि, पूंजीपति, जनरल, अफ़सर और कज़ाक आये थे। सोवियतों के प्रतिनिधि मेन्शेविक और समाजवादी क्रांतिकारी थे।

राज्य समिति को बुलाने के विरोध में, बोल्शेविकों ने उसकी बैठक के पहले दिन मास्को में आम हड़ताल का बुलावा दिया। हड़ताल में अधिकांश मज़दूर शामिल हुए। उसके साथ ही, और कई शहरों में भी हड़तालें हुई।

समाजवादी क्रांतिकारी करैन्स्की ने राज्य समिति में डिंग हांकते हुए धमकी दी कि क्रांतिकारी आन्दोलन की हर कोशिश, जिसमें जमींदारों की जमीन पर किसानों द्वारा अनाधिकार क़ब्जा करने की कोशिश की थी, 'लोहे और खून' से दबा दी जायेगी।

क्रांति–विरोधी जनरल कॉर्निलोव ने सीधे–सीधे मांग की कि 'कमिटी और सोवियतें खत्म कर दी जायें।'

बैंक–साहुकार, सौदागार और कारखानेदार कार्निलोव के जनरल हैड क्वार्टर पर इकट्ठे होने लगे और उसे धन और मदद देने का वायदा करने लगे।

'मित्र–देशों', ब्रिटेन और फ्रांस के प्रतिनिधि भी जनरल कॉर्निलोव के पास आये और मांग की कि क्रांति के खिलाफ कदम उठाने में देर न की जावे।

क्रांति के खिलाफ़ जनरल कॉर्निलोव का षड्यंत्र पक रहा था।

कॉर्निलोव ने खुल्लमखुल्ला अपनी तैयारी की। लोगों का ध्यान बंटाने के लिये, षड्यंत्रकारियों ने यह अफ़वाह फैला दी कि बोल्शेविक विद्रोह की तैयारी कर रहे हैं जो पेत्रोग्राद में 27 अगस्त को – क्रांति के छः महिनों के बाद – होगा। करैन्स्की के नेतृत्व में, अस्थायी सरकार ने खूंखार तरीक़े से बोल्शेविकों पर हमला किया और सर्वहारा पार्टी के खिलाफ़ अपना आतंक और भी फैलाया। इसके साथ ही, जनरल कॉर्निलोव ने फ़ौज इकट्ठी की, जिससे कि उसे पेत्रोग्राद के खिलाफ़ ले जा सके, सोवियतें खत्म करे और एक फ़ौजी डिक्टेटरशिप क़ायम करे।

अपने इस क्रांति–विरोधी काम के लिये, कॉर्निलोव पहले ही करैन्स्की से समझौता कर चुका था। लेकिन जैसे ही कॉर्निलोव का काम शुरू हुआ, वैसे ही करैन्स्की ने अचानक पैंतरा बदला और अपने दोस्त से अलग हो गया। करैन्स्की को डर लगा कि आम जनता कॉर्निलोवपंथियों के खिलाफ़ उठ खड़ी होगी और उन्हें कुचल देगी, साथ ही वह करैन्स्की की पूंजीवादी सरकार का भी सफ़ाया कर देगी, अगर उसने तुरंत ही अपने को कॉर्निलोव–कांड से अलग न किया।

25 अगस्त को, कॉर्निलोव ने जनरल क्रिमोव की कमान में तीसरे घुड़सवार दस्ते को पेत्रोग्राद के खिलाफ़ भेजा और ऐलान किया कि वह 'पितृभूमि की रक्षा' करना चाहते हैं। कॉर्निलोव–विद्रोह देख कर, बोल्शेविक पार्टी की केन्द्रीय समिति ने मजदूरों और सैनिकों को बुलावा दिया कि वे क्रांति–विरोध का सक्रिय रूप से हथियारबन्द विरोध करें। मजदूर जल्दी–जल्दी हथियारबन्द होने लगे और मुकाबिले की तैयारी में लग गये। उन दिनों, रेड गार्ड दस्ते भारी तादाद में बने। ट्रेड यूनियनों ने अपने सदस्यों को बटोरा। पेत्रोग्राद के क्रांतिकारी फ़ौजी दस्ते लड़ाई के लिये तैयार रखे गये। पेत्रोग्राद के चारों तरफ खाइयां खोद दी गयीं, कंटीले तारों की जाली लगा दी गई और शहर की तरफ आने वाली रेलों की पटरियां उखाड़ डाली गयीं। शहर की रक्षा करने के लिये, कई हजार हथियारबन्द मल्लाह क्रोन्स्तात से आये। पेत्रोग्राद की तरफ़ बढ़ने वाली 'खूंखार पल्टन' के पास प्रतिनिधि भेजे गये। 'खूंखार पल्टन' में कॉकेशस के पहाड़ी लोग थे। जब प्रतिनिधियों ने कॉर्निलोव की कार्यवाही का उद्देश्य

उन्हें समझाया, तो उन्होंने आगे बढ़ने से इन्कार कर दिया। कॉर्निलोव के दूसरे दस्तों के लिये भी प्रचारक भेजे गये। जहां भी खतरा था, कॉर्निलोव से लड़ने के लिये क्रांतिकारी समितियां और हैड क्वार्टर बनाये गये।

उन दिनों, अपनी जान के लिये बुरी तरह डरे हुए समाजवादी क्रांतिकारी और मेन्शेविक नेता, जिनमें करैन्स्की भी था, बोल्शेविकों से जान बचाने की प्रार्थना करने लगे। उन्हें अच्छी तरह मालूम था कि राजधानी में बोल्शेविक ही एक समर्थ शक्ति हैं, जो कॉर्निलोव को हरा सकते हैं।

लेकिन, कॉर्निलोव–विद्रोह को कुचलने के लिये आम जनता को बटोरते हुए बोल्शेविकों ने करैन्स्की हुकूमत के खिलाफ़ अपना संघर्ष बन्द नहीं किया। उन्होंने आम जनता के सामने करैन्स्की सरकार, मेन्शेविकों और समाजवादी क्रांतिकारियों का पर्दाफ़ाश किया और बताया कि दरअसल उनकी समूची नीति कॉर्निलोव के क्रांति–विरोधी षड्यंत्र की मदद कर रही है।

इन उपायों का फल यह हुआ कि कॉर्निलोव–विद्रोह दबा दिया गया। जनरल क्रिमोव ने आत्महत्या कर ली। कॉर्निलोव और उसके साथी षड्यंत्रकारी देनिकिन और लुकोम्स्की गिरफ्तार कर लिये गये। (लेकिन, करैन्स्की ने बहुत जल्द ही उन्हें छुड़वा दिया)।

कॉर्निलोव–विद्रोह की हार ने पल भर में दिखला दिया कि क्रांति और क्रांति–विरोध की ताकत कितनी–कितनी है। उसने दिखला दिया कि सारे क्रांति–विरोधी खेमें की, जनरलों और कॉन्स्टीट्यूशनल डेमोक्रेटिक पार्टी से लेकर पूंजीपतियों के जाल में फंसने वाले मेन्शेविकों और समाजवादी क्रांतिकारियों तक की मौत नज़दीक आ पहुंची है। यह बात स्पष्ट हो गयी कि लड़ाई के असह बोझ को बनाये रखने की नीति से और लम्बी लड़ाई से पैदा होने वाली आर्थिक अव्यवस्था की वजह से, आम जनता में मेन्शेविकों और समाजवादी क्रांतिकारियों का असर पूरी तरह कमजोर पड़ चुका है।

कॉर्निलोव–विद्रोह की हार ने यह भी दिखला दिया कि बोल्शेविक पार्टी क्रांति की निर्णायक शक्ति बन चुकी है और क्रांति–विरोध की कोई भी कोशिश खत्म कर सकती है। हमारी पार्टी अभी शासक पार्टी नहीं थी, लेकिन कॉर्निलोव के दिनों में उसने सच्ची हुकूमत करने वाली ताक़त की तरह काम किया। मज़दूर और सैनिक बिना हिचकिचाहट के उसके निर्देश पालन करते थे।

अंत में, कॉर्निलोव–विद्रोह की हार ने दिखला दिया कि ऊपर से मुर्दा दिखने वाली सोवियतों में दरअसल क्रांतिकारी प्रतिरोध करने की भारी शक्ति छिपी हुई है। इसमें

कोई शक नहीं था कि सोवियतों और उनकी क्रांतिकारी कमिटियों ने ही कॉर्निलोव के दस्तों का रास्ता रोक लिया था और उनकी कमर तोड़ दी थी।

कॉर्निलोव के खिलाफ़ संघर्ष ने मजदूर और सैनिक प्रतिनिधियों की मुरझाती हुई सोवियतों में नयी जान डाल दी। उसने उन्हें समझौते की नीति के असर से मुक्त किया। वह उन्हें क्रांतिकारी संघर्ष की खुली राह पर ले आया और उसने उन्हें, बोल्शेविक पार्टी की तरफ मोड़ दिया।

सोवियतों में बोल्शेविकों का असर पहले से भी ज्यादा बढ़ गया।

देहात के जिलों में भी उनका असर तेजी से बढ़ा।

कॉर्निलोव–विद्रोह ने आम किसान जनता के सामने यह बात साफ कर दी कि अगर जमींदार और जनरल बोल्शेविकों और सोवियतों को कुचल पाये, तो उसके बाद वे किसानों पर ही हमला करेंगे। इसलिये, ग़रीब किसान बोल्शेविकों के चारों तरफ और नजदीक सिमटने लगे। जहां तक मध्यम किसानों का सम्बन्ध था, उनके ढुलमुलपन ने अप्रैल से अगस्त 1917 तक के दौर में क्रांति के विकास को रोका था। कॉर्निलोव की हार के बाद, वे बोल्शेविक पार्टी की तरफ निश्चित रूप से झुकने लगे और गरीब किसानों से एका करने लगे। आम किसान जनता यह महसूस करने लगी थी कि बोल्शेविक पार्टी उसे युद्ध से मुक्त कर सकती है और यही पार्टी जमींदारों को कुचल सकती है और किसानों को जमीन देने के लिये तैयार है। सितंबर और अक्तूबर 1917 के महीनों में, किसानों द्वारा रियासती जमीन पर अधिकार करने की घटनायें बेहद बढ़ गयीं। बिना पूछे हुए, जमींदारों के खेत जोतना आम हो गया। किसानों ने क्रांति की राह पकड़ ली थी और पुचकारने से या सज़ा देने वाले दस्ते भेजने से अब वे रुक न सकते थे।

क्रांति का ज्वार उठ रहा था।

सोवियतों के पुनर्जिवन का दौर आया, उनकी बनावट बदलने, उनके **बोल्शेविकरण** का दौर आया। कारखानों, मिलों और फ़ौजी दस्तों में नये चुनाव हुए और उन्होंने मेन्शेविकों और समाजवादी क्रांतिकारियों की जगह सोवियतों में बोल्शेविक पार्टी के प्रतिनिधि भेजे। 31 अगस्त को, कॉर्निलोव पर जीत हासिल करने के दूसरे दिन, पेत्रोग्राद–सोवियत ने बोल्शेविक नीति मंजूर की। पेत्रोग्राद–सोवियत के पुराने मेन्शेविक और समाजवादी क्रांतिकारी सभापति–मण्डल ने, जिसका अग्रणी चखाइत्से था, इस्तीफ़ा दे दिया और इस तरह, बोल्शेविकों के लिये रास्ता साफ़ कर दिया। 5 सितंबर को, मजदूर प्रतिनिधियों की मास्को–सोवियत बोल्शेविकों की तरफ़ आ गयी।

मास्को–सोवियत के समाजवादी क्रांतिकारी और मेन्शेविक सभापति–मण्डल ने भी इस्तीफा दे दिया और बोल्शेविकों के लिये रास्ता साफ कर दिया।

इसका मतलब यह था कि सफल विद्रोह के लिये मुख्य शर्तें पूरी हो चुकी थीं।

'सारी सत्ता सोवियतों को दो !' – यह नारा फिर कार्यक्रम में शामिल हो गया था।

लेकिन यह पुराना नारा नहीं था, मेन्शेविक और समाजवादी क्रांतिकारी सोवियतों को सत्ता सौंपने का नारा नहीं था। अब यह अस्थायी सरकार के खिलाफ़ सोवियतों के विद्रोह का नारा था, जिसका उद्देश्य था कि सोवियतों के हाथ में देश की सारी सत्ता सौंप दी जाये जो अब बोल्शेविकों के नेतृत्व में थीं।

समझौतावादी पार्टियां भीतर से टूटने लगीं।

क्रांतिकारी किसानों के दबाव से, समाजवादी क्रांतिकारी पार्टी में एक वाम पंथी दल बन गया। इसे 'वाम पंथी' समाजवादी क्रांतिकारी दल कहते थे। ये लोग पूंजीपतियों से समझौता करने की नीति नामंजूर करते थे।

मेन्शेविकों में भी 'वामपंथियों' का एक गुट, तथाकथित 'अंतर्राष्ट्रीयतावादी' गुट पैदा हो गया, जो बोल्शेविकों की तरफ़ झुकता था।

जहां तक अराजकतावादियों का सवाल था, इनका असर तो पहले ही नहीं के बराबर था। अब वे छोटी–छोटी टुकड़ियों में बंट गये, जिनमें से कुछ तो चोरों और जासूसों, समाज के सबसे घटिया लोगों, बदमाशों वगैरह से मिल गये। दूसरे लोग दूसरों का माल हड़पने वाले हो गये। और, वे दूसरों का माल हड़पने में 'विश्वास' करने लगे ! ये किसानों और शहर के मामूली लोगों को लूटते थे और मज़दूर क्लबों की जगह और उनकी जमा–जथा हथिया लेते थे। कुछ दूसरे और थे, जो खुल कर क्रांति–विरोधी खेमे से जा मिले, और पूंजीपतियों के चाकर बन कर अपनी जेबें गरम करने लगे। ये लोग हर किसी तरह के प्रभुत्व के खिलाफ़ थे, खास तौर से मजदूरों और किसानों के क्रांतिकारी प्रभुत्व के खिलाफ़ थे, क्योंकि, वे जानते थे कि क्रांतिकारी हुकूमत उन्हें जनता को लूटने और जन–सम्पत्ति चुराने की छूट न देगी।

कॉर्निलोव की हार के बाद, मेन्शेविकों और समाजवादी क्रांतिकारियों ने एक बार और कोशिश की कि क्रांति का उठता हुआ ज्वार दब जाये। इस उद्देश्य से, उन्होंने 12 सितम्बर 1917 को एक अखिल रूसी प्रजातांत्रिक सम्मेलन बुलाया। इसमें सोशलिस्ट

पार्टियों, समझौतावादी सोवियतों, ट्रेड यूनियनों, जेम्स्त्वों, व्यापारी और औद्योगिक हल्कों और फौजी दस्तों के प्रतिनिधि आये थे। सम्मेलन ने प्रजातंत्र की एक अस्थायी समिति बनायी, जिसका नाम ***प्रेद पार्लियामेंट*** था। समझौतावादियों को उम्मीद थी कि इसकी मदद से वे क्रांति रोक लेंगे और देश को सोवियत क्रांति के रास्ते से हटा कर पूंजीवादी वैधानिक विकास की राह पर, पूंजीवादी पार्लियामेंटगीरी की राह पर ले आयेंगे। लेकिन, यह राजनीति के दिवालियों की नाकाम कोशिश थी जो क्रांति के चक्र को रोकने के लिये की गयी थी। उसका नाकाम होना लाजिमी था, और वह नाकाम होकर रही। मजदूर समझौतावादियों की इन पार्लियामेंट सम्बन्धी कोशिशों का मजाक बनाते थे और ***प्रेद पार्लियामेंट (पार्लियामेंट से पूर्व) को 'प्रेद बान्निक' (स्नानगृह से पूर्व)*** कहते थे।

बोल्शेविक पार्टी की केन्द्रीय समिति ने ***प्रेद पार्लियमेंट*** का बायकाट करने का फैसला किया। यह सही है कि ***प्रेद पार्लियामेंट*** में कामेनेव और तेओदोरोविच जैसे लोगों का बोल्शेविक गुट उससे अलग न होना चाहता था, लेकिन पार्टी की केन्द्रीय समिति ने उसे इसके लिये मजबूर किया।

कामेनेव और जिनोवियेव ने इस बात की बहुत जिद की कि ***प्रेद पार्लियामेंट*** में हिस्सा लिया जाये। इस तरह, वे कोशिश कर रहे थे कि पार्टी को विद्रोह की तैयारी करने की राह से हटा दिया जाये। अखिल रूसी जनवादी सम्मेलन के बोल्शेविक गुट की बैठक में बोलते हुए, कॉमरेड स्तालिन ने ***प्रेद पार्लियामेंट*** में हिस्सा लेने का जोरों से विरोध किया। उन्होंने कहा कि ***प्रेद पार्लियामेंट*** 'कॉर्निलोव का गर्भपात है'।

लेनिन और स्तालिन का विचार था कि कुछ दिनों के लिये भी ***प्रेद पार्लियामेंट*** में हिस्सा लेना गलत होगा, क्योंकि इससे आम जनता में यह झूठी आशा पैदा हो सकती थी कि ***प्रेद पार्लियामेण्ट*** मेहनतकश जनता के लिये सचमुच कुछ कर सकती है।

इसके साथ ही, बोल्शेविकों ने सोवियतों की दूसरी कांग्रेस बुलाने के लिये जोरदार तैयारियां कीं। उन्हें आशा थी कि इस कांग्रेस में उनका बहुमत होगा। बोल्शेविक सोवियतों के दबाव से, अखिल रूसी केन्द्रीय कार्यकारिणी समिति में मेन्शेविकों और समाजवादी क्रांतिकारियों की चालबाजियों के बावजूद, सोवियतों की दूसरी अखिल रूसी कांग्रेस अक्तूबर 1917 के दूसरे पखवारे में बुलाई गई।

6. पेत्रोग्राद में अक्तूबर विद्रोह और अस्थायी सरकार की गिरफ्तारी। सोवियतों की दूसरी कांग्रेस और सोवियत सरकार का निर्माण। शान्ति और जमीन पर सोवियतों की दूसरी कांग्रेस के आज्ञा–पत्र। समाजवादी क्रांति की विजय। समाजवादी क्रांति की विजय के कारण।

बोल्शेविकों ने विद्रोह की जोरदार तैयारियां शुरू कीं। लेनिन ने कहा कि दोनों राजधानियों–मास्को और पेत्रोग्राद–में मजदूर और सैनिक प्रतिनिधियों की सोवियतों में बहुमत हासिल करने के बाद, बोल्शेविक अपने हाथ में राज्य सत्ता ले सकते हैं, और उन्हें लेना चाहिये। तय किए हुए रास्ते पर नज़र डालते हुए, लेनिन ने इस बात पर जोर दिया कि 'जनता का बहुमत हमारे **साथ** है।' अपने लेखों और केन्द्रीय समिति और बोल्शेविक संगठनों के नाम अपने खतों में, लेनिन ने विद्रोह की एक विस्तृत योजना बनायी और बतलाया कि फौजी दस्ते, जल–सेना और रेड गार्ड दस्तों को किस तरह इस्तेमाल करना चाहिये, विद्रोह की सफलता निश्चित करने के लिये पेत्रोग्राद के किन मुख्य स्थानों पर **कब्ज़ा** करना चाहिये, इत्यादि।

7 अक्तूबर को, लेनिन गुप्त रूप से फिनलैंड से पेत्रोग्राद आये। 10 अक्तूबर 1917 को, पार्टी की केन्द्रीय समिति की ऐतिहासिक बैठक हुई जिसमें अगले कुछ दिनों में सशस्त्र विद्रोह आरम्भ करने का फ़ैसला किया गया। पार्टी की केन्द्रीय समिति के ऐतिहासिक प्रस्ताव में, जिसे लेनिन ने लिखा था, कहा गया था :

> "केन्द्रीय समिति यह समझती है कि रूसी क्रांति की अंतर्राष्ट्रीय परिस्थिति (जर्मन जल–सेना में विद्रोह, जो समूचे यूरोप में विश्व समाजवादी क्रांति का चरम प्रदर्शन है; रूस की क्रांति का गला घोंटने के उद्देश्य से साम्राज्यवादियों के बीच शान्ति की धमकी), साथ ही सैनिक परिस्थिति (रूसी पूंजीपतियों और करैन्स्की एण्ड कम्पनी का यह निश्चित फ़ैसला कि पेत्रोग्राद जर्मनों को सौंप दिया जाये) और सोवियतों में सर्वहारा पार्टी का बहुमत हासिल करना, – यह सब और इसके साथ यह कि किसान–विद्रोह हो रहे हैं और आम जनता का विश्वास तेजी से पार्टी पर जम रहा है (मास्को के चुनाव), और अंत में एक दूसरे कॉर्निलोव–कांड के लिये जो खुली तैयारी हो रही है (पेत्रोग्राद से फ़ौज वापस बुलाना, पेत्रोग्राद में कज़ाक भेजना, कज़ाकों द्वारा मिन्स्क का घेरा डालना, वगैरह) – इन सब कारणों से, सशस्त्र विद्रोह फ़ौरी कार्यक्रम में शामिल हो गया है।

"इसलिये, यह समझ कर कि सशस्त्र विद्रोह होकर रहेगा और उसके लिये वक्त बिल्कुल आ गया है, केन्द्रीय समिति सभी पार्टी–संगठनों को निर्देश करती है कि वे सभी काम इसी बात को ध्यान में रख कर करें और इसी दृष्टिकोण से सभी अमली सवालों पर (उत्तरी प्रदेश की सोवियतों की कांग्रेस, पेत्रोग्राद से फ़ौजें, हटाना, मास्को और मिन्स्क में हमारी जनता की कार्यवाही वगैरह पर) विचार करें और फ़ैसला करें।" (लेनिन, ***सं•ग्रं•***, अं•सं•, मास्को, 1947, खण्ड 2 पृष्ठ 135)।

केन्द्रीय समिति के दो सदस्य, कामेनेव और जिनोवियेव, इस ऐतिहासिक प्रस्ताव के खिलाफ़ बोले और उन्होंने उसके विरुद्ध वोट दिया। मेन्शेविकों की तरह, वे पूंजीवादी पार्लियामेंटरी प्रजातंत्र का सपना देखते थे और मजदूर वर्ग पर यह कह कर कीचड़ उछालते थे कि समाजवादी क्रांति करने के लिये वह काफ़ी मजबूत नहीं हैं, कि वह सत्ता हाथ में लेने के लिये काफ़ी परिपक्व नहीं हैं।

हालांकि इस बैठक में त्रात्स्की ने सीधे इस प्रस्ताव के खिलाफ़ वोट नहीं दिया, फिर भी उसने एक संशोधन रखा जिससे विद्रोह की संभावना नहीं के बराबर हो जाती और विद्रोह निष्फल हो जाता। उसने प्रस्ताव रखा कि सोवियतों की दूसरी कांग्रेस शुरू होने से पहले विद्रोह शुरू न किया जाये। इस प्रस्ताव का मतलब था – विद्रोह में विलंब करना, उसकी तारीख ज़ाहिर कर देना और अस्थायी सरकार को आगाह कर देना।

बोल्शेविक पार्टी की केन्द्रीय समिति ने विद्रोह का संगठन करने के लिये अपने प्रतिनिधियों को दोल्येत्स प्रदेश, यूराल हैलसिंगफ़ोर्स, क्रोन्स्तात, दक्खिन–पच्छिमी मोर्चा और दूसरी जगहों पर भेजा। पार्टी ने खास तौर से सूबों में विद्रोह का संचालन करने के लिये कॉमरेड वोरोशिलोव, मालोतोव, जेराजिन्स्की आर्जोनिकित्से, किरोव, कगानोविच, कुइवीशेव, फ्रुन्जे, यारोस्लाव्स्की और दूसरे साथियों को मुक़र्रर किया। कॉमरेड ज्दानोव ने यूराल में शाद्रिन्स्क की फ़ौज में काम जारी रखा। केन्द्रीय समिति के प्रतिनिधियों ने सूबों के बोल्शेविक संगठनों के प्रमुख सदस्यों को विद्रोह की योजना बतलायी और पेत्रोग्राद के विद्रोह का समर्थन करने के लिये उन्हें तैयार रहने के लिये बटोरा।

पार्टी की केन्द्रीय समिति के निर्देश से, पेत्रोग्राद–सोवियत की एक क्रांतिकारी फ़ौजी कमिटी बनायी गयी। यह संस्था विद्रोह का क़ानूनी तौर पर चलने वाला हैड क्वार्टर बन गयी।

उधर क्रांति–विरोधी भी जल्दी–जल्दी अपनी शक्ति बटोर रहे थे। फ़ौज के अफ़सरों ने एक क्रांति–विरोधी संगठन बनाया, जिसका नाम अफ़सरों की सभा था। हर जगह क्रांति–विरोधियों ने लड़ाकू दस्ते बनाने के लिये हैड क्वार्टर क़ायम किये। अक्तूबर के अंत तक, क्रांति–विरोधियों की कमान में 43 लड़ाकू दस्ते बन गये। सेंट जॉर्ज के क्रास के मानने वालों के खास दस्ते बनाये गये।

करैन्स्की की सरकार ने शासन केन्द्र पेत्रोग्राद से मास्को ले जाने के सवाल पर विचार किया। इससे स्पष्ट हो गया कि शहर में विद्रोह रोकने के लिये वह पेत्रोग्राद को जर्मनों के हाथ सौंपने की तैयारी कर रही है। पेत्रोग्राद के मज़दूरों और सैनिकों के विरोध ने अस्थायी सरकार को पेत्रोग्राद में ही रहने पर मज़बूर किया।

16 अक्तूबर को, पार्टी की केन्द्रीय समिति की एक विस्तृत बैठक हुई। इस बैठक में विद्रोह का संचालन करने के लिये एक ***पार्टी केन्द्र*** चुना गया, जिसके अगुआ कॉमरेड स्तालिन थे। यह पार्टी केन्द्र पेत्रोग्राद–सोवियत की क्रांतिकारी फ़ौजी कमिटी का प्रमुख नेतृत्व था और समूचे विद्रोह का अमली संचालन उसके हाथ में था।

केन्द्रीय समिति की बैठक में, समर्पणवादियों – जिनोवियेव और कामेनेव ने विद्रोह का फिर विरोध किया। यहां मुंह की खाकर, उन्होंने विद्रोह के खिलाफ़ पार्टी के खिलाफ़ खुल्लमखुल्ला अखबारों में लिखा। 18 अक्तूबर को, मेन्शेविक अख़बार ***नोवाया जीस्न (नवजीवन)*** ने कामेनेव और जिनोवियेव का बयान छापा, जिसमें कहा गया था कि बोल्शेविक विद्रोह की तैयारी कर रहे हैं और वे (कामेनेव और जिनोवियेव) समझते हैं कि यह दुस्साहसपूर्ण जुआं खेलना है। इस तरह, कामेनेव और जिनोवियेव ने दुश्मन को केन्द्रीय समिति का विद्रोह सम्बन्धी फ़ैसला बता दिया ; उन्होंने यह प्रकट कर दिया कि कुछ ही दिनों में विद्रोह शुरू करने की योजना बनायी गयी है। यह गद्दारी थी। इस सिलसिले में, लेनिन ने लिखा था : "कामेनेव और जिनोवियेव ने सशस्त्र विद्रोह के बारे में अपनी पार्टी की केन्द्रीय समिति का फ़ैसला **दग़ाबाजी** से रोद्जियांको और करैन्स्की को बतला दिया है।" लेनिन ने केन्द्रीय समिति के सामने जिनोवियेव और कामेनेव को पार्टी से निकालने का सवाल रखा।

गद्दारों से चेतावनी पाकर, क्रांति के दुश्मन तुरंत ही इस बात के उपाय करने लगे कि विद्रोह को रोक दें और क्रांति के संचालक दल – बोल्शेविक पार्टी – का नाश कर दें। अस्थायी सरकार ने एक गुप्त बैठक बुलायी, जिसमें बोल्शेविकों का मुकाबिला करने के लिये क्या उपाय किये जायें, इसका फ़ैसला हुआ। 19 अक्तूबर को, अस्थायी सरकार ने युद्ध के मोर्चे से जल्दी–जल्दी फ़ौजें पेत्रोग्राद बुलायीं। सड़कों पर भारी पहरा लगा दिया गया। क्रांति–विरोधी खास तौर से मास्को में भारी फ़ौज इकट्ठी करने में कामयाब

हुए। अस्थायी सरकार ने एक योजना बनायी कि सोवियतों की दूसरी कांग्रेस शुरू होने से पहले बोल्शेविक केन्द्रीय समिति के हैड क्वार्टर स्मोल्नी पर हमला किया जाये और उस पर कब्जा कर लिया जाये और बोल्शेविक संचालन–केन्द्र का नाश कर दिया जाये। इसी उद्देश्य से, हुकूमत ने पेत्रोग्राद में वह फौज बुलाई जिसकी वफ़ादारी पर उसे भरोसा था।

लेकिन, अस्थायी सरकार की जिन्दगी के दिन और घंटे भी गिनती के रह गये थे। समाजवादी क्रांति की विजय–यात्रा को अब कोई भी न रोक सकता था।

21 अक्तूबर को, बोल्शेविकों ने सभी क्रांतिकारी फ़ौजी दस्तों के पास क्रांतिकारी फ़ौजी समिति के कमीसार भेजे। विद्रोह होने से पहले के बचे हुए दिनों में फौजी दस्तों, मिलों और कारखानों में कार्यवाही की ज़ोरदार तैयारी की गयी। युद्ध–पोत ***अरोरा*** और ***जारियास्वोबोदी*** के लिये भी निश्चित निर्देश भेजे गये।

पेत्रोग्राद–सोवियत की एक बैठक में त्रात्स्की ने डींग हांकने की जोम में दुश्मन को वह तारीख बतला दी जबकि बोल्शेविक सशस्त्र विद्रोह शुरू करने वाले थे। करैन्स्की सरकार विद्रोह को असफल न कर दे, इसलिये पार्टी की केन्द्रीय समिति ने फ़ैसला किया कि निश्चित किये हुए समय से पहले ही विद्रोह शुरू कर दिया जाये और आखिरी मंजिल तक ले जया जाये। उसने विद्रोह की तारीख सोवियतों की दूसरी कांग्रेस के शुरू होने से पहले के दिन रखी।

24 अक्तूबर (6 नवम्बर) को सुबह तड़के, करैन्स्की ने हमला शुरू कर दिया। उसने बोल्शेविक पार्टी के केन्द्रीय पत्र ***रबोचीपूत् (मजदूर पथ)*** को बन्द करने का हुकुम दिया और सम्पादकीय दफ्तर और बोल्शेविकों के छापेखाने पर हथियारबन्द गाड़ियां भेजीं। लेकिन 10 बजे सबेरे तक, कॉमरेड स्तालिन के निर्देश पर, रेड गार्डों के दस्तों और क्रांतिकारी सैनिकों ने हथियारबन्द गाड़ियों को पीछे ठेल दिया और छापेखाने और ***रबोचीपूत्*** के सम्पादकीय दफ्तरों पर और ज्यादा पहरा बिठा दिया। लगभग 11 बजे सबेरे ***रबोचीपूत्*** प्रकाशित हुआ, जिसमें अस्थायी सरकार का तख़्ता उलट देने के लिये आह्वान था। उसी समय, विद्रोह के पार्टी केन्द्र के निर्देश से क्रांतिकारी सैनिकों और रेड गार्डों के दस्ते स्मोल्नी की तरफ़ दौड़ाये गये।

विद्रोह शुरू हो गया।

24 अक्तूबर की रात को, लेनिन स्मोल्नी आ पहुंचे और उन्होंने खुद विद्रोह के संचालन का भार संभाला। उस रात भर फ़ौज के क्रांतिकारी दस्ते और रेड गार्डों के जत्थे बराबर स्मोल्नी आते रहे। बोल्शेविकों ने शरद प्रासाद घेरने के लिये, जहां अस्थायी सरकार ने अपना अड्डा बनाया था, उन्हें राजधानी के केन्द्र की तरफ़ भेजा।

25 अक्तूबर (7 नवम्बर) को, रेड गार्डों के दस्तों और क्रांतिकारी सैनिकों ने रेलवे स्टेशनों, डाकखानों, तारघरों, मंत्री–गृहों और राज्य बैंक पर कब्जा कर लिया।

प्रेद पार्लियामेंट भंग कर दी गयी।

बोल्शेविक केन्द्रीय समिति और पेत्रोग्राद–सोवियत का हैड क्वार्टर, स्मोल्नी क्रांति का हैड क्वार्टर बन गया, जहां से लड़ाई के बारे में सभी हुकूम भेजे जाते थे।

पेत्रोग्राद के मज़दूरों ने उन दिनों दिखला दिया कि बोल्शेविक पार्टी की देख–रेख में उन्होंने कैसी महान् शिक्षा पाई है। फ़ौज के क्रांतिकारी दस्तों ने, जिन्हें बोल्शेविकों के काम ने विद्रोह के लिये तैयार किया था, नपे–तुले ढंग से लड़ाई की आज्ञाओं का पालन किया और वे रेड गार्डों के दस्तों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर लड़े। जल–सेना फ़ौज से पीछे न रही। क्रोन्स्तात बोल्शेविक पार्टी का गढ़ था और बहुत दिन पहले ही अस्थायी सरकार का प्रभुत्व मानने से इन्कार कर चुका था। युद्ध–पोत *अरोरा* ने अपनी तोपें शरद् प्रासाद की तरफ़ मोड़ दीं और 25 अक्तूबर को, उनकी घन गरजन ने एक नया युग आरम्भ किया, महान् समाजवादी क्रांति का युग आरम्भ किया।

25 अक्तूबर (7 नवंबर) को, बोल्शेविकों ने "रूस के नागरिकों के नाम" एक घोषणापत्र निकाला। इसमें कहा गया था कि पूंजीवादी अस्थायी सरकार हटा दी गयी है और राज्य सत्ता सोवियतों के हाथ में आ गयी है।

अस्थायी सरकार ने कैडेटों और लड़ाकू जत्थों की छत्रछाया में शरद् प्रासाद में शरण ली थी। 25 अक्तूबर की रात को क्रांतिकारी मजदूरों, सैनिकों और जहाजियों ने शरद् प्रासाद पर हल्ला बोल कर क़ब्जा कर लिया और अस्थायी सरकार को गिरफ्तार कर लिया।

पेत्रोग्राद में सशस्त्र विद्रोह की विजय हुई।

सोवियतों की दूसरी अखिल रूसी कांग्रेस 25 अक्तूबर (7 नवंबर) 1917 की शाम को 10 बजकर 45 मिनिट पर स्मोल्नी में शुरू हुई, जबकि पेत्रोग्राद का विद्रोह विजय–गौरव से दमक रहा था और राजधानी में सत्ता सचमुच पेत्रोग्राद–सोवियत के हाथ में आ गयी थी।

कांग्रेस में बोल्शेविकों को भारी बहुमत मिला। मेन्शेविकों, बुन्दवादियों और दक्षिणपंथी समाजवादी क्रांतिकारियों ने देखा कि अब उनके दिन बीत चुके हैं, इसीलिये

वे कांग्रेस से बाहर चले गये और उन्होंने ऐलान किया कि वे कांग्रेस के काम में हिस्सा लेने से इन्कार करते हैं। सोवियतों की कांग्रेस में उनका एक बयान पढ़ा गया, जिसमें उन्होंने अक्तूबर क्रांति को एक 'फौजी षड्यंत्र' बतलाया था। कांग्रेस ने मेन्शेविकों और सामजवादी क्रांतिकारियों की निंदा की और उनके चले जाने पर अफसोस करना तो दूर, उसका स्वागत किया। कांग्रेस ने ऐलान किया कि ग़द्दारों के चले जाने से अब वह मजदूर और सैनिक प्रतिनिधियों की सच्ची क्रांतिकारी कांग्रेस हो गयी है।

कांग्रेस ने ऐलान किया कि सारी सत्ता सोवियतों के हाथ में आ गयी है। सोवियतों की दूसरी कांग्रेस के घोषणापत्र में कहा गया :

"मजदूरों, सैनिकों और किसानों के भारी बहुमत का समर्थन पाकर और पेत्रोग्राद में होने वाले मजदूरों और सैनिकों के सफल विद्रोह का समर्थन पाकर कांग्रेस अपने हाथ में सत्ता लेती है।"

26 अक्तूबर (8 नवम्बर) 1917 की रात को, सोवियतों की दूसरी कांग्रेस ने ***शान्तिसम्बन्धी आज्ञा–पत्र*** स्वीकार किया। कांग्रेस ने युद्ध करने वाले देशों को बुलावा दिया कि कम से कम तीन महीने के लिये सुलह कर लें, जिससे शान्ति की बातचीत की जा सके। कांग्रेस ने एक तरफ़ तो युद्ध करने वाले देशों की जनता और वहां की सरकारों से अपनी बात कही, दूसरी तरफ़ उसने "संसार की तीन सबसे आगे बढ़ी हुई जातियों और मौजूदा युद्ध में हिस्सा लेने वाले सबसे बड़े राज्यों यानी ब्रिटेन, फ्रांस और जर्मनी के वर्ग–चेतन मज़दूरों से" अपील की। उसने इन मजदूरों से कहा कि वे "शान्ति के उद्देश्य को सफलता की मंजिल तक ले जाने में और साथ ही सभी तरह की गुलामी और शोषण से मेहनतकश और शोषित जनता की मुक्ति के उद्देश्य को सफलता की मंजिल तक ले जाने में" मदद करें।

उसी रात को, सोवियतों की दूसरी कांग्रेस ने ***भूमिसम्बन्धी आज्ञा–पत्र*** स्वीकार किया जिसमें कहा गया था : "भूमि पर जमींदारों की मिल्कियत बिना मुआविजे के तुरंत खत्म की जाती है।" खेती के इस कानून का आधार किसानों का एक निर्देश–पत्र (नकाज़, मैंडेट) था, जो अलग–अलग जगहों के किसानों के 242 मैंडेटों को मिला कर बनाया गया था। इसके अनुसार, ज़मीन पर व्यक्तिगत मिल्कियत हमेशा के लिये खत्म कर दी गयी और उसके बदले सार्वजनिक या राज्य की मिल्कियत हुई। जमींदारों, ज़ार के परिवार और मठों की जमीन बिना पैसा दिये हुए सभी मेहनतकशों को इस्तेमाल के लिये देने का हुकुम हुआ।

इस आज्ञा–पत्र से, किसानों ने अक्तूबर समाजवादी क्रांति से 15 करोड़ देसियातिन (40 करोड़ एकड़ से ऊपर) जमीन पायी जो पहले जमींदारों, पूंजीपतियों, ज़ार के परिवार, मठों और गिरजाघरों के पास थी।

इसके अलावा, किसानों को उस लगान से मुक्त कर दिया गया जो वे जमींदारों को देते थे और जो सालाना 50 करोड़ स्वर्ण रूबल होता था।

खनिज पदार्थों के तमाम साधन (तेल, कोयला, धातुएं, वगैरह) जंगल और जलाशय जनता की सम्पत्ति हो गये।

अंत में सोवियतों की दूसरी अखिल रूसी कांग्रेस ने पहली सोवियत सरकार बनायी – जन कमीसारों की समिति बनायी जिसमें सभी बोल्शेविक थे। जन कमीसारों की पहली समिति के पहले सभापति लेनिन चुने गये।

इससे सोवियतों की दूसरी ऐतिहासिक कांग्रेस का काम खत्म हुआ।

कांग्रेस के प्रतिनिधि इधर–उधर बिखर गये, जिससे कि पेत्रोग्राद में सोवियतों की जीत की ख़बर फैला दें और सोवियतों की सत्ता सारे देश में फैलाने का काम निश्चित करें।

हर जगह सोवियतों के हाथ तुरंत ही सत्ता नहीं आ गयी। जब पेत्रोग्राद में सोवियत सरकार बन चुकी थी, तब मास्को में कई दिन तक डट कर और घनघोर लड़ाई होती रही। सत्ता मास्को–सोवियत के हाथ में न जाये, इसके लिये क्रांति–विरोधी मेन्शेविक और समाजवादी क्रंतिकारी पार्टियों ने गद्दारों और कैडेटों से मिलकर मजदूरों और सैनिकों के खिलाफ़ हथियारबन्द लड़ाई शुरू कर दी। बागियों को हराने और मास्को में सोवियतों की सत्ता कायम करने में कई दिन लग गये।

खुद पेत्रोग्राद में और उसके कई जिलों में क्रांति की जीत के शुरू के दिनों में ही सोवियत सत्ता को खत्म करने की क्रांति–विरोधी कोशिशें की गयीं। 10 नवम्बर 1917 को, करैन्स्की ने, जो विद्रोह के समय पेत्रोग्राद से उत्तरी मोर्चे को भाग गया था, कई क़जाक दस्ते इकट्ठे किये और जनरल क्रासनोव की कमान में उन्हें पेत्रोग्राद के खिलाफ भेजा। 11 नवम्बर 1917 को, एक क्रांति–विरोधी संगठन ने पेत्रोग्राद में कैडेटों से बगावत करायी। इस संगठन के नेता समाजवादी क्रांतिकारी थे, और उसका नाम रखा था – "पितृभूमि और क्रांति के उद्धार की कमिटी"। लेकिन, बिना ज्यादा कठिनाई के बग़ावत दबा दी गयी। एक ही दिन में, 11 नवम्बर की शाम तक, जहाजियों और रेड गार्डों के दस्तों ने कैडेट–विद्रोह दबा दिया और 13 नवम्बर को जनरल क्रासनोव पुलकोवो पहाड़ियों के पास हरा दिया गया। लेनिन ने व्यक्तिगत

रूप से सोवियत–विरोधी बग़ावत दबाने का संचालन किया, जैसे उन्होंने व्यक्तिगत रूप से अक्तूबर विद्रोह का संचालन किया था। उनकी अटूट दृढ़ता और विजय में उनके शान्त विश्वास ने जनता को प्रेरित और संगठित किया। दुश्मन कुचल दिया गया। क्रासनोव गिरफ़्तार कर लिया गया और उसने 'वचन दिया' कि सोवियत सत्ता के खिलाफ़ लड़ाई बन्द कर देगा। और, 'वचन देने पर' वह छोड़ दिया गया। लेकिन जैसा कि आगे मालूम हुआ, जनरल ने अपना वचन तोड़ दिया। जहां तक करैन्स्की का सम्बन्ध था, वह औरत का भेष बनाकर 'किसी अज्ञात दिशा में गायब' हो गया।

फ़ौज के जनरल हैड क्वार्टर पर, मोगिलेव में प्रधान सेनापति जनरल दुखोनिन ने भी बग़ावत करने की कोशिश की। जब सोवियत सरकार ने उसे हुकुम दिया कि जर्मन कमान से सुलह करने के लिये तुरंत बातचीत चलाओ, तो उसने इन्कार कर दिया। इस पर, सोवियत सरकार के हुकुम से उसे हटा दिया गया। क्रांति–विरोधी जनरल हैड क्वार्टर तोड़ दिया गया और खुद दुखोनिन को उसके खिलाफ़ विद्रोह करने वाले सैनिकों ने मार डाला।

पार्टी के भीतर कुछ नामी–गिरामी अवसरवादियों – कामेनेव, जिनोवियेव, राइकोव, श्लियापनीकोव, वग़ैरह – ने भी सोवियत सत्ता के खिलाफ़ धावा बोला। उन्होंने मांग की कि एक 'संयुक्त समाजवादी सरकार' बनायी जाये, जिसमें मेन्शेविक और समाजवादी क्रांतिकारी भी शामिल किये जायें जिन्हें अक्तूबर क्रांति ने अभी–अभी परास्त किया था। 15 नवम्बर 1917 को, बोल्शेविक पार्टी की केन्द्रीय समिति ने एक प्रस्ताव पास किया जिसमें इन क्रांति–विरोधी पार्टियों के साथ समझौता करना नामंजूर कर दिया गया और कामेनेव तथा जिनोवियेव को क्रांति का हड़ताल–तोड़क कहा गया। 17 नवम्बर को, पार्टी की नीति से असहमत होते हुए कामेनेव, जिनोवियेव, राइकोव और मिल्यूतिन ने ऐलान किया कि वे केन्द्रीय समिति से इस्तीफ़ा देते हैं। उसी दिन, 17 नवम्बर को, नोबिन ने अपनी तरफ़ से और जन कमीसार समिति के सदस्यों – राइकोव, वी• मिल्यूतिन, तियोदोरोविच, ए• शिलायापनीकोव, डी• रियाजानोव, यूरेनेव और लारिन – की तरफ़ से ऐलान किया कि वे पार्टी की केन्द्रीय समिति की नीति से असहमत हैं और जन कमीसार समिति से इस्तीफ़ा देते हैं। इन मुट्ठी भर ग़द्दारों के भाग खड़े होने से, अक्तूबर क्रांति के दुश्मनों के यहां खुशियां मनायी जाने लगीं। पूंजीपति और उनके पिट्ठू खुशी से फूलकर कहने लगे कि बोल्शेविज़्म खत्म हो गया और बोल्शेविक पार्टी जल्द ही समाप्त होने वाली है। लेकिन इन मुट्ठी भर गद्दारों की वजह से, पार्टी एक क्षण के लिये भी विचलित न हुई। पार्टी की केंद्रीय समिति ने घृणा के साथ उन्हें क्रांति से भाग खड़े होने वाला और पूंजीपतियों का साझीदार कह कर उनकी निन्दा की और अपने आगे के काम में लग गयी।

जहां तक 'वामपंथी' समाजवादी क्रांतिकारियों का सवाल था, वे किसान जनता पर अपना असर बनाये रखना चाहते थे। किसानों की हमदर्दी निश्चित रूप से बोल्शेविकों के साथ थी। इसलिये, 'वामपंथी' समाजवादी क्रान्तिकारियों ने फ़ैसला किया कि बोल्शेविकों से झगड़ा न करें और फ़िलहाल उनके साथ संयुक्त मोर्चा बनाये रहें। नवम्बर 1917 में, किसान सोवियतों की कांग्रेस हुई। उसने अक्तूबर समाजवादी क्रान्ति से हासिल हुए सभी लाभ स्वीकार किये और सोवियत सरकार के आज्ञा–पत्रों का समर्थन किया। 'वामपंथी' समाजवादी क्रान्तिकारियों के साथ एक समझौता हुआ और उनमें से कई को जन कमीसार समिति में जगहें दी गयीं (कोलेग़ायेव, स्पिरिदोनोव, प्रोश्यान और स्टाइनबर्ग)। लेकिन, यह समझौता ब्रेस्ट–लिटोवस्क की संधि होने और ग़रीब किसानों की कमिटियाँ बनने तक ही क़ायम रहा। उसके बाद किसानों में गहरी दरार पड़ी। 'वामपंथी' समाजवादी क्रान्तिकारी अधिकाधिक कुलक हित ज़ाहिर करने लगे। उन्होंने बोल्शेविकों के ख़िलाफ बग़ावत की और सोवियत सत्ता ने उन्हें परास्त कर दिया।

अक्तूबर 1917 से फरवरी 1918 तक, देश के विशाल प्रदेशों में सोवियत क्रान्ति इतनी तेजी से फैली कि लेनिन ने उसे सोवियत सत्ता की 'विजय–यात्रा' कहा।

महान् अक्तूबर समाजवादी क्रान्ति विजयी हुई।

रूस में समाजवादी क्रान्ति की इस अपेक्षाकृत आसान विजय के कई कारण थे। नीचे लिखे हुए मुख्य कारण ध्यान देने योग्य हैं :

(1) अक्तूबर क्रान्ति का दुश्मन अपेक्षाकृत ऐसा कमज़ोर, ऐसा असंगठित और राजनीतिक रूप से ऐसा अनुभवहीन था जैसे कि रूसी पूंजीपति। रूसी पूंजीपति आर्थिक रूप से अब भी कमज़ोर थे और पूरी तरह सरकारी ठेकों पर निर्भर थे। उनमें राजनीतिक आत्मनिर्भरता और पहलकदमी इतनी न थी कि परिस्थिति से निकलने का रास्ता ढूँढ सकें। मसलन, बड़े पैमाने पर राजनीतिक गुटबन्दी और राजनीतिक दग़ाबाजी में उन्हें फ्रांसीसी पूंजीपतियों का सा तजुर्बा न था, न अंग्रेज पूंजीपतियों की तरह, उन्होंने विशद रूप से सोचे हुए चतुर समझौते करने की शिक्षा पायी थी। हाल ही में, उन्होंने ज़ार से समझौता करने की कोशिश की थी। फ़रवरी क्रान्ति ने ज़ार का तख़्ता उलट दिया था और सत्ता खुद पूंजीपतियों के हाथ में आ गयी थी लेकिन बुनियादी तौर से घृणित ज़ार की नीति पर ही चलने के सिवा उन्हें और कुछ न सूझ पड़ा। ज़ार की तरह, उन्होंने 'विजय तक युद्ध करने' का समर्थन किया, हालाँकि युद्ध चलाना देश की शक्ति से परे था और जनता तथा फ़ौज दोनों युद्ध से बुरी तरह चूर हो चुके थे। ज़ार की तरह, कुल मिलाकर वे भी बड़ी रियासती ज़मीन बनाये रखने

के पक्ष में थे, हालाँकि ज़मीन की कमी और ज़मीदारों के जुएं के बोझ से किसान मर रहे थे। जहाँ तक उनकी मज़दूर नीति का सम्बन्ध था, वे मज़दूर वर्ग से नफ़रत करने में ज़ार के भी कान काट चुके थे। उन्होंने क़ारखानेदार के जुंए को बनाये रखने और मज़बूत करने की कोशिश नहीं की, बल्कि उन्होंने बड़े पैमाने पर तालेबन्दी करके उसे असहनीय बना दिया।

कोई ताज्जुब नहीं कि जनता ने ज़ार की नीति और पूंजीपतियों की नीति में कोई बुनियादी भेद नहीं देखा, और जो घृणा उसके दिल में ज़ार के लिये थी वही पूंजीपतियों की अस्थायी सरकार के लिये हो गयी।

जब तक समाजवादी क्रांतिकारी और मेन्शेविक पार्टियों का थोड़ा बहुत असर जनता पर था, तब तक पूंजीपति उन्हें पर्दे की तरह इस्तेमाल कर सकते थे और अपनी सत्ता बनाये रख सकते थे। लेकिन, जब मेन्शेविकों और समाजवादी क्रांतिकारियों ने ज़ाहिर कर दिया कि वे साम्राज्यवादी पूंजीपतियों के दलाल हैं और इस तरह जनता में उन्होंने अपना असर खो दिया, तब पूंजीपतियों और उनकी अस्थायी सरकार का कोई मददगार न रहा।

(2) अक्तूबर क्रांति का नेतृत्व रूस के मजदूर वर्ग जैसे क्रांतिकारी वर्ग ने किया। यह ऐसा वर्ग था जो संघर्ष की आंच में तप चुका था, जो थोड़ी ही अवधि में दो क्रांतियों से गुजर चुका था और जो तीसरी क्रांति के शुरू होने से पहले शान्ति, जमीन, स्वाधीनता और समाजवाद के लिये संघर्ष में जनता का नायक माना जा चुका था। अगर क्रांति का नेता रूस के मजदूर वर्ग जैसा न होता, ऐसा नेता जिसने जनता का विश्वास पा लिया था, तो मज़दूरों और किसानों की मैत्री न होती और इस तरह की मैत्री के बिना अक्तूबर क्रांति की विजय असंभव होती।

(3) रूस के मजदूर वर्ग को क्रांति में ग़रीब किसानों जैसा समर्थ साथी मिला, जो किसान जनता का भारी बहुसंख्यक भाग था। जहां तक आम मेहनतकश किसानों का सवाल था, क्रांति के आठ महीनों का तजुर्बा बेकार नहीं गया। इस तजुर्बे की तुलना 'साधारण' विकास के बीसियों सालों के तजुर्बे से निस्संदेह की जा सकती है। इन दिनों, उन्हें मौक़ा मिला कि वे अमल में रूस की तमाम पार्टियों को परख लें और अपनी दिलजमई कर लें कि न तो कॉन्स्टीट्यूशनल डेमोक्रैट और न समाजवादी क्रांतिकारी या मेन्शेविक ही जमींदारों से कोई गंभीर झगड़ा मोल लेंगे, या किसानों के हित के लिये अपना बलिदान करेंगे, कि रूस में एक ही पार्टी है – बोल्शेविक पार्टी – जिसका जमींदारों से कोई सम्बन्ध नहीं है और जो उन्हें किसानों की जरूरतें पूरी करने के लिये कुचलने को तैयार है। सर्वहारा और ग़रीब किसानों की मैत्री का यह

दृढ़ आधार था। मजदूर वर्ग़ और ग़रीब किसानों की इस मैत्री के क़ायम होने से, मध्यम किसानों की गति निश्चित हो गयी। ये मध्यम किसान बहुत दिन तक ढुलमुल रहे थे और अक्तूबर विद्रोह के शुरू होने से पहले ही पूरी तरह क्रांति की तरफ़ आये थे और उन्होंने गरीब किसानों से नाता जोड़ा था।

कहना न होगा कि इस मैत्री के बिना अक्तूबर क्रांति विजयी न होती।

(4) मजदूर वर्ग का नेतृत्व राजनीतिक संघर्षो में तपी और परखी हुई बोल्शेविक पार्टी जैसी पार्टी ने किया था। बोल्शेविक पार्टी इतनी साहसी पार्टी थी कि निर्णायक हमले में जनता का नेतृत्व कर सके। वह इतनी सावधान थी कि मंजिल की तरफ़ जाने के रास्ते में ढंकी–मुंदी खाई–खन्दकों से बच कर निकल सके। ऐसी ही पार्टी विभिन्न क्रांतिकारी आन्दोलनों को चतुराई से एक ही सामान्य क्रांतिकारी धारा में मिला सकती थी। शान्ति के लिये आम जनवादी आन्दोलन, रियासती ज़मीन छीनने के लिये किसानों का जनवादी आन्दोलन, जातीय स्वाधीनता और जातीय समानता के लिये पीड़ित जातियों का आन्दोलन, और पूंजीपतियों का तख्ता उलटने के लिये और सर्वहारा डिक्टेटरशिप क़ायम करने के लिये सर्वहारा वर्ग का समाजवादी आन्दोलन – इन सबको ऐसी ही पार्टी एक सामान्य क्रांतिकारी धारा में मिला सकती थी।

इसमें सन्देह नहीं कि इन विभिन्न क्रांतिकारी धाराओं के एक ही सामान्य शक्तिशाली क्रांतिकारी धारा में मिलने ने रूस में पूंजीवाद की तक़दीर का फैसला कर दिया।

(5) अक्तूबर क्रांति ऐसे समय आरम्भ हुई जबकि साम्राज्यवादी युद्ध अभी जोरों पर था, जबकि प्रमुख पूंजीवादी राज्य दो विरोधी खेमों में बंटे हुए थे और जब परस्पर युद्ध में फंसे रहने और एक–दूसरे की जड़ें काटने में लगे रहने से, वे 'रूसी मामलों' में सफलता से दखल न दे सकते थे और सक्रिय रूप से अक्तूबर क्रांति का विरोध न कर सकते थे।

निसंदेह, अक्टूबर समाजवादी क्रांति की जीत में इस बात से बहुत मदद मिली।

7. सोवियत सत्ता को मजबूत करने के लिये बोल्शेविक पार्टी का संघर्ष। ब्रेस्ट–लिटोवस्क की शान्ति। सातवीं पार्टी कांग्रेस।

सोवियत सत्ता को मज़बूत करने के लिये पुरानी पूंजीवादी राज्य की मशीन का नाश करना जरूरी था और एक नयी सोवियत राज्य की मशीन उसकी जगह कायम करनी थी। इसके सिवा, समाज में वर्ण–भेद और जातीय उत्पीड़न की व्यवस्था के

अवशेष खत्म करने थे, चर्च के विशेषाधिकारों को खत्म करना था, क्रांति–विरोधी प्रेस और हर तरह के क़ानूनी और गैरकानूनी क्रांति–विरोधी संगठनों को दबाना था और पूंजीवादी विधान सभा भंग करनी थी। ज़मीन के राष्ट्रीयकरण के बाद, बड़े पैमाने के उद्योग–धंधों का भी राष्ट्रीयकरण होना था। और अंत में, युद्ध की हालत खत्म करनी थी, क्योंकि सबसे ज्यादा युद्ध ही सोवियत सत्ता के मज़बूत बनाने के काम को रोक रहा था।

ये सभी क़दम 1917 के अंत से 1918 के मध्य तक थोड़े ही महीनों में उठाये गये।

समाजवादी क्रांतिकारियों और मेन्शेविकों के इशारे पर पुराने मंत्री–मंडलों के कर्मचारियों ने जो तोड़–फोड़ की, वह कुचल दी गयी और उस पर सोवियत सत्ता हावी हो गयी। मंत्रि–मंडल तोड़ दिये गये और उनकी जगह सोवियत शासनतंत्र और उपयुक्त जन कमीसार समितियों ने ली। राष्ट्रीय अर्थतंत्र की प्रधान समिति क़ायम की गयी, जो देश के उद्योग–धंधों का संचालन करे। अखिल रूसी असाधारण समिति (वेचेका) बनायी गयी, जो क्रांति–विरोध और तोड़–फोड़ का मुकाबिला करे। फ़ेलिक्स जेरजिन्स्की उसके प्रधान बनाये गये। लाल फ़ौज और जल–सेना के निर्माण के लिये आज्ञा–पत्र निकाला गया। विधान सभा के चुनाव अधिकतर अक्तूबर क्रांति से पहले हुए थे। यह विधान सभा शान्ति, ज़मीन और सोवियतों के सत्ता लेने के बारे में दूसरी सोवियत कांग्रेस के आज्ञा–पत्र मानने से इन्कार करती थी। इसलिये, वह भंग कर दी गयी।

सामन्तवाद, रियासती ज़मीन की व्यवस्था और सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों में असमानता के अवशेष खत्म करने के लिये आज्ञा–पत्र निकाले गये। इनसे रियासती ज़मीन और जाति या धर्म के आधार पर रचे हुए नियंत्रण खत्म किये गये। चर्च राज्य से और स्कूल चर्च से अलग कर दिये गये। स्त्रियों की समानता और तमाम रूसी जातियों की समानता क़ायम की गयी।

सोवियत सरकार ने एक विशेष आज्ञा–पत्र निकाला, जिसका नाम "रूसी जनता के अधिकारों की घोषणा" था ; उसमें कानून के तौर पर यह कहा गया था कि रूस के लोगों को बेरोक विकास करने और पूरी समानता का अधिकार है।

पूंजीपतियों की आर्थिक शक्ति कमज़ोर करने और एक नया सोवियत राष्ट्रीय अर्थतंत्र बनाने और सबसे पहले नये सोवियत उद्योग–धंधे रचने के लिये बैंकों, रेलों, विदेशी व्यापारी बेड़ा और उद्योग–धंधों की सभी शाखाओं में सभी बड़े कारखानों – कोयला, धातुएं, तेल, रसायन, मशीनें बनाना, सूती कपड़े, शक्कर, वगैरह – का राष्ट्रीयकरण हो गया।

अपने देश को आर्थिक रूप से विदेशी पूंजीपतियों से मुक्त करने के लिये और उनके शोषण से आज़ाद करने के लिये, रूसी ज़ार ने और अस्थायी सरकार ने जो विदेशी ऋण लिया था वह रद्द कर दिया गया। हमारे देश की जनता ने वह कर्ज अदा करने से इन्कार कर दिया जो दूसरों का राज हड़पने वाला युद्ध जारी करने के लिये लिया गया था और जिसने हमारे देश को विदेशी पूंजी का गुलाम बना दिया था।

इन, और ऐसे ही उपायों ने पूंजीपतियों, जमींदारों, प्रतिक्रियावादी अफ़सरों और क्रांति–विरोधी पार्टियों की जड़ ही कमज़ोर कर दी और देश में सोवियत सरकार की स्थिति काफ़ी मज़बूत की।

लेकिन जब तक रूस जर्मनी और ऑस्ट्रिया से युद्ध की दशा में था, तब तक सोवियत सरकार की स्थिति पूरी तरह सुरक्षित न समझी जा सकती थी। सोवियत सत्ता को पूरी तरह मज़बूत करने के लिये, युद्ध खत्म करना ज़रूरी था। इसलिये, पार्टी ने अक्तूबर क्रांति की विजय के क्षण से ही शान्ति के लिये संघर्ष छेड़ दिया था।

सोवियत सरकार ने 'सभी युद्ध करने वाली जनता और उसकी सरकारों से तुरंत ही न्यायपूर्ण और जनवादी शांति के लिये बातचीत शुरू करने के लिये' कहा। लेकिन, 'मित्र–देशों' – ग्रेट ब्रिटेन और फ्रांस – ने सोवियत सरकार का प्रस्ताव मानने से इन्कार किया। इस नामंजूरी की वजह से, सोवियत सरकार ने सोवियतों की इच्छा के अनुकूल जर्मनी और ऑस्ट्रिया से बातचीत शुरू करने का फ़ैसला किया।

3 दिसम्बर को, ब्रेस्ट–लिटोवस्क में बातचीत शुरू हुई। 5 दिसम्बर को, सुलह पर दस्तख़त हुए।

सुलह की बातचीत ऐसे वक्त हुई जब देश आर्थिक अव्यवस्था की हालत में था, जब युद्ध की थक़ान हर तरफ़ फैली हुई थी, जब हमारी फ़ौजें मोर्चे की खाईयां छोड़ रही थीं और युद्ध का मोर्चा ढह रहा था। बातचीत के दौर में, साफ़ हो गया कि जर्मन साम्राज्यवादी भूतपूर्व ज़ारशाही साम्राज्य के भारी प्रदेश हड़पना चाहते थे और पोलैंड, उक्रैन और बाल्टिक देशों को जर्मनी के मातहत देश बनाना चाहते थे।

ऐसी हालत में, युद्ध चलाने का मतलब होता – नवजात सोवियत प्रजातंत्र के जीवन को ही दांव पर लगा देना। मज़दूर वर्ग और किसानों के सामने यह आवश्यकता पैदा हुई कि शान्ति की कष्टदायी शर्तें स्वीकार करें, उस समय के सबसे खतरनाक डाकू – जर्मन साम्राज्यवाद – के सामने पीछे हटें, जिससे कि सोवियत सत्ता को मज़बूत करने और एक नयी फ़ौज, लाल फौज़ बनाने के लिये अवकाश मिल सके जो दुश्मन के हमले से देश की रक्षा कर सके।

सभी क्रांति–विरोधियों ने, मेन्शेविकों और समाजवादी क्रांतिकारियों से लेकर एकदम खुले गद्दारों तक ने शांन्ति करने के खिलाफ़ धुआंधार आन्दोलन किया। उनकी नीति स्पष्ट थी : वे सुलह की बातचीत भंग करना चाहते थे, जर्मन हमले के लिये उकसावा पैदा करना चाहते थे और इस तरह, उस समय तक कमज़ोर सोवियत सत्ता को खतरे में डालना और मज़दूरों और किसानों ने जो कुछ भी हासिल किया था उसे संकट में डालना चाहते थे।

इस भयानक अभिसन्धि में, उनके साथी त्रात्स्की और उसका साझीदार बुखारिन थे। रादेक और प्याताकोव के साथ, बुखारिन एक ऐसे गुट का नेता था जो पार्टी–विरोधी था लेकिन अपने को 'वाम पंथी कम्युनिस्ट' कह कर छिपाता था। पार्टी के भीतर त्रात्स्की और 'वाम पंथी कम्युनिस्टों' के गुट ने युद्ध को जारी रखने की मांग करते हुए लेनिन के खिलाफ़ घोर संघर्ष शुरू किया ये लोग स्पष्ट ही जर्मन साम्राज्यवादियों और देश के क्रांति–विरोधियों के हाथ में खेल रहे थे, क्योंकि वे तरुण सोवियत प्रजातंत्र को, जिसके पास अभी फ़ौज न थी, जर्मन साम्राज्यवाद का आघात सहने के लिये आगे ठेल रहे थे।

दरअसल यह उकसावा पैदा करने वालों की नीति थी, जो चतुराई से अपने को वाम पंथी लफ्फ़ाजी से छिपाये हुए थे।

10 फ़रवरी 1918 को, ब्रेस्ट–लिटोवस्क में सन्धि–वार्ता भंग कर दी गयी। हालांकि पार्टी की केन्द्रीय समिति की तरफ़ से लेनिन और स्तालिन ने ज़ोर दिया था कि शान्ति कर ली जाये, लेकिन त्रात्स्की ने, जो ब्रेस्ट–लिटोवस्क में सोवियत प्रतिनिधि–मण्डल का सभापति था, दग़ेबाजी से बोल्शेविक पार्टी के सीधे निर्देश भंग किये। उसने ऐलान किया कि जर्मनी की प्रस्तावित शर्तों पर सोवियत प्रजातंत्र संधि न करेगा। इसके साथ ही, उसने जर्मनों को सूचना दी कि सोवियत प्रजातंत्र लड़ेगा नहीं और अपनी फ़ौज तोड़ता जायेगा।

नीचता की हद हो गयी। जर्मन साम्राज्यवादी सोवियत देश के हितों के प्रति इस ग़द्दार से और कुछ ज्यादा न चाह सकते थे।

जर्मन हुकूमत ने सुलह तोड़ दी और हमला शुरू कर दिया। जर्मन फ़ौज के हमले के सामने, हमारी पुरानी फ़ौज के अवशेष बिखर गये और तितर–बितर हो गये। जर्मन तेज़ी से आगे बढ़े। विशाल प्रदेश पर उन्होंने क़ब्जा कर लिया और पेत्रोग्राद के लिये खतरा पैदा कर दिया। जर्मन साम्राज्यवाद ने सोवियत देश पर इसलिये हमला किया था कि सोवियत सत्ता को खत्म कर दे और हमारे मुल्क को अपना उपनिवेश बना

ले। पुरानी ज़ारशाही फ़ौज के खंडहर जर्मन साम्राज्यवाद के हथियारबन्द झुंडों का मुकाबिला न कर सकते थे और वे उनके प्रहार के सामने बराबर पीछे हटते गये।

लेकिन, जर्मन साम्राज्यवाद की हथियारबन्द दखलन्दाजी देश में एक विराट क्रांतिकारी उभार का संकेत बन गयी। पार्टी और सोवियत सरकार ने नारा दिया : 'समाजवादी पितृभूमि खतरे में है !' और इसके जवाब में, मजदूर वर्ग जोरशोर से लाल फौज़ की पलटनें बनाने लगा। नयी फ़ौज – क्रांतिकारी जनता की फ़ौज – के तरुण दस्तों ने वीरता से सिर से पैर तक अस्त्र–शस्त्रों से सुसज्जित जर्मन डाकुओं का मुकाबिला किया। नारवा और प्स्कोव में जर्मन हमलावरों को दृढ़ता से पीछे हटाया गया। पेत्रोग्राद की तरफ़ उनकी प्रगति रोक ली गयी। 23 फ़रवरी का दिन – वह दिन जबकि जर्मन साम्राज्यवाद की फ़ौज को पीछे ठेला गया था – लाल फ़ौज का जन्म दिवस माना जाता है।

18 फरवरी 1918 को, पार्टी की केन्द्रीय समिति ने लेनिन के इस प्रस्ताव को स्वीकार किया कि तुरंत शांति स्थापित करने के लिये जर्मन हुकूमत को तार भेजा जाये। लेकिन और अच्छी शर्तें हासिल करने के लिये, जर्मन आगे बढ़ते ही गये और 22 फ़रवरी को जाकर जर्मन सरकार ने संधि करने की इच्छा ज़ाहिर की। अब जो शर्तें रखी गयीं, वे पहले से भी कठोर थीं।

केन्द्रीय समिति में लेनिन, स्तालिन और स्वेद्रलोव ने त्रात्स्की, बुखारिन और दूसरे त्रात्स्की पंथियों के खिलाफ़ जमकर संघर्ष किया और तभी शान्ति स्थापित करने के पक्ष में फ़ैसला किया जा सका। लेनिन ने कहा कि बुखारिन और त्रात्स्की ने "दरअसल जर्मन साम्राज्यवादियों की **मदद की है** और जर्मनी में क्रांति की बढ़ती और विकास को **रोका** है।" (लेनिन, ***संग्रं***, अं•सं•, मास्को, 1947, खण्ड 2, पृ• 287)।

23 फ़रवरी को, केन्द्रीय समिति ने फ़ैसला किया कि जर्मन कमान की शर्तें मान ली जायें और शान्ति–संधि पर दस्तख़त कर दिये जायें। सोवियत प्रजातंत्र को त्रात्स्की और बुखारिन की ग़द्दारी के लिये भारी कीमत चुकानी पड़ी। पोलैंड का तो कहना ही क्या, लैटविया और एस्टोनिया भी जर्मनों के हाथ पहुंच गये। उक्रेन सोवियत प्रजातंत्र से अलग कर दिया गया और जर्मन राज्य के मातहत कर लिया गया। सोवियत प्रजातंत्र ने जर्मनों को हर्जाना देना स्वीकार किया।

उधर, लेनिन के खिलाफ़ 'वाम पंथी कम्युनिस्टों' ने अपना संघर्ष जारी रखा। वे अधिकाधिक गद्दारी के दलदल में फंसते गये।

पार्टी की मास्को प्रादेशिक ब्यूरो ने, जिस पर कुछ दिनों के लिये 'वाम पंथी कम्युनिस्टों' (बुखारिन, ऑसिन्स्की, याकूवलेवा, स्तूकोव और मान्त्सेव) ने क़ब्जा कर लिया था, केन्द्रीय समिति पर अविस्वास का प्रस्ताव पास किया। इस प्रस्ताव का उद्देश्य था – पार्टी में फूट डालना। ब्यूरो ने ऐलान किया कि उसकी राय में 'बहुत ही निकट भविष्य में पार्टी शायद ही फूट से बच सकेगी।' 'वाम पंथी कम्युनिस्ट' अपने प्रस्ताव में इस हद तक पहुंच गये कि उन्होंने सोवियत–विरोधी रुख अपनाया। उन्होंने कहा : "अंतर्राष्ट्रीय क्रांति के हित में, हम यह ज़रूरी समझते हैं कि सोवियत सत्ता के संभावित खात्में से हम सहमत हो जायें जो सत्ता कि अब सिर्फ नाम को रह गयी है।"

लेनिन ने इस फ़ैसले को 'अजीब और बेहूदा' बताया।

उस समय, त्रात्स्की और 'वाम पंथी कम्युनिस्टों' के इस पार्टी–विरोधी व्यवहार का ठीक सबब अभी पार्टी के सामने साफ़ न था। लेकिन, अभी हाल में सोवियत–विरोधी 'दक्षिण पंथियों और त्रात्स्की पंथियों के गुट' पर (1938 से शुरू होने वाला) जो मुकदमा चला है, उससे मालूम हुआ है कि बुखारिन और उसके नेतृत्व में काम करने वाला 'वाम पंथी कम्युनिस्टों' का गुट त्रात्स्की और 'वाम पंथी' समाजवादियों के साथ उस समय गुप्त रूप से सोवियत सरकार के खिलाफ़ षड़यंत्र कर रहा था। अब पता चल गया है कि बुखारिन, त्रात्स्की और उनके साथी षड़यंत्रकारियों ने तय कर लिया था कि ब्रेस्ट–लिटोवस्क की शान्ति भंग कर दी जाये; लेनिन, स्तालिन और स्वेद्रलोव को गिरफ्तार कर लिया जाये, उनकी हत्या कर दी जाये और एक नयी सरकार बनायी जाये जिसमें बुखारिनपंथी, त्रात्स्कीवादी और 'वाम पंथी' समाजवादी क्रांतिकारी हों।

छिपे–छिपे यह क्रांति–विरोधी षड़यंत्र करते हुए, 'वाम पंथी कम्युनिस्टों' का गुट त्रात्स्की की मदद से खुल कर बोल्शेविक पार्टी पर हमला करता था। उसकी कोशिश थी कि पार्टी में फूट डाल दी जाये और उसकी सफ़ें तोड़ दी जायें। लेकिन, इस कठिन घड़ी में पार्टी लेनिन, स्तालिन और स्वेद्रलोव के चारों ओर सिमट आयी और शान्ति के मसले पर और दूसरे सभी मसलों पर भी उसने केन्द्रीय समिति का समर्थन किया।

'वाम पंथी कम्युनिस्ट' गुट अकेला कर दिया गया और हरा दिया गया।

शांति के मसले पर पार्टी अपना अंतिम फ़ैसला दे दे, इसके लिये सातवीं पार्टी कांग्रेस बुलायी गयी।

6 मार्च 1918 को, कांग्रेस शुरू हुई। पार्टी ने जब से सत्ता हाथ में ली थी, तबसे यह पहली कांग्रेस थी। इसमें 1 लाख 45 हजार पार्टी के सदस्यों की तरफ़ से 46 प्रतिनिधि वोट देने वाले और 58 प्रतिनिधि बोलने वाले लेकिन वोट न दे सकने वाले आये।

वास्तव में, उस समय पार्टी की सदस्यता 2 लाख 70 हजार से कम न थी, लेकिन इस असंगति का कारण यह था कि कांग्रेस जल्दी में बुलायी गयी थी, इसलिये बहुत से संगठन अपने प्रतिनिधि वक्त से न भेज सके। और वे संगठन जो जर्मनों के अधिकार किये हुए प्रदेशों में थे, वे प्रतिनिधि भेज ही न पाये।

ब्रेस्ट–लिटोवस्क शान्ति पर कांग्रेस में रिपोर्ट पेश करते हुए, लेनिन ने कहा कि "... अपने भीतर एक वाम पंथी विरोधी दल बनने के सबब से पार्टी जिस गंभीर संकट को महसूस कर रही है, वह रूसी क्रांति के अनुभव में एक बहुत ही गंभीर संकट है।" (लेनिन, ***सं•ग्रं•***, अं•सं•, मास्को, 1947, खं• 2, पृ• 299)।

ब्रेस्ट–लिटोवस्क शान्ति के विषय पर लेनिन ने जो प्रस्ताव रखा, 30 वोट उसके पक्ष में और 12 विपक्ष में आये; 4 तटस्थ रहे। इस तरह, वह मंजूर हो गया।

प्रस्ताव मंजूर होने के दूसरे दिन, लेनिन ने "कष्टपूर्ण शान्ति" नाम से एक लेख लिखा, जिसमें उन्होंने कहा था :

> "शान्ति की शर्तें बेहद कठिन हैं। फिर भी, इतिहास का हक उसे मिलेगा ही ...। हमें चाहिये कि संगठन करें, संगठन करें और संगठन करें। तमाम परीक्षाओं के बावजूद, भविष्य हमारा है।" (***लेनिन ग्रन्थावली,*** रूसी संस्करण, खण्ड 22, पृष्ठ 228)।

अपने प्रस्ताव में कांग्रेस ने ऐलान किया कि सोवियत प्रजातंत्र पर साम्राज्यवादी राज्यों के और फ़ौजी हमले होना लाज़िमी है। इसलिये, कांग्रेस यह समझती है कि पार्टी का यह बुनियादी काम है कि वह **आत्मानुशासन और मज़दूरों तथा किसानों का अनुशासन मज़बूत करने के लिये, कुर्बानी देकर समाजवादी देश की रक्षा** करने को आम जनता को तैयार करने के लिये, लाल फ़ौज को संगठित करने के लिये और आम फ़ौजी शिक्षा आरंभ करने के लिये, पार्टी बहुत दृढ़ और शक्तिशाली उपाय करे।

ब्रेस्ट–लिटोवस्क की शान्ति के बारे में लेनिन की नीति का समर्थन करते हुए, कांग्रेस ने त्रात्स्की और बुखारिन के मत की निन्दा की और कांग्रेस के भीतर ही हारे हुए 'वाम पंथी कम्युनिस्टों' की फूट डालने वाली कार्यवाही जारी रखने की निन्दा की।

ब्रेस्ट–लिटोवस्क की शान्ति ने पार्टी को अवकाश दिया, जिसमें वह सोवियत सत्ता को दृढ़ करे और देश के आर्थिक जीवन को संगठित करे।

शान्ति से यह मुमकिन हुआ कि दुश्मन की ताक़तों को बिखेरने के लिये, सोवियत आर्थिक व्यवस्था संगठित करने के लिये और लाल फ़ौज बनाने के लिये, साम्राज्यवादी खेमें के परस्पर संघर्षों से (मित्र–देशों से, ऑस्ट्रिया और जर्मनी के युद्ध से जो अभी चल रहा था) फ़ायदा उठाया जाये।

शांति से सर्वहारा वर्ग के लिये यह सम्भव हुआ कि किसानों का समर्थन क़ायम रखे और गृह–युद्ध में गद्दार सेनापतियों को हराने के लिये शक्ति–संचय करे।

अक्तूबर क्रांति के दौर में, लेनिन ने बोल्शेविक पार्टी को सिखाया कि जब आगे बढ़ने के लिये परिस्थिति अनुकूल हो तब कैसे निडर होकर और दृढ़ता से आगे बढ़ना चाहिये। ब्रेस्ट–लिटोवस्क शान्ति के दौर में, लेनिन ने पार्टी को सिखाया कि जब स्पष्टतः दुश्मन की ताकत अपने से ज्यादा हो तब पूरी शक्ति से नये हमले की तैयारी करने के लिये किस तरह व्यवस्थित ढंग से पीछे हटना चाहिये।

इतिहास ने लेनिन की नीति की सच्चाई को पूरी तरह साबित कर दिया है।

सातवीं कांग्रेस में तय किया गया कि पार्टी का नाम और पार्टी का कार्यक्रम बदल दिया जाये। पार्टी का नाम रूसी कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) – रू•क•पा• (बो•) रखा गया। लेनिन ने प्रस्ताव किया कि हमारी पार्टी कम्युनिस्ट पार्टी कहलाये, क्योंकि यह नाम पार्टी के उद्देश्य यानी कम्युनिज्म प्राप्त करने के बिल्कुल अनुकूल था।

एक नया पार्टी कार्यक्रम तैयार करने के लिये एक विशेष कमीशन बनाया गया, जिसमें लेनिन और स्तालिन थे। लेनिन के कार्यक्रम का मसौदा आधार के रूप में मंजूर किया गया।

इस तरह, सातवीं कांग्रेस ने एक गंभीर ऐतिहासिक महत्व का काम पूरा किया। उसने पार्टी की पांति में छिपे हुए दुश्मन, 'वाम पंथी कम्युनिस्ट' गुट और त्रात्स्की पंथियों को हराया। वह देश को साम्राज्यवादी युद्ध से अलग करने में कामयाब हुई। उसने शान्ति और अवकाश हासिल किया। उसने लाल फ़ौज के संगठन के लिये पार्टी को वक्त दिया और उसने पार्टी के सामने यह काम रखा कि राष्ट्रीय अर्थतंत्र में समाजवादी व्यवस्था चालू करे।

४. समाजवादी निर्माण के प्रारम्भिक क़दम उठाने के लिये लेनिन की योजना। ग़रीब किसानों की समितियां और कुलकों पर नियंत्रण। 'वामपंथी' समाजवादी क्रांतिकारियों का विद्रोह और उसका दमन। सोवियतों की पांचवी कांग्रेस और रूसी सोवियत समाजवादी प्रजातंत्र संघ के विधान की स्वीकृति।

शांति करके अवकाश हासिल करने के बाद, सोवियत सरकार समाजवादी निर्माण के काम में लग गयी। नवम्बर 1917 से फ़रवरी 1918 तक के दौर को लेनिन ने 'राजधानी पर लाल दस्तों के हमले' की मंजिल कहा था। 1918 के पूर्वार्द्ध में सोवियत सत्ता पूंजीपतियों की आर्थिक शक्ति तोड़ने में, अपने हाथों में राष्ट्रीय अर्थतंत्र के मर्मस्थलों (मिलों, कारखानों, बैंकों, रेलों, विदेशी व्यापार, व्यापारी बेड़ा, वगैरह) को केन्द्रित करने में, राज्य सत्ता की पूंजीवादी मशीन चूर करने में और सोवियत सत्ता को खत्म करने के लिये क्रांति–विरोध की पहली कोशिशों को विजयपूर्वक कुचलने में कामयाब हुई।

लेकिन, इतना काफ़ी नहीं था। अगर प्रगति करनी थी, तो पुरानी व्यवस्था का नाश करने के बाद नयी को बनाना भी था। इसलिये 1918 के वसन्त में 'शोषकों की संपत्ति ज़ब्त करने के बाद' समाजवादी निर्माण की नयी मंजिल की तरफ़ प्रगति शुरू हुई – अब तक की पायी हुई विजय को संगठन के रूप में दृढ़ करने की तरफ, सोवियत राष्ट्रीय अर्थतंत्र रचने की तरफ़ प्रगति शुरू हुई। लेनिन का कहना था कि समाजवादी आर्थिक व्यवस्था की नींव डालने के लिये अवकाश से ज्यादा से ज्यादा फ़ायदा उठाना चाहिये। बोल्शेविकों को सीखना था कि नये तरीक़े से पैदावार का संगठन और उसका प्रबंध कैसे करें। लेनिन ने लिखा था कि बोल्शेविक पार्टी रूस को विश्वास दिला चुकी है, बोल्शेविक पार्टी रूस को अमीरों से गरीबों के लिये जीत चुकी है। लेनिन ने कहा कि अब बोल्शेविक पार्टी को सीखना चाहिये कि रूस पर शासन कैसे किया जाये।

लेनिन का कहना था कि मौजूदा मंजिल में मुख्य काम यह था कि देश जो कुछ पैदा करे उसका हिसाब रखा जाये और सारी उपज के बंटवारे पर नियंत्रण रखा जाये। देश की आर्थिक व्यवस्था में मध्यवित्त लोगों की बहुतायत थी। शहरों और देहातों में लाखों छोटी मिल्कीयत के लोग पूंजीवाद के लिये उपजाऊ ज़मीन थे। ये छोटे मालिक न तो श्रम का अनुशासन मानते थे और न नागरिक अनुशासन मानते थे। वे राज्य की तरफ़ से हिसाब रखने और नियंत्रण करने की व्यवस्था मानने को तैयार न थे। विशेष रूप से खतरनाक बात यह थी कि इस कठिन परिस्थिति में निम्न पूंजीवादियों में सट्टे

और मुनाफ़ेखोरी की हवा चल पड़ी थी और छोटी पूंजीवाले तथा व्यापारी जनता की जरूरतों से मुनाफ़ा कमाने की कोशिश करते थे।

पार्टी ने काम में ढिलाई के खिलाफ़, उद्योग–धंधों में श्रम–अनुशासन के अभाव के खिलाफ़ जोरदार लड़ाई शुरू की। श्रम की नयी आदतें सीखने में लोगों को देर लगती थी। इसलिये, इस दौर में श्रम–अनुशासन क़ायम करने के लिये संघर्ष मुख्य काम हो गया था।

लेनिन ने बतलाया कि उद्योग–धंधों में समाजवादी होड़ लगाना जरूरी है, काम के हिसाब से मज़दूरी देना ज़रूरी है; हरेक को बराबर तनख्वाह मिले, यह बात खत्म करनी चाहिये। लेनिन ने बताया कि सिखाने और समझाने के अलावा उन लोगों के साथ ज़ोर–ज़बर्दस्ती के तरीक़े भी इस्तेमाल करने चाहिये जो राज्य से जितना बन सके हथियाना चाहते थे और जो लोग काहिल और मुनाफ़ेखोर थे। लेनिन का कहना था कि नया अनुशासन – श्रम संबंधी अनुशासन, भाईचारे के सम्बन्धों का अनुशासन, सोवियत अनुशासन – एक ऐसी चीज़ है जिसे लाखों श्रमिक जनता अपने दिन प्रतिदिन के अमली काम में पैदा करेगी, और "यह काम पूरा करने के लिये एक पूरा ऐतिहासिक युग लग जायेगा।" (***लेनिन ग्रंथावली***, रू•सं•, खं• 23, पृष्ठ 44)।

लेनिन ने समाजवादी निर्माण की इन समस्याओं की चर्चा, पैदावार के नये समाजवादी संबंधों की समस्याओं की चर्चा, अपनी प्रसिद्ध कृति ***सोवियत सरकार के फ़ौरी काम*** में की।

समाजवादी क्रांतिकारियों और मेन्शेविकों के साथ मिलकर, 'वाम पंथी कम्युनिस्टों' ने इन सवालों पर भी लेनिन से संघर्ष किया। बुखारिन, ऑसिन्स्की वगैरह इस बात का विरोध करते थे कि अनुशासन लागू किया जाये, उद्योग–धंधों में एक आदमी का प्रबंध हो, उद्योग–धंधों में पूंजीवादी विशेषज्ञ काम करें और काम–धंधे के कारगर तरीके लागू किये जायें। वे लेनिन पर यह कहकर कीचड़ उछालते थे कि इस नीति का मतलब पूंजीवादी परिस्थितियों की तरफ़ लौट चलना होगा। इसके साथ ही, 'वाम पंथी कम्युनिस्ट' इस त्रात्स्कीवादी मत का प्रचार करते थे कि रूस में समाजवादी निर्माण और समाजवाद की विजय असंभव है।

'वाम पंथी कम्युनिस्टों' की 'वाम पंथी' लफ़्फाजी इस बात को छिपाती थी कि वे कुलकों, काहिलों और मुनाफेखोरों का समर्थन करते हैं जो अनुशासन का विरोध करते थे और राज्य द्वारा आर्थिक जीवन के संचालन के विरोधी थे, हिसाब–किताब रखने और नियंत्रण करने के विरोधी थे।

नये सोवियत उद्योग–धंधों के संगठन के उसूल तय करने के बाद, पार्टी ने देहातों की समस्याओं में हाथ लगाया। इस समय देहातों में गरीब किसानों और कुलकों के बीच संघर्ष जोरों पर था। कुलक शक्तिशाली बन रहे थे और जमींदारों से छीनी हुई जमीन पर क़ब्जा कर रहे थे। ग़रीब किसानों को मदद की जरूरत थी। कुलक सर्वहारा राज्य से लड़ते थे और निश्चित भाव पर गल्ला बेचने से इन्कार करते थे। वे चाहते थे कि सोवियत राज्य को भूखा मार कर उसका समाजवादी निर्माण का काम बन्द कर दिया जाये। पार्टी ने क्रांति–विरोधी कुलकों को कुचल देने का काम अपने सामने रखा। औद्योगिक मजदूरों के दस्ते देहातों में इस उद्देश्य से भेजे गये कि कुलकों के खिलाफ़ ग़रीब किसानों के संगठन बनायें और उनके संघर्ष को सफल बनायें और कुलकों से फ़ालतू गल्ले की उपज छुटवायें जो वे रोके हुए थे।

लेनिन ने लिखा था :

> "साथी मजदूरों, याद रखो कि क्रांति नाजुक दौर से गुज़र रही है। याद रखो कि **तुम्हीं** क्रांति की रक्षा कर सकते हो, दूसरा कोई नहीं कर सकता। हमें चाहिये लाखों चुने हुए, राजनीतिक रूप से आगे बढ़े हुए मजदूर, जो समाजवाद के प्रति वफादार हों, जो घूसखोरी और चोरी के लोभ में फंस ही न सकें और जो कुलकों, मुनाफेखोरों, डाकुओं, घूसखोरों और अव्यवस्था पैदा करने वालों के खिलाफ़ एक फ़ौलादी शक्ति खड़ी कर दें।" (***लेनिन ग्रंथावली,*** रू•सं•, 23 पृ• 25)।

लेनिन ने कहा था : "रोटी की लड़ाई समाजवाद की लड़ाई है।" यह नारा देकर, मजदूर दस्तों को देहात के जिलों में भेजने का काम संगठित किया गया। अन्न के बारे में डिक्टेटरशिप क़ायम करते हुए और निश्चित दरों पर गल्ला खरीदने के लिये जन–खाद्य–कमीसारियत की संस्थाओं को विशेषाधिकार देते हुए, कई आज्ञा–पत्र जारी किये गये।

11 जून 1918 को, ***गरीब किसानों की समितियां*** बनाने के लिये एक आज्ञा–पत्र निकाला गया। इन समितियों ने कुलकों के खिलाफ़ संघर्ष में, ज़ब्त की हुई ज़मीन को फिर से बांटने और खेती के औज़ार बांटने में, कुलकों से फालतू अनाज इकट्ठा करने में और मज़दूर केन्द्रों और लाल फ़ौज को अन्न भेजने में महत्वपूर्ण पार्ट अदा किया। कुलकों की 5 करोड़ हेक्टर भूमि ग़रीब और मध्यम किसानों के हाथ में आ गयी। कुलकों के पैदावार के साधनों का एक बड़ा भाग ज़ब्त कर लिया गया और ग़रीब किसानों को दे दिया गया।

ग़रीब किसानों की समितियों का बनना देहातों में समाजवादी क्रांति के विकास की अगली मंजिल थी। गांवों में ये समितियां सर्वहारा डिक्टेटरशिप का गढ़ थीं। ज्यादातर इन्हीं के ज़रिये किसानों में लाल फ़ौज के लिये भर्ती की गयी।

गांव के जिलों में सर्वहारा आन्दोलन और ग़रीब किसानों की समितियों के संगठन ने देहातों में सोवियत सत्ता को मज़बूत किया। मध्यम किसानों को सोवियत सत्ता की ओर लाने में इनका जबर्दस्त राजनीतिक महत्व था।

1918 के अंत में, जब उनका काम खत्म हो गया तब ग़रीब किसानों की समितियां गांव की सोवियतों में मिला दी गयीं। इस तरह, उनका अस्तित्व खत्म हुआ।

4 जुलाई 1918 को शुरू होने वाली सोवियतों की पांचवीं कांग्रेस में, 'वामपंथी' समाजवादी क्रांतिकारियों ने कुलकों की हिमायत में लेनिन पर बड़ा कड़ा हमला किया। उन्होंने मांग की कि कुलकों के खिलाफ़ लड़ाई बन्द की जाये और देहातों में मजदूरों के अन्न सम्बन्धी दस्ते भेजना खत्म किया जाये। जब 'वाम पंथी' समाजवादी क्रांतिकारियों ने देखा कि कांग्रेस का बहुमत उनकी नीति का दृढ़ता से विरोध करता है, तो उन्होंने मास्को में बग़ावत शुरू कर दी। उन्होंने त्रयोखस्वयातितेल्स्की मार्ग पर क़ब्जा कर लिया और वहां से क्रैमलिन पर गोलाबारी करने लगे। बोल्शेविकों ने कुछ घंटों में ही इस मुर्खतापूर्ण विद्रोह को दबा दिया। 'वामपंथी' समाजवादी क्रांतिकारियों ने देश के दूसरे हिस्सों में भी बगावत की कोशिश की, लेकिन हर जगह यह विद्रोह तुरंत दबा दिये गये।

सोवियत–विरोधी 'दक्षिणपंथियों और त्रात्स्कीपंथियों के गुट' पर चलने वाले मुकदमें ने अब यह निश्चित कर दिया है कि 'वाम पंथी' समाजवादी क्रान्तिकारियों का विद्रोह बुखारिन और त्रात्स्की की जानकारी और उनकी रज़ामन्दी से हुआ था। सोवियत सत्ता के खिलाफ़ बुखारिनवादियों, त्रात्स्की पंथियों और 'वाम पंथी' समाजवादी क्रांतिकारियों के एक आम क्रांति–विरोधी षड़यंत्र का ही यह एक अंग था।

इसी मौके पर, ब्लूमकिन नामक एक 'वाम पंथी' समाजवादी क्रांतिकारी ने, जो आगे चल कर त्रात्स्की का दलाल बना, जर्मनी से युद्ध का उकसावा पैदा करने के लिये, जर्मन दूतावास में मास्को–स्थित जर्मन राजदूत मीरबाख की हत्या कर दी। लेकिन, सोवियत सरकार ने युद्ध न होने दिया और क्रांति विरोधियों की उकसावा पैदा करने वाली चालें व्यर्थ कर दीं।

सोवियतों की पांचवीं कांग्रेस ने पहला सोवियत विधान, रूसी सोवियत संघीय समाजवादी प्रजातंत्र का विधान स्वीकार किया।

सारांश

फ़रवरी से अक्तूबर 1917 तक आठ महीनों में, बोल्शेविक पार्टी ने मज़दूर वर्ग के बहुमत को अपनी तरफ़ करने, सोवियतों में अपना बहुमत स्थापित करने और समाजवादी क्रांति के लिये लाखों किसानों का समर्थन हासिल करने का बहुत ही कठिन काम पूरा किया। उसने निम्नपूंजीवादी पार्टियों (समाजवादी क्रांतिकारियों, मेन्शेविकों और अराजकतावादियों) की नीति का पर्दाफ़ाश करके और पग–पग पर यह दिखला कर कि यह नीति मज़दूर जनता के हितों के खिलाफ़ है, आम जनता को इनके असर से बचाया। बोल्शेविक पार्टी ने युद्ध के मोर्चे पर और उसके पीछे अक्तूबर समाजवादी क्रांति के लिये आम जनता को तैयार करने के लिये बड़े पैमाने पर राजनीतिक काम किया।

इस दौर में, पार्टी के इतिहास में निर्णायक महत्व की घटनायें थीं : विदेश में निर्वासन से लेनिन का आना, उनका अप्रैल का सैद्धांतिक निबन्ध (अप्रैल थीसिस), अप्रैल की पार्टी कांफ्रेंस और छठी पार्टी कांग्रेस। पार्टी के फ़ैसले से मज़दूर वर्ग को बल मिला और विजय में उसका विश्वास बढ़ा। इन फ़ैसलों में मज़दूरों को क्रांति की महत्वपूर्ण समस्याओं के समाधान मिले। अप्रैल कांफ्रेंस ने पार्टी के सारे काम की पूंजीवादी–जनवादी क्रांति से समाजवादी क्रांति की तरफ़ बढ़ने के संघर्ष की ओर लगाया। छठी कांग्रेस ने पूंजीपतियों और उनकी अस्थायी सरकार के खिलाफ, सशस्त्र विद्रोह करने के लिये पार्टी को आगे बढ़ाया।

समझौतावादी समाजवादी क्रांतिकारी और मेन्शेविक पार्टियों, अराजकतावादियों और दूसरी ग़ैर कम्युनिस्ट पार्टियों ने अपने विकास का चक्र पूरा कर लिया : अक्तूबर क्रांति से पहले ही वे सब पूंजीवादी पार्टियां बन गयी थीं और वे पूंजीवादी व्यवस्था की रक्षा करने और उसे अटूट बनाये रखने के लिये लड़ीं। बोल्शेविक पार्टी ही एक पार्टी थी जिसने पूंजीपतियों का तख़्ता उलटने के लिये और सोवियतों की सत्ता क़ायम करने के लिये आम जनता के संघर्ष का नेतृत्व किया।

इसके साथ ही, पार्टी के भीतर समर्पणवादियों – जिनोवियेव, कामेनेव, राइकोव, बुखारिन, त्रात्स्की और प्याताकोव – की कोशिशों को बोल्शेविकों ने नाकाम कर दिया। ये कोशिशें इसलिये थीं कि पार्टी को समाजवादी क्रांति के रास्ते से हटाया जाये।

बोल्शेविक पार्टी के नेतृत्व में, गरीब किसानों के सहयोग से और फ़ौजियों और जहाज़ियों की मदद से मजदूर वर्ग ने पूंजीपतियों की सत्ता खत्म कर दी, सोवियतों की सत्ता कायम की, एक नयी तरह का राज्य – समाजवादी सोवियत राज्य – कायम

किया, ज़मीन पर ज़मींदारों की मिल्कियत खत्म की, किसानों के काम के लिये ज़मीन दे दी, देश की तमाम भूमि का राष्ट्रीयकरण किया, पूंजीपतियों की सम्पत्ति ज़ब्त की, रूस को युद्ध से हटाया और शान्ति हासिल की, यानी बहुत ज़रूरी अवकाश प्राप्त किया और इस तरह, समाजवादी निर्माण के विकास के लिये परिस्थितियां पैदा कीं।

अक्तूबर समाजवादी क्रांति ने पूंजीवाद का नाश किया, पूंजीपतियों से पैदावार के साधन छीन लिये और मिलों, कारखानों, रेलों और बैंकों को तमाम जनता की सम्पत्ति, सार्वजनिक सम्पत्ति बना दिया।

अक्तूबर समाजवादी क्रांति ने सर्वहारा डिक्टेटरशिप कायम की और विशाल देश की हुकूमत का काम मज़दूर वर्ग को सौंप दिया। इस तरह, उसे शासक वर्ग बना दिया।

इस तरह, अक्तूबर की समाजवादी क्रांति ने मनुष्य जाति के इतिहास में एक नया युग, सर्वहारा क्रांतियों का युग आरंभ किया।

आठवाँ अध्याय

विदेशी फ़ौजी हस्तक्षेप और गृह–युद्ध के दौर में बोल्शेविक पार्टी। (1918–1920)

1. विदेशी फ़ौजी हस्तक्षेप की शुरूआत। गृह–युद्ध का पहला दौर।

ऐसे समय जब कि पच्छिम में युद्ध अब भी पूरी तरह चालू था, ब्रेस्ट लिटोवस्क की शान्ति कायम होने से और सोवियत सत्ता द्वारा एक के बाद एक कई क्रान्तिकारी आर्थिक कदम उठाने पर सोवियत राज्य के दृढ़ होने से पच्छिमी साम्राज्यवादियों में, खास तौर से मित्र–देशों के साम्राज्यवादियों में, भारी खलबली मच गयी।

मित्र–देशों के साम्राज्यवादियों को डर था कि जर्मनी और रूस के बीच शान्ति होने से युद्ध में जर्मनी की हालत सुधर सकती है और उसी हिसाब से उनकी अपनी फौजों की हालत बिगड़ सकती है। इसके अलावा, उन्हें डर था कि रूस और जर्मनी में शान्ति कायम होने से सभी देशों में और सभी मोर्चों पर शान्ति की इच्छा ज़ोर पकड़ सकती है और इस तरह, युद्ध चलाने में बाधा पड़ सकती है और साम्राज्यवादियों का उद्देश्य खटाई में पड़ सकता है। अंत में, एक विशाल देश की धरती पर वे सोवियतों की सत्ता की मौजदूगी से डरते थे। सोवियत सत्ता ने पूंजीपतियों का तख्ता उलटने के बाद घर में जो सफलतायें पायी थीं, उनका रंग पच्छिम के मज़दूरों और सैनिकों पर चढ़ सकता था। हो सकता था कि लम्बी खिंचने वाली लड़ाई से खूब असन्तुष्ट होकर, मज़दूर और सैनिक रूसियों की लीक पर चल पड़ें और अपनी संगीनें अपने ऊपर जुल्म ढाने वालों और अपने मालिकों के खिलाफ़ ही मोड़ दें। इसलिये, मित्र–देशों की हुकूमतों ने सोवियत सरकार का तख्ता उलटने के लिये और पूंजीवादी हुकूमत कायम

करने के लिये रूस में हथियारबन्द दखलन्दाजी करने का फैसला किया। वे चाहते थे कि उनकी कायम की हुई पूंजीवादी हुकूमत देश में पूंजीवादी व्यवस्था बहाल कर दे, जर्मनों के साथ शान्ति–सन्धि रद्द कर दे और जर्मनी और आस्ट्रिया के खिलाफ़ फिर से फौजी मोर्चा कायम कर दे।

मित्र–देशों के साम्राज्यवादी इस धुर्त काम में इस कारण और भी जुट गये कि उनकी समझ में सोवियत शासन डावाँडोल था। उन्हें जरा भी सन्देह न था कि सोवियत सरकार के दुश्मनों की थोड़ी सी मदद से ही उसका जल्द ही खात्मा होना अनिवार्य हो जायेगा।

सोवियत सत्ता की सफलताओं और उसके मज़बूत होने से सत्ता खोने वाले वर्ग – ज़मींदार और पूँजीपति – और भी बौखला उठे। हारी हुई पार्टियाँ कॉन्सटीट्शनल डेमोक्रेट, मेन्शेविक, समाजवादी क्रान्तिकारी, अराजकतावादी और सभी तरह के राष्ट्रवादी सोवियत सत्ता की सफलताओं और उसकी मज़बूती से परेशान थे। यही हाल ग़द्दार जनरलों, कज़ाक अफ़सरों वगैरह का था।

विजयी अक्तूबर क्रान्ति की शुरूआत के दिनों से ही, यह सब विरोधी लोग गला फाड़–फाड़ कर चिल्लाने लगे थे कि रूस में सोवियत सत्ता की जड़ जम ही नहीं सकती, उसका नाश निश्चित है और एक या दो हफ़्तों में या एक महीनें में या ज्यादा से ज्यादा दो या तीन महीनों में सोवियत सत्ता खत्म हो जायेगी। लेकिन दुश्मनों के कोसने के बावजूद, जब सोवियत सत्ता बनी ही रही और मजबूत भी होती गयी तो रूस में उसके दुश्मनों को मजबूरन मानना पड़ा कि उन्होंने जिनता सोचा था उससे वह ज्यादा मजबूत निकली और उसके खात्मे के लिये क्रान्ति–विरोधी शक्तियों को बहुत कोशिश करनी पड़ेगी और भारी संघर्ष करना पड़ेगा। इसलिये, उन्होंने बड़े पैमाने पर क्रान्ति–विरोधी बग़ावत का काम शुरू करने का फैसला किया। उन्होंने क्रांति–विरोधी शक्तियों को बटोरने, फौजी कार्यकर्ताओं को इकट्ठा करने और खास तौर से कज़ाक और कुलक जिलों में विद्रोह संगठित करने का फ़ैसला किया।

इस तरह 1918 के पूर्वार्द्ध में ही, ऐसे दो निश्चित दल बन गये जो सोवियत सत्ता को खत्म करने की मुहीम शुरू करने के लिये तैयार थे। इनमें एक तो थे मित्र–देशों के विदेशी साम्राज्यवादी, और दूसरे थे घर के क्रान्ति–विरोधी।

इनमें से किसी दल के पास भी अकेले सोवियत सत्ता को खत्म करने के लिये ज़रूरी साधन न थे। रूस में, क्रान्ति–विरोधियों के पास कुछ फ़ौजी कार्यकर्ता और लड़ने के लिये कुछ आदमी थे। ये लोग ज्यादातर कज़ाकों के उच्च वर्गों और कुलकों

में से थे। सोवियत सत्ता के खिलाफ़ बग़ावत शुरू करने के लिये यह काफी थे। लेकिन, इनके पास न तो पैसा था, न हथियार ही। दूसरी तरफ, विदेशी साम्राज्यवादियों के पास पैसा भी था और हथियार भी, लेकिन वे हस्तक्षेप करने के लिये काफ़ी तादाद में अपनी फ़ौज को दूसरे मोर्चो से 'छुट्टी' न दे सकते थे। वे ऐसा इसी वजह से न कर सकते थे कि जर्मनी और आस्ट्रिया से युद्ध के लिये उन्हें इन फौजों की जरूरत थी, बल्कि इसलिये भी कि सोवियत सत्ता के खिलाफ़ युद्ध में शायद ये फ़ौजें पूरी तरह भरोसे की साबित न हों।

सोवियत सत्ता के खिलाफ़ संघर्ष की परिस्थितियों ने यह आवश्यक कर दिया कि दोनों सोवियत–विरोधी दल, विदेशी और घरेलू, एका कायम करें। 1918 के पूर्वार्द्ध में, यह एका क़ायम कर लिया गया।

सोवियत सत्ता के खिलाफ़ इस तरह घर में उसके दुश्मनों की क्रान्ति–विरोधी बग़ावतों का समर्थन पाकर, विदेशी फ़ौजी हस्तक्षेप शुरू हुआ।

रूस में अवकाश का दौर खत्म हुआ गृह–युद्ध का दौर शुरू हुआ। यह गृह–युद्ध सोवियत सत्ता के देशी और विदेशी दुश्मनों के खिलाफ़ रूस की जातियों के मजदूरों और किसानों का युद्ध था।

युद्ध का ऐलान किये बिना ही ब्रिटेन, फ्रांस, जापान और अमरीका के साम्राज्यवादियों ने फ़ौजी हस्तक्षेप शुरू किया, हालांकि यह हस्तक्षेप युद्ध था, रूस के खिलाफ़ युद्ध था और साथ ही सबसे घटिया क़िस्म का युद्ध था। ये 'सभ्य' डाकू चुपके से और चोरी से रूसी समुद्र तट पर आ पहुंचे और रूस की धरती पर अपनी फ़ौजें उतार दीं।

अंग्रेजों और फ्रांसीसियों ने उत्तर में फ़ौजें उतारी, आरखांगेल्स्क और मूरमान्स्क पर क़ब्जा कर लिया, स्थानीय गद्दारों की बग़ावत की मदद की, सोवियतों को खत्म किया और ग़द्दारों की 'उत्तरी रूस की हुकूमत' क़ायम की।

जापानियों ने व्लादीवस्तोक में फ़ौजें उतारीं, समुद्र तट के सूबे पर क़ब्जा कर लिया, सोवियतों को तितर–बितर कर दिया और गद्दार बाग़ियों की मदद की, जिन्होंने आगे चल कर पूंजीवादी व्यवस्था बहाल की।

उत्तरी कॉकेशस में, अंग्रेजों और फ्रांसीसियों की मदद से जनरल कॉर्निलोव, एलैक्सियेव और देनीकिन ने एक ग़द्दार 'स्वयंसेवक सेना' बनायी, कज़ाकों के उच्च वर्गों की बग़ावत करायी और सोवियतों के खिलाफ़ कार्यवाही शुरू की।

दोन नदी के किनारे, जनरल क्रासनोव और मामोन्तोव ने जर्मन साम्राज्यावादियों की गुप्त मदद से (जर्मन खुल कर उन्हें मदद देने से हिचकिचाते थे, क्योंकि जर्मनी और रूस के बीच शान्ति–संधि हो चुकी थी) दोन प्रदेश के कज़ाकों की बग़ावत कराई, दोन प्रदेश पर क़ब्जा कर लिया और सोवियतों के खिलाफ़ कार्यवाही शुरू की।

मध्य बोल्गा प्रदेश और साईबेरिया में, अंग्रेजों और फ्रांसीसियों ने चेकोस्लोवाक दस्तों से विद्रोह कराया। इन दस्तों में युद्ध–बन्दी थे। इन्हें सोवियत सरकार से साईबेरिया और सुदूरपूर्व होते हुये घर लौटने की अनुमति मिल गयी थी। लेकिन, रास्ते में समाजवादी क्रांतिकारियों और अंग्रेजों तथा फ्रांसीसियों ने इन्हें सोवियत सत्ता के खिलाफ़ विद्रोह करने के लिये इस्तेमाल किया। इन दस्तों का विद्रोह बोल्गा प्रदेश और साईबेरिया में कुलकों के विद्रोह के लिये और वोतकिंस्क और इजेव्सक कारखानों के मज़दूरों के लिये, जो अब भी समाजवादी क्रान्तिकारियों के असर में थे, बग़ावत की रणभेरी बन गया। बोल्गा प्रदेश में, समारा में, एक ग़द्दार समाजवादी क्रान्तिकारी हुकूमत और साईबेरिया में, ओम्स्क में, एक ग़द्दार हुकूमत क़ायम की गयी।

अंग्रेज–फ्रांसीसी–जापानी–अमरीकी गुट के हस्तक्षेप में जर्मनी ने कोई हिस्सा न लिया और न वह ले सकता था, और किसी वजह से नहीं तो इसी वजह से कि वह इस गुट से युद्ध कर रहा था। लेकिन, इसके बावजूद और रूस और जर्मनी के बीच शान्ति–संधि होने पर भी, किसी भी बोल्शेविक को इसमें संदेह न था कि क़ैसर विलियम की सरकार सोवियत रूस की वैसी ही कट्टर दुश्मन है जैसे कि अंग्रेज–फ्रांसीसी–जापानी–अमरीकी हमलावर थे। और वास्तव में, जर्मन साम्राज्यवादियों ने सोवियत रूस को अकेले करने, उसे कमजोर बनाने और उसका नाश करने की भरसक कोशिश की। उन्होंने उससे उक्रैन छीन लिया ; यह तो सही है कि उन्होंने ग़द्दार उक्रैनी रादा[1] से 'संधि' के अनुसार ही ऐसा किया। रादा के प्रार्थना करने पर, वे अपनी फ़ौजें ले आये और निर्दयता से उक्रैनी जनता को लूटने और सताने लगे और उक्रैनी जनता को मना कर दिया कि सोवियत रूस से किसी भी तरह का सम्बन्ध न रखे। उन्होंने सोवियत रूस से ट्रांस कॉकेशिया को अलग कर दिया। जॉर्जिया और अजरबेजन के राष्ट्रवादियों की प्रार्थना पर वहाँ जर्मन और तुर्की फौजें भेजी और तिफ़लिस और बाकू में वे शासक बन बैठे। उन्होंने जनरल क्रासनोव को, जिसने दोन प्रदेश में सोवियत सत्ता के खिलाफ़ बग़ावत करायी थी, ढेर के ढेर हथियार और खाने–पीने का सामान दिया; हालांकि यह सच है कि यह सब उन्होंने खुलेआम नहीं किया।

---

1. **राष्ट्रवादी क्रांति–विरोधी उक्रैनी पूंजीपतियों की सरकार, जिसने क्रांति का गला घोंट देने के लिये आस्ट्रिया–जर्मनी के साम्राज्यवादियों की फौजों को उक्रैन में बुलाया था – अं॰ अनु॰**

इस तरह, सोवियत रूस अपने अन्न, कच्चे माल और ईंधन के मुख्य स्रोतों से काट दिया गया।

उन दिनों सोवियत रूस की हालत बहुत कठिन थी। गोश्त और रोटी की कमी थी। मज़दूर भूखे रहते थे। मास्को और पेत्रोग्राद में, उन्हें हर दूसरे दिन 1/8 पौंड रोटी का राशन दिया जाता था और कभी–कभी ऐसा भी होता था कि रोटी दी ही न जाती थी। कारखाने बन्द थे या करीब–करीब बन्द थे, क्योंकि कच्चे माल और ईंधन का टोटा था। लेकिन, मज़दूर वर्ग ने हिम्मत न हारी। और, न बोल्शेविक पार्टी ने हिम्मत हारी। उस समय की बेहिसाब कठिनाइयों को खत्म करने के लिये जो जिन्दगी और मौत की लड़ाई चली, उसने दिखा दिया कि मज़दूर वर्ग के अन्दर कितनी अथाह शक्ति छिपी हुई है और बोल्शेविक पार्टी का मान कितना ज़बर्दस्त है।

पार्टी ने ऐलान किया कि देश एक हथियारबन्द खेमा है। पार्टी ने देश के आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक जीवन को युद्ध–काल के अनुरूप ढाला। सोवियत सरकार ने घोषणा की कि 'समाजवादी **पितृभूमि खतरे** में है', और उसकी रक्षा में उठ खड़े होने के लिये जनता का आह्वान किया। लेनिन ने नारा दिया : 'सब कुछ मोर्चे के लिये !', और लाखों मज़दूर और किसान लाल फ़ौज में भर्ती हुए और मोर्चे के लिये चल पड़े। पार्टी और नौजवान कम्युनिस्ट सभा के आधे सदस्य मोर्चे पर गये। पार्टी ने **पितृभूमि के लिये युद्ध** के लिये जनता को जगाया। यह युद्ध विदेशी हमलवारों और क्रान्ति से पछाड़े हुए शोषक वर्गों की बग़ावत के खिलाफ़ था। लेनिन द्वारा संगठित मजदूर–किसान रक्षा–समिति ने मोर्चे पर कुमक, रसद, कपड़े और हथियार भेजने के काम का संचालन किया। अनिवार्य सैनिक सेवा के बदले स्वयंसेवकों की भर्ती शुरू होने से, लाल फौज में लाखों नये जवान आये और बहुत जल्द उसकी तादाद दस लाख जवानों से ऊपर हो गयी।

हालांकि देश की हालत नाजुक थी और तरुण लाल फौज अभी मजबूत न थी, फिर भी सुरक्षा के लिये जो कदम उठाये गये, उनका पहला फल तुरंत मिला। जनरल क्रासनोव समझता था कि ज़ारित्सिन पर उसका कब्जा हो ही जायेगा, लेकिन वहाँ से उसे पीछे हटना पड़ा और उसे दोन नहीं के पार खदेड़ दिया गया। जनरल देनीकिन की कार्यवाही उत्तरी कॉकेशस के छोटे इलाके में सीमित हो गई। और, जनरल कॉर्निलोव लाल फ़ौज के खिलाफ़ लड़ते हुए मारा गया। चेकोस्लोवाक और ग़द्दार समाजवादी क्रान्तिकारी दस्ते कज़ान, सिम्बिर्स्क और समारा से निकाल दिये गये और यूराल की तरफ़ खदेड़ दिये गये। यारोस्लावल में ग़द्दार सेविंकोव की अगुवाई में बग़ावत हुई थी, मास्को में अंग्रेजी मिशन के प्रधान–लॉकहार्ट – ने उसका संगठन

किया था। यह विद्रोह दबा दिया गया और खुद लॉकहार्ट गिरफ्तार कर लिया गया। समाजवादी क्रान्तिकारियों ने कॉमरेड उरित्स्की और वोलोदास्की की हत्या की थी और लेनिन के जीवन पर भी नीचतापूर्ण हमला किया था। बोल्शेविकों के खिलाफ़ उनके ग़द्दाराना (श्वेत, ह्वाइट) आतंक का बदला लेने के लिये, उन पर लाल आतंक ढाया गया, और मध्य रूस के हर महत्वपूर्ण शहर से वे पूरी तरह खदेड़ दिये गये।

तरुण लाल फौज परिपक्व हुई और युद्ध में तपकर निखरी। लाल फौज को दृढ़ करने और उसे राजनीतिक शिक्षा देने में और उसके अनुशासन तथा लड़ाकू योग्यता को बढ़ाने में कम्युनिस्ट कमीसारों का काम निर्णायक महत्व का था।

लेकिन, बोल्शेविक पार्टी जानती थी कि यह लाल फौज की आरंभिक सफलतायें ही हैं, निर्णायक सफलतायें नहीं हैं। उसे मालूम था कि नयी और ज्यादा गंभीर लड़ाइयां आगे होने को हैं, और देश शत्रु से काफ़ी दिनों तक और जमकर लड़ने के बाद ही खोये हुए अन्न, कच्चे माल और ईंधन के प्रदेश फिर से हासिल कर सकता है। इसलिये, बोल्शेविकों ने लम्बी लड़ाई चलाने के लिये जोरदार तैयारियाँ की और फ़ैसला किया कि सारे देश को मोर्चे की सेवा में लगा दिया जाये। सोवियत सरकार ने ***युद्धकालीन कम्युनिज्म*** लागू किया। बड़े पैमाने के उद्योग–धंधों के अलावा, उसने मध्यम और छोटे उद्योग–धंधे अपने अधिकार में कर लिये, जिससे कि फौज और खेतिहर जनता को देने के लिये रसद इकट्ठी की जा सके। उसने ग़ल्ले के व्यापार पर इजारेदारी लागू की, गल्ले में व्यक्तिगत व्यापार बन्द कर दिया और फ़ालतू अनाज ज़ब्त करने की व्यवस्था क़ायम की। इस व्यवस्था के अनुसार, किसानों के पास जो कुछ फ़ालतू उपज होती, उसकी रजिस्ट्री होती थी और निश्चित भाव पर राज्य उसे खरीद लेता था जिससे कि फ़ौज और मजदूरों को सामान भेजने के लिये गल्ला इकट्ठा किया जा सके। अंत में, उसने सभी वर्गों के लिये अनिवार्य श्रम सेवा लागू की। पूंजीपतियों के लिये शारीरिक श्रम लाजिमी करके और इस तरह मोर्चे के ज्यादा जरूरी कामों के लिये मजदूरों को छुट्टी देकर, पार्टी इस उसूल को अमल में ला रही थी : 'जो काम न करेगा, वह खायेगा भी नहीं।'

राष्ट्रीय सुरक्षा के लिये जो अभूतपूर्ण कठिन परिस्थितियां थीं, उन्हीं से ये सब कदम उठाना ज़रूरी हुआ। ये सब कदम अस्थायी थे, और कुल मिलाकर इनको युद्ध कालिन कम्युनिज़्म कहा जाता था।

देश ने अपने को लम्बे और कठिन गृह–युद्ध के लिये, सोवियत सत्ता के देशी और विदेशी शत्रुओं के खिलाफ़ युद्ध के लिये तैयार किया। 1918 के अंत तक, देश को फौज की ताकत तिगुनी बढ़ानी पड़ी और इस फौज के लिये रसद इकट्ठी करनी पड़ी।

लेनिन ने उस समय कहा था :

"हमने फ़ैसला किया था कि वसन्त तक दस लाख फ़ौज हो जायें। अब हमें तीस लाख फ़ौज चाहिये। यह फ़ौज हमें मिल सकती है और यह फौज हम तैयार कर लेंगे। "

2. युद्ध में जर्मनी की हार। जर्मनी में क्रान्ति। तीसरी इन्टरनेशनल की स्थापना। आठवीं पार्टी कांग्रेस।

सोवियत देश जब विदेशी हस्तक्षेप की ताकतों के खिलाफ़ नयी लड़ाईयों की तैयारी कर रहा था, तब पच्छिम में युद्ध करने वाले देशों के अन्दर, मोर्चे पर और पीछे भी, निर्णायक घटनायें घट रही थीं। युद्ध और अन्न–संकट से, जर्मनी और ऑस्ट्रिया का दम घुट रहा था। ब्रिटेन, फ्रांस और अमरीका तो माल के नये स्रोतों का उपयोग कर रहे थे, लेकिन जर्मनी और ऑस्ट्रिया अपनी थोड़ी सी बची–खुची आखिरी पूंजी खर्च किये डाल रहे थे। हालत यह थी कि जर्मनी और ऑस्ट्रिया एकदम पस्ती की मंजिल तक पहुँच कर अब हारे और तब हारे हो रहे थे।

इसके साथ ही, जर्मनी और ऑस्ट्रिया की जनता इस घातक और खत्म न होने वाली लड़ाई के खिलाफ़ और उसे पस्ती और भुखमरी की दशा में डालने वाली अपनी साम्राज्यवादी हुकूमतों के खिलाफ़ गुस्से से उबल रही थी। अक्तूबर क्रान्ति के इन्कलाबी असर का भी ज़बर्दस्त प्रभाव पड़ा ब्रेस्ट–लिटोवस्क की शान्ति होने से पहले ही, सोवियत रूस युद्ध के दरअसल खत्म होने और उसके साथ संधि करने से पहले ही, सोवियत सैनिकों का ऑस्ट्रिया और जर्मनी के सैनिकों से भाईचारे के व्यवहार का भी ऐसा ही असर पड़ा। रूस की जनता ने अपनी साम्राज्यवादी हुकूमत का तख़्ता पलट कर घृणित युद्ध का खात्मा कर दिया था। ऑस्ट्रिया और जर्मनी के मज़दूरों के लिये यह बात एक अच्छा सबक बन गयी। जो जर्मन सैनिक पूर्वी मोर्चे पर भेजे गये थे और जो ब्रेस्ट–लिटोवस्क की शान्ति के बाद पच्छिमी मोर्चे पर भेजे गये थे, वे उस मोर्चे पर सोवियत सैनिकों के साथ अपने भाईचारे की बात कहते थे और बतलाते थे कि सोवियत सैनिकों ने युद्ध से कैसे छुटकारा पाया। इससे जर्मन फ़ौज का युद्ध करने के लिये मनोबल कमजोर हुए बिना न रहा। इन्ही कारणों से, ऑस्ट्रिया की फौज पहले से ही टूटने लगी थी।

इन सभी कारणों से, जर्मन सैनिकों के अन्दर शान्ति की इच्छा और तीव्र हुई। उनमें पहले जैसी लड़ने की योग्यता न रही और वे मित्र–देशों की फ़ौजों के हमले के सामने पीछे हटने लगे। नवम्बर 1918 में, जर्मनी में क्रान्ति फूट पड़ी और विलियम और उसकी हुकूमत का तख़्ता उलट दिया गया।

जर्मनी को मजबूरन हार माननी और शान्ति के लिये प्रार्थना करनी पड़ी।

इस तरह, पलक मारते ही जर्मनी पहले दर्जे की शक्ति से दूसरे दर्जे की शक्ति बन गया।

जहां तक सोवियत राज्य की स्थिति का सवाल था, इस घटना से कुछ नुकसान हुआ; क्योंकि सोवियत सत्ता के ख़िलाफ जिन मित्र–देशों ने हथियारबन्द हस्तक्षेप शुरू किया था, वे यूरोप और एशिया में मुख्य शक्ति बन गये। अब वे सोवियत देश में और सक्रिय रूप से हस्तेक्षप कर सकते थे, उसकी नाकेबन्दी कर सकते थे और सोवियत राज्य के गले में अपना फन्दा और मज़बूत कर सकते थे। वास्तव में हुआ भी यही, जैसा कि हम आगे देखेंगे। दूसरी तरफ़, इस घटना से लाभ भी था, जो हानि से बढ़ कर था और जिसने बुनियादी तौर से सोवियत रूस की स्थिति को सुधारा। सबसे पहले तो सोवियत सरकार अब ब्रेस्ट–लिटोवस्क की डाकूओं वाली शान्ति खत्म कर सकती थी, हर्जाना देना बन्द कर सकती थी और जर्मन साम्राज्यवाद के जुएं से ऐस्टोनिया, लैटविया, बेलोरूसिया, लिथुआनिया, उक्रैन और ट्रांस कॉकेशिया को मुक्त करने के लिये खुला फौजी और राजनीतिक संघर्ष आरंभ कर सकती थी। दूसरे, और मुख्यतः यूरोप के बीच में – जर्मनी में – एक प्रजातंत्री व्यवस्था और मज़दूर और सैनिक प्रतिनिधियों की सोवियतों का होना यूरोप के देशों पर क्रान्ति का रंग चढ़ाये बिना न रह सकता था। दरअसल उसने क्रान्ति का रंग चढ़ाया। और इससे रूस में सोवियत सत्ता की स्थिति और मज़बूत हुए बिना न रह सकती थी। यह सही है कि जर्मन क्रान्ति समाजवादी न होकर पूंजीवादी क्रान्ति थी। सोवियतें पूंजीवादी पार्लियामेंट की ताबेदार संस्थायें थीं, क्योंकि उनमें सोशल–डेमोक्रेटों का प्रभुत्व था, जो रूसी मेन्शेविकों की तरह समझौतावादी थे। वास्तव में, जर्मन क्रान्ति की यही कमज़ोरी थी। यह क्रान्ति कितनी कमज़ोर थी, यह मसलन इसी बात से ज़ाहिर होता है कि उसने जर्मन गद्दारों को रोजा लुक्जेगबुर्ग और कार्ल लीबनेवख्त जैसे प्रमुख क्रान्तिकारियों को बिना चीं–चपड़ किये कत्ल कर डालने दिया। फिर भी, वह क्रान्ति ही थी। विलियम का तख्ता उलट दिया गया था और मज़दूरों ने अपनी बेड़ियाँ फेंक दी थी। यह बात खुद ही पच्छिम में क्रान्ति का ज्वार उभारने वाली, यूरोप के देशों में क्रान्ति की उठान को बुलावा देने वाली थी।

यूरोप में क्रांन्ति का ज्वार उठने लगा। ऑस्ट्रिया में क्रान्तिकारी आन्दोलन शुरू हुआ और हंगरी में सोवियत प्रजातंत्र क़ायम हुआ। क्रान्ति के उठते हुए ज्वार के साथ, कम्युनिस्ट पार्टियां ऊपर आयीं।

कम्युनिस्ट पार्टियों की एकता के लिये, एक तीसरी, कम्युनिस्ट इन्टर नेशनल बनाने के लिये अब एक वास्ताविक आधार मौजूद था।

मार्च 1919 में, लेनिन के नेतृत्व में बोल्शेविकों की पहलक़दमी पर, मास्को में विभिन्न देशों की कम्युनिस्ट पार्टियों की पहली कांग्रेस हुई और उसने कम्युनिस्ट इन्टरनेशलन की स्थापना की । हालांकि नाकेबन्दी और साम्राज्यवादी दमन की वजह से बहुत से प्रतिनिधि मास्को न आ सके थे, फिर भी इस पहली कांग्रेस में यूरोप और अमरीका के सबसे महत्वपूर्ण देशों का प्रतिनिधित्व हुआ था। कांग्रेस के काम का पथ–प्रदर्शन लेनिन ने किया।

पूंजीवादी जनतंत्र और सर्वहारा डिक्टेटरशिप के विषय पर, लेनिन ने रिपोर्ट पेश की। उन्होंने सोवियत व्यवस्था का महत्व प्रकट किया और दिखलाया कि मेहनतकश जनता के लिये वह वास्तविक जनतंत्र है। कांग्रेस ने सभी देशों के मज़दूरों के नाम एक घोषणापत्र मंजूर किया। इसमें उन्हें बुलावा दिया गया कि तमाम दुनिया में सर्वहारा डिक्टेटरशिप और सोवियतों की विजय के लिये जमकर संघर्ष करें।

कांग्रेस ने तीसरी कम्युनिस्ट इन्टरनेशनल की कार्यकारिणी समिति स्थापित की।

इस तरह, एक नयी तरह का अंतर्राष्ट्रीय क्रान्तिकारी सर्वहारा संगठन, कम्युनिस्ट इन्टरनेशनल, मार्क्सवादी–लेनिनवादी इन्टरनेशलन क़ायम हुआ।

मार्च 1919 में, हमारी पार्टी की आठवीं कांग्रेस हुई। विरोधी तत्वों से संघर्ष के दौर में यह कांग्रेस हुई। एक तरफ, सोवियत सत्ता के ख़िलाफ मित्र–देशों का प्रतिक्रियावादी गुट और मज़बूत हो गया था और दूसरी तरफ़, यूरोप में, खास तौर से हारे हुये देशों में, क्रांति के उठते हुये ज्वार ने सोवियत देश की स्थिति को काफ़ी सुधार दिया था।

कांग्रेस में पार्टी के 3,13,766 सदस्यों की तरफ से 301 वोट देने वाले और 102 बोलने वाले लेकिन वोट न दे सकने वाले प्रतिनिधि आये। अपने प्रारंभिक भाषण में, लेनिन ने स्वेर्दलोव के प्रति श्रद्धांजलि भेंट की जो बोल्शेविक पार्टी के बहुत ही ऊँचे, प्रतिभाशाली संगठनकर्ता थे और कांग्रेस के शुरू होने से पहले ही जिनका देहान्त हो गया था।

कांग्रेस ने एक नया पार्टी कार्यक्रम मंजूर किया। इस कार्यक्रम में पूंजीवाद और उसके सबसे ऊँचे रूप – साम्राज्यवाद – का वर्णन दिया हुआ है। इसमें राज्य व्यवस्था के दो रूपों की तुलना की गयी है – एक तो पूंजीवादी जनवादी व्यवस्था और दूसरी सोवियत–व्यवस्था। इसमें समाजवाद के लिये संघर्ष में पार्टी के निश्चित काम विस्तार से बताये गये हैं : पूंजीपतियों की सम्पत्ति ज़ब्त करने का काम पूरा करना; एक ही समाजवादी योजना के अनुसार देश के आर्थिक जीवन का शासन, राष्ट्रीय अर्थतंत्र

के संगठन में ट्रेड यूनियनों का हिस्सा लेना; समाजवादी श्रम का अनुशासन; सोवियत संस्थाओं के नियंत्रण में आर्थिक क्षेत्र में पूंजीवादी विशेषज्ञों का उपयोग; समाजवादी निर्माण में मध्यम किसानों को धीरे–धीरे और बाक़ायदा लाना।

कांग्रेस ने लेनिन का यह प्रस्ताव मंजूर किया कि कार्यक्रम में पूंजीवाद के सबसे ऊँचे रूप – साम्राज्यवाद – की व्याख्या शामिल करने के साथ–साथ औद्योगिक पूंजीवाद और साधारण बिकाऊ माल की पैदावार का वर्णन, जो दूसरी पार्टी कांग्रेस में स्वीकृत पुराने कार्यक्रम में था, भी शामिल कर लिया जाये। लेनिन इस बात को जरूरी समझते थे कि कार्यक्रम में हमारी आर्थिक व्यवस्था की पेचीदगी का ध्यान रखा जाये और देश में प्रचलित विभिन्न आर्थिक रूपों पर ग़ौर किया जाये, जिनमें मध्यम किसानों के रूप में, छोटे पैमाने की बिकाऊ माल की पैदावार शामिल थी। इसलिए कार्यक्रम पर बहस के दौर में, लेनिन ने बुखारिन के बोल्शेविक–विरोधी मत का जोरों से खंडन किया। बुखारिन ने प्रस्ताव किया था कि पूंजीवाद, छोटे पैमाने की बिकाऊ माल की पैदावार और मध्यम किसानों के अर्थतंत्र से सम्बन्ध रखने वाले हिस्से कार्यक्रम से निकाल दिये जायें। बुखारिन का मत मेन्शेविक त्रात्स्कीवादी दृष्टिकोण से सोवियत राज्य के विकास में मध्यम किसानों की भूमिका को अस्वीकार करता था। इसके सिवा, बुखारिन इस बात को नजरन्दाज करता था कि किसानों में छोटे पैमाने की बिकाऊ माल की पैदावार कुलक तत्व पैदा करती और पालती–पोसती थी।

जातियों के मसले पर भी, लेनिन ने बुखारिन और प्याताकोव के बोल्शेविक–विरोधी मत का खंडन किया। ये लोग कार्यक्रम में जातियों के आत्मनिर्णय के अधिकार के बारे में धारा शामिल करने के खिलाफ़ बोले। वे जातियों की समानता के खिलाफ थे। उनका दावा था कि जातीय समानता का नारा सर्वहारा क्रान्ति की विजय और विभिन्न जातियों के मजदूरों की एकता में बाधा देगा। लेनिन ने बुखारिन और प्याताकोव के इस निनान्त हानिकर, साम्राज्यवादी और अंधराष्ट्रवादी मत को निर्मूल कर दिया।

मध्यम किसानों की तरफ कौन सी नीति वर्ती जाये, इस विषय को आठवीं कांग्रेस में महत्वपूर्ण जगह दी गयी। भूमि सम्बन्धी आज्ञा–पत्र से मध्यम किसानों की संख्या बराबर बढ़ती गयी थी और किसानों में अब उनकी बहुतायत थी। वे लोग पूंजीपतियों और सर्वहारा के बीच ढुलमुल रहते थे। इनका रूख और व्यवहार क्या है, यह गृह–युद्ध और समाजवादी निर्माण के भाग्य का फैसला करने के लिये बहुत ही महत्वपूर्ण था। गृह–युद्ध का नतीजा इस पर निर्भर था कि मध्यम किसान किस तरफ़ झुकते हैं, कौन सा वर्ग उनकी वफ़ादारी हासिल करता है – सर्वहारा वर्ग या पूंजीपति। 1918 की गर्मियों में, बोल्गा प्रदेश में चेकोस्लोवाक, गद्दार, कुलक, समाजवादी क्रान्तिकारी और मेन्शेविक सोवियत सत्ता को इसलिये हरा सके थे कि उनके समर्थन में मध्यम किसानों

की एक बड़ी तादाद थी। मध्य रूस में कुलकों ने जो बग़ावत की थी, उस पर भी यही बात लागू होती थी। लेकिन 1918 की शरद् में, आम मध्यम किसान सोवियत सत्ता की तरफ़ झुकने लगे। किसानों ने देखा कि गद्दारों की जीत के बाद जमींदारों की सत्ता बहाल होती है, किसानों की ज़मीन छीन ली जाती है और वे लूटे जाते हैं, बेतों से पीटे जाते हैं और उन्हें यातनायें दी जाती हैं। ग़रीब किसानों की समितियों ने कुलकों को कुचल दिया था, उनकी कार्यवाही ने भी किसानों का रुख बदलने में मदद दी। इसलिये नवम्बर 1918 में, लेनिन ने यह नारा दिया :

> "एक क्षण के लिये भी कुलकों के खिलाफ़ संघर्ष बन्द किये बिना और साथ ही मज़बूती से ग़रीब किसानों पर ही भरोसा करते हुए, मध्यम किसानों से समझौता करना सीखो।" (*लेनिन ग्रंथावली* रू•सं•, खण्ड 23, पृ• 294)।

यह सही है कि मध्यम किसानों का ढुलमुलपन पूरी तरह खत्म नहीं हुआ। लेकिन वे सोवियत सरकार के और नज़दीक आये और ज्यादा दृढ़ता से उसका समर्थन करने लगे। आठवीं पार्टी कांग्रेस ने मध्यम किसानों के प्रति जो नीति निर्धारित की थी, उससे इस काम में बहुत हद तक आसानी हुई।

मध्यम किसानों की तरफ़ पार्टी की नीति में आठवीं कांग्रेस एक मोड़ थी। लेनिन की रिपोर्ट और कांग्रेस के फ़ैसलों ने इस सवाल पर पार्टी की एक नयी नीति निर्धारित की। कांग्रेस ने मांग की कि पार्टी–संगठन और सभी कम्युनिस्ट मध्यम किसानों और कुलकों के बीच सख्ती से फ़र्क करें और उनको एक–दूसरे से अलग समझें और इस बात की कोशिश करें कि मध्यम किसानों की जरूरतों की तरफ़ खूब ध्यान देकर उनको मज़दूर वर्ग के पक्ष में लायें। मध्यम किसानों के पिछड़ेपन को समझा–बुझा कर दूर करना था, न कि ज़ोर–ज़बर्दस्ती और दबाव से। इसलिए, कांग्रेस ने निर्देश किया कि देहातों में समाजवादी क़दम उठाने के लिये (कम्यून और कृषि–संघ बनाने के लिये) दबाव से काम न लिया जाये। जहां भी मध्यम किसानों के महत्वपूर्ण हितों का सवाल हो, वहां उनसे व्यवहारिक समझौता किया जाये और समाजवादी तब्दीली करने के तरीकों के बारे में उन्हें रियायतें दी जायें। कांग्रेस ने मध्यम किसानों से **स्थायी सहयोग** की नीति निर्धारित की, इस सहयोग में **प्रमुख भूमिका** सर्वहारा वर्ग की ही थी।

आठवीं कांग्रेस में मध्यम किसानों के प्रति लेनिन ने जिस नयी नीति का ऐलान किया, उस पर चलने के लिये ज़रूरी था कि सर्वहारा ग़रीब किसानों पर भरोसा करें, मध्यम किसानों के साथ स्थायी सहयोग बनाये रखें और कुलकों से संघर्ष करें। आंठवीं कांग्रेस से पहले पार्टी की नीति आम तौर से मध्यम किसान को तटस्थ बना देने की थी। इसका मतलब यह था कि पार्टी इस बात की कोशिश करती थी कि पार्टी मध्यम

किसान, कुलकों और आम तौर से पूंजीपतियों का पक्ष न करे। लेकिन, अब इतना करना ही काफ़ी न था। ग़द्दारों और विदेशी हस्तक्षेप के खिलाफ़ संघर्ष करने के लिये और समाजवाद के सफल निर्माण के लिये, आठवीं कांग्रेस मध्यम किसानों को तटस्थ करने की नीति से आगे बढ़ कर उनसे **स्थायी सहयोग** की नीति पर आयी।

मध्यम किसान कृषक जनता का बहुसंख्यक हिस्सा थे। इनकी तरफ़ कांग्रेस ने जो नीति अपनायी, उसने गृह–युद्ध में विदेशी हस्तक्षेप और उसके ग़द्दार पिट्ठुओं के खिलाफ़ सफलता निश्चित करने में निर्णायक भूमिका अदा की। 1919 की शरद् में, जब किसानों को सोवियत सत्ता और देनीकिन, इन दो में से एक को चुनना था, तब उन्होंने सोवियतों का समर्थन किया और सर्वहारा डिक्टेटरशिप अपने सबसे खतरनाक दुश्मन को परास्त कर सकी।

कांग्रेस की बहस में लाल फ़ौज के निर्माण से सम्बन्धित समस्याओं ने ख़ास जगह पायी। इस सिलसिले में, तथाकथित 'फौजी विरोध' सामने आया। इस 'फौजी विरोध' में अब तक कुचले जा चुके 'वामपंथी कम्युनिस्टों' के गुट के काफ़ी भूतपूर्व सदस्य थे। लेकिन, उसमें पार्टी के कुछ ऐसे कार्यकर्ता भी थे जो कभी किसी विरोधी दल में शामिल न हुए थे लेकिन जो त्रात्स्की द्वारा फ़ौजी मामलों के संचालन के तरीक़ों से असुंतष्ट थे। फ़ौज से आये हुए प्रतिनिधियों की बहुतायत स्पष्ट ही त्रात्स्की के विरोध में थी। वे इस बात से नाराज़ थे कि त्रात्स्की पुरानी ज़ारशाही सेना के फ़ौजी विशेषज्ञों का ही आदर करता है, जिनमें से कुछ गृह–युद्ध में हमारे साथ सीधे–सीधे दग़ा कर रहे थे। और फ़ौज के पुराने बोल्शेविक कार्यकर्ताओं की तरफ़ त्रात्स्की का भाव शत्रु जैसा और घमंड से भरा हुआ था। कांग्रेस में त्रात्स्की के 'अमल' की मिसालें दी गयीं। मिसाल के लिये, उसने कोशिश की थी कि मोर्चे पर काम करने वाले फ़ौज के कुछ प्रमुख कम्युनिस्टों को गोली मार दी जाये ; सिर्फ़ इसलिये कि उन्होंने उसे नाराज़ कर दिया था। यह सीधे दुश्मन के हाथों में खेलना था। केन्द्रीय समिति के हस्तक्षेप से ही और फ़ौजियों के विरोध से ही इन साथियों की जानें बचाई जा सकीं।

लेकिन, त्रात्स्की द्वारा पार्टी की सैनिक नीति को तोड़ने–मरोड़ने के खिलाफ़ लड़ते हुए, फौज बनाने के बारे में कई बातों पर 'फ़ौजी विरोध' का मत ग़लत था। लेनिन और स्तालिन ने 'फ़ौजी विरोध' का जोरों से खंडन किया, क्योंकि वह गुरिल्ला भावना के अवशेषों का समर्थन करता था, बाक़ायदा लाल फ़ौज के निर्माण का विरोध करता था, पुरानी फ़ौज के सैनिक विशेषज्ञों के उपयोग का विरोध करता था और फ़ौलादी अनुशासन, जिसके बिना कोई फ़ौज सच्ची फ़ौज नहीं हो सकती, कायम करने का विरोध करता था। कॉमरेड स्तालिन ने 'फ़ौजी विरोध' का खंडन किया और बाक़ायदा फ़ौज बनाने की मांग की, जिसमें कठोर अनुशासन की भावना हो।

कॉमरेड स्तालिन ने कहा :

"या तो हम मज़दूरों और किसानों की – मुख्यतः किसानों की – एक सच्ची फ़ौज, कठोर अनुशासन मानने वाली फ़ौज बनाते हैं और प्रजातंत्र की रक्षा करते हैं, या खत्म होते हैं।"

'फ़ौजी विरोध' के पेश किये हुए कई प्रस्तावों को रद्द करते हुए, कांग्रेस ने त्रात्स्की पर यह मांग करते हुए प्रहार किया कि केन्द्रीय फ़ौजी संस्थाओं का काम सुधारा जाये और फ़ौज में कम्युनिस्टों की भूमिका उन्नत की जाये।

कांग्रेस में एक फ़ौजी कमीशन बनाया गया। उसकी कोशिशों की वजह से फ़ौजी सवाल पर कांग्रेस ने एक राय होकर फ़ैसला मंजूर किया।

इस फ़ैसले का नतीजा यह हुआ कि लाल फ़ौज मज़बूत हुई और पार्टी के और भी नज़दीक आयी।

कांग्रेस ने पार्टी और सोवियतों के मामलों पर और सोवियतों में पार्टी की पथ–निर्देशक भूमिका पर आगे विचार किया। इस पिछले सवाल पर बहस करते हुए, कांग्रेस ने अवसरवादी साप्रोनोव–ऑसिन्स्की गुट के मत का खंडन किया जिसका कहना था कि पार्टी सोवियतों के काम का पथ–दर्शन न करे।

अंत में, पार्टी के अन्दर नये सदस्यों की ज़बर्दस्त भर्ती की वजह से पार्टी ने कुछ उपाय निश्चित किये जिससे कि पार्टी की सामाजिक बनावट सुधारी जाये। कांग्रेस ने फ़ैसला किया कि पार्टी सदस्यों की फिर से रजिस्ट्री की जाये।

इससे, पार्टी की पांति में पहली बार शुद्धि का काम शुरू हुआ।

3. हस्तक्षेप का विस्तार। सोवियत देश की नाकेबन्दी। कोल्चक की मुहीम और उसकी हार। देनीकिन की मुहीम और उसकी हार। तीन महीने का अवकाश। नवीं पार्टी कांग्रेस।

जर्मनी और ऑस्ट्रिया को हराने के बाद, मित्र–देशों ने फ़ैसला किया कि भारी फ़ौजी ताक़त सोवियत देश के खिलाफ़ झोंक दी जाये। जर्मनी की हार और उक्रैन तथा ट्रांस कॉकेशिया से उसकी फ़ौजों को हटाने के बाद, अंग्रेजों और फ्रांसीसियों ने जर्मनी की जगह ली। उन्होंने अपने जहाजी बेड़े काले समुद्र में भेजे और ओदेसा और ट्रांस कॉकेशिया में अपनी फ़ौजें उतारीं। मित्र–देशों की हस्तक्षेप करने वाली फ़ौज ऐसी

निर्दय थी कि अधिकृत इलाकों में उसने झुंड के झुंड मज़दूरों और किसानों को गोली से उड़ा देने में आगा–पीछा न किया। उनके ये पाशविक काम आखिर में इस हद तक बढ़ गये कि तुर्किस्तान पर क़ब्जा करने के बाद पारवर्ती कास्पियन प्रदेश से वे बाकू के 26 प्रमुख बोल्शेविकों को – जिनमें कॉमरेड शोम्यान, फियोलेतोव, जापरिज़े, मालीगिन, अज़ीब बेकोव, कोरगानोव शामिल थे – उठा ले गये और समाजवादी क्रान्तिकारियों की मदद से उन्हें निर्दयता से गोली मार दी।

दखलन्दाजों ने शीघ्र ही रूस की **नाकेबन्दी** का ऐलान किया। बाहरी दुनिया से मिलने वाले तमाम जल–मार्ग और आवागमन के दूसरे रास्ते बन्द कर दिये गये।

सोवियत भूमि लगभग हर तहफ़ से घिर गयी।

साइबेरिया, ओम्स्क, में मित्र–देशों का कठपुतला ऐडमिरल कोल्चक था, जिस पर उन्हें सबसे ज्यादा भरोसा था। उसे 'रूस का प्रधान शासक' घोषित किया गया और देश की तमाम क्रान्ति–विरोधी शक्तियाँ उसकी कमान में आ गयीं।

इस तरह, पूर्वी मोर्चा मुख्य मोर्चा बन गया।

कोल्चक ने भारी फ़ौज इकट्ठी की और 1919 के बसन्त में लगभग बोल्गा तक आ पहुँचा। सबसे अच्छे बोल्शेविक दस्ते उससे लोहा लेने के लिये भेजे गये। तरूण कम्युनिस्ट सभा वालों और मज़दूरों ने फ़ौजी वर्दी पहनी। अप्रैल 1919 में, कोल्चक की फ़ौज ने लाल फौज से करारी हार खाई और बहुत जल्द समूचे मोर्चे पर उसने पीछे हटना शुरू किया।

पूर्वी मोर्चे पर लाल फ़ौज की प्रगति जब पूरे वेग पर थी, तब त्रात्स्की ने एक संदेहजनक योजना रखी। उसने प्रस्ताव किया कि यूराल तक पहुंचने के पहले ही लाल फ़ौज को रोक लिया जाये, कोल्चक की फ़ौज का पीछा करना बन्द कर दिया जाये और सेना पूर्वी मोर्चे से दक्खिनी मोर्चे पर भेज दी जाये। पार्टी की केन्द्रीय समिति ने पूरी तरह अनुभव किया कि यूराल और साइबेरिया कोल्चक के हाथों में नहीं छोड़े जा सकते थे ; क्योंकि वहां पर जापानियों और अंग्रेजों की मदद से वह फिर से शक्ति संचय कर सकता था और अपनी पहली जगह पा सकता था। इसलिये, उसने इस योजना को ठुकरा दिया और आगे बढ़ते रहने के लिये आज्ञा भेजी।

त्रात्स्की इस आज्ञा से असहमत था। उसने अपना इस्तीफा दे दिया, जिसे केन्द्रीय समिति ने नामंजूर कर दिया और साथ ही उसे हुकुम भी दिया कि पूर्वी मोर्चे की कार्यवाही के संचालन में वह हिस्सा लेना तुंरत बन्द कर दे। लाल फ़ौज भी वेग से कोल्चक का

पीछा करती रही। उसने उसे कई बार और हराया और यूराल और साइबेरिया को ग़द्दारों से मुक्त किया। युद्ध के मोर्चे के पीछे वहां एक शक्तिशाली गरिल्ला आन्दोलन, ग़द्दारों के पीछे लाल फ़ौज का समर्थन करता था।

1919 की गर्मियों में, उत्तर–पिच्छम में (बाल्टिक प्रदेशों में, पेत्रोग्राद के पड़ोस में), क्रान्ति–विरोधियों के सरदार, जनरल यूदेनिच को साम्राज्यवादियों ने यह काम सौंपा कि पेत्रोग्राद पर हमला करके पूर्वी मोर्चे से लाल फ़ौज का ध्यान बँटाये। भूतपूर्व अफ़सरों के क्रान्ति–विरोधी प्रचार से प्रभावित होकर, पेत्रोग्राद के पड़ोस के दो क़िलों में रहने वाले सैनिकों ने सोवियत सरकार के खिलाफ़ बग़ावत कर दी। इसके साथ ही, मोर्चे के हैड क्वार्टर पर एक क्रान्ति–विरोधी षड़यंत्र का पता लगा। दुश्मन पेत्रोग्राद के लिये ख़तरा पैदा कर रहा था। सोवियत सरकार ने मज़दूरों और जहाजियों की मदद से जो उपाय किये, उनसे ग़द्दार क़िलों से बाहर निकाल दिये गये और यूदेनिच की फ़ौजें हरा दी गयीं और एस्टोनिया में ठेल दी गयीं।

पेत्रोग्राद के पास यूदेनिच की हार से, कोल्चक से निपटना आसान हो गया और 1919 के अंत तक उसकी फ़ौज पूरी तरह हरा दी गयी। कोल्चक खुद पकड़ लिया गया और इर्कूत्स्क में क्रान्तिकारी कमिटी की आज्ञा से उसे गोली मार दी गयी।

इस तरह, कोल्चक का खात्मा हुआ।

उस समय, कोल्चक के बारे में साइबेरिया के लोगों में एक लोक प्रिय गीत गाया जाता था :

"वर्दी तो ब्रिटेन की है फ्रांस का है तामझाम,
"हुक्का तो जापान का है, कोल्चक का नाम–नाम।
"लत्ते हुए वर्दी के और गुदड़ी हुआ तामझाम,
"ठण्डा हुआ हुक्का, और कोल्चक का मिटा नाम।"

कोल्चक ने दख़लन्दाजों की आशायें पूरी न की थीं। इसलिये, उन्होंने सोवियत प्रजातंत्र पर हमला करने की अपनी योजना बदल दी। ओदेसा में उतारी हुई फ़ौज वापस बुलानी पड़ी, क्योंकि सोवियत प्रजातंत्र की फ़ौज से सम्पर्क होने पर उस पर भी क्रान्तिकारी रंग चढ़ गया और सैनिक अपने साम्राज्यवादी मालिकों के खिलाफ़ बग़ावत करने लगे। मिसाल के लिये, ओदेसा में आन्द्रे मार्ती के नेतृत्व में फ्रांसीसी जहाजियों ने बग़ावत की। इसलिए कोल्चक के हार जाने के बाद, मित्र–देशों ने अपना ध्यान जनरल देनीकिन पर केन्द्रित किया। वह कॉर्निलोव का सहयोगी था और 'स्वयंसेवक सेना' का संगठनकर्ता था। उन दिनों, देनीकिन दक्खिन में कूबान प्रदेश में सोवियत

सत्ता के खिलाफ़ कार्यवाही कर रहा था। मित्र–देशों ने उसे लड़ाई का बहुत सा सामान और युद्ध–सज्जादी और उसकी फ़ौज को सोवियत सत्ता के खिलाफ़ उत्तर की ओर भेजा।

दक्खिनी मोर्चा अब मुख्य मोर्चा बन गया।

देनीकिन ने सोवियत सत्ता के खिलाफ़ अपना मुख्य हमला 1919 की गर्मी में शुरू किया। त्रात्स्की ने दक्खिनी मोर्चे को तोड़–फोड़ दिया था और हमारी फ़ौजें हार पर हार खा रही थीं। अक्तूबर के मध्य तक, ग़द्दारों ने समूचे उक्रैन पर क़ब्जा कर लिया था, ओरेल पर अधिकार कर लिया था और तुला के नज़दीक पहुँच रहे थे। हमारी फ़ौज के लिये कारतूसें, राइफ़लें और मशीनगनें तूला से आती थी। ग़द्दार मास्को के नज़दीक पहुँच रहे थे। सोवियत प्रजातंत्र की हालत बहुत ही संकटपूर्ण होती जाती थी। पार्टी ने चेतावनी दी और मुकाबिला करने के लिये जनता का आह्वान किया। लेनिन ने नारा दिया : 'देनीकिन के खिलाफ़ लड़ाई में सभी लोग चलें।' बोल्शेविकों से उत्साहित होकर, मज़दूरों और किसानों ने दुश्मन को कुचलने के लिये अपनी सारी शक्ति बटोरी।

केन्द्रीय समिति ने देनीकिन को हराने की तैयारी करने के लिये दक्खिनी मोर्चे पर कॉमरेड स्तालिन, वोरोशिलोव, और्जोनिकित्से और बुद्योन्नी को भेजा। कॉमरेड स्तालिन के पहुँचने से पहले दक्खिनी मोर्चे के सेनापति ने त्रात्स्की से मिलकर यह योजना बनायी थी कि जारित्सिन से नोवोरोसीस्क की दिशा में दोन के मैदान से होकर देनीकिन पर मुख्य प्रहार किया जाये। इस तरफ़ सड़कें न थी और लाल फ़ौज को ऐसे प्रदेशों से जाना पड़ता जहां कज़ाक रहते थे, जो इस समय अधिकतर ग़द्दारों के असर में थे। कॉमरेड स्तालिन ने इस योजना की तीव्र आलोचना की और देनीकिन को हटाने के लिये अपनी योजना केन्द्रीय समिति के सामने रखी। इस योजना के अनुसार, मुख्य प्रहार खारकोव – दोन्येत्स प्रदेश – रोस्तोव के रास्ते किया जाता। इस योजना से देनीकिन के खिलाफ़ हमारी फ़ौजें निस्संदेह तेज़ी से बढ़ सकतीं, क्योंकि वे मज़दूर और किसान इलाकों से होकर आगे बढ़ती जहां उन्हें जनता की पूरी सहानुभूति मिलती। इसके सिवा, इस इलाके में रेलों का घना जाल बिछा होने से हमारी फ़ौजों को तमाम ज़रूरी रसद मिलती जाती। अंत में, इस योजना से कोयला पैदा करने वाला दोन्येत्स प्रदेश आज़ाद किया जा सकता और इस तरह, हमारे देश को ईंधन मिल सकता।

पार्टी की केन्द्रीय समिति ने कॉमरेड स्तालिन की योजना मंजूर की। अक्तूबर 1919 के उत्तरार्द्ध में, देनीकिन खुँखार विरोध करने के बाद ओरेल और बोरोनेज के

पास निर्णायक युद्धों में लाल फ़ौज द्वारा परास्त किया गया। वह तेज़ी से पीछे हटने लगा। हमारी सेना ने उसका पीछा किया और वह दक्खिन की ओर भागा। 1920 के आरम्भ में, समूचा उक्रैन और उत्तरी कॉकेशस ग़द्दारों से साफ़ कर दिया गया।

दक्खिनी मोर्चे पर निर्णायक युद्धों के समय, साम्राज्यवादियों ने यूदेनिच के दस्ते फिर से पेत्रोग्राद पर झोंक दिये। इस तरह, उन्हें आशा थी कि वे दक्खिन से हमारी सेना लौटा लेंगे और देनीकिन की फ़ौज की हालत सुधर जायेंगी। ग़द्दार पेत्रोग्राद के दरवाज़े तक पहुँच गये। क्रान्ति के इस प्रधान नगर के मज़दूर उसकी रक्षा के लिये एक अटूट दीवार बन कर उठ खड़े हुए। हमेशा की तरह, कम्युनिस्ट अगली पांति में थे। घनघोर युद्ध के बाद, ग़द्दार हरा दिये गये और फिर हमारी सीमाओं के उस पार एस्टोनिया में खदेड़ दिये गये।

इस तरह, देनीकिन का, खात्मा हुआ।

कोल्चक और देनीकिन की हार के बाद, थोड़ा सा अवकाश मिला।

जब साम्राज्यवादियों ने देखा कि ग़द्दार फ़ौजें हरा दी गयी हैं, हस्तक्षेप असफल हुआ है, सारे देश में सोवियत सत्ता अपनी स्थिति दृढ़ कर रही है और उधर पच्छिमी यूरोप में सोवियत प्रजातंत्र में हस्तक्षेप के खिलाफ़ मज़दूरों का क्रोध बढ़ता जाता है, तब सोवियत राज्य की तरफ़ वे अपना रुख बदलने लगे। जनवरी 1920 में, ब्रिटने, फ्रांस और इटली ने सोवियत रूस की नाकेबन्दी खत्म करने का फैसला किया।

हस्तक्षेप की दीवार में यह एक महत्वपूर्ण दरार थी।

अवश्य ही, इसका मतलब यह न था कि सोवियत राज्य अब हस्तक्षेप और गृह–युद्ध से निपट चुका था। साम्राज्यवादी पोलैंड की ओर से हमले का ख़तरा अब भी था। हस्तक्षेप की ताकतें अभी पूरी तरह सुदूर पूर्व, ट्रांस कॉकेशिया और क्रीमिया से बाहर न की गयीं थीं। लेकिन, सोवियत रूस को कुछ समय के लिये सांस लेने का अवसर मिला था और अब वह आर्थिक विकास में और ज्यादा शक्ति लगा सकता था। पार्टी अब अपना ध्यान आर्थिक समस्याओं की ओर लगा सकती थी।

गृह–युद्ध के समय, बहुत से कुशल मज़दूर मिलों और कारख़ानों के बन्द होने से उद्योग–धंधे छोड़ चुके थे। पार्टी ने अब ऐसे उपाय किये कि वे अपने–अपने काम से लगने के लिये उद्योग–धंधों में लौट आये। रेलों की हालत गम्भीर थी और कई हजार कम्युनिस्ट उन्हें ठीक करने के काम में लगाये गये। इसे किये बिना, उद्योग–धंधों की मुख्य शाखाओं को बहाल करने का काम गंम्भीरता से शुरू न किया जा सकता

था। खाद्य सामग्री भेजने का काम विस्तृत किया गया और सुधारा गया। रूस में बिजली लगाने की योजना के मसौदे तैयार करने की तैयारी शुरू हुई। लगभग 50 लाख लाल फ़ौज के सैनिक हथियारबन्द थे और युद्ध के ख़तरे की वजह से उन्हें फ़ौज से अलग भी न किया जा सकता था। इसलिये, लाल फ़ौज का एक हिस्सा ***श्रम सेनाओं*** में बदल दिया गया। और आर्थिक क्षेत्र में उससे काम लिया गया। मज़दूर–किसान–सुरक्षा–समिति बदल कर, ***श्रम और सुरक्षा–समिति*** बना दी गयी और उसकी मदद के लिये एक ***राज्य नियोजन समिति*** (गोसप्लान) क़ायम की गयी।

इस तरह की परिस्थिति थी, जब नयी पार्टी कांग्रेस शुरू हुई।

मार्च 1920 के अंत में, कांग्रेस आरंभ हुई। उसमें 6,11,978 पार्टी सदस्यों की तरफ़ से 554 वोट देने वाले प्रतिनिधि और 162 मत ज़ाहिर करने मगर वोट न दे सकने वाले प्रतिनिधि शामिल हुए।

कांग्रेस ने यातायात और उद्योग–धंधों के क्षेत्र में देश के सामने फ़ौरी काम रखे। उसने खास तौर से इस बात पर ज़ोर दिया कि आर्थिक जीवन के निर्माण में ट्रेड यूनियानों का हिस्सा लेना आवश्यक है।

उद्योग–धंधों को बहाल करने के लिये और सबसे पहले रेल, ईंधन, लोहे और इस्पात के उद्योग–धंधों को बहाल करने के लिये, कांग्रेस ने एक ही आर्थिक योजना पर विशेष ध्यान दिया। इस योजना की मुख्य बात देश में बिजली लगाने का एक मसौदा था। इसे लेनिन ने 'अगले दस या बीस वर्षों के लिये एक महान कार्यक्रम' के रूप में पेश किया था। रूस में बिजली लगाने के राज्य कमीशन ***(गोयलरो)*** ने जो मशहूर योजना बनायी थी और जिसकी शर्तें अब अपेक्षा से ज्यादा पूरी हो चुकी हैं, उसका आधार यही था।

कांग्रेस ने एक पार्टी–विरोधी गुट के मत को ठुकरा दिया, जो अपने को 'जनवादी केन्द्रीयता का गुट' कहता था और एक आदमी के प्रबंध और औद्योगिक संचालकों की बिना बँटी हुई जिम्मेदारी का विरोध करता था। वह इस बात का समर्थन करता था कि बिना किसी नियंत्रण के 'पूरे गुट का प्रबंध' हो, जिसके अनुसार, उद्योग–धंधों के संचालन के लिये कोई भी निजी तौर पर जिम्मेदार न हो। इस पार्टी–विरोधी गुट में मुख्य लोग साप्रोनोव, ऑसिन्स्की और व• स्मिर्नोव थे। कांग्रेस में राइकोव और तोम्स्की ने उनका समर्थन किया।

4. सोवियत रूस पर पोलैंड के ज़मींदारों का हमला। जनरल व्रांग्रेल की मुहीम। पोलिश योजना की असफलता। व्रांग्रेल की हार। हस्तक्षेप का अंत।

कोल्चक और देनीकिन हार चुके थे। ग़द्दारों को निकाल कर, सोवियत प्रजातंत्र बराबर अपनी धरती वापस ले रहा था। उत्तरी प्रदेश, तुर्किस्तान, साइबेरिया, दोन प्रदेश, उक्रैन वगैरह से दखलन्दाजों को निकाल कर, सोवियत प्रजातंत्र अपने प्रदेश वापस ले रहा था। मित्र–देशों को मज़बूर होकर रूस की नाकेबन्दी उठा लेनी पड़ी थी। इन सब बातों के बावजूद, हस्तक्षेपकारी यह बात मानने के लिये तैयार न थे कि सोवियत सत्ता अजेय साबित हो चुकी है और विजयी हो चुकी है। इसलिए, उन्होंने सोवियत रूस में एक बार फिर हस्तक्षेप करने की कोशिश की। इस बार, उन्होंने पिलसुदस्की और जनरल व्रांग्रेल दोनों को इस्तेमाल करने का विचार किया। पिलसुदस्की एक पूंजीवादी क्रान्ति–विरोधी राष्ट्रवादी था और पोलैंड के राज्य का वास्तविक नेता था। जनरल व्रांग्रेल ने क्रीमिया में देनीकिन की बची–खुची फ़ौज इकट्ठी की और वहाँ से दोन्येत्स प्रदेश और उक्रैन पर धावा करने की तैयारी में था।

पोलैंड के ज़मींदार और व्रांग्रेल, जैसा कि लेनिन ने कहा था, दोनों भुजायें थीं जिनसे अंतर्राष्ट्रीय साम्राज्यवाद सोवियत रूस का गला घोंट देना चाहता था।

पोल–योजना यह थी कि द्नीपर नदी के पच्छिम में सोवियत उक्रैन पर अधिकार कर लें, सेवियत बैलो रूसिया पर कब्जा कर लें, इन प्रदेशों में पोलैंड के अमीरों की सत्ता बहाल करें और पोल राज्य की सीमायें इतनी बढ़ायें कि वे 'एक समुद्र से दूसरे समुद्र तक', डान्जिंग से ओदेसा तक फैल जायें और व्रांग्रेल की मदद के बदले लाल फ़ौज को कुचलने में और सोवियत रूस में ज़मींदारों और पूंजीपतियों की सत्ता बहाल करने में उसकी सहायता करें।

मित्र–देशों ने इस योजना का समर्थन किया।

सोवियत सरकार ने शान्ति क़ायम रखने और युद्ध से बचने के लिये पोलैंड से बातचीत चलाने की असफल कोशिशें कीं। पिलसुदस्की ने शान्ति की बातचीत करने से इन्कार कर दिया। वह युद्ध चाहता था। उसका विचार था कि कोल्चक और देनीकिन से लड़ कर लाल फ़ौज थक गयी है और पोल सेना का हमला न सह सकेगी।

सांस लेने के लिये थोड़ा जो अवकाश मिला था, वह खत्म हो गया। अप्रैल 1920 में, पोलों ने सोवियत उक्रैन पर हमला किया और कियेव ले लिया। इसी समय, व्रांग्रेल ने हमला शुरू किया और दोन्येत्स प्रदेश पर धावा करने को हुआ।

इन पर, लाल फ़ौज ने समूचे मोर्चे पर पोलों के खिलाफ़ जवाबी हमला किया। कियेव फिर ले लिया गया और पोलैंड के युद्ध–सामन्त उक्रैन और बैलोरूसिया से बाहर निकाल दिये गये। दक्खिनी मोर्चे पर, लाल फ़ौज की दुर्दम प्रगति ने उन्हें गैलीशिया में ल्वोव के सिंहद्वार तक ठेल दिया। उधर, पच्छिमी मोर्चे की सेना वारसा के निकट पहुँच रही थी। पोल फ़ौजें बुरी तरह हारने को थीं।

लेकिन, लाल फ़ौज के जनरल हैड क्वार्टर में त्रात्स्की और उसके अनुयायियों के संदेहजनक कामों से सफलता मिलते–मिलते रह गयी। त्रात्स्की और तुखाचेव्स्की के दोष से, पिच्छमी मोर्चे पर वारसा की तरफ़ लाल फ़ौज की प्रगति एकदम असंगठित रूप से हुई। जीते हुए स्थानों को मज़बूत करने के लिये सेना को मौका न दिया गया। अगले दस्ते बहुत ज्यादा आगे भेज दिये गये और रिज़र्व और गोला–बारूद बहुत ज्यादा पीछे छोड़ दिये गये। इसका फल यह हुआ कि अगले दस्तों को गोला–बारूद और रिजर्व न मिला और मोर्चा बेहिसाब फैल गया। इससे मोर्चे में दरार डालना आसान हुआ। नतीज़ा यह हुआ कि जब थोड़ी सी पोल फ़ौज एक जगह पच्छिमी मोर्चा तोड़ कर घुस आयी तो हमारी सेना को गोला–बारूद के बिना पीछे लौटना पड़ा। जहां तक दक्खिनी मोर्चे की सेना का सवाल था, जो ल्वोव के सिंहद्वार तक पहुँच गयी थी और पोलों को बुरी तरह खदेड़ रही थी, उसे त्रात्स्की ने, उस 'क्रान्तिकारी फ़ौजी समिति के सभापति' बदनाम त्रात्स्की ने, ल्वोव पर क़ब्जा करने से मना कर दिया। उसने हुकुम दिया कि घुड़सवार फ़ौज, जो दक्खिनी मोर्चे की मुख्य सेना थी, दूर उत्तर–पूर्व में चली जाये। यह इस बहाने किया गया कि पच्छिमी मोर्चे की सहायता की जाये, हालंकि यह देखना मुश्किल न था कि पच्छिमी मोर्चे की मदद करने का सबसे अच्छा और दरअसल एक ही संभव उपाय ल्वोव पर अधिकार करना था। लेकिन, दक्खिनी मोर्चे से घुड़वार फ़ौज को हटाने, ल्वोव से उसके हटाने का वास्तविक अर्थ यही होता था कि दक्खिनी मोर्चे से भी हमारी सेना पीछे हटे। त्रात्स्की ने यह जो तोड़–फोड़ करने वाला हुकुम जारी किया, उससे दक्खिनी मोर्चे पर हमारी सेना को बिना किसी भी कारण के और समझ में न आने वाले ढंग से पीछे हटना पड़ा, जिससे पोलैंड के ज़मींदारों को खुशी हुई।

इससे सीधे–सीधे पच्छिमी मोर्चे को मदद तो न मिलती थी, लेकिन पोलैंड के ज़मींदारों और मित्र–देशों को ज़रूर मदद मिलती थी।

कुछ ही दिनों में, पोलों का आगे बढ़ना रुक गया और हमारी फ़ौजों ने जवाबी हमले की तैयारी की। युद्ध जारी रखने में असमर्थ होने से और लाल जवाबी हमले की संभावना से घबड़ा कर, पोलैंड ने मज़बूरन द्नीपर के पच्छिम में उक्रैन प्रदेश पर और बैलोरूसिया पर अपना दावा छोड़ दिया और संधि करना ज्यादा अच्छा समझा। 20 अक्तूबर 1920 को, रीगा की संधि पर दस्तख़त किये गये। इस संधि के अनुसार, गैलीशिया और बैलोरूसिया का एक हिस्सा पोलैंड के पास रहा।

पोलैंड से संधि करने के बाद, सोवियत प्रजातंत्र ने व्रांग्रेल को खत्म करने का फ़ैसला किया। अंग्रेजों और फ्रांसीसियों ने उसे तोपें, राइफ़लें, हथियार बन्द गाड़ियां, टैंक, हवाई जहाज और बिल्कुल आधुनिक तरह का लड़ाई का सामान दिया था। उसके पास लड़ाकू ग़द्दार पल्टनें थीं, जिनमें ज्यादातर अफ़सर थे। लेकिन, व्रांग्रेल ने कुबान और दोन प्रदेश में जो सेना उतारी थी उसकी मदद के लिये किसानों और कज़ाकों की क़ाफी संख्या का समर्थन न मिल सका। फिर भी, वह दोन्येत्स प्रदेश की देहरी तक ही बढ़ता चला आया और उसने कोयला पैदा करने वाले हमारे इलाके के लिये ख़तरा पैदा कर दिया। सोवियत सरकार की स्थिति उस समय इस कारण और उलझ गयी थी कि ल़ाल फौज बहुत ज़्यादा थकी हुई थी। सैनिकों को बहुत ही कठिन परिस्थितियों में आगे बढ़ना पड़ता था। व्रांग्रेल पर हमला करते हुए, उन्हें उसके समर्थक माख़नों के अराजकतावादी गिरोहों को भी कुचलना होता था। हालांकि व्रांग्रेल के पास लड़ाई का सामान ज़्यादा अच्छा था और लाल फ़ौज के पास टैंक नहीं थे, लेकिन फिर भी उसने व्रांग्रेल को क्रीमिया के प्रायद्वीप में खदेड़ दिया और वहां उसे घेर लिया। नवम्बर 1920 में, लाल सेना ने पेरेकोप की क़िलेबन्दी पर अधिकार कर लिया, क्रीमिया में लाल फ़ौज फैल गयी, उसने व्रांग्रेल की फ़ौज को कुचल दिया और प्रायद्वीप से ग़द्दारों और हस्तक्षेपकारियों को निकाल बाहर किया। क्रीमिया सोवियत प्रदेश हो गया।

पोलैंड की साम्राज्यवादी योजनाओं की असफलताओं और व्रांग्रेल की पराजय से, हस्तक्षेप का दौर खत्म हुआ।

1920 के अंत में, ट्रांस कॉकेशिया की मुक्ति शुरू हुई। अज़रबैजान पूंजीवादी राष्ट्रवादी मुसावतपंथियों की गुलामी से आज़ाद हुआ, जॉर्जिया मेन्शेविक राष्ट्रवादियों और आर्मीनिया दाशनाकों से मुक्त हुए। अज़रबैजान, अर्मीनिया और जॉर्जिया में सोवियत सत्ता की विजय हुई।

इसका मतलब यह न था कि सभी हस्तक्षेप बन्द हो गये। सुदूर पूर्व में, जापानियों का हस्तक्षेप 1922 तक जारी रहा। इसके सिवा, हस्तक्षेप की नयी कोशिशें भी की गयीं (अतामान सेम्योनोव और बैरन उंगेर्न ने पूर्व में और फ़िन गद्दारों ने करेलिया में 1921

में हस्तक्षेप करने की कोशिश की)। लेकिन, सोवियत देश के मुख्य शत्रु, हस्तक्षेप करने वाली प्रमुख शक्तियां, 1920 के अंत तक परास्त कर दी गयीं।

सोवियतों के खिलाफ़ विदेशी दख़लन्दाजों और रूसी ग़द्दारों की लड़ाई का खात्मा सोवियतों की विजय में हुआ।

सोवियत प्रजातंत्र ने अपनी स्वाधीनता और स्वतंत्रता बनाये रखी।
विदेशी फ़ौजी हस्तक्षेप और गृह–युद्ध का यही अंत हुआ।
सोवियत सत्ता के लिये यह एक ऐतिहासिक विजय थी।

5. सोवियत प्रजातंत्र ने अंग्रेज–फ्रांसीसी–जापानी–पोल हस्तक्षेप की मिली–जुली शक्तियों और रूस के पूजीवादी–ज़मींदार–गद्दार क्रान्ति–विरोध की ताक़तों को क्यों और कैसे हराया?

हस्तक्षेप के समय के प्रमुख यूरोपीय और अमरीकी अख़बारों और पत्रिकाओं को हम देखें, तो आसानी से पता चल जायेगा कि ऐसा एक भी प्रमुख फ़ौजी या ग़ैर फ़ौजी लेखक न था, एक भी सैनिक विशेषज्ञ न था जिसे भरोसा हो कि सोवियत सत्ता जीतेगी। इसके विपरीत, सभी प्रमुख लेखकों, सैनिक विशेषज्ञों और सभी देशों और जातियों की क्रान्ति के इतिहासकारों ने, सभी तथाकथित विद्वानों ने एक राय से यही घोषणा की थी कि सोवियतों के दिन गिने चुने हैं और उनकी पराजय अनिवार्य है।

हस्तक्षेपकारी शक्तियों की विजय में उनके इस विश्वास का आधार था कि सोवियत रूस के पास कोई संगठित फ़ौज नहीं है और कहना चाहिये कि युद्ध की आँच में तपते हुए उसे लाल फ़ौज बनानी थी, लेकिन हस्तक्षेपकारियों और ग़द्दारों के हाथ में बहुत कुछ बनी–बनाई फ़ौज थी।

इसके सिवा, उनके विश्वास का आधार यह था कि लाल फ़ौज में अनुभवी सैनिक नहीं हैं, उनमें से अधिकांश क्रान्ति–विरोध से जा मिले हैं, लेकिन हस्तक्षेपकारियों और ग़द्दारों के पास ऐसे अनुभवी आदमी हैं।

और भी, उनके विश्वास का आधार यह था कि रूस का युद्ध–उद्योग पिछड़ा होने से लाल फ़ौज के पास हथियारों और गोला–बारूद की कमी है। उसके पास जो सामान था, वह घटिया क़िस्म का था और उसे विदेश से इसलिये न मिल सकता था कि चारों तरफ़ से नाकेबन्दी करके रूस का यातायात बिल्कुल बन्द कर दिया गया था। दूसरी तरफ़, हस्तक्षेपकारियों और ग़द्दारों की फ़ौज के पास ढेरों सामान था और उसे प्रथम श्रेणी के हथियार, गोलाबारूद और लड़ाई का सामान मिलता रहेगा।

अंत में, उनके विश्वास का आधार यह था कि हस्तक्षेपकारियों और ग़द्दारों की फ़ौज के पास रूस के सबसे उपजाऊ अन्न पैदा करने वाले प्रदेश थे, लेकिन लाल फ़ौज के पास ऐसे इलाके नहीं थे और उसे रसद की कमी थी।

और, यह सत्य है कि लाल फ़ौज के सामने ये सब कठिनाइयां और ख़ामियां थीं।

इस पहलू से, और सिर्फ़ इसी पहलू से, हस्तक्षेपकारी सज्जन बिल्कुल ठीक कह रहे थे।

तब इसका क्या कारण है कि ऐसी भारी ख़ामियों के होते हुए भी लाल फ़ौज हस्तक्षेपकारियों और ग़द्दारों को हरा सकी, जिसमें इस तरह की ख़ामियाँ नहीं थीं?

1. लाल फ़ौज इसलिये जीती कि सोवियत सरकार की नीति, जिसके लिये लाल फ़ौज लड़ रही थी, एक सही नीति थी। वह ऐसी नीति थी जो जनता के हितों के अनुकूल थी और जनता समझती और महसूस करती थी कि वह सही नीति है, उसकी अपनी नीति है और बिना किसी दूराव के वह उसका समर्थन करती थी।

बोल्शेविक जानते थे कि जो फ़ौज ग़लत नीति के लिये लड़ती है, ऐसी नीति के लिये जिसका जनता समर्थन न करती हो, वह जीत नहीं सकती। हस्तक्षेपकारियों और ग़द्दारों की फ़ौज ऐसी ही फ़ौज थी। उसके पास सब कुछ था : अनुभवी सेनापति और प्रथम श्रेणी के हथियार, गोला–बारूद, लड़ाई का सामान और रसद। उसके पास सिर्फ एक ही चीज नहीं थी : रूस की जनता की सहानुभूति और उसका समर्थन। रूस की जनता हस्तक्षेपकारियों और ग़द्दार 'शासकों' की नीति का समर्थन नहीं करती थी और न कर सकती थी, क्योंकि यह नीति जन–विरोधी थी। और इसलिये, हस्तक्षेपकारियों और ग़द्दारों की फ़ौज की हार हुई।

2. लाल फ़ौज इसलिये जीती कि वह अपनी जनता के प्रति पूरी तरह सच्ची और वफ़ादार थी। इसलिये, जनता उसे प्यार करती थी, उसकी मदद करती थी और उसे अपनी ही फौज समझती थी। लाल फ़ौज जनता की संतान है; जैसे एक सच्चा बेटा अपनी मां के प्रति सच्चा रहता है, वैसे ही लाल फ़ौज अगर जनता के प्रति सच्ची रहे तो जनता उसका समर्थन करेगी और उसकी जीत अवश्य होगी। लेकिन जो फ़ौज जनता के खिलाफ़ जाती है, वह ज़रूर हारेगी।

3. लाल फ़ौज इसलिये जीती कि सोवियत सरकार युद्ध के मोर्चे की आवश्यकतायें पूरी करने के लिये मोर्चे के पीछे तमाम लोगों को, समूचे देश को बटोर सकी। जिस फ़ौज को मोर्चे के पीछे हर तरह से मजबूत सहारा न मिलेगा, वह ज़रूर हार

जायेगी। बोल्शेविक इस बात को जानते थे और इसीलिये युद्ध के मोर्चे को हथियार, गोला–बारूद, लड़ाई का सामान, रसद और कुमुक भेजने के लिये, उन्होंने सारे देश को एक हथियारबन्द खेमा बना दिया।

4. लाल फ़ौज इसलिये जीती कि : क) लाल फ़ौज के सैनिक युद्ध के उद्देश्य और लक्ष्य जानते थे और मानते थे कि वे न्यायपूर्ण हैं; ख) युद्ध के लक्ष्यों और उद्देश्यों को न्यायपूर्ण मानने से उनका अनुशासन दृढ़ हुआ और लड़ने की योग्यता बढ़ी; ग) इसका नतीजा यह हुआ कि दुश्मन से युद्ध करते हुए, लाल फ़ौज ने अभूतपूर्व आत्म–बलिदान और सामूहिक रूप से अतुल वीरता का परिचय दिया।

5. लाल फ़ौज की जीत इसलिये हुई कि उसकी रीढ़, क्या मोर्चे पर और क्या उसके पीछे, बोल्शेविक पार्टी थी। बोल्शेविक पार्टी अपनी एकता और अनुशासन में अडिग थी। उसके अन्दर तीव्र क्रान्तिकारी भावना थी और सामान्य उद्देश्य के लिये वह कोई भी बलिदान करने के लिये तैयार थी। करोड़ों जनता को संगठित करने और पेचीदा परिस्थितियों में उसका नेतृत्व करने में उसकी योग्यता बेजोड़ थी।

लेनिन ने कहा था :

"पार्टी की जागरूकता और उसके कठोर अनुशासन की वजह से, इसी वजह से कि पार्टी ने अधिकार सहित तमाम सरकारी विभागों और संस्थाओं को संगठित किया, केन्द्रीय समिति ने जो नारे दिये उन्हें एक ही आदमी की तरह दसों, बीसियों, हजारों और अंत में करोड़ों आदमियों ने माना और इस वजह से कि इतनी कुर्बानी की गयी जिस पर विश्वास नहीं होता, वह चमत्कार हो सका जो वास्तव में हुआ। सिर्फ इन्हीं सब कारणों से, मित्र–देशों के और दुनिया भर के साम्राज्यवादियों के दुबारा, तिबारा और चार बार लगातार हमले करने पर भी हम जीत सके।" (लेनिन, ***सं•रचं•***, अं•सं•, मास्को, 1947, खं• 2, पृ• 556)।

6. लाल फ़ौज इसलिये जीती कि : क) वह अपनी पाँति से ही एक नयी तरह के सेनापति, फ्रुन्जे, वोरोशिलोव, बुद्योन्नी, आदि जैसे आदमी पैदा कर सकी। ख) उसकी पाँति में जनता के ऐसे प्रतिभाशाली वीर लड़े जैसे कतोव्स्की, चापायेव, लाजो, श्चोर्स, पार्खोमेंको, और दूसरे बहुत से वीर। ग) लाल फ़ौज की राजनीतिक शिक्षा ऐसे आदमियों के हाथ में थी जैसे लेनिन, स्तालिन, मोलोतोव, कालिनिन, स्वेर्दलोव, कगानोविच, और्जोनिकित्से, किरोव, कुइबीशेव, मिकोयान, ज्दानोव, आन्द्रियेव, पेत्रोव्स्की, यारोस्लाव्स्की, जेरजिन्स्की, श्चादिन्कोव, मेखलिस, ख्रुश्चेव, श्वेर्निक शिकर्यातोव, वगैरह। घ) लाल फ़ौज के पास फ़ौजी कमीसारों जैसे श्रेष्ठ संगठनकर्ता और प्रचारक थे, जो

लाल फ़ौज के सैनिकों की एकता मजबूत करते थे, उनमें अनुशासन और फ़ौजी साहस की भावना जगाते थे और जिन्होंने शक्ति के साथ – तेज़ी से और निर्ममता से – कई सेनापतियों की विश्वासघातक कार्यवाही को अंकुर फूटते ही निर्मूल कर दिया, लेकिन पार्टी और ग़ैर पार्टी के उन सेनापतियों के मान–सम्मान का उन्होंने साहस और दृढ़ता से समर्थन किया जिन्होंने सोवियत सत्ता की तरफ़ अपनी वफ़ादारी साबित की थी और जो दृढ़ता से लाल फ़ौज के दस्तों का नेतृत्व कर सकते थे।

लेनिन ने कहा था : "फ़ौजी कमीसारों के बिना हमारे पास लाल फ़ौज न होती।"

7. लाल फ़ौज इसलिये जीती कि ग़द्दार फ़ौजों के पीछे, कोल्चक, देनीकिन, क्रासनोव और व्रांग्रेल की पांति के पीछे पार्टी और ग़ैर पार्टी के उच्चकोटि के बोल्शेविक काम करते थे। उन्होंने हमलावरों के खिलाफ़, गद्दारों के खिलाफ़ मज़दूरों और किसानों को विद्रोह के लिये उभारा। सोवियत सत्ता के दुश्मनों के पृष्ठ भाग को उन्होंने खोखला कर दिया और इस तरह, लाल फौज की प्रगति को उन्होंने आसान बनाया। सभी लोग जानते हैं, उक्रैन, साइबेरिया, सुदूर पूर्व, यूराल बेलोरूसिया और वोल्गा प्रदेश के छापेमारों ने ग़द्दारों और हमलवारों का पृष्ठभाग कमज़ोर करके लाल फ़ौज की अमूल्य सेवा की।

8. लाल फ़ौज इसलिये जीती कि ग़द्दार क्रान्ति–विरोध और विदेशी हस्तक्षेप के खिलाफ़ लड़ने में सोवियत प्रजातंत्र अकेला न था। सोवियत सत्ता के संघर्ष और उसकी सफलताओं के साथ तमाम दुनिया के मज़दूरों की सहानुभूति थी और उनका समर्थन प्राप्त था। जब साम्राज्यवादी हस्तक्षेप और नाकेबन्दी के ज़रिये सोवियत प्रजातंत्र का गला घोंटने की कोशिश कर रहे थे, तब साम्राज्यवादी देशों के मज़दूरों ने सोवियतों का पक्ष लिया और उनकी सहायता की। सोवियत प्रजातंत्र का विरोध करने वाले देशों के पूंजीपतियों के खिलाफ़ उनके संघर्ष ने अंत में साम्राज्यवादियों को मजबूर किया कि वे हस्तक्षेप बन्द करें। ब्रिटेन, फ्रांस और दूसरे हस्तक्षेपकारी देशों के मज़दूरों ने हड़तालें की, हमलावरों और गद्दार सेनापतियों के लिये भेजे जाने वाले लड़ाई के सामान को लादने से इन्कार कर दिया और उन्होंने संघर्ष–कमिटियाँ बनायीं, जिनका काम इस नारे पर चलता था : 'रूस में दखलन्दाजी बन्द करो!'

लेनिन ने कहा था :

"अंतर्राष्ट्रीय पूंजीपतियों ने हमारे खिलाफ़ हाथ उठाया नहीं कि उनके अपने मज़दूर ही उसे जकड़ लेंगें।" (*लेनिन ग्रंथावली*, ख•सं•, खंड 25, पृष्ठ 405)।

सारांश

अक्तूबर क्रान्ति से पराजित होकर, ज़मींदारों और पूंजीपतियों ने ग़द्दार सेनापतियों के सहयोग से सोवियत देश पर मिलकर हथियारबन्द हमला करने के लिये और सोवियत सत्ता को उलटने के लिये अपने ही देश के हितों के खिलाफ़ मित्र–देशों की सरकारों के साथ षड़यंत्र किया। रूस के सीमान्त प्रदेशों में ग़द्दारों की बग़ावत और मित्र–देशों के फ़ौजी हस्तक्षेप का यही आधार था। इस हस्तक्षेप और बग़ावत के फलस्वरूप, कच्चा माल और अन्न देने वाले इलाकों से रूस अलग जा पड़ा।

जर्मनी की फ़ौजी हार और यूरोप में दो साम्राज्यवादी गुटों के परस्पर युद्ध के बन्द होने से, मित्र–देश मजबूत हुए और हस्तक्षेप ने जोर पकड़ा। इस वजह से, सोवियत रूस के लिये नयी कठिनाइयाँ पैदा हुईं।

दूसरी तरफ़, जर्मनी में क्रान्ति से और यूरोप के देशों में क्रान्तिकारी आन्दोलन के अंकुर फूटने से, सोवियत सत्ता के लिये अनुकूल अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियां पैदा हुईं और सोवियत प्रजातंत्र की स्थिति संभली।

बोल्शेविक पार्टी ने **पितृभूमि के लिये** युद्ध में मज़दूरों और किसानों को उभारा, विदेशी हमलावरों और पूंजीपति और ज़मींदार गद्दारों के खिलाफ़ युद्ध में उन्हें उभारा। सोवियत प्रजातंत्र और उसकी लाल फ़ौज ने एक के बाद एक मित्र–देशों के कठपुतलों – कोल्चक, यूदेनिच, देनीकिन, क्रासनोव और व्रांग्रेल को हराया, मित्र–देशों के दूसरे कठपुतले पिल्सुदस्की को उक्रैन और बैलोरूसिया से बाहर खदेड़ा और इस तरह, विदेशी हस्तक्षेप की फ़ौजों को परास्त किया और उन्हें सोवियत देश से बाहर निकाल दिया।

इस तरह, समाजवाद की भूमि पर अंतर्राष्ट्रीय पूंजी का पहला हथियारबन्द आक्रमण पूरी तरह असफल हुआ।

हस्तक्षेप के दिनों में, क्रान्ति द्वारा परास्त पार्टियों – समाजवादी क्रान्तिकारियों, मेन्शेविकों, अराजकतावादियों और राष्ट्रवादियों – ने ग़द्दार सेनापतियों और हमलवारों की मदद की। सोवियत प्रजातंत्र के खिलाफ़ उन्होंने क्रान्ति–विरोधी षड़यंत्र किये और सोवियत नेताओं के खिलाफ़ आतंकवाद का सहारा लिया। अक्तूबर क्रान्ति से पहले, मज़दूर वर्ग पर इन पार्टियों का थोड़ा–बहुत असर था। गृह–युद्ध के दौर में, इन्होंने आम जनता को अच्छी तरह दिखा दिया कि वे क्रान्ति–विरोधी पार्टियाँ हैं।

गृह–युद्ध और हस्तक्षेप के दिनों में, ये पार्टियाँ राजनीतिक रूप से मर गयीं और सोवियत रूस में कम्युनिस्ट पार्टी पूरी तरह से विजयी हुई।

नवां अध्याय

आर्थिक पुनर्संगठन की शान्तिमय कार्यवाही की ओर संक्रमण के दौर में बोल्शेविक पार्टी

(1921–1925)

1. हस्तक्षेप की हार और गृह–युद्ध के ख़ात्मे के बाद सोवियत प्रजातंत्र। पुनर्संगठन के दौर की कठिनाइयां।

युद्ध खत्म करने के बाद, सोवियत प्रजातंत्र ने शान्तिमय आर्थिक विकास का काम उठाया। युद्ध के घावों को भरना था। देश के चूर हो चूके आर्थिक जीवन को फिर से बनाना था, उसके उद्योग–धंधों, रेलों और खेती को पुनः संगठित करना था।

लेकिन, शान्तिमय विकास का काम बहुत ही कठिन परिस्थितियों में पूरा करना था। गृह–युद्ध में जीत आसानी से न मिली थी। चार साल तक साम्राज्यवादी युद्ध और तीन साल तक हस्तक्षेप के खिलाफ़ युद्ध से, देश तबाह हो गया था।

1920 में, खेती की कुल पैदावार लड़ाई से पहले की पैदावार की सिर्फ़ **आधी** रह गयी थी, ज़ारशाही के ग़रीब रूसी गाँवों की पैदावार की आधी रह गयी थी। कम्बख़्ती में आटा गिला करने के लिये, 1920 में, बहुत से सूबों में फ़सल न हुई। खेती घोर संकट में थी।

उद्योग–धंधों की हालत और भी खराब थी। ये पूरी तरह अव्यवस्थित हो गये थे। 1920 में, बड़े पैमाने के उद्योग–धंधों की पैदावार युद्ध से पहले की पैदावार का **सातवाँ हिस्सा** ही रह गयी थी। ज़्यादातर मिलें और कारखाने बन्द थे। खानों और कोयले

की खदानों में पानी भर गया था और वे घसक गयी थीं। सबसे संगीन हालत लोहे और इस्पात के धंधों की थी। 1921 में, कच्चे लोहे की पैदावार सिर्फ़ 1,16,300 टन थी, यानी युद्ध से पहले की पैदावार की 3 फ़िसदी रह गयी थी। ईंधन की कमी थी। यातायात के साधन छिन्न–भिन्न हो गये थे। देश में धातुओं और कपास के गोदाम लगभग खाली थे। रोटी, चर्बी, गोश्त, जूते, कपड़े, माचिसें, नमक, मिट्टी का तेल और साबुन जैसी आवश्यक चीजों की भारी कमी थी।

जब युद्ध जारी था, तब लोग यह तंगी और अभाव सहते रहे थे और कभी–कभी उसे भूल भी जाते थे। लेकिन जब लड़ाई खत्म हो गयी, तो उन्होंने अचानक अनुभव किया कि यह कमी और अभाव असहनीय है, और वे मांग करने लगे कि उसे तुरंत दूर करना चाहिये।

किसानों में असन्तोष फैल गया। गृह–युद्ध की आँच में मज़दूर वर्ग और किसानों की फ़ौजी और राजनीतिक मैत्री तपी और मज़बूत हुई थी। इस मंत्री का एक निश्चित आधार था। किसानों ने सोवियत सत्ता से ज़मीन पायी थी और ज़मींदारों तथा कुलकों के खिलाफ़ सोवियत सत्ता ने उनकी रक्षा की थी। मज़दूरों को किसानों से फ़ालतू अन्न लेने की व्यवस्था के अनुसार, खाने–पीने का सामान मिलता था।

अब यह आधार काफ़ी नहीं था।

सोवियत राज्य को राष्ट्रीय सुरक्षा की ज़रूरतों की वजह से किसानों की तमाम फ़ालतू उपज ले लेने के लिये मज़बूर होना पड़ा था। गृह–युद्ध में इस फ़ालतू अन्न लेने की व्यवस्था के बिना युद्ध कालीन कम्युनिज्म के बिना, जीत हासिल करना असम्भव होता। युद्ध और हस्तक्षेप ने इस नीति को आवश्यक बना दिया था। जब तक लड़ाई चालू थी, तब तक किसान फ़ालतू अन्न लेने की व्यवस्था मानते रहे थे और दूसरे माल की तंगी की तरफ़ ध्यान न देते थे। लेकिन, जब लड़ाई खत्म हो गयी और ज़मींदारों के लौटने का कोई खतरा न रह गया था किसान अपनी तमाम फ़ालतू उपज देने से, फ़ालतू अन्न लेने की व्यवस्था से असंतोष प्रकट करने लगे। वे माँग करने लगे कि उन्हें दूसरा माल काफ़ी तादाद में दिया जाये।

जैसा कि लेनिन ने कहा था, युद्धकालीन कम्युनिज्म की सारी व्यवस्था किसानों के हितों से टकरा रही थी।

असंतोष की भावना मज़दूर वर्ग में भी पैदा हुई। सर्वहारा वर्ग ने गृह–युद्ध का मुख्य भार झेला था। उसने वीरता से और कुर्बानियाँ देकर ग़द्दार और विदेशी फ़ौजों से युद्ध किया था और आर्थिक अव्यवस्था और अकाल की मुसीबतें सही थीं। सबसे

अच्छे, सबसे वर्ग–चेतन, कुर्बानी देने वाले और अनुशासन मानने वाले मज़दूरों में समाजवादी उत्साह भरा हुआ था। लेकिन, घोर आर्थिक अव्यवस्था का असर मज़दूर वर्ग पर भी पड़ा । थोड़े से कल–कारखाने, जो अब भी चालू थे, वे रुक–रुक कर जब–तब चलते थे। मज़दूरों को रोटी के लिये अजीब–अजीब काम करने पड़ते थे : वे सिगरेट जलाने की डिबियाँ बनाते थे और कभी गाँवों में अन्न के बदले छोटा–मोटा माल बेचते फिरते थे ('झोले का व्यापार')। सर्वहारा डिक्टेटरशिप का वर्ग–आधार कमज़ोर पड़ रहा था। मज़दूर बिखर रहे थे, गाँवों की तरफ़ भाग रहे थे, मज़दूर न रह कर वर्गहीन हो रहे थे। कुछ मज़दूर भूख और थकान की वजह से असंतोष के चिन्ह प्रकट करने लगे थे।

पार्टी के सामने यह ज़रूरत पैदा हुई कि देश के आर्थिक जीवन से सम्बन्ध रखने वाले सभी सवालों पर वह एक नयी तरह की नीति निकाले, ऐसी नीति जो नयी हालत के अनुकूल हो।

और, पार्टी ने आर्थिक विकास के सवालों पर ऐसी ही नीति निकालने का काम उठाया।

लेकिन, वर्ग–शत्रु सो न रहा था। उसने खेदजनक आर्थिक हालत और किसानों के असंतोष से अपने हित में फायदा उठाने की कोशिश की। ग़द्दारों और समाजवादी क्रान्तिकारियों के उकसाने से, साइबेरिया, उक्रैन और ताम्बोव प्रदेश (आन्तोनोव की बग़ावत) में कुलक–विद्रोह फूट पड़े। सभी तरह के क्रान्ति–विरोधी – मेन्शेविक, समाजवादी क्रान्तिकारी, अराजकतावादी, गद्दार, पूंजीवादी राष्ट्रीवादी – फिर सरगर्मी दिखाने लगे। दुश्मन ने सोवियत सत्ता से लड़ने के लिये नये दांव–पेच निकाले। उसने सोवियत भेष धारण किया। अब उसका नारा – 'सोवियतें मुर्दावाद!' वह दिवालिया नारा न था। उसका अब नया नारा था : 'सोवियतों की जय, लेकिन कम्युनिस्टों के बिना!'

वर्ग–शत्रु के नये दाँव–पेचों की एक जीती–जागती मिसाल क्रोन्स्तात का क्रान्ति–विरोधी विद्रोह था। दसवीं पार्टी कांग्रेस के एक हफ्ते पहले, मार्च 1921 में यह शुरू हुआ। ग़द्दारों ने, समाजवादी क्रान्तिकारियों, मेन्शेविकों और विदेशी राज्यों के प्रतिनिधियों से सहयोग करके विद्रोह की अगुवाई की। पूंजीपतियों और ज़मींदारों की सत्ता और सम्पत्ति बहाल करने के अपने उद्देश्य को छिपाने के लिये, विद्रोहियों ने पहले 'सोवियत' साइन बोर्ड लगाया। उन्होंने नारा लगाया : 'सोवियतें कम्युनिस्टों के बिना!' क्रान्ति–विरोधियों ने एक झूठे सोवियत नारे की आड़ में सोवियतों की सत्ता उलटने के लिये मध्यवित्त जनता के असंतोष से लाभ उठाने की कोशिश की।

क्रोन्स्तात के विद्रोह को दो कारणों से मदद मिली : जहाजियों के दस्तों की बनावट में पतन और क्रोन्स्तात में बोल्शेविक संगठन की कमजोरी। लगभग सभी पुराने जहाजी, जिन्होंने अक्तूबर क्रान्ति में हिस्सा लिया था, मोर्चे पर थे और वीरतापूर्वक लाल फौज की पांति में लड़ रहे थे। नये जहाजियों में ऐसे लोग भर्ती हुए थे जिन्हें क्रान्ति की दीक्षा न मिली थी। ये ठेठ कच्चे किसान थे, जो फ़ालतू अन्न लेने की व्यवस्था के खिलाफ़ किसानों का असंतोष प्रकट करते थे। जहाँ तक क्रोन्स्तात के बोल्शेविक संगठन का सवाल था, मोर्चे के लिये कई बार भर्ती की वजह से वह बहुत कमज़ोर पड़ गया था। इस कारण, समाजवादी क्रान्तिकारी, मेन्शेविक और ग़द्दार क्रोन्स्तात में पैठ सके और उस पर अधिकार जमा सके।

विद्रोहियों ने उच्चकोटि के क़िलों, जहाजी बेड़े और हथियारों और लड़ाई के सामान की बहुत बड़ी तादाद पर क़ब्जा कर लिया। अंतर्राष्ट्रीय क्रान्ति–विरोधी फूले न समाये। लेकिन, उसकी हँसी–खुशी वक्त से पहले की थी। सोवियत सैनिकों ने जल्द ही विद्रोह दबा दिया। क्रोन्स्तात के विद्रोहियों के खिलाफ़, पार्टी ने अपने सबसे अच्छे बेटों – दसवीं कांग्रेस के प्रतिनिधियों को भेजा, जिनके अगुआ कॉमरेड वोरेशिलोव थे। लाल फ़ौज के सैनिक बर्फ़ की पतली तह से होकर क्रोन्स्तात की तरफ़ बढ़े। वह पतली तह कई जगह टूट गयी और बहुत से सैनिक डूब गये। क्रोन्स्तात के प्रायः अजेय क़िलों को धावा करके लेना था। लेकिन, क्रान्ति के प्रति वफ़ादारी, वीरता और सोवियतों के लिये बलिदान करने की तत्परता की उस दिन जीत हुई। लाल सैनिकों के हमले के सामने क्रोन्स्तात के दुर्ग का पतन हुआ। क्रोन्स्तात का विद्रोह दबा दिया गया।

2. ट्रेड यूनियनों पर पार्टी में बहस। 10 वीं पार्टी कांग्रेस। विरोधी दल की हार। नयी आर्थिक नीति (नेप) की स्वीकृति।

पार्टी की केन्द्रीय समिति ने, उसके लेनिनवादी बहुमत ने साफ–साफ देखा कि अब, जब युद्ध खत्म हो गया है और देश शान्तिमय आर्थिक विकास की तरफ मुड़ा है, तब युद्ध और नाकेबन्दी की उपज – युद्धकालीन कम्युनिज्म की कठोर व्यवस्था को बनाये रखने का कोई कारण नहीं है।

केन्द्रीय समिति ने अनुभव किया कि फ़ालतू अन्न ले लेने की व्यवस्था की जरूरत खत्म हो चुकी है और उसके बदले में ग़ल्ले के रूप में टैक्स लेने की व्यवस्था करनी चाहिये, जिससे कि किसान अपनी फ़ालतू उपज का ज़्यादा हिस्सा अपनी इच्छा से उपयोग कर सकें। केन्द्रीय समिति ने अनुभव किया कि इस उपाय से खेती फिर से हरी होगी और अनाज और उद्योग–धंधों के विकास के लिये जरूरी औद्योगिक फ़सलों

की काश्त बढ़ायी जा सकेगी, बिकाऊ माल का चलन फिर जारी किया जा सकेगा, शहरों को माल भेजने में सुधार होगा और मज़दूरों और किसानों के सहयोग के लिये एक नयी बुनियाद, एक आर्थिक बुनियाद रची जा सकेगी।

केन्द्रीय समिति ने यह भी अनुभव किया कि सबसे पहला काम उद्योग–धंधों को फिर से जगाना है, लेकिन वह समझती थी कि मज़दूर वर्ग और ट्रेड यूनियनों की सहायता लिये बिना यह काम नहीं हो सकता। उसका विचार था कि मज़दूर इस काम में लगाये जा सकते हैं जब उन्हें दिखलाया जाये कि आर्थिक तोड़–फोड़ जनता की वैसी ही खतरनाक दुश्मन है जैसी कि हस्तक्षेप और नाकेबन्दी थी। केन्द्रीय समिति का विचार था कि पार्टी और ट्रेड यूनियनें इस काम में जरूर सफल हो सकती हैं अगर वे मज़दूर वर्ग पर अपना असर फ़ौजी आज्ञाओं के ज़रिये न डालें, जैसा कि मोर्चे पर होता था जहां कि आज्ञायें सचमुच ज़रूरी थीं, बल्कि समझाने–बुझाने के तरीके से, मज़दूर वर्ग की दिलजमई के तरीक़े से असर डालें।

लेकिन, पार्टी के सभी सदस्य केन्द्रीय समिति की राय के न थे। छोटे–छोटे विरोधी गुट – त्रात्स्की पंथी, 'मज़दूर–विरोधी,' 'वामपंथी कम्युनिस्ट', 'जनवादी–केन्द्रवादी', वग़ैरह – झगड़ रहे थे और शान्तिमय आर्थिक निर्माण की तरफ बढ़ने में जो कठिनाइयां सामने आ रही थीं, उनसे विचलित हो रहे थे और ढुलमुलपन दिखा रहे थे। पार्टी के अन्दर मेन्शेविक, समाजवादी क्रान्तिकारी, बुन्द और बरोत्बा पंथी[1] पार्टियों के काफी भूतपूर्व सदस्य थे और रूस के सीमान्त इलाकों से सभी तरह के अर्द्ध–राष्ट्रवादी थे। इनमें से ज्यादातर एक या दूसरे विरोधी गुट के साथ हो जाते थे। ये लोग सच्चे मार्क्सवादी नहीं थे। वे आर्थिक विकास के नियमों से अपरिचित थे और उन्हें लेनिनवादी पार्टी शिक्षा न मिली थी। वे विरोधी–गुटों की उलझन और ढुलमुलपन को और बढ़ाने का ही काम करते थे। उनमें से कुछ का विचार था कि युद्धकालीन कम्युनिज्म की कठोर व्यवस्था को ढीला करना ग़लत होगा, बल्कि इसके विपरीत, 'लगाम जरा और खींचनी चाहिये।' और, दूसरों का ख्याल था कि पार्टी और राज्य को आर्थिक वहाली के काम से अलग रहना चाहिये और उसे पूरी तरह ट्रेड यूनियनों के हाथ में छोड़ देना चाहिये।

यह बात स्पष्ट थी कि पार्टी के अन्दर कुछ गुटों में जब ऐसी उलझन फैली हुई थी, जो बहस के शौकीन थे, तब एक न एक तरह के विरोधी 'नेता' पार्टी को बहस में पड़ने के लिये जरूर मज़बूर करते।

और, हुआ भी यही।

---

1. उक्रैन के सामाजिक क्रान्तिकारियों का वाम अंग, एक अंध राष्ट्रवादी पार्टी; 1918 तक वह बरोत्बा नाम का मुख पत्र निकालती थी – अ॰ अनु॰

ट्रेड यूनियनों की भूमिका पर बहस शुरू हुई, हालांकि उस समय पार्टी नीति के लिये ट्रेड यूनियनें मुख्य समस्या न थीं।

बहस त्रात्स्की ने शुरू की और लेनिन के खिलाफ़, केन्द्रीय समिति के लेनिनवादी बहुमत के खिलाफ़ लड़ाई शुरू की। परिस्थिति को और पेचीदा बनाने के ख्याल से, पाँचवीं अखिल रूसी ट्रेड यूनियन कांफ्रेंस के कम्युनिस्ट प्रतिनिधियों की एक बैठक में जो नवम्बर 1920 के आरम्भ में हुई थी, उसने 'लगाम और खींचने' और 'ट्रेड यूनियनों के कान खिंचने' के सन्देह जनक नारे दिये। त्रात्स्की ने मांग कि 'ट्रेड यूनियनों का तुरंत सरकारी–करण' हो। मज़दूर वर्ग के सिलसिले में, वह समझाने–बुझाने के तरीके के खिलाफ था। वह इस पक्ष में था कि ट्रेड यूनियनों में फ़ौजी तरीके लागू किये जायें। वह उनमें जनवाद के प्रसार, ट्रेड यूनियन की संस्थाओं को चुनने के उसूल के खिलाफ़ था।

समझाने–बुझाने के तरीक़ों के बिना, मज़दूर वर्ग के संगठनों की कार्यवाही सोची भी नहीं जा सकती। लेकिन इन तरीकों के बदले, त्रात्स्कीवादी एकदम ज़ोर–ज़बर्दस्ती और हुकुम चलाने के तरीके इस्तेमाल करने का सुझाव रखते थे। ट्रेड यूनियनों में, जहाँ भी वे प्रमुख जगहों में थे वहाँ, वे इस नीति को लागू करते थे और झगड़े पैदा करते थे ; यूनियनों में फूट और पस्ती पैदा करते थे। अपनी नीति से, त्रात्स्कीवादी आम गैर पार्टी मज़दूरों को पार्टी से भिड़ा रहे थे, मज़दूर वर्ग में फूट डाल रहे थे।

वास्तव में, ट्रेड यूनियनों का महत्व मज़दूर सभाई सवाल से ज्यादा था। जैसा कि रूसी कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) की केन्द्रीय समिति की विस्तारित बैठक के 17 जनवरी 1925 के प्रस्ताव में आगे कहा गया था, बहस की जड़ यह थी कि "किसानों की तरफ़, जो युद्धकालीन कम्युनिज़्म का विरोध कर रहे थे, कौन सी नीति अपनायी जाये; आम ग़ैर पार्टी मज़दूरों की तरफ़ कौन सी नीति अपनायी जाये और आम तौर से जब गृह–युद्ध समाप्त हो रहा था, तब आम जनता की तरफ़ पार्टी का रुख क्या हो।" (***सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) के प्रस्ताव***, रू॰ सं॰, भाग 1, पृष्ठ 651)।

त्रात्स्की की अगुवाई में, दूसरे पार्टी–विरोधी गुट चले : 'मजदूर–विरोध' (शल्यापनीकोव, मेदवेद्येव कोलोन्तायी, वग़ैरह) 'जनवादी–केन्द्रवादी' (साप्रोनोव, द्रोबनिस बोगुस्लाव्सी, ऑसिन्स्की, व॰ स्मिर्नोव, वगैरह), 'वाम पंथी कम्युनिस्ट' (बुखारिन, प्रेयोब्राजन्स्की)।

'मजदूर–विरोधी' ने यह मांग करते हुए नारा दिया कि समूचे अर्थतंत्र का संचालन एक 'अखिल रूसी उत्पादक कांग्रेस' को सौंप दिया जाये। वे चाहते थे कि पार्टी की भूमिका नहीं के बराबर रह जाये। आर्थिक विकास के लिये, वे सर्वहारा डिक्टेटरशिप

का महत्व अस्वीकार करते थे। 'मजदूर–विरोध' का दावा था कि ट्रेड यूनियनों के हितों और सोवियत राज्य और कम्युनिस्ट पार्टी के हितों में विरोध है। उनका कहना था कि मज़दूर वर्ग के संगठन का सबसे ऊँचा रूप ट्रेड यूनियनें हैं, न कि पार्टी। 'मज़दूर–विरोध' बुनियादी तौर से एक अराजकतावादी – सिंडिकलवादी – पार्टी–विरोधी गुट था।

'जनवादी–केन्द्रवादियों' की मांग थी कि गुटों और दलों के लिये पूरी आज़ादी हो। त्रात्स्कीपंथियों की तरह, 'जनवादी–केन्द्रवादी' सोवियतों और ट्रेड यूनियनों में पार्टी के नेतृत्व को कमज़ोर बनाना चाहते थे। लेनिन ने 'जनवादी–केन्द्रवादियों' को 'गुल–गपाड़ा करने में खलीफ़ाओं' का गुट कहा था और उनकी नीति को समाजवादी क्रान्तिकारी–मेन्शेविक नीति कहा था।

लेनिन और पार्टी के खिलाफ़ इस लड़ाई में त्रात्स्की का सहायक बुखारिन था। प्रेओब्राजन्स्की, सेरेब्रियाकोव और सोकोल्निकोव के साथ बुखारिन ने एक 'मध्यस्थ' गुट बनाया था। यह गुट त्रात्स्कीवादियों की हिमायत करता था और उनकी रक्षा करता था, जो कि सबसे गन्दे गुटबाज थे। लेनिन ने कहा था कि बुखारिन का व्यवहार 'सैद्धान्तिक पतन की हद' है। बहुत जल्द बुखारिनपंथी लेनिन के विरोध में त्रात्स्कीवादियों से मिल गये।

लेनिन और लेनिनवादियों ने अपना मुख्य प्रहार पार्टी–विरोधी गुटबन्दी की जड़ त्रात्स्कीपंथियों पर किया। उन्होंने त्रात्स्कीवादियों की निन्दा की कि वे ट्रेड यूनियनों और फ़ौजी संस्थाओं का भेद भूल जाते हैं और उन्हें चेतावनी दी कि ट्रेड यूनियनों में फौजी तरीके लागू नहीं किये जा सकते। लेनिन और लेनिनवादियों ने अपनी नीति रखी, जो विरोधी गुटों की नीति की भावना से बिल्कुल उल्टी थी। इस नीति के अनुसार, ट्रेड यूनियनों को शासन का स्कूल, प्रबन्ध करने का स्कूल, कम्युनिज़्म का स्कूल बताया गया। इस नीति के अनुसार, ट्रेड यूनियनों की तमाम कार्यवाही का आधार समझाने–बुझाने का तरीका होना चाहिये। तभी ट्रेड यूनियनें के आर्थिक अव्यवस्था खत्म करने के लिये तमाम मज़दूरों को उभार सकेंगी और उन्हें समाजवादी निर्माण के काम में लगा सकेंगी।

विरोधी गुटों के खिलाफ़, इस लड़ाई में पार्टी–संगठन लेनिन के चारों तरफ़ सिमट आये। मास्को में खास तौर से तीखा संघर्ष हुआ। यहाँ पर विरोधी दल ने अपनी मुख्य शक्ति लगा दी, जिससे कि राजधानी के पार्टी–संगठन पर उनका दखल हो जाये। लेकिन, मास्को के बोल्शेविकों के ज़ोरदार विरोध ने गुटबंदी की इन तमाम साजिशों को नाकाम कर दिया। उक्रैन के पार्टी–संगठनों में भी तीखा संघर्ष छिड़ गया। उस

समय, उक्रैन की कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति के मंत्री कॉमरेड मोलोतोव थे। उनके नेतृत्व में उक्रैन के बोल्शेविकों ने त्रात्स्कीवादियों और श्ल्याप्नीकोव पंथियों को परास्त किया। उक्रैन की कम्युनिस्ट पार्टी लेनिन की पार्टी की वफ़ादार समर्थक रही। बाकू में विरोधियों को परास्त करने का काम कॉमरेड और्जोनिकित्से के नेतृत्व में हुआ। मध्य एशिया में पार्टी–विरोधी गुटों के खिलाफ़ कॉमरेड कगानोविच ने संघर्ष का नेतृत्व किया।

पार्टी के सभी महत्वपूर्ण स्थानीय संगठनों ने लेनिन की नीति का समर्थन किया।

8 मार्च 1921 को, दसवीं पार्टी कांग्रेस शुरू हुई। पार्टी में 7,32,521 सदस्यों की तरफ से 694 वोट देने वाले प्रतिनिधि आये और 296 प्रतिनिधि राय ज़ाहिर करने वाले लेकिन वोट न दे सकने वाले थे।

कांग्रेस ने ट्रेड यूनियनों पर बहस का निचोड़ सामने रखा और भारी बहुमत से लेनिन की नीति का समर्थन किया।

कांग्रेस का उद्घाटन करते हुए, लेनिन ने कहा कि बहस फ़िजूल का ऐश थी। उन्होंने ऐलान किया कि दुश्मनों ने सोचा था कि पार्टी में अन्दरूनी संघर्ष छिड़ जायेगा और कम्युनिस्ट पार्टी में फूट पड़ जायेगी।

यह महसूस करते हुए कि बोल्शेविक पार्टी और सर्वहारा डिक्टेटरशिप के लिये गुटबाज दलों का रहना कितना ज्यादा खतरनाक है, दसवीं कांग्रेस ने **पार्टी एकता** पर खास तौर से ध्यान दिया। इस सवाल पर, लेनिन ने रिपोर्ट पेश की। कांग्रेस ने सभी विरोधी गुटों की निन्दा की और घोषित किया कि वे 'दरअसल सर्वहारा क्रान्ति के वर्ग–शत्रुओं की मदद कर रहे थे।'

कांग्रेस ने आज्ञा दी कि सभी गुटबाज दलों को तुरंत भंग किया जाये और सभी पार्टी संगठनों को आज्ञा दी कि वे इस बारे में खुद सतर्क रहें कि कहीं गुटबन्दी शुरू न हो, और जो कांग्रेस का फ़ैसला न माने उसे बिना किसी शर्त के और तुरंत ही पार्टी से निकाल दिया जाये। कांग्रेस ने केन्द्रीय समिति को अधिकार दिया कि अगर उसी के सदस्य अनुशासन तोड़ें या गुटबन्दी फिर चालू करें या गुटबंदी बर्दाश्त करें तो उन्हें सभी तरह का पार्टी–दंड दिया जाये, जिसमें केन्द्रीय समिति से और पार्टी से निकालना भी शामिल था।

ये सभी फ़ैसले 'पार्टी एकता' पर एक विशेष प्रस्ताव में रखे गये थे, जिसे लेनिन ने पेश किया था और कांग्रेस ने मंजूर किया था।

इस प्रस्ताव ने सभी पार्टी सदस्यों को याद दिलाया था कि पार्टी की पाँति में एकता और दृढ़ता, सर्वहारा की हिरावल में एकमत का होना ऐसे समय पर खास तौर से जरूरी था जब दसवीं कांग्रेस के दौर में कई बातों से देश के मध्यवित्त लोगों में ढुलमुलपन बढ़ गया था।

प्रस्ताव में कहा गया था :

"इसके बावजूद, ट्रेड यूनियनों पर पार्टी की आम बहस से पहले ही गुटबन्दी के कुछ चिन्ह पार्टी में दिखाई देने लगे थे जैसे विभिन्न नीतियाँ लेकर गुट का बनना, एक हद तक अलग रहने और अपने ही गुट का अनुशासन क़ायम करने की कोशिश। तमाम वर्ग–चेतन मज़दूरों को साफ–साफ समझ लेना चाहिये कि किसी भी तरह की गुटबन्दी कितनी हानिकर है और उसके लिये हर्गिज इजाज़त नहीं दी जा सकती। अमल में, गुटबन्दी का लाजिमी नतीजा यह होता है कि सामूहिक काम कमजोर पड़ जाता है और पार्टी के दुश्मन, जो उससे इसलिये चिपके हुए हैं कि वह शासक पार्टी है, बार–बार और ज़ोरदार कोशिश करते हैं कि (पार्टी के अन्दर) फूट को और गहरा करें और क्रान्ति–विरोधी उद्देश्यों के लिये उसे इस्तेमाल करें।"

और भी, इसी प्रस्ताव में कांग्रेस ने कहा था :

"सर्वहारा के दुश्मन पूरी तरह से संगत कम्युनिस्ट लाइन से हर भटकाव का किस तरह फ़ायदा उठाते हैं, यह बहुत अच्छी तरह क्रोन्स्तात के विद्रोह में देखा गया। उस समय, दुनिया के सभी देशों के पूंजीवाद क्रान्ति–विरोधियों और ग़द्दारों ने तुरंत ही अपनी इच्छा प्रकट की थी कि वे सोवियत व्यवस्था के नारे मंजूर करने के लिये तैयार हैं। शर्त यही थी कि इस तरह वे रूस में सर्वहारा डिक्टेटरशिप का तख्ता उलट दें। और उस समय, क्रोन्स्तात में समाजवादी क्रान्तिकारियों और आम तौर से पूंजीवादी क्रान्ति–विरोधियों ने रूस की सोवियत सरकार के खिलाफ़ बग़ावत करने के नारे दिये, जो ऊपर से सोवियत सत्ता के हित में दिखाई देते थे। इन बातों से, पूरी तरह साबित होता है कि ग़द्दार कम्युनिस्टों का भेष धारण करने की कोशिश करते हैं और कर भी लेते हैं और कम्युन्स्टिों से भी ज्यादा 'वामपंथी' बनते है। उनका उद्देश्य सिर्फ़ यह होता है कि रूस में सर्वहारा क्रान्ति के गढ़ को कमज़ोर किया जाये और उसे खत्म किया जाये। क्रोन्स्तात का विद्रोह होने से पहले, पेत्रोग्राद में जो मेन्शेविक पर्चे बांटे गये, उनसे भी ज़ाहिर होता है कि रूसी

कम्युनिस्ट पार्टी के मतभेदों से मेंशेविकों ने किस तरह लाभ उठाया, जिससे कि वे क्रोन्स्तात के विद्रोहियों, समाजवादी क्रान्तिकारियों और ग़द्दारों को बढ़ावा दें और उनकी मदद करें जबकि उनका दावा यह है कि वे विद्रोह का विरोध करते हैं और सेवियत सत्ता के समर्थक हैं, सिर्फ़ थोड़ी हेर–फेर का ही भेद है।"

प्रस्ताव में कहा गया कि पार्टी को अपने प्रचार में विस्तार से बताना चाहिये कि पार्टी एकता के लिये और सर्वहारा के हिरावल के उद्देश्य की एकता के लिये गुटबन्दी कितनी हानिकर और खतरनाक है। सर्वहारा डिक्टेटरशिप की सफलता के लिये पार्टी एकता और सर्वहारा के हिरावल के उद्देश्य की एकता एक बुनियादी शर्त है।

दूसरी तरफ़, कांग्रेस के प्रस्ताव में कहा गया था कि पार्टी अपने प्रचार में यह समझाये कि सोवियत सत्ता के दुश्मनों ने जो नये दाँव–पेच इस्तेमाल किये थे, उनकी विशेषता क्या थी।

प्रस्ताव में कहा गया था :

"इन दुश्मनों ने समझ लिया है कि ग़द्दारों के खुले झंडे के नीचे क्रान्ति–विरोध की सफलता असंभव है। वे भरसक कोशिश कर रहे हैं कि रूसी कम्युनिस्ट पार्टी के अन्दरूनी मतभेदों से फ़ायदा उठायें, और किसी न किसी तरह उन राजनीतिक गुटों के हाथ में, जो ऊपर से सोवियत सत्ता मानने के बिल्कुल नज़दीक हैं, सत्ता देकर क्रान्ति–विरोध को आगे बढ़ाये।" (लेनिन, ***सं॰ग्रं॰***, अं॰सं॰, मास्को, 1947, खं॰ 2, पृ॰ 680)।

प्रस्ताव में आगे कहा गया था कि पार्टी को अपने प्रचार में "पिछली क्रान्तियों के सबक़ भी बताने चाहिये, जिनमें क्रान्ति–विरोधी आम तौर से उन निम्नपूंजीवादी गुटों का समर्थन कर चुके थे जो उग्र क्रान्तिकारी पार्टी के सबसे ज्यादा नज़दीक थे। क्रान्ति–विरोधियों का उद्देश्य होता था कि क्रान्तिकारी डिक्टेटरशिप को कमजोर करें और उसका तख्ता उलट दें, और इस तरह, आगे चलकर क्रान्ति–विरोध की पूरी जीत के लिये, पूंजीपतियों और जमींदारों की जीत के लिये रास्ता साफ कर दें।"

'पार्टी एकता' पर प्रस्ताव से मिलता–जुलता प्रस्ताव "हमारी पार्टी में सिंडिकलपंथी और अराजकतावदी भटकाव" पर था। इसे भी लेनिन ने पेश किया था और कांग्रेस ने उसे स्वीकार किया था। इस प्रस्ताव में, दसवीं कांग्रेस ने तथाकथित 'मजदूर–विरोध' की निन्दा की। कांग्रेस ने कहा कि अराजकतावादी–सिंडिकलपंथी भटकाव के विचारों का प्रचार कम्युनिस्ट पार्टी की सदस्यता के साथ नहीं चल सकता और पार्टी का आह्वान किया कि इस भटकाव का जोरों से विरोध करे।

दसवीं कांग्रेस ने फ़ालतू अन्न लेने की व्यवस्था की जगह ग़ल्ले के रूप में टैक्स लेने के बारे में ***नयी आर्थिक नीति (नेप)*** के बारे में बहुत ही महत्वपूर्ण फ़ैसला लिया।

युद्धकालीन कम्युनिज़्म से नेप की तरफ़ यह मोड़, लेनिन की नीति की बुद्धिमानी और दूरदर्शिता की बहुत अच्छी मिसाल है।

कांग्रेस के प्रस्ताव में, फ़ालतू अन्न लेने की व्यवस्था के बदले ग़ल्ले के रूप में टैक्स लेने का सवाल लिया गया। फ़ालतू अन्न लेने की व्यवस्था के अनुसार जितना टैक्स बांधा गया था, ग़ल्ले के रूप में टैक्स उससे कम रखा गया। टैक्स की पूरी तादाद बसन्त की बुवाई के पहले हर साल बता देनी होगी। टैक्स कब देना होगा, इसकी तारीखें बहुत ही स्पष्ट रूप से बतानी होंगी। टैक्स के अलावा जितनी भी उपज हो, उसका उपयोग पूरी तरह किसान के हाथ में था। वह अपनी इच्छा से इस फ़ालतू उपज को बेच सकता था। अपने भाषण में, लेनिन ने कहा कि व्यापार करने की आज़ादी से देश में एक हद तक पहले पूंजीवाद उभरेगा। यह जरूरी होगा कि व्यक्तिगत व्यापार की आज्ञा दी जाये और व्यक्तिगत कारखानेदारों को छोटे धंधे करने दिये जायें। लेकिन, इस तरह से डर की कोई बात न थी। लेनिन का विचार था कि व्यापार में थोड़ी आज़ादी मिलने से किसान को आर्थिक पहलक़दमी का मौका मिलेगा, उसे पैदावार बढ़ाने की प्रेरणा मिलेगी और खेती में तेजी से उन्नति होगी। इस आधार पर जो उद्योग–धंधे राज्य के अधिकार में थे, वे बहाल किये जा सकेंगे और व्यक्तिगत पूंजी की जगह लेंगे। शक्ति और साधन इकट्ठा करने पर, समाजवाद की आर्थिक बुनियाद के रूप में, शक्तिशाली उद्योग–धंधे निर्मित हो सकेंगे और तब देहात में पूंजीवाद के अवशेष खत्म करने के लिये जमकर हमला किया जा सकेगा।

युद्धकालीन कम्युनिज्म शहर और देहात के पूंजीवादी तत्वों के क़िले को हल्ला बोलकर, सामने से धाबा करके लेने की कोशिश था। इस हमले में, पार्टी बहुत आगे निकल आयी थी और खतरा यह था कि आधार से उसका सम्बन्ध न टूट जाये। अब लेनिन ने प्रस्ताव किया कि थोड़ा पीछे हटा जाये, थोड़ी देर के लिये आधार के नज़दीक लौटा जाये, क़िले पर हल्ला बोलने के बदले घेरा डालने का धीमा तरीका अपनाया जाये, जिससे कि ताक़त बटोरी जा सके और फिर हमला किया जा सके।

त्रात्स्कीपंथियों और दूसरे अवसरवादियों का कहना था कि नेप **पीछे हटने के सिवा और कुछ नहीं है।** यह व्याख्या उनके मतलब की थी, क्योंकि उनकी लाइन पूंजीवाद को फिर बहाल करने की थी। नेप की यह व्याख्या बहुत ही हानिकर और लेनिनवाद–विरोधी थी। वास्तव में, नेप एक ही साल तक चालू रही थी कि लेनिन

ने ग्यारहवीं पार्टी कांग्रेस में कहा था कि **पिछे हटना खत्म हो गया है,** और उन्होंने यह नारा दिया : **"व्यक्तिगत पूंजी पर हमले की तैयारी!"** (*लेनिन ग्रंथवाली,* रू•सं•, खं• 27, पृ• 213)।

विरोध करने वाले अधकचरे मार्क्सवादी थे और बोल्शेविक नीति के सवालों के बारे में महाअज्ञानी थे। वे न नेप का मतलब समझते थे, न नेप की शुरूआत में जो पीछे हटना शुरू हुआ था उसकी विशेषता समझते थे। नेप क्या थी, इसे हम ऊपर बतला चुके हैं। जहाँ तक पीछे हटने का सवाल है, पीछे हटना बहुत तरह का होता है। ऐसा समय आता है कि पार्टी या फौज़ को इसलिये पीछे हटाना होता है कि उसकी पराजय हुई है। ऐसी हालत में फ़ौज या पार्टी इसलिये पीछे हटती है कि नयी लड़ाइयों के लिये अपने को और अपनी पांति को बनाये रहे। जब नेप की शुरूआत हुई, तो लेनिन ने इस तरह से पीछे हटने का प्रस्ताव न किया था। कारण यह कि पराजित होना या मुसीबत में पड़ना तो दूर, पार्टी ने खुद गृह–युद्ध में हस्तक्षेपकारियों और ग़द्दारों को हराया था। लेकिन, ऐसा अवसर भी आता है जब कोई विजयी पार्टी या फ़ौज अपने पीछे आधार बनाये बिना प्रगति करती हुई बहुत आगे बढ़ जाती है। इससे भारी खतरा पैदा होता है। अपने आधार से नाता न टूट जाये, इसलिये अनुभवी पार्टी या फ़ौज ऐसी हालत में थोड़ा पीछे हटना, अपने आधार के थोड़ा नज़दीक लौटना और उससे ज्यादा सम्पर्क कायम करना जरूरी समझती है, जिससे कि वह तमाम आवश्यक चीजें पा सके और तब ज्यादा विश्वास और ज्यादा सफलता की गारंटी के साथ अपना आक्रमण जारी कर सके। लेनिन ने नयी आर्थिक नीति से अस्थायी रूप से इसी तरह पीछे हटना शुरू किया था। कम्युनिस्ट इन्टरनेशनल की चौथी कांग्रेस के सामने नेप शुरू करने के कारणों पर रिपोर्ट देते हुए लेनिन ने साफ़–साफ कहा था, "अपने आर्थिक हमले में हम बहुत आगे बढ़ आये थे, हमने अपने लिये पर्याप्त आधार न बनाया था" और इसलिये, अपनी पृष्ठभूमि मज़बूत करने के लिये अस्थायी रूप से पीछे लौटना ज़रूरी था।

विरोधियों की मुसीबत यह थी कि अपने अज्ञान की वजह से नेप के अनुसार पीछे हटने की इस विशेषता को वे न समझते थे, और जब तक जिन्दा रहे तब तक न समझ पाये।

नयी आर्थिक नीति पर, दसवीं कांग्रेस के फ़ैसलों ने समाजवाद के निर्माण के लिये मजदूर वर्ग और किसानों के टिकाऊ आर्थिक सहयोग को पक्का कर दिया।

कांग्रेस के एक दूसरे फ़ैसले से भी यह प्रमुख उद्देश्य पूरा होता था। यह फ़ैसला जातियों के सवाल पर था। कॉमरेड स्तालिन ने जातियों के मसले पर रिपोर्ट पेश की।

उन्होंने कहा कि हम लोगों ने जातीय उत्पीड़न खत्म कर दिया है, लेकिन इतना ही काफ़ी नहीं है। काम यह है कि पुराने जमाने की निकम्मी विरासत को दूर किया जाये, पहले के पीड़ित लोगों के आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक पिछड़ेपन को दूर किया जाये। उन्हें इस तरह मदद देनी थी कि वे मध्य रूस के बराबर आ जाये।

कॉमरेड स्तालिन ने और आगे जातियों के सवाल पर दो पार्टी–विरोधी भटकावों का ज़िक्र किया। एक तो प्रमुख जाति (बृहत् रूसी) का अंधराष्ट्रवाद था और दूसरा स्थानीय राष्ट्रवाद था। कांग्रेस ने दोनों भटकावों को कम्युनिज्म और सर्वहारा अंतर्राष्ट्रीयता के लिये हानिकर और खतरनाक बता कर, उनकी निन्दा की। इसके साथ ही, उसने अपना मुख्य प्रहार बड़े खतरे, मुख्य जाति के अंधराष्ट्रवाद पर किया, यानी ग़ैररूसी जातियों की तरफ़ ज़ारशाही में बृहत् रूसी अंधराष्ट्रवादियों ने जैसा रूख दिखाया था, दूसरी जातियों की तरफ़ उसके अवशेषों और बचे–खुचे प्रभाव पर मुख्य प्रहार किया।

3. नेप के प्रथम फल। ग्यारहवीं पार्टी कांग्रेस। सोवियत समाजवादी प्रजातंत्र संघ का निर्माण। लेनिन की बीमारी। लेनिन की सहकार योजना। बारहवीं पार्टी कांग्रेस।

पार्टी के ढुलमुल लोगों ने नयी आर्थिक नीति का विरोध किया। विरोध दो तरफ से होता था। पहले तो 'वामपंथी' हल्ला–गुल्ला करने वाले थे ; लोमीनात्से, शात्स्किन, आदि जैसे राजनीतिक अजूबे भी थे, जो इस बात के 'सबूत' पेश करते थे कि नेप का मतलब है – अक्तूबर क्रान्ति से मिले हुए लाभ छोड़ देना, पूंजीवाद की तरफ़ लौट चलना और सोवियत सत्ता का पतन। अपनी राजनीतिक निरक्षरता और आर्थिक विकास के नियमों के अज्ञान की वजह से, ये लोग पार्टी की नीति न समझते थे। वे एकदम बदहवास हो गये और पस्ती और निराशा फैलाने लगे। दूसरे, ठेठ घुटने टेकने वाले लोग थे – त्रात्स्की, रादेक, ज़िनोवियेव, सकोल्निकोव, कामेनेव, श्लियापनीकोव, बुखारिन, राइकोव, वग़ैरह जैसे लोग, जिन्हें विश्वास न था कि हमारे देश का समाजवादी विकास हो सकता है। ये लोग पूंजीवाद को 'सर्वशक्तिमान' समझ कर, उसके सामने घुटने टेकते थे और सोवियत देश में पूंजीवाद की स्थिति मज़बूत करने के प्रयत्न में व्यक्तिगत पूंजी के लिये लम्बी–चौड़ी रियायतें मांगते थे। ये रियायतें देशी और विदेशी दोनों तरह की व्यक्तिगत पूंजी के लिये थी। वे मांग करते थे कि आर्थिक क्षेत्र में सोवियत सत्ता की कई अहम जगहें व्यक्तिगत पूंजीपतियों को दे दी जायें और ये पूंजीपति या तो रियायत पाने वाले, या मिलीजुली ज्वाइंट स्टॉक कम्पनियों में राज्य के साझीदार की तरह काम करें।

दोनों ही दल मार्क्सवाद और लेनिनवाद के लिये ग़ैर थे।

पार्टी ने दोनों ही का पर्दाफ़ाश किया और उन्हें अकेला कर दिया। पार्टी ने बदहवासी फैलाने वालों और घुटना टेकने वालों की कड़ी आलोचना की।

पार्टी–नीति के इस विरोध ने एक बार फिर इस बात की याद दिलायी कि पार्टी से ढुलमुल लोगों को निकालना जरूरी है। इसलिये 1921 में केन्द्रीय समिति ने पार्टी की शुद्धि का संगठन किया, जिससे पार्टी को काफी मज़बूत करने में मदद मिली। शुद्धि का काम खुली सभाओं में, ग़ैरपार्टी जनता के सामने और उसके सहयोग से किया गया था। लेनिन ने सलाह दी कि पार्टी से पूरी तरह "बदमाशों, नौकरशाहों, बेईमान या ढुलमुल कम्युनिस्टों को और मेन्शेविकों को, जिन्होंने नया चेहरा लगा लिया है लेकिन जिनका दिल मेन्शेविक ही है" बाहर निकाल दिया जाये। (लेनिन, ***सं॰ग्रं॰,*** अं॰सं॰, मास्को, 1947, खण्ड 2, पृ॰ 746)।

कुल मिलाकर, 1,70,000 आदमियों या पूरे सदस्यों के लगभग 25 फ़ीसदी लोग शुद्धि के फलस्वरूप पार्टी से निकाल दिये गये।

शुद्धि से पार्टी बहुत मज़बूत हुई, उसकी सामाजिक बनावट सुधरी, आम जनता का विश्वास उसमें और बढ़ा और उसका मान–सम्मान ज्यादा हो गया। पार्टी के अन्दर भीतरी दृढ़ता आयी और अनुशासन सुधरा।

नयी आर्थिक नीति सही है, यह पहले ही साल में साबित हो गया था। उसकी मंजूरी से एक नये आधार पर मज़दूरों और किसानों का सहयोग मज़बूत करने में बहुत मदद मिली। सर्वहारा डिक्टेटशिप की शक्ति और बल बढ़ा। कुलक–डकैती पूरी तरह खत्म कर दी गयी। फ़ालतू अन्न लेने की व्यवस्था समाप्त हो चुकी थी, इसलिये मध्यम किसानों ने कुलक जत्थों से लड़ने में सोवियत सरकार की मदद की। आर्थिक क्षेत्र में, सभी अहम जगहें – बड़े पैमाने के उद्योग–धंधे, यातायात के साधन, बैंक, जमीन, देशी और विदेशी व्यापार, सोवियत सरकार के हाथ में रहे। आर्थिक क्षेत्र में, पहले से अच्छी हालत की तरफ़ पार्टी ने मोड़ लिया। खेती जल्द ही उन्नति करने लगी। उद्योग–धंधों और रेलों को अपनी पहली सफलतायें मिलीं। आर्थिक पुनर्जागरण शुरू हुआ, जिसकी गति बहुत धीमी लेकिन बहुत निश्चित थी। मज़दूरों और किसानों ने महसूस किया और देखा कि पार्टी सही रास्ते पर है।

मार्च 1922 में, पार्टी की ग्यारहवीं कांग्रेस हुई। इसमें 5,32,000 पार्टी सदस्यों की तरफ़ से 522 वोटें देने वाले प्रतिनिधि आये। पार्टी सदस्यों की तादाद पिछली कांग्रेस

से कम थी। 165 प्रतिनिधि बोलने वाले लेकिन वोट न दे सकने वाले थे। पार्टी सदस्यों में कमी का सबब पार्टी की शुद्धि थी, जो तब तक शुरू हो चुकी थी।

इस कांग्रेस में, नयी आर्थिक नीति के पहले साल के नतीजों का पार्टी ने लेखा–जोखा लिया। इन नतीजों के आधार पर, लेनिन कांग्रेस में ऐलान कर सके :

> "एक साल तक हम पीछे हटते आये हैं। पार्टी के नाम पर, अब हमें रुकना चाहिये। पीछे हटने का उद्देश्य पूरा हो चुका है। वह दौर खत्म हो गया है, या खत्म होने को है। अब हमारा उद्देश्य दूसरा है – अपनी शक्तियों को फिर से संगठित करना।" (**उप•**, पृष्ठ 782–83)।

लेनिन ने कहा कि नेप पूंजीवाद और समाजवाद के बीच जिन्दगी और मौत की लड़ाई थी। सवाल यह था 'कौन जीते?' हम जीतें, इसके लिये ज़रूरी था कि देहात और शहर के बीच माल की अदला–बदली को भरसक बढ़ाकर मज़दूर वर्ग और किसानों के सम्बन्ध को समाजवादी उद्योग–धंधों और किसानों की खेती के सम्बन्ध को सुरक्षित कर लिया जाये। इस उद्देश्य के लिये, प्रबंध करने की कला और सफल व्यापार करने की कला सीखना ज़रूरी था।

उस समय, पार्टी के सामने जो समस्याएँ थीं उनकी मुख्य कड़ी व्यापार थी। जब तक यह समस्या न हल होती, तब तक शहर और देहात के बीच माल के विनिमय को बढ़ाना असंभव होता, मज़दूरों और किसानों के आर्थिक सहयोग को दृढ़ करना, खेती को बढ़ाना या अव्यवस्था की हालत से उद्योग–धंधों को निकालना असंभव होता।

उस समय, सोवियत व्यापार अभी बहुत अविकसित था। व्यापार करने की व्यवस्था बहुत ही अपर्याप्त थी। कम्युनिस्टों ने अभी व्यापार की कला सीखी न थी। उन्होंने अपने दुश्मन – नेपमैंन[1] – को जाँचा न था, और न यह सीखा था कि कैसे उसका मुक़ाबिला करना चाहिये। व्यक्तिगत व्यापारियों या नेपमैंनों ने सोवियत व्यापार की अविकसित दशा से फ़ायदा उठाया था, जिससे कि वे सूती कपड़ों या दूसरे माल के व्यापार में, जिसकी आम माँग हो, अपना सिक्का जमा लें। राज्य के व्यापार और सहकारी व्यापार का संगठन सबसे अधिक महत्व का हो गया था।

---

1. **नयी आर्थिक नीति (नेप) के शुरू के दिनों में व्यक्तिगत कारखानेदार, व्यापारी, या मुनाफ़ाखोर – अं• अनु•।**

ग्यारहवीं कांग्रेस के बाद, आर्थिक क्षेत्र में दूने ज़ोर के साथ काम शुरू हुआ। हाल में फ़सल न होने के असर को सफलता से दूर किया गया। किसानों की खेती में जल्द सुधार हुआ। रेलें पहले से अच्छा काम करने लगीं। अधिकाधिक कल–कारखाने चालू हुए।

अक्तूबर 1922 में, सोवियत प्रजातंत्र ने एक महान् विजय का समारोह मनाया। सोवियत देश के अंतिम भाग को, जो अभी तक हमलावरों के हाथ में था, व्लादीवस्तोक को लाल फ़ौज और सुदूरपूर्व के छापेमारों ने जापानियों के हाथ से छीन लिया।

सोवियत प्रजातंत्र की समूची धरती हस्तक्षेपकारियों से पाक कर दी गयी। समाजवादी निर्माण और देश की सुरक्षा की ज़रूरतों की माँग थी कि सोवियत जनता के संघ को और मज़बूत बनाया जाये। इसलिये, अब आवश्यकता पैदा हुई कि एक ही संघ–राज्य में सोवियत प्रजातंत्रों को और निकटता से गूँथा जाये। समाजवाद के निर्माण के लिये, जनता की सभी शक्तियों को मिलाना था। देश को अजेय बनाना था। ऐसी परिस्थिति तैयार करनी थी जिससे कि हमारे देश में हर जाति का चौमुखी विकास हो सके। इसके लिये ज़रूरी था कि सभी सोवियत जातियां एक ही संघ में एक–दूसरे के और निकट लाई जायें।

दिसम्बर 1922 में, सोवियतों की पहली अखिल संघीय कांग्रेस हुई। इसमें, लेनिन और स्तालिन के प्रस्ताव पर, सोवियत जातियों का एक स्वेच्छित राज्य संघ – सोवियत समाजवादी प्रजातंत्र संघ (सो•स•प्र•सं•) बनाया गया। पहले सो•स•प्र•सं• में रूसी सोवियत संघीय समाजवादी प्रजातंत्र (रू•सो•सं•स•प्र•), ट्रांस कॉकेशिया का सोवियत संघीय समाजवादी प्रजातंत्र (ट्रां•सो•सं•स•प्र•), उक्रैन का सोवियत समाजवादी प्रजातंत्र (उ•सो•स•प्र•) और बेलोरूसिया का सोवियत समाजवादी प्रजातंत्र (बे•सो•स•प्र•) शामिल थे। कुछ दिन बाद, मध्य एशिया में तीन स्वतंत्र संघीय सोवियत प्रजातंत्र – उज़बेक, तुर्कमान और ताजिक प्रजातंत्र – बने। ये सभी प्रजातंत्र सोवियत राज्यों के एक ही संघ – सो•स•प्र•सं• – में स्वेच्छा और समानता के आधार पर संयुक्त हुए हैं। इनमें से हरेक को यह अधिकार है कि वह आज़ादी से सोवियत संघ से अलग हो सकता है।

सोवियत समाजवादी प्रजातंत्र संघ के बनने का मतलब था सोवियत सत्ता का मज़बूत होना और जातियों के मसले पर बोल्शेविक पार्टी की लेनिनवादी–स्तालिनवादी नीति की महान् विजय।

नवम्बर 1922 में, मास्को–सोवियत के एक विस्तृत अधिवेशन में लेनिन ने एक भाषण दिया, जिसमें सोवियत शासन के पाँच वर्षों का लेखा–जोखा लिया और

यह दृढ़ विश्वास प्रकट किया कि "नयी आर्थिक नीति का रूस, समाजवादी रूस बनेगा।" देश के लिये, उनका यह अंतिम भाषण था। उसी शरद् में, पार्टी पर भारी विपत्ति पड़ी : लेनिन बुरी तरह बीमार पड़ गये। समूची पार्टी और तमाम मेहनतकश जनता के लिये, उनकी बीमारी एक बहुत गहरा और व्यक्तिगत शोक थी। अपने प्रिय लेनिन के जीवन की चिंता से सभी लोग विचलित थे। लेकिन, बिमारी में भी लेनिन ने काम करना बन्द न किया। जब वह बहुत बिमार थे तब भी उन्होंने कई बहुत ही महत्वपूर्ण लेख लिखे। इन अंतिम रचनाओं में, अब तक के किये हुए काम का सिंहावलोकन किया और अपने देश में समाजवादी निर्माण के उद्देश्य के लिये किसानों का सहयोग प्राप्त करके समाजवाद के निर्माण के लिये एक योजना की रूपरेखा बनाई। इस रूपरेखा में उनकी सहकार योजना थी, जिससे कि समाजवाद के निर्माण में किसानों का सहयोग प्राप्त किया जा सके।

लेनिन की राय में, सहकारी समितियाँ आम तौर से और खेती की सहकारी समितियाँ खास तौर से अगली मंजिल की तरफ बढ़ने का एक साधन है। यह साधन छोटे व्यक्तिगत खेतों से लेकर पैदावार के बड़े पैमाने के संघों तक, या पंचायती खेतों तक लाखों किसानों की पहुँच और समझ के भीतर था। लेनिन ने बताया कि हमारे देश में खेती के विकास में जिस नीति पर चलना था, वह यह थी कि सहकारी समितियों के ज़रिये समाजवाद के निर्माण में किसानों को खींचा जाये, पहले बेचने में और फिर खेती की उपज पैदा करने में, धीरे–धीरे खेती में पंचायती उसूल लागू किया जाये। लेनिन ने कहा था कि सर्वहारा डिक्टेटरशिप और मजदूर–किसान सहयोग होने पर, किसानों का सर्वहारा नेतृत्व पक्का होने पर और समाजवादी उद्योग–धंधे होने पर लाखों किसानों को समेटने वाली एक सुसंगठित उत्पादक सहकारी व्यवस्था एक मात्र साधन है, जिससे हमारे देश में पूरी तरह समाजवादी समाज का निर्माण हो सकता है।

अप्रैल 1923 में, पार्टी ने बारहवीं कांग्रेस की। बोल्शेविकों ने जबसे सत्ता संभाली, तबसे यह पहली कांग्रेस थी जिसमें लेनिन न आ सके थे। कांग्रेस में, 386,000 पार्टी सदस्यों की तरफ से 408 वोट देने वाले प्रतिनिधि आये थे। यह तादाद पहली कांग्रेस से कम थी। कमी का सबब यह था कि इस बीच पार्टी की शुद्धि चलती रही थी और उसके फलस्वरूप पार्टी सदस्यों की काफ़ी प्रतिशत संख्या निकाल दी गयी थी। 417 प्रतिनिधि बोलने वाले लेकिन वोट न दे सकने वाले थे।

बारहवीं पार्टी कांग्रेस ने अपने फैसलों में उन सिफ़रिशों को रखा, जिन्हें लेनिन ने हाल के लेखों और खतों में पेश किया था।

कांग्रेस ने उन लोगों को कड़ी फटकार बताई जो नेप का मतलब समाजवादी उद्देश्य से पीछे हटना, पूंजीवाद के सामने आत्मसमर्पण करना समझते थे और जो पूंजीवादी गुलामी की तरफ़ लौट चलने का समर्थन करते थे। कांग्रेस में, इस तरह के प्रस्ताव त्रात्स्की के अनुयायियों, रादेक और क्रासेन ने रखे। उन्होंने सुझाव रखा कि हम अपने को विदेशी पूंजीपतियों की दया पर छोड़ दें, उन्हें रियायतें देकर, सोवियत राज्य के जीवन के लिये आवश्यक धंधे उन्हें सौंप कर, उनके सामने घुटने टेक दें। उनका प्रस्ताव था कि अक्तूबर क्रान्ति ने ज़ार सरकार के जो क़र्ज रद्द कर दिये थे, उन्हें भरा जाये। पार्टी ने इन समर्पणवादी प्रस्तावों को ग़द्दारी कह कर, उनकी निन्दा की। उसने रियायतें देने की नीति को ठुकराया नहीं, लेकिन उसे ऐसे धंधों के लिये ही ठीक समझा और उतनी ही हद तक ठीक समझा जिस हद तक सोवियत राज्य को फ़ायदा हो।

कांग्रेस से पहले ही, बुखारिन और सोकोल्निकोव ने प्रस्ताव किया था कि विदेशी व्यापार पर राज्य का इज़ारा खत्म कर दिया जाये। यह प्रस्ताव इस विचार पर निर्भर था कि नेप के माने पूंजीवाद के आगे घुटने टेकना है। लेनिन ने बुखारिन को मुनाफ़ेखोरों, नेपमैनों और कुलकों का हिमायती कहा था। 12 वीं कांग्रेस ने विदेशी व्यापार के इज़ारे को कमज़ोर करने की कोशिशों को दृढ़ता से ठुकरा दिया।

कांग्रसे ने पार्टी पर किसानों के प्रति त्रात्स्की की ऐसी नीति लादने की कोशिश को भी ठुकरा दिया जो घातक होती। कांग्रेस ने कहा कि देश में छोटे पैमाने की खेती की बहुतायत एक सच्चाई है, जिसे भुलाया नहीं जा सकता। उसने जोर देकर कहा कि उद्योग–धंधों का विकास, जिसमें बड़े उद्योग–धंधों का विकास भी शामिल है, किसान जनता के हितों के खिलाफ़ हरगिज न चलना चाहिये। उसका आधार मज़दूरों से निकट सम्बन्ध होना चाहिये, यह विकास तमाम मेहनतकश जनता के हित में होना चाहिये। ये फैसले त्रात्स्की को जवाब थे, जिसने प्रस्ताव किया था कि उद्योग–धंधों का निर्माण किसानों का शोषण करके हो, और जो दरअसल मज़दूर–किसानों के सहयोग की नीति न मानता था।

साथ ही, त्रात्स्की ने यह भी प्रस्ताव रखा कि बड़े कारखाने, जैसे पुतिलोव, ब्रियान्स, वग़ैरह जो कि देश की रक्षा के लिये महत्वपूर्ण थे, बन्द कर दिये जायें। बहाना यह था कि उनसे मुनाफा नहीं होता। कांग्रेस ने त्रात्स्की के इन प्रस्तावों को गुस्से के साथ ठुकरा दिया।

लेनिन के प्रस्ताव पर, जो कांग्रेस को लिखित रूप में भेजा गया था बारहवीं कांग्रेस ने पार्टी के केन्द्रीय कन्ट्रोल कमीशन और मजदूर–किसान निरीक्षण–समिति को एक ही संस्था में मिला दिया। इस संयुक्त संस्था को ये महत्वपूर्ण कार्य सौंपे गये

थे – पार्टी–एकता की रक्षा करना, पार्टी और नागरिक अनुशासन को मज़बूत करना और सोवियत राज्य के यंत्र को हर तरह से उन्नत करना।

कांग्रेस के कार्यक्रम में एक महत्वपूर्ण बात जातियों का सवाल थी, जिस पर कॉमरेड स्तालिन ने रिपोर्ट पेश की। कॉमरेड स्तालिन ने जातियों के सवाल पर हमारी नीति के अंतर्राष्ट्रीय महत्व पर जोर दिया। पूरब और पच्छिम के सताये हुए लोगों के लिये सोवियत संघ जातीय प्रश्न के समाधान और जातीय उत्पीड़न के खात्मे का आदर्श था। उन्होंने बताया कि सोवियत संघ की जातियों में आर्थिक और सांस्कृतिक असमानता को खत्म करने के लिये ज़ोरदार क़दम उठाना आवश्कता है। उन्होंने पार्टी को बुलावा दिया कि जातियों के सवाल पर होने वाले भटकावों के खिलाफ – वृहद् रूसी अंधराष्ट्रवाद और स्थानीय पूंजीवादी राष्ट्रवाद – के खिलाफ़ जम कर लड़े।

राष्ट्रवादी गुमराहों और उनकी प्रमुख जाति की नीति का, जिसे वे अल्पसंख्यक जातियों की तरफ बरतते थे, कांग्रेस में पर्दाफ़ाश किया गया। उस समय, जॉर्जिया के राष्ट्रवादी गुमराह मिदवानी वग़ैरह पार्टी का विरोध कर रहे थे। वे ट्रांस कॉकेशिया का संघ बनाने के खिलाफ़ थे और ट्रांस कॉकेशिया की जातियों में भाईचारा बढ़ाने के खिलाफ़ थे। ये गुमराह जॉर्जिया की दूसरी जातियों की तरफ़ प्रमुख जाति के सीधे अंधराष्ट्रवादियों की तरह व्यवहार कर रहे थे। वे तिफ़लिस से ग़ैरजॉर्जियन लोगों को, विशेषकर ***आर्मीनियनों*** को, सामूहिक रूप से निकाल रहे थे। उन्होंने क़ानून बना दिया था कि जॉर्जियन औरतें गैरजॉर्जियन लोगों से ब्याह करेंगी तो अपनी नागरिकता खो देंगी। त्रात्स्की, रादेक, बुखारिन, स्क्रिपनिक और रकोव्स्की जॉर्जिया के राष्ट्रवादी गुमराहों का समर्थन करते थे।

कांग्रेस के थोड़े ही दिन बाद, जातीय प्रजातंत्रों से पार्टी–कार्यकर्ताओं की एक विशेष कांफ्रेंस जातीय प्रश्न पर विचार करने के लिये बुलाई गयी। यहां सुल्तान गालियेव, वग़ैरह, तातार पूंजीवादी राष्ट्रवादियों के एक गुट, और फ़ैज़ुल्ला खोजायेव वग़ैरह, उज़बेक राष्ट्रवादी गुमराहों के एक गुट, का पर्दाफ़ाश किया गया।

बारहवीं पार्टी कांग्रेस ने पिछले दो साल में नयी आर्थिक नीति के परिणामों की जाँच–पड़ताल की। ये परिणाम हौसला बढ़ाने वाले थे, और उनसे अंतिम विजय में विश्वास पैदा होता था।

कॉमरेड स्तालिन ने कांग्रेस में कहा था :

"हमारी पार्टी की एकता और दृढ़ता क़ायम रही है। हमारी पार्टी एक महत्वपूर्ण मोड़ में खरी उतरी है, और जीत के झंडे फहराती हुई आगे बढ़ रही है।"

4. आर्थिक पुनर्संगठन की कठिनाईयों के खिलाफ़ संघर्ष। त्रात्स्कीवादियों का अपनी कार्यवाही बढ़ाने के लिये लेनिन की बीमारी से फ़ायदा उठाना। नयी पार्टी–बहस। त्रात्स्कीपंथियों की हार। लेनिन की मृत्यु। लेनिन–भर्ती। तेरहवीं पार्टी कांग्रेस।

राष्ट्रीय अर्थतंत्र को बहाल करने के संघर्ष ने पहले ही वर्षों में पर्याप्त फल दिये। 1924 तक, सभी क्षेत्रों में प्रगति दिखाई दी। 1921 के बाद, खेती का इलाका काफी बढ़ गया था। किसानों की खेती बराबर उन्नत हो रही थी। समाजवादी उद्योग–धंधे बढ़ रहे थे, और उनका प्रसार हो रहा था। मज़दूर वर्ग संख्या में बहुत बढ़ गया था। तनख्वाहें बढ़ गयी थीं। 1920 और 1921 के मुकाबिले में, मज़दूरों और किसानों के लिये जीवन आसान और सुन्दर हो गया था।

लेकिन, आर्थिक अव्यवस्था का असर अब भी महसूस होता था। उद्योग–धंधे युद्ध के पहले की सतह से अब भी नीचे थे, और उनका विकास देश की मांग के बहुत पीछे था। 1923 के अंत में, करीब दस लाख बेकार थे। राष्ट्रीय अर्थतंत्र इतने धीरे विकसित हो रहा था कि बेकारों को खपा न सकता था। व्यापार का विकास तैयार माल की बहुत बढ़ी–चढ़ी कीमतों से रुक रहा था। ये कीमतें नेपमैन और हमारे व्यापारी संगठनों के नेपमैन तत्व देश पर लाद रहे थे। इस वजह से, सोवियत रूबल बूरी तरह झकोले खाने लगा और उसका मूल्य गिरने लगा। इन कारणों से, मज़दूरों और किसानों की दशा सुधारने में बाधा पड़ती थी।

1923 की शरद् में, हमारे औद्योगिक और व्यापारी संगठनों द्वारा सोवियत की भाव सम्बन्धी नीति के उल्लंघन से आर्थिक कठिनाइयां कुछ बढ़ गयीं। तैयार माल की क़ीमत और खेतों की उपज की कीमत में बहुत बड़ा अंतर था। गल्ले की कीमत कम थी और तैयार माल की कीमत बेहद ऊंची थी। उद्योग–धंधों पर बहुत ज्यादा ऊपरी खर्च का भार था, जिससे माल की कीमत बढ़ जाती थी। किसानों को अपने गल्ले के लिये जो पैसा मिलता था, उसका मूल्य तेज़ी से गिरता गया। उधर त्रात्स्कीवादी प्याताकोव उस समय राष्ट्रीय अर्थतंत्र की प्रधान समिति में था। उसने प्रबंधकों और संचालकों को यह मुजरिमाना हुकुम दिया कि तैयार माल के बेचने से जितना मुनाफा खींच सकें, खींचे और जहां तक भाव ऊंचा कर सकें, करें। ऊपर से, उद्देश्य यह लगता था कि उद्योग–धंधों का विकास हो। लेकिन, इससे हालत और बदतर हुई। वास्तव में, इस नेपमैन की नीति से उद्योग–धंधों की बुनियाद संकुचित और कमज़ोर ही हो सकती थी। किसानों के लिये तैयार माल खरीदने में कोई लाभ न था, और उन्होंने उसे

खरीदना बन्द कर दिया। नतीजा यह हुआ कि उद्योग–धंधों के लिये विक्रय–संकट पैदा हो गया। तनख्वाहें देने में कठिनाइयां पैदा हुई। इससे, मज़दूरों में असन्तोष भड़क उठा। ज्यादा पिछड़े हुए मज़दूरों ने कुछ कारखानों में काम बन्द कर दिया।

पार्टी की केन्द्रीय समिति ने इन कठिनाइयों और असंगतियों को दूर करने के लिये क़दम उठाये। विक्रय–संकट दूर करने का उपाय किया गया। रोजाना खर्च में आने वाले माल का भाव कम कर दिया गया। फ़ैसला किया गया कि मुद्रा सम्बंधी सुधार किया जाये और एक पक्की और टिकाऊ मुद्रा की इकाई – चेरबोनेत्स – मंजूर की जाये। साधारण रूप से, तनख्वाहों का दिया जाना जारी हो गया। राज्य और सरकारी समितियों के ज़रिये व्यापार को बढ़ाने और व्यक्तिगत व्यापारियों और मुनाफाखोरों को हटाने के लिये उपायों की रूपरेखा बनाई गयी।

अब जरूरत इस बात की थी कि हर कोई इस मिली–जूली कोशिश में लग जाये, आस्तीने चढ़ा ले और जोश के साथ काम में लग जाये। जितने भी लोग पार्टी के प्रति वफ़ादार थे, उन्होंने ऐसा ही सोचा और किया। लेकिन, त्रात्स्कीवादियों की बात दूसरी थी। लेनिन भारी बीमारी की वजह से काम न कर सकते थे। उनकी अनुपस्थिति से उन्होंने पार्टी और उसके नेतृत्व पर नया हमला करने के लिये लाभ उठाया। उन्होंने तय किया कि पार्टी को तोड़ने और उसके नेतृत्व को पछाड़ने के लिये यह उपयुक्त घड़ी है। पार्टी के खिलाफ़ उन्हें जो भी हथियार मिला, उन्होंने चलाया : जर्मनी और बलगारिया में 1923 की शरद् में क्रांति की पराजय, घर में आर्थिक कठिनाइयां और लेनिन की बीमारी। सोवियत राज्य की इस कठिन घड़ी में जब पार्टी के नेता रोग–शैया पर थे, त्रात्स्की ने बोल्शेविक पार्टी पर अपना हमला शुरू किया। पार्टी के भीतर जितने भी लेनिनवाद–विरोधी थे, उन सबको बटोरा और पार्टी, उसके नेतृत्व और उसकी नीति के खिलाफ़ एक विरोधी दल भी जोड़–तोड़ कर बना डाला। इस दल की नीति 46 विरोधियों की घोषणा कहलाती थी। लेनिनवादी पार्टी से लड़ने के लिये सभी विरोधी गुट – त्रास्कीपंथी, जनवादी केन्द्रवादी, 'वामपंथी कम्युनिस्ट', और 'मज़दूर–विरोधी' गुटों के बचे–खूचे लोग–मिल गये। अपनी घोषणा में, उन्होंने भविष्यवाणी की कि घोर आर्थिक संकट आनेवाला है और सोवियत सत्ता खतम हो जायेगी। उन्होंने मांग की कि इस परिस्थिति से बचने का एक ही तरीका है कि दल और गुट बनाने की आज़ादी दी जाये।

यह फिर से दलबन्दी बहाल करने के लिये संघर्ष था, जिस पर दसवीं पार्टी कांग्रेस ने लेनिन के प्रस्ताव पर रोक लगा दी थी।

त्रात्स्कीवादियों ने खेती या उद्योग–धंधों के सुधार के लिये, बिकाऊ माल के चलन के सुधार के लिये, या मेहनतकश जनता की हालत सुधारने के लिये एक भी निश्चित प्रस्ताव न किया। इससे उन्हें दिलचस्पी तक न थी। उन्हें सिर्फ़ एक बात से दिलचस्पी थी कि लेनिन की ग़ैरहाजिरी से फ़ायदा उठाकर पार्टी में फिर से गुटबन्दी बहाल की आये, उसकी जडें खोदी जायें और उसकी केन्द्रीय समिति को कमज़ोर बनाया जाये।

46 लोगों की घोषणा के बाद, त्रात्स्की ने एक ख़त छापा जिसमें उसने पार्टी कार्यकर्ताओं को गलियां दीं और पार्टी के खिलाफ़ नये कीचड़ उछालनेवाले आरोप लगाये। इस ख़त में, त्रात्स्की ने फिर भी वही मेन्शेविक राग अलापे जो पार्टी उससे बहुत पहले सुन चुकी थी।

सबसे पहले त्रात्स्कीवादियों ने पार्टी मशीन पर हमला किया। वे जानते थे कि एक मज़बूत ढांचे के बिना पार्टी जीवित नहीं रह सकती, और न काम कर सकती है। विरोधियों ने कोशिश की कि पार्टी के ढांचे को कमज़ोर कर दें और तोड़ दें, पार्टी सदस्यों को उससे भिड़ा दें और नये सदस्यों को पार्टी के पुराने महारथियों से लड़ा दें। इस ख़त में, त्रात्स्की ने विद्यार्थियों को उभारा, नौजवान पार्टी सदस्यों को उभारा, जो अभी तक त्रात्स्कीवाद के खिलाफ़ पार्टी की लड़ाई के इतिहास से परिचित न थे। विद्यार्थियों का समर्थन पाने के लिये, त्रात्स्की ने उनकी तारीफ़ करते हुए उन्हें पार्टी का पक्का 'तापमान यंत्र' बतलाया और साथ ही यह भी कहा कि पुराने लेनिनवादी नेताओं का पतन हो चुका है। दूसरी इन्टरनेशनल के नेताओं के पतन का हवाला देते हुए, उसने यह गन्दा इशारा किया कि पुराने बोल्शेविक नेता भी उसी रास्ते जा रहे हैं। पार्टी के पतन के बारे में यह शोरगुल मचा कर, त्रात्स्की ने खुद अपने पतन और अपनी पार्टी–विरोधी साजिशों पर पर्दा डालना चाहा।

त्रात्स्कीवादियों ने दोनों ही विरोधी दस्तावेज घुमाये : 46 विरोधियों की घोषणा, और त्रात्स्की का ख़त। उन्होंने इन लेखों को जिलों में और पार्टी केन्द्रों में घुमाया और पार्टी सदस्यों के सामने बहस के लिये रखा।

उन्होंने बहस के लिये पार्टी को चुनौती दी।

इस तरह, त्रात्स्कीवादियों ने पार्टी को एक आम बहस में पड़ने के लिये मज़बूर किया, ठीक जैसे कि सदवीं पार्टी कांग्रेस से पहले ट्रेड यूनियनों के सवाल पर बहस के सिलसिले में किया था।

हालांकि पार्टी देश के आर्थिक जीवन की कहीं अधिक महत्वपूर्ण समस्याओं में लगी हुई थी, लेकिन उसने चुनौती स्वीकार कर ली और बहस शुरू कर दी।

सारी पार्टी बहस में लग गयी। संघर्ष ने बहुत ही कटु रूप धारण किया। सबसे तीख़ा संघर्ष मास्को में था, क्योंकि त्रात्स्कीवादियों की सबसे ज्यादा कोशिश यही थी कि राजधानी के पार्टी–संगठन पर क़ब्जा कर लें। लेकिन, इससे उन्हीं के मुंह पर कालिख पुत गयी। मास्को में, और सोवियत संघ के दूसरे हिस्सो में भी उन्हें बुरी तरह मुंह की खानी पड़ी। सिर्फ़ विश्वविद्यालयों और दफ्तरों के कुछ केन्द्रों ने ही त्रात्स्कीवादियों को कुछ वोट दिये।

जनवरी 1924 में, पार्टी ने अपनी तेरहवीं कान्फ्रेन्स की। कान्फ्रेन्स ने बहस के नतीजों का सार रूप देते हुए, कॉमरेड स्तालिन की रिपोर्ट सुनी। कान्फ्रेन्स ने त्रात्स्कीवादी–विरोध की निन्दा की और उसे मार्क्सवाद से **निम्नपूंजीवादी भटकाव** बतलाया। कान्फ्रेन्स के फ़ैसलों को आगे चलकर, तेरहवीं पार्टी कांग्रेस ने और कम्युनिस्ट इंटरनेशनल की पांचवीं कांग्रेस ने अनुमोदीत किया। अंतर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट सर्वहारा ने त्रात्स्कीवाद के खिलाफ़ संघर्ष में बोल्शेविक पार्टी का समर्थन किया।

लेकिन, त्रात्स्कीवादी अपनी तोड़–फोड़ की हरकतों से बाज़ न आये। 1924 की शरद् में, त्रात्स्की ने "अक्तूबर की शिक्षा" नाम का एक लेख प्रकाशित किया, जिसमें उसने त्रात्स्कीवाद को लेनिनवाद की जगह देने की कोशिश की। हमारी पार्टी और उसके नेता लेनिन पर कीचड़ उछालने के सिवा यह और कुछ न था। कम्युनिज्म और सोवियत सत्ता के तमाम दुश्मनों ने इस कीचड़–उछाल पर्चे को हाथों–हाथ लिया। बोल्शेविज्म के वीर इतिहास के इस तरह बेहयाई से तोड़ने–मरोड़ने पर, पार्टी को बेहद गुस्सा आया। कॉमरेड स्तालिन ने त्रात्स्कीवाद को लेनिनवाद की जगह रखने की इस कोशिश की तीव्र निन्दा की। उन्होंने कहा कि "यह पार्टी का कर्तव्य है कि एक सैद्धांतिक रुझान के रूप में त्रात्स्कीवाद को दफ़ना दे।"

विचारधारा के रूप में, त्रात्स्कीवाद की हार और लेनिनवाद के समर्थन में कॉमरेड स्तालिन की सैद्धांतिक रचना लेनिनवाद के मूलसिद्धांत जो 1924 में प्रकाशित हुई, एक प्रभावशाली देन थी। यह पुस्तक लेनिनवाद की उत्कृष्ट व्याख्या और सिद्धांत में उसका ज़बर्दस्त समर्थन है। यह रचना दुनियाभर के बोल्शेविकों के हाथ में मार्क्सवादी सिद्धांत का कारगर हथियार थी और आज भी है।

त्रात्स्कीवाद के खिलाफ़ संघर्षों में, कॉमरेड स्तालिन ने पार्टी को उसकी केन्द्रीय समिति के चारों तरफ़ समेटा और हमारे देश में समाजवाद की विजय के लिये संघर्ष करने में उसे बटोरा। कॉमरेड स्तालिन ने साबित किया कि अगर समाजवाद की तरफ़ सफलतापूर्वक प्रगति निशिचित करनी है, तो त्रात्स्कीवाद का एक सिद्धांत के रूप में विनाश जरूरी है।

त्रात्स्कीवाद के खिलाफ़ संघर्ष के इस दौर का सिंहावलोकन करते हुए, कॉमरेड स्तालिन ने कहा :

"जब तक त्रात्स्कीवाद पछाड़ा नहीं जाता, तब तक नेप की परिस्थितियों में विजय पाना असंभव होगा; आज के रूस को समाजवादी रूस में बदलना असंभव होगा।"

लेकिन पार्टी की लेनिनवादी नीति को जो सफलतायें मिलीं, उन पर पार्टी और मज़दूर वर्ग के लिये एक महान् दुखद घटना की काली छाया पड़ी। 21 जनवरी 1924 को मास्को के पास गोर्की नाम के गांव में, बोल्शेविक पार्टी के निर्माता, हमारे नेता और शिक्षक लेनिन का देहान्त हो गया। तमाम दुनिया के मज़दूर वर्ग ने लेनिन की मृत्यु को एक बहुत ही दुखदायी घटना के रूप में लिया। लेनिन की शव–यात्रा के दिन अंतर्राष्ट्रीय सर्वहारा ने पांच मिनट तक काम बन्द रखने का ऐलान किया। रेलें, मिलें, और कारखाने बन्द हो गये। जब लेनिन को समाधि–स्थान की तरफ़ ले जाया गया, तब तमाम दुनिया की श्रमिक जनता ने अपने सबसे अच्छे मित्र और रक्षक, अपने शिक्षक और पिता लेनिन को अपने असहनीय दुःख की श्रद्धांजलि अर्पित की।

लेनिन की मृत्यु पर, सोवियत संघ का मज़दूर वर्ग और भी मज़बूती से लेनिनवादी पार्टी के चारों तरफ़ सिमट आया। उन शोक के दिनों में, हर वर्ग–चेतन मज़दूर ने कम्युनिस्ट पार्टी की तरफ, लेनिन के निर्देशों को अमल में लाने वाली पार्टी की तरफ अपना रुख स्पष्ट किया। पार्टी की केन्द्रीय समिति के पास मज़दूरों की हजारों–हजार अर्जियां पार्टी में भर्ती होने के लिये आयीं। केन्द्रीय समिति ने आगे बढ़े हुए मज़दूरों के इस आन्दोलन का स्वागत किया, और लेनिन–भर्ती की घोषणा की – पार्टी की पांति में आगे बढ़े हुए मज़दूरों की भर्ती की घोषणा की। हजारों–हजार मज़दूर पार्टी के अन्दर आये। ये ऐसे लोग थे जो पार्टी के उद्देश्य के लिये, लेनिन के उद्देश्य के लिये अपनी जान देने को तैयार थे। थोड़े ही दिनों में, 2,40,000 से ऊपर मज़दूर बोल्शेविक पार्टी की पांति में शामिल हो गये। मज़दूर वर्ग के ये प्रमुख हिस्से थे; सबसे वर्ग–चेतन और क्रांतिकारी, सबसे ज्यादा साहसी और अनुशासन मानने वाले थे। यही लेनिन–भर्ती थी।

लेनिन की मृत्यु से जो प्रतिक्रिया हुई, उसने दिखा दिया कि आम जनता से हमारी पार्टी का सम्बन्ध कितना निकट है और मज़दूरों के दिल में लेनिनवादी पार्टी कितना ऊंचा स्थान रखती है।

लेनिन के लिये शोक के दिनों में, कॉमरेड स्तालिन ने सोवियत संघ की सोवियतों की दूसरी कांग्रेस में पार्टी के नाम पर एक गंभीर प्रतिज्ञा की। उन्होंने कहा :

"हम कम्युनिस्ट एक खास सांचे में ढले हुए लोग हैं। हमारा निर्माण कुछ विशेष तत्वों से हुआ है। हम वह हैं जो महान् सर्वहारा रण–विशारद की फ़ौज, कॉमरेड लेनिन की फ़ौज हैं। मनुष्य के लिये इस फ़ौज का सैनिक होने से ज्यादा गौरव की बात दूसरी नहीं है। जिस पार्टी के जन्मदाता और नेता कॉमरेड लेनिन हैं, उसके सदस्य बनने से ज्यादा गौरव की बात और दूसरी नहीं है। ...

"हमसे विदा होते हुए, कॉमरेड लेनिन ने आज्ञा दी थी कि हम पार्टी सदस्य के महान् नाम को ऊंचा रखें और उसकी पवित्रता की रक्षा करें। कॉमरेड लेनिन, हम आपसे प्रतिज्ञा करते हैं कि हम आपकी इस आज्ञा को सम्मान सहित पूरी करेंगे!...

"हमसे विदा होते हुये, कामरेड लेनिन ने आज्ञा दी थी कि आंख की पुतली की तरह हम अपनी पार्टी की एकता की रक्षा करें। कामरेड लेनिन, हम आपसे प्रतिज्ञा करते हैं कि हम इस आज्ञा को भी सम्मान सहित पूरी करेंगे!...

"हमसे विदा होते हुए, कॉमरेड लेनिन ने आज्ञा दी थी कि हम सर्वहारा डिक्टेटरशिप को दृढ़ करें और उसकी रक्षा करें। कॉमरेड लेनिन, हम आपसे प्रतिज्ञा करते हैं कि हम इस आज्ञा को भी सम्मान सहित पूरी करने में कुछ उठा न रखेंगे!...

"हमसे विदा होते हुये, कामरेड लेनिन ने आज्ञा दी थी कि हम अपनी पूरी शक्ति से मज़दूरों और किसानों के सहयोग को दृढ़ करें। कामरेड लेनिन, हम आपसे प्रतिज्ञा करते हैं कि हम इस आज्ञा को भी सम्मान सहित पूरी करेंगे!...

"कॉमरेड लेनिन ने बार–बार इस बात पर ज़ोर दिया था कि अपने देश की जातियों के स्वेच्छा से बने हुए संघ को बनाये रखना ज़रूरी है, प्रजातंत्र संघ के ढांचे के अन्दर जातियों के भाईचारे के सहयोग को बनाये रखना ज़रूरी है। हमसे विदा होते हुए, कॉमरेड लेनिन ने आज्ञा दी थी कि हम प्रजातंत्रों के संघ को दृढ़ करें और उसका प्रसार करें। कॉमरेड लेनिन, हम आपसे प्रतिज्ञा करते हैं कि हम इस आज्ञा को भी सम्मान सहित पूरी करेंगे!...

"कई बार लेनिन ने हमें बताया था कि लाल फ़ौज को मज़बूत करना और उसकी हालत सुधारना हमारी पार्टी का एक बहुत ही महत्वपूर्ण कर्तव्य है।... साथियों, आओ, हम प्रतिज्ञा करें कि हम अपनी लाल फ़ौज और लाल जल–सेना को मज़बूत बनाने में कुछ भी न उठा रखेंगे!...

"हमसे विदा होते हुए, कॉमरेड लेनिन ने आज्ञा दी थी कि हम कम्युनिस्ट इन्टरनेशनल के उसूलों के प्रति वफ़ादार रहें कॉमरेड लेनिन, हम आपसे प्रतिज्ञा

करते हैं कि तमाम दुनिया के मेहनतकशों के संघ, कम्युनिस्ट इन्टरनेशनल, को मज़बूत करने और उसका विस्तार करने में हम अपने प्राणों की बाज़ी लगा देंगे!"

बोल्शेविक पार्टी ने यह प्रतिज्ञा अपने नेता लेनिन के प्रति की थी, जिनकी स्मृति युगों–युगों तक जीवित रहेगी।

मई 1924 में, पार्टी की तेरहवीं कांग्रेस हुई। इसमें 7,35,881 पार्टी सदस्यों की तरफ़ से, 748 वोट देनेवाले प्रतिनिधि आये थे। पिछली कांग्रेस की तुलना में, इस स्पष्ट बढ़ती का कारण लेनिन–भर्ती में ढाई लाख नये सदस्यों का पार्टी में आना था। 416 प्रतिनिधि बोलने वाले लेकिन वोट न दे सकने वाले थे।

कांग्रेस ने एक राय होकर त्रात्स्कीवादी विरोध नीति का खण्डन किया और उसे मार्क्सवाद से निम्नपूंजीवादी भटकाव, लेनिनवाद का संशोधन बतलाया। कांग्रेस ने 'पार्टी मामलों' और 'बहस के नतीजों' पर 13वीं पार्टी कान्फ्रेन्स के प्रस्तावों का अनुमोदन किया।

देहात और शहर का सम्बन्ध मज़बूत करने के लिये, कांग्रेस ने निर्देश किया कि उद्योग–धंधों को, सबसे पहले हल्के उद्योग–धंधों को और फैलाया जाये और लोहे और इस्पात के धंधों को तुरंत बढ़ाने की ज़रूरत पर विशेष ज़ोर दिया जाये।

कांग्रेस ने घरेलू व्यापार के जन–कमीसार–मण्डल के बनने का अनुमोदन किया। उसने व्यापारी संस्थाओं के सामने यह काम रखा कि वे बाज़ार का नियंत्रण अपने हाथ में लें और व्यापार के क्षेत्र से व्यक्तिगत पूंजी को बाहर निकालें।

कांग्रेस ने किसानों को सस्ती दर पर राज्य की तरफ़ से और ज्यादा कर्ज़ देने का निर्देश किया, जिससे कि देहातों से सूदखोरों को निकाला जा सके।

कांग्रेस ने किसानों के अन्दर सहकारी आन्दोलन के ज्यादा से ज्यादा विकास के लिये आह्वान किया, और इस आन्दोलन को ही गांवों के अन्दर मुख्य काम बताया।

अंत में, कांग्रेस ने लेनिन–भर्ती के गंभीर महत्व पर ज़ोर दिया, और इस आवश्यकता की तरफ़ पार्टी का ध्यान खींचा कि नौजवान पार्टी सदस्यों–और सबसे अधिक लेनिन–भर्ती में आये हुए लोगों–को लेनिनवाद के सिद्धांतों की शिक्षा देने के लिये और ज्यादा कोशिश की जाये।

5. पुनर्संगठन के दौर के खात्में की तरफ़ सोवियत संघ। समाजवादी निर्माण और हमारे देश में समाजवाद की विजय का सवाल। जिनोवियेव–कामेनेव का 'नया विरोध'। चौदहवीं पार्टी कांग्रेस। देश के समाजवादी औद्योगीकरण की नीति।

नयी आर्थिक नीति के अनुसार मेहनत से काम करते हुए, बोल्शेविक पार्टी और मज़दूर वर्ग को चार साल से ऊपर हो गये थे। आर्थिक पुनर्संगठन का वीरतापूर्ण काम अब खत्म होने को था। सोवियत संघ की आर्थिक और राजनीतिक शक्ति बराबर बढ़ रही थी।

इस समय तक, अंतर्राष्ट्रीय परिस्थिति में तब्दीली हो चुकी थी। साम्राज्यवादी युद्ध के बाद, पूंजीवाद आम जनता के पहले क्रांतिकारी हमले को सह चुका था। जर्मनी, इटली, बलगारिया, पोलैण्ड, और दूसरे कई देशों में क्रांतिकारी आन्दोलन दबा दिया गया था। इस काम में पूंजीपतियों को समझौतावादी सोशल–डेमोक्रैटिक पार्टियों के नेताओं से मदद मिली थी। कुछ समय के लिये, क्रांति का ज्वार मन्द पड़ रहा था। पच्छिमी यूरोप में, कुछ समय के लिये आंशिक रूप से पूंजीवाद संभल गया था; आंशिक रूप से पूंजीवाद की स्थिति मज़बूत हुई थी। लेकिन, पूंजीवाद के संभलने से पूंजीवादी समाज का विघटन करने वाली बुनियादी असंगतियां दूर न हुई। इसके विपरीत, आंशिक रूप से पूंजीवाद के संभलने से मज़दूरों और किसानों का विरोध, साम्राज्यवाद और औपनिवेशिक जातियों का विरोध, विभिन्न देशों के साम्राज्यवादी गुटों का विरोध और बढ़ गया। पूंजीवाद के संभलने से अंतर्विरोधों के नये विस्फोट के लिये, पूंजीवादी देशों में नये संकटों के लिये बारूद बिछायी जा रही थी।

पूंजीवाद के संभलने के साथ–साथ, सोवियत संघ की हालत भी संभल रही थी। लेकिन, संभलने के इन दो कामों का रूप बुनियादी तौर से भिन्न था। पूंजीवादी संभलने से, पूंजीवाद के एक नये संकट की अगवानी की सूचना मिलती थी। सोवियत संघ के संभलने का मतलब था–सोवियत देश की आर्थिक और राजनीतिक शक्ति की और बढ़ती।

पच्छिम में क्रांति की पराजय के बावजूद, अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में सोवियत संघ की स्थिति और मज़बूत होती गयी, हालांकि यह सही है कि उसकी रफ़्तार और धीमी हो गयी।

1922 में, जिनोआ, इटली में एक अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन में सोवियत संघ बुलाया गया। पूंजीवादी देशों में क्रांति की पराजय से शेर होकर, साम्राज्यवादी हुकूमतों ने जिनोआ–सम्मेलन में सोवियत संघ पर नया दबाव, इस बार कूटनीतिक रूप में, डालने की कोशिश की। साम्राज्यवादियों ने सोवियत प्रजातंत्र के सामने बदतमीज़ी भरी मांगें पेश कीं। उन्होंने मांग की कि अक्तूबर क्रांति से जिन कल–कारखानों का राष्ट्रीयकरण हो गया था, वे विदेशी पूंजीपतियों को लौटा दिये जायें। उन्होंने मांग की कि ज़ार सरकार को दिया हुआ ऋण भरा जाये। इसके बदले, साम्राज्यवादी रियासतों ने वायदा किया कि वे सोवियत राज्य को छोटी–मोटी रकमें उधार दे देंगे।

सोवियत संघ ने ये मांगें ठुकरा दीं।
जिनोआ–सम्मेलन निष्फल रहा।

अंग्रेजों के विदेश–मंत्री लॉर्ड कर्जन ने 1923 में नये हस्तक्षेप की धमकी देते हुए चेतावनी (अल्टीमेटम) दी। उसे भी माकूल मुंहतोड़ जवाब दिया गया।

सोवियत राज्य की शक्ति का परिचय पाकर और उसके टिकाऊपन के बारे में विश्वास जमने पर, एक के बाद एक पूंजीवादी रियासतों ने हमारे देश के साथ कूटनीतिक सम्बन्ध क़ायम करना शुरू किया। 1924 में, ब्रिटेन, फ्रांस, जापान, और इटली के साथ कूटनीतिक संबंध बहाल हुये।

ज़हिर था कि सोवियत संघ को सांस लेने के लिये लम्बा अवकाश शांति की अवधि मिली थी।

घरेलू स्थिति भी बदली। बोल्शेविक पार्टी के नेतृत्व में मज़दूरों और किसानों ने जो आत्मबलिदान किया था, वह सफल हुआ। राष्ट्रीय अर्थतंत्र तेज़ी से विकसित हो रहा है, यह स्पष्ट था। 1924–'25 के आर्थिक वर्ष में, खेती की उपज युद्ध के पहले की सतह के नजदीक पहुंच गयी थी। अब वह युद्ध से पहले की उपज की 87 फ़ीसदी थी। 1925 में सोवियत संघ के बड़े उद्योग–धंधे युद्ध के पूर्व की औद्योगिक उपज की लगभग **तीन–चौथाई** पैदा कर रहे थे। 1924–'25 के आर्थिक वर्ष में, सोवियत 38,50,00,000 रूबल बड़े निर्माण–कार्यों में लगा सका। देश में बिजली लगाने की योजना सफलता से आगे बढ़ रही थी। राष्ट्रीय अर्थतंत्र के मुख्य स्थानों पर समाजवाद अपनी स्थिति मज़बूत कर रहा था। उद्योग–धंधों और व्यापार में, व्यक्तिगत पूंजी के खिलाफ़ संघर्ष में महत्वपूर्ण सफलतायें मिली थीं।

आर्थिक प्रगति के साथ–साथ, मज़दूरों और किसानों की स्थिति में और सुधार हुआ। मज़दूर वर्ग तेज़ी से बढ़ रहा था। तनख्वाह बढ़ गयी थी और उसके साथ,

श्रम की उत्पादकता भी बढ़ गयी थी। किसानों का जीवन–स्तर बहुत सुधर गया था। 1924–'25 में, मज़दूर–किसान राज्य छोटे किसानों की मदद के लिये लगभग 29 करोड़ रूबल नियत कर सका। मज़दूरों और किसानों की स्थिति सुधरने से, आम जनता की राजनीतिक कार्यवाही और बढ़ी। सर्वहारा डिक्टेटरशिप अब और मज़बूत हो गयी। बोल्शेविक पार्टी का मान–सम्मान तथा प्रभाव और बढ़ गया।

राष्ट्रीय अर्थतंत्र के पुनर्संगठन का काम पूरा होने को था। लेकिन, सोवियत संघ के लिये, समाजवाद का निर्माण करते हुए, देश के लिये सिर्फ आर्थिक रूप से बहाल होना, युद्ध के पूर्व की सतह तक पहुंचना ही काफी न था युद्ध के पूर्व की सतह एक पिछड़े हुए देश की सतह थी। उससे आगे प्रगति करनी थी। सोवियत राज्य को सांस लेने के लिये जो लम्बा अवकाश मिला था, उससे अगले विकास की संभावना पक्की होती थी।

लेकिन, इससे एक सवाल जोरों से सामने आया; हमारे विकास, हमारे निर्माण की दिशा क्या होगी, उसका रूप क्या होगा? सोवियत संघ में समाजवाद का भविष्य क्या है? सोवियत संघ में आर्थिक विकास किस ओर होगा; समाजवाद की दिशा में, या और किसी तरफ? हम समाजवादी आर्थिक व्यवस्था का निर्माण करें, और कर भी सकते हैं या नहीं, या हमारी तक़दीर में किसी दूसरी आर्थिक व्यवस्था के लिये, पूंजीवादी आर्थिक व्यवस्था के लिये खाद डालना ही बदा है? क्या सोवियत संघ में समाजवादी आर्थिक व्यवस्था का निर्माण करना मुमकिन भी है, और अगर है तो क्या पूंजीवादी देशों में क्रांति के विलम्ब के बावजूद, पूंजीवाद के संभलने के बावजूद, उसका निर्माण हो सकता है? क्या नयी आर्थिक नीति की राह से समाजवादी आर्थिक व्यवस्था का निर्माण करना मुमकिन है? यह नीति देश में हर तरह से समाजवाद की शक्तियों को बढ़ा रही थी और मज़बूत हो रही थी, फिर भी उससे एक हद तक पूंजीवाद की बढ़ती होती थी। समाजवादी आर्थिक व्यवस्था का किस तरह निर्माण हो; किस छोर से उसके निर्माण में हाथ लगाया जाये?

पुनर्संगठन के दौर के समाप्त होते–होते, ये तमाम सवाल पार्टी के सामने आये। ये सवाल सिर्फ सिद्धांत के सवाल न थे बल्कि अमली सवाल थे, आये दिन की आर्थिक नीति के सवाल थे।

इन सब सवालों को सीधा और साफ़ जवाब देना ज़रूरी था, जिससे कि हमारे पार्टी सदस्य जो उद्योग–धंधों और खेती के विकास में लगे हुए थे, और आम तौर से जनता भी, इस बात को जान सकें कि किस दिशा में काम करना चाहिये, समाजवाद की तरफ या पूंजीवाद की तरफ?

इन सवालों का साफ़ जवाब न देने पर, हमारा तमाम अमली निर्माण–कार्य दिशाहीन हो जाता, अंधेरे में टटोलने जैसा होता, व्यर्थ की मेहनत होती।

पार्टी ने इन सभी सवालों का निश्चित और साफ़ जवाब दिया।

पार्टी ने कहा, हां हमारे देश में समाजवादी आर्थिक व्यवस्था का निर्माण हो सकता है और होना चाहिये, क्योंकि समाजवादी आर्थिक व्यवस्था के निर्माण के लिये, पूरी तरह समाजवादी समाज रचने के लिये, हमारे पास सभी आवश्यक साधन हैं। अक्तूबर 1917 में, अपनी राजनीतिक डिक्टेटरशिप कायम करके मज़दूर वर्ग ने पूंजीवाद को **राजनीतिक रूप** से परास्त किया था। उसके बाद से, सोवियत सरकार पूंजीवाद की आर्थिक शक्ति चूर करने के लिये हर उपाय करती रही थी और समाजवादी आर्थिक व्यवस्था के निर्माण के लिये अनुकूल हालत पैदा करने को क़दम उठाती रही थी। उसके उपाय ये थे : जमींदारों और पूंजीपतियों की सम्पत्ति जब्त करना; जमीन, मिलों, कारखानों, रेलों और बैंकों को जन–सम्पत्ति बनाना; नयी आर्थिक नीति मंजूर करना, राज्य के अधिकार में समाजवादी उद्योग–धंधों का निर्माण और लेनिन की सहकार योजना को लागू करना। अब मुख्य काम यह था कि समूचे देश में नयी समाजवादी आर्थिक व्यवस्था के निर्माण का काम उठाया जाये और इस तरह, आर्थिक रूप से भी पूंजीवाद को चूर कर दिया जाये। हमारा सभी अमली काम, हमारी सभी कार्यवाही इसी उद्देश्य को पूरा करने के लिये होनी चाहिये। मज़दूर वर्ग यह कर सकता था, और करेगा। इस विराट कार्य की शुरूआत देश के औद्योगिकरण से होनी चाहिये। देश का समाजवादी औद्योगीकरण इसकी मुख्य कड़ी था। उसी से समाजवादी आर्थिक व्यवस्था का निर्माण शुरू होना चाहिये। न तो पच्छिम में क्रांति का विलम्ब, और न ग़ैरसोवियत देशों में पूंजीवाद का आंशिक रूप से संभलना समाजवाद की तरफ़ हमारी प्रगति को रोक सकता था। नयी आर्थिक नीति से यह काम आसानी से हो सकता था, क्योंकि पार्टी ने यह नीति इसी निश्चित उद्देश्य से लागू की थी कि हमारी आर्थिक व्यवस्था के लिये समाजवादी नींव डालने में आसानी हो।

क्या हमारे देश में समाजवादी निर्माण की विजय संभव है? – इस सवाल का पार्टी ने यही जवाब दिया था।

लेकिन, पार्टी जानती थी कि एक देश में समाजवाद की जीत का मसला यहीं खत्म न होता था। सोवियत संघ में समाजवाद का निर्माण मनुष्य जाति के इतिहास में एक युगान्तरकारी मोड़ होगा, सोवियत संघ के मज़दूर वर्ग और किसानों की विजय होगी, जिससे विश्व इतिहास में एक नया युग शुरू होगा। फिर भी, यह सोवियत संघ की घरेलू बात थी और समाजवाद की जीत के मसले का एक हिस्सा ही थी। समस्या

का दूसरा हिस्सा उसका अंतर्राष्ट्रीय पहलू था। इस सैद्धांतिक स्थापना का समर्थन करते हुए कि एक ही देश में समाजवाद की जीत हो सकती है, कॉमरेड स्तालिन ने बार–बार कहा था कि सवाल को दोनों पहलुओं से देखना चाहिये एक तो घरेलू और दूसरा अंतर्राष्ट्रीय। जहां तक समस्या के घरेलू पहलू का सवाल था, यानी देश के अंदर वर्ग–संबंधों का सवाल था सोवियत संघ के मज़दूर वर्ग और किसान आर्थिक रूप से अपने पंजीपतियों को पछाड़ने और पूरी तरह समाजवादी समाज का निर्माण करने में समर्थ थे। लेकिन समस्या का अंतर्राष्ट्रीय पहलू भी था, यानी विदेशी सम्बन्धों का क्षेत्र, सोवियत संघ और पूंजीवादी देशों के सम्बन्धों का क्षेत्र भी था। अंतर्राष्ट्रीय पूंजीपति सोवियत व्यवस्था से नफ़रत करते थे, सोवियत संघ में हथियारबन्द हस्तक्षेप फिर शुरू करने का मौका ढूंढ रहे थे, सोवियत संघ में पूंजीवाद को बहाल करने की नयी कोशिशों के लिये मौका ढूंढ रहे थे। और, अभी सोवियत संघ एकमात्र समाजवादी देश था, दूसरे सभी देश पूंजीवादी थे। इसलिये, सोवियत संघ पूंजीवादी संसार से बराबर घिरा हुआ ही था। जिससे पूंजीवादी हस्तक्षेप का ख़तरा पैदा होता था। स्पष्ट है कि जब तक यह पूंजीवादी घेरा रहेगा, तब तक पूंजीवादी हस्तक्षेप का ख़तरा भी रहेगा। क्या सोवियत जनता अपनी ही कोशिशों से इस बाहरी ख़तरे को, सोवियत संघ में पूंजीवादी हस्तक्षेप के ख़तरे को मिटा सकती थी? नहीं, वह इस ख़तरे को नहीं मिटा सकती थी। इसलिये नहीं मिटा सकती थी कि पूंजीवादी हस्तक्षेप का ख़तरा मिटाने के लिये पूंजीवादी घेरे को मिटाना ज़रूरी था। और, पूंजीवादी घेरा तभी मिटाया जा सकता था जब कम से कम कई देशों में सर्वहारा क्रांति की जीत हो। इससे नतीजा निकलता था कि सोवियत संघ में समाजवाद की विजय, जो पूंजीवादी आर्थिक व्यवस्था को मिटाने और समाजवादी आर्थिक व्यवस्था को बनाने में मिली थी, उसे **अंतिम** विजय न माना जा सकता था। कारण यह कि विदेशी हथियार बन्द हस्तक्षेप का ख़तरा और पूंजीवाद को बहाल करने की कोशिशों का ख़तरा मिटाया न गया था और समाजवादी देश के पास इस ख़तरे के विरूद्ध कोई गारंटी न थी। विदेशी पूंजीवादी हस्तक्षेप के खतरे को मिटाने के लिये पूंजीवादी घेरे को ही मिटाना ज़रूरी होगा।

यह ठीक है कि जब तक सोवियत सरकार सही नीति पर चलेगी, तब सोवियत जनता और उसकी लाल फ़ौज नये विदेशी पूंजीवादी हस्तक्षेप को वैसे ही मार भगायेगी जैसे उसने 1918–'20 में पहले पूंजीवादी हस्तक्षेप को मार भगाया था। लेकिन, इसका यह मतलब न था कि नये पूंजीवादी हस्तक्षेप का ख़तरा मिट जायेगा। पहले हस्तक्षेप की हार से नये हस्तक्षेप का ख़तरा न मिटा था, क्योंकि हस्तक्षेप के ख़तरे की जड़ – पूंजीवादी घेरा – बराबर क़ायम थी। इसलिये, पूंजीवादी घेरे के बने रहने पर नये हस्तक्षेप की हार से भी उसका ख़तरा न मिटेगा।

इससे नतीजा निकलता था कि पूंजीवादी देशों में सर्वहारा क्रांति की विजय से सोवियत संघ की मेहनतकश जनता को गहरी दिलचस्पी थी।

हमारे देश में समाजवाद की जीत के सवाल पर, पार्टी की नीति यही थी।

केन्द्रीय समिति ने मांग की कि आगे होने वाली चौदहवीं पार्टी कान्फ्रेन्स में इस नीति पर बहस हो और इसे पार्टी नीति के तौर पर, एक पार्टी कानून के तौर पर जिसे मानने के लिये सभी पार्टी सदस्य **बाध्य** हों, स्वीकार किया जाये और उसका अनुमोदन किया जाये।

पार्टी की यह नीति विरोधियों के सिर पर वज्र बन कर गिरी; सबसे पहले इस कारण से कि पार्टी ने उसे एक निश्चित अमली रूप दे दिया था, देश के समाजवादी औद्योगीकरण की अमली योजना से उसे जोड़ दिया था और यह मांग की थी कि उसे पार्टी कानून का रूप दिया जाये, चौदहवीं पार्टी कान्फेंस के प्रस्ताव का रूप दिया जाये जिसे मानने के लिये सभी पार्टी सदस्य बाध्य हों।

त्रात्स्कीवादियों ने इस पार्टी नीति का विरोध करने की हिम्मत न की। लेकिन, उन्होंने चुपके–चुपके उसके खिलाफ़ अपना ही 'सिद्धांत' रखा; सिद्धांत यह था कि पूंजीपति शांतिमय ढंग से विकसित होकर समाजवाद की मंजिल में पहुंच जायेंगे। इसे उन्होंने 'अमीर बनो!' का 'नया' नारा देकर और स्पष्ट बना दिया था। बुखारिनपंथियों के अनुसार, समाजवाद की जीत का मतलब था – पूंजीपतियों को पालना–पोसना और अमीर बनाना न कि उनका नाश करना।

जिनोवियेव और कामेनेव यह दावा लेकर आगे आये कि सोवियत संघ में समाजवाद की विजय इसलिये असंभव है कि देश कौशल में, और आर्थिक रूप से पिछड़ा हुआ है? लेकिन, उन्होंने तुरंत ही पर्दे की ओट हो जाना ज्यादा बुद्धिमानी की बात समझी।

चौदहवीं पार्टी कान्फ्रेन्स (अप्रैल 1925) ने छिपे और खुले अवसरवादियों के इन तमाम समर्पणवादी 'सिद्धांतों' का खंडन किया, सोवियत संघ में समाजवाद की विजय के लिये काम करने की पार्टी की नीति का अनुमोदन किया, और इस पर एक प्रस्ताव भी पास किया।

और कोई चारा न देख कर, जिनोवियेव और कामेनेव ने इस प्रस्ताव के पक्ष में वोट देना ही ठीक समझा। लेकिन, पार्टी जानती थी कि उन्होंने अपने संघर्ष को सिर्फ़ टाला ही है और चौदहवीं पार्टी कांग्रेस में 'पार्टी से जम कर लड़ने' का फैसला किया है। वे लेनिनग्राद में अपने अनुयायी बटोर रहे थे, और उन्होंने तथाकथित 'नव विरोध' बनाया।

दिसम्बर 1925 में, चौदहवीं पार्टी कांग्रेस शुरू हुई।

पार्टी के अंदर हालत गंभीर और उत्तेजनापूर्ण थी। उसके इतिहास में कभी ऐसा न हुआ था कि लेनिनग्राद जैसे महत्वपूर्ण पार्टी केन्द्र के समूचे प्रतिनिधि–मंडल ने अपनी केन्द्रीय समिति के विरोध में खड़े होने की तैयारी की हो।

कांग्रेस में, 6,43,000 पार्टी सदस्यों की तरफ से और 4,45,000 उम्मीदवार सदस्यों की तरफ से, 665 वोट देने वाले और 641 बोलने लेकिन वोट न दे सकने वाले प्रतिनिधि आये थे। पार्टी सदस्यों की तादाद पिछली कांग्रेस से थोड़ी कम थी। कमी का कारण यह था कि आंशिक रूप से शुद्धि हुई थी। विश्वविद्यालयों और दफ़्तरों के पार्टी–संगठनों की शुद्धि हुई थी, जिनमें पार्टी–विरोधी लोग घुस गये थे।

केन्द्रीय समिति की राजनीतिक रिपोर्ट कॉमरेड स्तालिन ने पेश की। उन्होंने सोवियत संघ की आर्थिक और राजनीतिक शक्ति की बढ़ती का सजीव चित्र खिंचा। सोवियत आर्थिक व्यवस्था से जो लाभ हुये थे, उनसे उद्योग–धंधे और खेती – दोनों अपेक्षाकृत कम ही समय में पुनर्संगठित हो गये थे और युद्ध के पूर्व की सतह तक पहुंच रहे थे। ये नतीजे अच्छे थे, लेकिन कॉमरेड स्तालिन ने प्रस्ताव किया कि यहीं रूक न जाना चाहिये क्योंकि इनसे इस सच्चाई का खंडन न होता था कि हमारा देश अब भी एक पिछड़ा हुआ खेतिहर देश है। देश की कुल उपज का दो–तिहाई हिस्सा खेती से था, और सिर्फ़ एक–तिहाई हिस्सा उद्योग–धंधों से। कॉमरेड स्तालिन ने कहा कि पार्टी के सामने अब सीधे यही समस्या है कि अपने देश को औद्योगिक देश बनायें, जो आर्थिक रूप से पूंजीवादी देशों से स्वाधीन हो। यह किया जा सकता था, और ज़रूर किया जाना चाहिये था। अब देश के समाजवादी औद्योगीकरण के लिये, समाजवाद की विजय के लिये संघर्ष करना पार्टी का मुख्य काम था।

कॉमरेड स्तालिन ने कहा था :

> "हमारी आम नीति का आधार, उसका सार–तत्व यह है – अपने देश को खेतिहर देश से एक ऐसे औद्योगिक देश में परिवर्तित करना, जो अपने लिये आवश्यक मशीनें अपनी ही कोशिश से बना सके।"

देश के औद्योगीकरण से उसकी आर्थिक स्वाधीनता निश्चित होती, अपनी रक्षा करने की शक्ति दृढ़ होती और सोवियत संघ में समाजवाद की विजय के लिये परिस्थिति तैयार होती।

जिनोवियेवपंथियों ने पार्टी की आम नीति का विरोध किया। समाजवादी औद्योगीकरण की स्तालिन–योजना के खिलाफ़, जिनोवियेवपंथी सोकोल्निकोव ने एक पूंजीवादी योजना रखी, जो उन दिनों साम्राज्यवादी डाकुओं में बहुत प्रचलित थी। इस योजना के अनुसार, सोवियत संघ को खेतिहर देश बना रहना था, जो मुख्य रूप से कच्चा माल और अन्न पैदा कर, उन्हें बाहर भेजे और अपने यहां मशीनें मंगाये, जिन्हें न तो वह खुद बनाये और न उसे खुद बनाना चाहिये। 1925 की जैसी हालत थी, उसमें यह योजना उद्योग–धंधों में आगे बढ़े हुये बाहर के देशों द्वारा सोवियत संघ को आर्थिक रूप से गुलाम बनाने की योजना के बराबर थी। यह योजना पूंजीवादी देशों के साम्राज्यवादी लुटेरों के हित में सोवियत संघ का औद्योगिक पिछड़ापन बनाये रखने के लिये थी।

इस योजना को मानने से, हमारा देश पूंजीवादी संसार का एक अपाहिज, कृषि–प्रधान, खेतिहर पुछल्ला बन जाता। उससे चारों तरफ़ के पूंजीवादी संसार के सामने वह कमज़ोर और अरक्षित रह जाता और अंत में, वह योजना सोवियत संघ में समाजवाद के उद्देश्य के लिये घातक होती।

कांग्रेस ने जिनोवियेवपंथियों की आर्थिक 'योजना' को सोवियत संघ की गुलामी की योजना कह कर उसकी निन्दा की।

'नव विरोध' के दूसरे हमले भी ऐसे ही नाकाम हुए। मिसाल के लिये, जब उन्होंने (लेनिन के विरोध में) यह दावा किया कि हमारे राजकीय उद्योग–धंधे समाजवादी उद्योग–धंधे नहीं हैं, या जब उन्होंने (फिर लेनिन के विरोध में) कहा कि मध्यम किसान समाजवाद के निर्माण के काम में मज़दूर वर्ग के सहयोगी नहीं हो सकते।

कांग्रेस ने 'नव विरोध' के इन हमलों को लेनिनवाद–विरोधी कह कर उनकी निन्दा की।

कॉमरेड स्तालिन ने 'नव विरोध' के त्रात्स्कीवादी मेन्शेविक सार–तत्व का भण्डाफोड़ कर दिया। उन्होंने दिखाया कि जिनोवियेव और कामेनेव पार्टी के उन्हीं दुश्मनों का पुराना राग अलाप रहे हैं जिनके खिलाफ़ लेनिन ने डट कर संघर्ष किया था।

स्पष्ट था कि जिनोवियेवपंथी भौंडे तरीके से भेष बदले हुए त्रात्स्कीवादियों के अलावा कुछ नहीं हैं।

कॉमरेड स्तालिन ने इस बात पर ज़ोर दिया कि हमारी पार्टी का मुख्य काम समाजवाद के निर्माण में मज़दूर वर्ग और मध्यम किसान के बीच दृढ़ सहयोग बनाये

रखना है। उन्होंने उस समय पार्टी के अन्दर किसान समस्या पर प्रचलित दो भटकावों की तरफ़ इशारा किया। ये दोनों भटकाव इस तरह के सहयोग के लिये एक ख़तरा थे। पहला भटकाव वह था जो कुलक ख़तरे को कम करके आंकता था और उसे नाकुछ बताता था। दूसरा भटकाव वह था जो कुलकों से बुरी तरह भयभीत था और मध्यम किसान की भूमिका को कम करके आंकता था। इस सवाल के जवाब में कि कौन सा भटकाव ज्यादा खराब है, कॉमरेड स्तालिन ने जवाब दिया : "जितना एक खराब है उतना ही दूसरा। और, अगर ये भटकाव बढ़ने दिये गये तो ये पार्टी को तोड़ सकते हैं और उसका नाश कर सकते हैं। सौभाग्य से, हमारी पार्टी में ऐसी ताकतें हैं जो उसे दोनों भटकावों से मुक्त कर सकती हैं।"

और, सचमुच पार्टी ने दक्षिण और 'वामपंथी' दोनों ही भटकावों की जड़ें काट दीं और उनसे अपने को मुक्त किया।

आर्थिक विकास के सवाल पर बहस का सार–तत्व पेश करते हुए, चौदहवीं पार्टी कांग्रेस ने विरोधियों की घुटना–टेकू योजनायें ठुकरा दीं और अपने प्रस्ताव में, जो अब प्रसिद्ध हो गया है, कहा :

> "आर्थिक विकास के क्षेत्र में कांग्रेस का कहना है कि हमारे देश में, सर्वहारा डिक्टेटरशिप के देश में, 'एक पूर्ण समाजवादी समाज के निर्माण के लिये हर ज़रूरी चीज' **(लेनिन)** मौजूद है। कांग्रेस समझती है कि हमारी पार्टी का मुख्य काम सोवियत संघ में समाजवाद के निर्माण की विजय के लिये संघर्ष करना है।"

चौदहवीं पार्टी कांग्रेस ने नयी पार्टी नियमावली स्वीकार की।

चौदहवीं कांग्रेस के बाद, हमारी पार्टी सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) – सो•सं•क•पा• (बो•) – कहलाती रही है।

हालांकि जिनोवियेवपंथी कांग्रेस में हारे, फिर भी उन्होंने पार्टी के सामने सिर न झुकाया। उन्होंने कांग्रेस के फ़ैसलों के खिलाफ़ लड़ाई शुरू की। कांग्रेस के तुरंत ही बाद, जिनोवियेव ने नौजवान कम्युनिस्ट सभा की लेनिनग्राद की सूबा–कमिटी की एक बैठक बुलाई। इसके प्रमुख दल को जिनोवियेव, जलूत्स्की, बकायेब, येवदोकीमोव, कुकलिन, सफारोव, और दूसरे दगेबाजों ने पार्टी की लेनिनवादी केन्द्रीय समिति की तरफ़ घृणा की भावना में सिखा–पढ़ाकर बड़ा किया था। इस बैठक में, लेनिनग्राद की सूबा–कमिटी ने, नौजवान कम्युनिस्ट सभा के इतिहास में अभूतपूर्ण एक प्रस्ताव पास किया : उसने चौदहवीं पार्टी कांग्रेस के फ़ैसले मानने से इन्कार कर दिया।

लेकिन, लेनिनग्राद की नौजवान कम्युनिस्ट सभा के जिनोवियेवपंथी नेता किसी भी तरह लेनिनग्राद के आम नौजवान कम्युनिस्ट सभा वालों का मनोभाव प्रकट न करते थे। इसलिये, वे आसानी से हरा दिये गये और जल्द ही लेनिनग्राद–संगठन ने नौजवान कम्युनिस्ट सभा में अपना योग्य स्थान पा लिया।

चौदहवीं कांग्रेस की समाप्ती के करीब, कांग्रेस के प्रतिनिधियों का एक दल – कॉमरेड मोलोतोव, किरोव, वोरोशिलोव, कालिनिन, आन्द्रियेव, आदि – लेनिनग्राद भेजा गया। उसका काम था कि लेनिनग्राद के पार्टी–संगठन के सदस्यों को समझाये कि कांग्रेस में लेनिनग्राद के प्रतिनिधि–मण्डल ने, जिसने झूठे बहाने करके अपना चुनाव हासिल किया था, कैसा मुजरिमाना, बोल्शेविक–विरोधी रुख अपनाया था। जिन सभाओं में कांग्रेस की रिपोर्ट पेश की गयी, उनमें हंगामें भरे दृश्य देखने को मिले। लेनिनग्राद के पार्टी–संगठन की एक असाधारण कान्फ्रेंस की गयी। लेनिनवाद के पार्टी सदस्यों के भारी बहुमत ने (97 फ़ीसदी से ऊपर ने) चौदहवीं पार्टी कांग्रेस के फ़ैसले का पूरी तरह अनुमोदन किया और पार्टी–विरोधी जिनोवियेवपंथी 'नव विरोध' की निन्दा की। उस समय तक, 'नव विरोध' दल बिना फ़ौज के सिपहसालारों का एक दल रह गया था।

लेनिनग्राद के बोल्शेविक लेनिन–स्तालिन की पार्टी की अगली पांति में ही रहे।

चौदहवीं पार्टी कांग्रेस के परिणामों का सार देते हुए, कॉमरेड स्तालिन ने लिखा था :

"सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) की चौदहवीं कांग्रेस का महत्व इस बात में है कि वह 'नव विरोध' की ग़लतियों की जड़ों तक का पर्दाफ़ाश कर सकी, उसने शक–शुबहा करने और रोने–भिनभिनाने को घृणापूर्वक ठुकरा दिया, उसने साफ़–साफ़ और निश्चित रूप से समाजवाद के लिये भावी संघर्ष का रास्ता दिखाया पार्टी के सामने विजय की संभावना स्पष्ट की, और इस तरह सर्वहारा को समाजवाद के निर्माण की विजय में अजेय विश्वास से सुसज्जित कर दिया।" (स्तालिन, ***लेनिनवाद की समस्यायें,*** अं•सं•, मास्को, पृष्ठ 177)

सारांश

आर्थिक पुनर्संगठन के शांतिमय काम की तरफ़ बढ़ने के वर्ष, बोल्शेविक पार्टी के इतिहास में बहुत ही नाज़ुक दौर के वर्ष थे। एक विषम परिस्थिति में, पार्टी युद्ध कालीन कम्युनिज्म की नीति से नयी आर्थिक नीति की तरफ़ एक कठिन मोड़ ले सकी। पार्टी ने एक नयी आर्थिक बुनियाद पर मज़दूरों और किसानों के सहयोग को और दृढ किया। सोवियत समाजवादी प्रजातंत्र संघ कायम हुआ।

नयी आर्थिक नीति के द्वारा, देश के आर्थिक जीवन को पुनर्संगठित करने में निर्णायक सफलतायें मिलीं। सोवियत संघ आर्थिक पुनर्संगठन के दौर से सफल होकर निकला और उसने एक नये दौर, देश के औद्योगीकरण के दौर में प्रवेश किया।

गृह–युद्ध से शान्तिमय समाजवादी निर्माण की तरफ़ बढ़ने में ख़ास तौर से शुरू की मंजिलों में भारी कठिनाइयां सामने आयीं। समूचे दौर में, बोल्शेविज्म के दुश्मनों ने सो•सं•क•पा•(बो•) की पांति में पार्टी–विरोधी लोगों ने लेनिनवादी पार्टी के खिलाफ़ घोर संग्राम किया। इन पार्टी–विरोधी लोगों का सरदार त्रात्स्की था। इस संघर्ष में, उसके पिट्ठु कामेनेव, जिनोवियेव और बुखारिन थे। लेनिन की मृत्यु के बाद विरोधियों ने सोचा था कि वे बोल्शेविक पार्टी की पांति में पस्ती फैलायेंगे, पार्टी में फूट डाल देंगे और सोवियत संघ में समाजवाद की विजय की संभावना में अविश्वास फैला देंगे। दरअसल, त्रात्स्कीवादी सोवियत संघ में एक दूसरी पार्टी बनाने की, नये पूंजीपतियों का राजनीतिक संगठन, पूंजीवाद को बहाल करने की पार्टी बनाने की कोशिशें कर रहे थे।

पार्टी लेनिन के झण्डे के नीचे अपनी लेनिनवादी केन्द्रीय समिति के चारों ओर, कॉमरेड स्तालिन के चारों ओर सिमट आयी, और उसने त्रात्स्कीपंथियों और लेनिनग्राद के उनके नये दोस्तों – 'नव विरोध' वाले जिनोवियेव, कामेनेव – दोनों को मात दी।

साधन और शक्ति इकट्ठी करके, बोल्शेविक पार्टी देश को उसके इतिहास की एक नयी मंजिल तक, समाजवादी औद्योगीकरण की मंजिल तक लाई।

दसवाँ अध्याय

देश के समाजवादी औद्योगीकरण के लिये संघर्ष में बोल्शेविक पार्टी (1926–1929)

1. समाजवादी औद्योगीकरण के दौर में कठिनाइयां और उन्हें दूर करने के लिये संघर्ष। त्रात्स्कीवादियों और ज़िनोवियेवपंथियों के पार्टी–विरोधी गुट का निर्माण। गुट के सोवियत–विरोधी कारनामे। गुट की हार।

चौदहवीं कांग्रेस के बाद, पार्टी ने सोवियत सरकार की आम नीति – वेश के ***समाजवादी औद्योगीकरण*** – को अमल में लाने के लिये ज़ोरदार संघर्ष शुरू किया।

पुनर्संगठन के दौर में, सबसे पहला काम खेती को संभालना था, जिससे कि कच्चा माल और अन्न मिल सके और उद्योग–धंधे मौजूदा मिलें और कारखाने पुनर्संगठित और चालू किये जा सकें।

सोवियत सरकार ने यह काम अपेक्षाकृत आसानी से कर लिया।

लेकिन, पुनर्संगठन के इस दौर में तीन मुख्य खामियाँ थीं।

पहली तो यह कि मिलें और कारखाने पुराने थे, जिसमें घिसी–पिटी और बाबा आदम के ज़माने की मशीनें लगी हुई थीं। ये कल–कारखाने कुछ ही दिनों में ठप्प हो सकते थे। काम यह था कि बिल्कुल आधुनिक पैमाने पर इनमें नया साज़–सामान लगाया जाये।

दूसरी यह कि बहाली के दौर में उद्योग–धंधों का आधार बहुत ही संकुचित था। उनमें मशीन बनानेवाले कारखाने बिल्कुल न थे, लेनिक ये देश के लिये एकदम ज़रूरी थे। इस तरह के सैकड़ों कारखाने बनाने थे क्योंकि इनके बिना किसी भी देश को सचमुच उद्योग–धंधों वाला देश न समझा जा सकता था। अब काम यह था कि ऐसे कारखाने बनाये जायें, और बिल्कुल आधुनिक पैमाने पर उनमें साज़–सामान लगाया जाये।

तीसरी यह कि इस दौर में ज्यादातर हल्के उद्योग–धंधें ही चालू रहे थे। इनको सुधारा और चालू किया गया था। लेकिन एक हद तक पहुँच कर, हल्के उद्योग–धंधों के अगले विकास में एक अड़चन पैदा होती थी। अड़चन थी – भारी उद्योग–धंधों की खामी। कहना न होगा कि देश के लिये दूसरी चीजें भी ज़रूरी थीं, जो सिर्फ़ अच्छी तरह विकसित भारी उद्योग–धंधों से ही पूरी हो सकती थीं। अब काम यह था कि भारी उद्योग–धंधों पर ज़ोर दिया जाये।

ये सब नये काम समाजवादी औद्योगीकरण की नीति से पूरे होने थे।

यह ज़रूरी था कि बहुत से नये उद्योग–धंधे बनाये जायें, जो ज़ारशाही रूस में न थे। नयी मशीनें, कल–पुर्जे, मोटर, रसायन, लोहे और इस्पात के कारखाने बनाये जायें, इंजन बनाने और यन्त्र–शक्ति को पैदा करने के काम का संगठन किया जाये और कोयला और धातुओं की खुदाई का काम बढ़ाया जाये। सोवियत संघ में समाजवाद की जीत के लिये, यह बहुत ही ज़रूरी था।

यह ज़रूरी था कि गोला–बारूद का सामान तैयार करने वाले नये उद्योग–धंधे बनाये जायें; तोपें, गोले, हवाई जहाज, टैंक और मशीनगन बनाने के लिये नये कारखाने खड़े किये जायें। पूंजीवादी संसार से घिरे हुए, सोवियत संघ की रक्षा के लिये बहुत ही ज़रूरी था।

आधुनिक खेती की मशीनें बनाने के लिये, ट्रैक्टर के कल–कारखाने खड़े करना ज़रूरी था। खेती को ये मशीनें देना जरूरी था, जिससे कि लाखों छोटे–छोटे अलग–थलग किसान बड़े पैमाने की पंचायती खेती की मंजिल में प्रवेश कर सकें। देहातों में समाजवाद की विजय के लिये, यह एकदम ज़रूरी था।

यह सब औद्योगीकरण की नीति से होनेवाला था, क्योंकि देश के समाजवादी औद्योगीकरण का मतलब ही यह था।

ज़ाहिर है कि इतने बड़े पैमाने के निर्माण–कार्य के लिये, करोड़ों रूबल की पूंजी दरकार होगी। दूसरे देशों से उधार लेने की बात ही बेकार थी, क्योंकि पूंजीवादी देशों

ने उधार देने से इन्कार कर दिया था। हमें अपने ही साधनों से, बिना बाहरी सहायता के निर्माण करना था। लेकिन, उस समय हमारा देश गरीब था।

हमारी एक मुख्य कठिनाई यही थी।

आम तौर से, पूंजीवादी देश अपने भारी उद्योग–धंधे विदेश से पाये हुए धन से निर्मित करते हैं। यह धन या तो उपनिवेशों की लूट से मिलता है, या हरायी हुई जातियों से हर्जाना वसूल कर, या दूसरे देशों से उधार लेकर इकट्ठा किया जाता है। सोवियत संघ धन इकट्ठा करने के लिये उसूलन ऐसे नीच उपायों से काम न ले सकता था, जैसे कि उपनिवेशों या हरायी हुई जातियों की लूट। जहाँ तक बाहर से उधार लेने का सम्बन्ध था, सोवियत संघ के लिये वह रास्ता भी बन्द था, क्योंकि पूंजीवादी देश उसे कुछ भी देने से इन्कार कर रहे थे। पैसा देश के **भीतर ही** इकट्ठा करना था।

और, पैसा इकट्ठा हुआ। सोवियत संघ में धन के ऐसे साधन टटोले गये जैसे किसी भी पूंजीवादी देश में न किये जा सकते थे। सोवियत राज्य ने उन तमाम मिलों, कारखानों और ज़मीनों को ले लिया था जिन्हें अक्तूबर की समाजवादी क्रान्ति ने पूंजीपतियों और ज़मींदारों से छीना था। सोवियत राज्य के हाथ में यातायात के सभी साधन, बैंक और देशी और विदेशी व्यापार था। राज्य की मिलों और कारखानों, यातायात के साधनों, व्यापार और बैंकों से जो मुनाफ़ा होता था, वह कामचोर पूंजीवादी वर्ग की जेब में न जाता था, बल्कि अब उद्योग–धंधों के विस्तार को बढ़ाने के लिये लगाया गया।

सोवियत सरकार ने ज़ार का वह क़र्ज रद्द कर दिया था जिसे भरने में जनता सिर्फ़ सूद के रूप में सोने के करोड़ों रूबल देती थी। ज़मीन पर ज़मींदारों की मिल्कियत खत्म करके, सोवियत सरकार ने किसानों को लगान के रूप में सोने के लगभग 50 करोड़ रूबल के सालाना भुगतान से मुक्त कर दिया था। इस बोझ से मुक्त होकर, किसान इस हालत में थे कि नये और शक्तिशाली उद्योग–धंधे बनाने में राज्य की सहायता करें। किसानों को ट्रैक्टर और खेती की दूसरी मशीनें हासिल करने में गहरी दिलचस्पी थी।

आमदनी के ये सभी साधन सोवियत राज्य के हाथ में थे। भारी उद्योग–धंधों के निर्माण के लिये, उनसे करोड़ों रूबल मिल सकते थे। ज़रूरत सिर्फ़ इस बात की थी कि सीधे–सीधे काम काजी रुख अपनाया जाये, धन की एकदम किफ़ायत के साथ खर्च किया जाये, उद्योग–धंधों को चलाने में धन और शक्ति की बचत हो, पैदावार के खर्च में कमी हो, जिस खर्च से पैदावार न हो उसे बन्द कर दिया जाये, वग़ैरह।

और, सोवियत सरकार ने यही रास्ता अपनाया।

सख़्त किफ़ायतसारी की व्यवस्था होने से, भारी औद्योगीक विकास के लिये आवश्यक रक़म हर साल बढ़ती गयी। इसी से, यह मुमकिन हुआ कि ऐसे विराट निर्माण–कार्यों में हाथ लगाया जाये जैसे द्नीपर पन–बिजली का स्टेशन, तुर्किस्तान–साइबेरिया रेलवे, स्तालिनग्राद का ट्रैक्टर का कारखाना, मशीनें बनाने वाले कई कारखाने, आमो (ज़िस) मोटर बनाने का कारखाना, वग़ैरह।

1926–27 में, लगभग 1 अरब रूबल उद्योग–धंधों में लगाये गये थे लेकिन तीन साल बाद, पाँच अरब लगाना संभव हुआ।

औद्योगीकरण बराबर प्रगति करता जा रहा था।

पूंजीवादी देश सोवियत संघ में समाजवादी आर्थिक व्यवस्था की बढ़ती हुई आर्थिक शक्ति को पूंजीवादी व्यवस्था की हस्ती के लिये एक संकट ही समझते थे। इसलिये, जहां तक उनसे हो सका, साम्राज्यवादियों ने सोवियत संघ पर नया दवाब डालने की कोशिश की, देश में दुविधा और बेचैनी का भाव फैलाने की कोशिश की और सोवियत संघ में औद्योगीकरण को असफल करने या कम से कम उसमें अड़चनें डालने की कोशिश की।

मई 1927 में, ब्रिटिश कंज़रवेटिव कट्टरपंथियों ने, जिनकी उस समय सरकार थी, आर्कोस (ब्रिटेन–स्थित सोवियत व्यापारी संस्था) पर एक उकसावा पैदा करने वाला हमला संगठित किया। 26 मई 1927 को, अंग्रेजों की कंजरवेटिव सरकार ने सोवियत संघ से कूटनीतिक और व्यापारिक सम्बन्ध विच्छेद कर लिया।

7 जून 1927 को, एक रूसी ग़द्दार ने जो पोलैण्ड का नागरिक बन गया था, वारसा–स्थित सोवियत राजदूत कॉमरेड वोईकोव की हत्या कर डाली।

इसी समय, खुद सोवियत संघ के अन्दर अंग्रेज जासूसों और तोड़–फोड़ करनेवालों ने लेनिनग्राद में एक पार्टी क्लब की बैठक में बम फेंके, जिससे तीस आदमी घायल हुए, जिनमें से कुछ के घाव चिंताजनक थे।

1927 की गर्मियों में, लगभग एक ही साथ बर्लिन, पेकिंग, शंघाई और टीन्सटिन के सोवियत दूतावासों और व्यापार प्रतितिधि–मण्डलों पर हमले किये गये।

इससे सोवियत सत्ता के लिये और भी कठिनाइयाँ पैदा हो गईं। लेकिन, सोवियत संघ ने इन धमकियों में आने से इन्कार कर दिया और साम्राज्यवादियों और उनके दलालों की भड़काने वाली कोशिशों को आसानी से काट दिया।

पार्टी और सोवियत राज्य के लिये त्रात्स्कीपंथियों और दूसरे विरोधियों की तोड़–फोड़ की कार्यवाही से भी कम कठिनाइयाँ पैदा न हुईं। कॉमरेड स्तालिन ने ठीक ही कहा था कि सोवियत सत्ता के ख़िलाफ "चेम्बरलेन से लेकर, त्रात्स्की तक एक संयुक्त मोर्चो सा बनाया जा रहा है।" चौदहवीं पार्टी कांग्रेस के फ़ैसलों के बावजूद और पार्टी के प्रति वफ़ादारी की क़समें खाने के बावजूद, विरोधियों ने अभी हथियार न डाले थे। उल्टे, उन्होंने पार्टी को कमज़ोर बनाने और तोड़ने के लिये और भी ज़ोरशोर से कोशिशें आरम्भ कीं।

1926 की गर्मियों में, त्रात्स्कीवादियों और ज़िनोवियेवपंथियों ने एक पार्टी–विरोधी गुट बनाने के लिए एका किया। उन्होंने इसे हारे हुए विरोधी दलों के बचे–खुचे लोगों को समेटने के लिये एक केन्द्र बनाया। उन्होंने अपनी गुप्त लेनिनवाद–विरोधी पार्टी बनाने के लिये नींव डाली। इस तरह, उन्होंने गुटबाजी के खिलाफ़ पार्टी कांग्रेसों के फ़ैसलों और पार्टी नियमावली को बुरी तरह तोड़ा। पार्टी की केन्द्रीय समिति ने चेतावनी दी कि अगर यह पार्टी–विरोधी गुट – जो बदनाम मेन्शेविक अगस्त–गुट से मिलता–जुलता है – न तोड़ा गया, तो उसके अनुयायियों के लिये बुरा होगा। लेकिन, गुट के **समर्थकों** ने अपना हाथ न रोका।

उसी साल की शरद में, पन्द्रहवीं पार्टी कान्फ्रेंस शुरू होने से पहले, उन्होंने इस कोशिश में मास्को, लेनिनग्राद और दूसरे शहरों के कारखानों की पार्टी मीटिंगों पर फिर धावा बोला कि पार्टी एक नयी बहस के लिये मज़बूर किया जाये। जिस नीति को लेकर वे पार्टी सदस्यों में बहस चलाना चाहते थे, वह वही त्रात्स्कीवादी–मेन्शेविक, लेनिनवाद–विरोधी पुरानी नीति का पैबन्द लगाया हुआ रूप था। पार्टी सदस्यों ने विरोधियों को मुंहतोड़ जवाब दिया और कई जगह तो उन्हें मीटिंगों से बाहर निकाल दिया। केन्द्रीय समिति ने गुट के समर्थकों को फिर चेतावनी दी और कहा कि पार्टी उनकी तोड़–फोड़ की कार्यवाही को और ज्यादा बर्दाश्त नहीं कर सकती।

तब विरोधियों ने त्रात्स्की, ज़िनोवियेव, कामेनेव और सोकोल्निकोव के दस्तख़तों से एक बयान केन्द्रीय समिति को दिया, जिसमें अपनी गुटबन्दी की निन्दा की और आगे वफ़ादार रहने का वायदा किया। फिर भी, गुट बना ही रहा और उसके समर्थक पार्टी के खिलाफ़ गुपचुप काम करने से बाज़ न आये। वे अपनी लेनिनवाद–विरोधी पार्टी जोड़ते–बटोरते रहे, अपना ग़ैर कानूनी छापाखाना शुरू कर दिया, अपने समर्थकों से सदस्यता की फीस इकट्ठी करने लगे और अपनी नीति का दस्तावेज़ घुमाने लगे।

त्रात्स्कीवादियों और ज़िनोवियेवपंथियों का यह व्यवहार देखकर, पन्द्रहवीं पार्टी कान्फ्रेंस (नम्बर 1926) और कम्युनिस्ट इन्टरनेशलन की कार्यकारिणी समिति के

विस्तृत अधिवेशन (दिसम्बर 1926) ने त्रात्स्कीवादियों और ज़िनोवियेवपंथियों के गुट के सवाल पर विचार किया और इसके अनुयायियों को फूट डालनेवाला कहकर, जिनकी नीति ठेठ मेन्शेविज्म थी, उनकी निन्दा की।

लेकिन, इससे भी उनके होश ठिकाने न आये। 1927 में, ठीक उन्हीं दिनों जबकि ब्रिटिश कंजरवेटिवों ने सोवियत संघ से व्यापारिक और कूटनीतिक सम्बन्ध विच्छेद किया था, गुट ने और भी जोश से पार्टी पर हमला किया। उसने एक नया लेनिनवाद–विरोधी मंच बनाया, तथाकथित 'तेरासी का मंच' और पार्टी सदस्यों में यह दस्तावेज घुमाना शुरू किया। और साथ ही, उसने यह माँग की कि केन्द्रीय समिति एक नयी आम पार्टी बहस शुरू करे।

यह दस्तावेज़ विरोधियों में शायद सबसे झूठा और मक्कारी से भरा हुआ था।

त्रात्स्कीवादियों और ज़िनोवियेवपंथियों ने अपने दस्तावेज़ में कहा कि उन्हें पार्टी के फ़ैसले मानने से कोई ऐतराज़ नहीं है और वे सब वफ़ादारी के पक्ष में हैं। लेकिन वास्तव में, वे पार्टी फ़ैसलों को बुरी तरह तोड़ते थे और पार्टी के प्रति और उसकी केन्द्रीय समिति के प्रति वफ़ादारी के विचार का ही मखौल उड़ाते थे।

उन्होंने अपने दस्तावेज़ में कहा था कि पार्टी एकता से उन्हें कोई ऐतराज नही है और वे फूट के खिलाफ़ हैं : लेकिन वास्तव में, वे बुरी तरह पार्टी एकता तोड़ते थे, फूट के लिये काम करते थे और अभी भी उनकी अपनी ग़ैरकानूनी लेनिनवाद–विरोधी पार्टी थी, जिसके सभी लक्षण एक सोवियत–विरोधी, क्रान्ति–विरोधी पार्टी के थे।

उन्होंने अपने दस्तावेज़ में कहा था कि वे सब औद्योगीकरण की नीति के पक्ष में है और वे केन्द्रीय समिति पर यह दोष तक लगाते थे कि वह काफ़ी तेजी से औद्योगीकरण नहीं कर रही। लेकिन वास्तव में, सोवियत संघ में समाजवाद की विजय पर पार्टी के प्रस्ताव की नुक्ताचीनी करने के अलावा वे कुछ न करते थे। वे समाजवादी औद्योगीकरण की नीति का मखौल उड़ाते थे। वे माँग करते थे कि कई मिलें और कारखाने विदेशियों को रियायत के रूप मे सौंप दिये जायें। उन्होंने अपनी सबसे बड़ी उम्मीदें सोवियत संघ में विदेशी पूंजीपतियों के लिये रियायतों से बाँध रखी थीं।

उन्होंने अपने दस्तावेज़ में कहा था कि वे सब पंचायती खेती के आन्दोलन के पक्ष में हैं, और वे केन्द्रीय समिति पर इसका दोष तक लगाते थे कि वह पंचायतीकरण में काफ़ी जल्दी नहीं कर रही है। लेकिन वास्तव में, वे किसानों को समाजवादी निर्माण में लगाने की नीति का मखौल उड़ाते थे। वे इस धारणा का प्रचार करते थे कि मज़दूर

वर्ग और किसानों के बीच 'न सुलझनेवाले झगड़े' अनिवार्य हैं। उन्होंने अपनी उम्मीदें देहातों के 'सुसंस्कृत पट्टेदारों,' दूसरे शब्दों में कुलकों, पर बाँध रखीं थीं।

विरोधियों के सभी दस्तावेजों में, यह सबसे झूठा था।

उसका उद्देश्य पार्टी को धोखा देना था।

केन्द्रीय समिति ने तुरंत ही आम बहस शुरू करने से इन्कार कर दिया उसने विरोधियों को सूचना दे दी कि आम बहस पार्टी नियमावली के अनुसार हो, यानी पार्टी कांग्रेस के दो महीने पहले ही शुरू हो सकती है।

अक्तूबर 1927 में, यानी पन्द्रहवीं कांग्रेस से दो महीने पहले, पार्टी की केन्द्रीय समिति ने आम पार्टी बहस का ऐलान किया और लड़ाई शुरू हो गयी। त्रात्स्कीवादियों और ज़िनोवियेवपंथियों के गुट के लिये उसका नतीज़ा सचमुच ही शोचनीय हुआ। 7,24,000 पार्टी सदस्यों ने केन्द्रीय समिति की नीति के लिये वोट दिया। चार हजार या एक फ़ीसदी से भी कम ने त्रात्स्कीवादियों और ज़िनोवियेवपंथियों के गुट के लिये वोट दिया। पार्टी–विरोधी गुट पूरी तरह पछाड़ दिया गया। पार्टी सदस्यों के भारी बहुमत ने एक राय से गुट की नीति के ठुकरा दिया।

पार्टी की बहुत साफ़–साफ़ ज़ाहिर होनेवाली इच्छा यही थी, जिस पार्टी के फ़ैसले के लिये खुद विरोधियों ने अपील की थी।

लेकिन, गुट के समर्थकों ने इससे भी सबक न सीखा। पार्टी की इच्छा मानने के बदले, उन्होंने उसे विफल करने का फैसला किया। बहस खत्म होने के पहले ही, यह देखकर कि उनकी कैसी बुरी हार होने वाली है, उन्होंने पार्टी और सोवियत सरकार के खिलाफ़ संघर्ष के और भी तेज़ रूपों से काम लेने का फ़ैसला किया। उन्होंने तय किया कि मास्को और लेनिनग्राद में खुला विरोध–प्रदर्शन किया जाये। प्रदर्शन के लिये उन्होंने 7 नवम्बर का दिन चुना, अक्तूबर क्रान्ति की वर्षी का दिन चुना, जिस दिन सोवियत संघ की मेहनतकश जनता हर साल देश भर में क्रान्तिकारी प्रर्दशन करती है। इस तरह, त्रात्स्कीवादियों और ज़िनोवियेवपंथियों ने उसी के बराबर प्रर्दशन करने की योजना बनाई। जैसी कि उम्मीद की जा सकती थी, गुट के समर्थक सिर्फ़ मुट्ठीभर अपने पिछलगुओं को सड़कों पर ला सके। ये पिछलगुए और उनके संरक्षक आम प्रर्दशन में बह गये और सड़कों में खो गये।

अब इसमें कोई भी शक न रहा कि त्रात्स्कीवादी और ज़िनोवियेव पंथी निश्चित रूप से सोवियत–विरोधी हो गये हैं। आम पार्टी बहस के दौर में, उन्होंने केन्द्रीय समिति

के खिलाफ़ पार्टी से अपील की थी। अब इस टुटपुंजिया प्रदर्शन के दौर में, पार्टी और सोवियत राज्य के खिलाफ़ उन्होंने विरोधी वर्गों से अपील करने का रास्ता अपनाया। जब एक बार उन्होंने तय कर लिया था कि बोल्शेविक पार्टी की जड़ काटनी है, तब उन्हें सोवियत राज्य की जड़ काटने की हद तक बढ़ना ही था, क्योंकि सोवियत संघ में बोल्शेविक पार्टी और राज्य दोनों अभिन्न हैं। ऐसी हालत में, त्रात्स्कीवादियों और ज़िनोवियेवपंथियों के गुट के नेताओं ने अपने को पार्टी से फ़रार कर लिया था, क्योंकि जो आदमी सोवियत–विरोधी कार्यवाही की हद तक उतर चुके थे, वे अब बोल्शेविक पार्टी की पांति में बर्दाश्त न किये जा सकते थे।

14 नवम्बर 1927 को, केन्द्रीय समिति और केन्द्रीय कन्ट्रोल–कमीशन की संयुक्त बैठक ने त्रात्स्की और ज़िनोवियेव को पार्टी से निकाल दिया।

2. समाजवादी औद्योगीकरण की प्रगति। खेती का पिछड़ना। पन्द्रहवीं पार्टी कांग्रेस। खेती में पंचायतीकरण की नीति। त्रात्स्कीवादियों और ज़िनोवियेवपंथियों के गुट की हार। राजनीतिक दुरंगापन।

1927 के आख़िर तक, इसमें शक न रह गया था कि समाजवादी औद्योगीकरण की नीति को निर्णायक सफलता मिली है। नयी आर्थिक नीति के दौर में, थोड़े ही दिनों में औद्योगीकरण ने काफ़ी प्रगति की थी। उद्योग–धंधों और खेती की कुल उपज (जिसमें लकड़ी और मछलियों के धंधे भी शामिल थे) युद्ध के पूर्व की सतह तक पहुंच गयी थी, और उससे आगे भी बढ़ गयी थी। औद्योगीक उपज देश की कुल उपज का 42 फ़ीसदी भाग बन चुकी थी, जो युद्ध से पहले का अनुपात था।

उद्योग–धंधों का समाजवादी क्षेत्र तेज़ी से बढ़ रहा था और व्यक्तिगत पूंजी का क्षेत्र घट रहा था। समाजवादी क्षेत्र की उपज 1924–'25 में कुल उपज के 81 फ़ीसदी भाग से, 1926–'27 में 86 फ़ीसदी तक पहुँच गयी। इसी बीच, व्यक्तिगत पूंजी के क्षेत्र की उपज 19 फ़ीसदी से घटकर 14 फ़ीसदी तक रह गयी थी।

इसका मतलब यह था कि सोवियत संघ में औद्योगीकरण का समाजवादी रूप उभर आया था, उद्योग–धंधों का विकास पैदावार की समाजवादी व्यवस्था की जीत की तरफ़ हो रहा था; और उद्योग–धंधों के बारे में यह सवाल कि 'जीत किसकी होगी?' समाजवाद के पक्ष में हल हो चुका था।

व्यापार–क्षेत्र में, व्यक्तिगत सौदागर को भी कम तेज़ी से नहीं हटाया गया। खुदरा बाज़ार में उसका हिस्सा 1924–'25 में 42 फ़ीसदी से गिरकर, 1926–'27 में 32 फ़ीसदी तक आ गया था। थोक बाज़ार का ज़िक्र ही क्या, जहां व्यक्तिगत सौदागर का हिस्सा इसी बीच 9 फ़ीसदी से गिरकर 5 फ़ीसदी रह गया था।

बड़े पैमाने के समाजवादी उद्योग–धंधों की बढ़ती इससे भी तेज़ रफ्तार से हुई। 1927 में, पुनर्संगठन के दौर के बाद के पहले साल में, इनकी उपज पहले साल से 18 फ़ीसदी बढ़ गयी। बढ़ती का यह एक रिकार्ड था, जो सबसे आगे बढ़े हुए पूंजीवादी देशों के लिए भारी उद्योग–धंधों की पहुंच से बाहर था।

लेकिन खेती में, ख़ास तौर से ग़ल्ला पैदा करने में, हालत दूसरी थी। हालांकि कुल मिलाकर खेती युद्ध के पूर्व की सतह से आगे बढ़ गयी थी, लेकिन उसकी सबसे महत्वपूर्ण शाखा – अनाज पैदा करने की शाखा – की कुल उपज युद्ध–पूर्व की 91 फ़ीसदी ही थी, जबकि फ़सल का बाज़ार में बेचा जाने वाला हिस्सा, यानी वह अनाज जो शहरों की खपत के लिये बेचा जाता था, मुश्किल से युद्ध–पूर्व के आंकडों का 37 फ़ीसदी हो पाया था। और भी, सभी लक्षण यह बता रहे थे कि बाज़ार के लिये अनाज की तादाद में और भी कमी होने का ख़तरा है।

इसका मतलब यह था कि बड़े खेत, जो बाज़ार के लिये अन्न पैदा करते थे, उनका टूट कर छोटे खेत बनना और छोटे खेतों का और भी छोटे टुकड़ों में बंटना, यह सिलसिला जो 1918 में शुरू हुआ था, अब भी चालू था। ये छोटे खेत और टुकड़े अमल में आर्थिक व्यवस्था के कुदरती रूप की तरफ़ लौट रहे थे और अनाज़ की नगण्य तादाद ही बाज़ार के लिये भेज सकते थे। 1927 के दौर में, हालांकि अनाज की फ़सल युद्ध के पूर्व के दौर से कुछ ही कम थीं, लेकिन शहरों को भेजने के लिये बाज़ार में आनेवाला अतिरिक्त अनाज युद्ध–पूर्व के बाज़ार में भेजे जाने वाले फ़ालतू अनाज के एक–तिहाई से कुछ ही ज्यादा था।

इसमें कोई सन्देह न था कि यदि अनाज की खेती की यही दशा रही तो फ़ौज और शहर के लोगों को हमेशा ही अकाल का सामना करना पड़ेगा।

यह अनाज की खेती का संकट था, जिसके बाद पशु–पालन का संकट पैदा होना ज़रूरी था।

इस कठिनाई से बचने का एक ही तरीका था कि बड़े पैमाने की खेती की जायें, जिसमें ट्रैक्टरों और खेती की मशीनों से काम लिया जा सके और बाजार के लिये भेजे जाने योग्य अतिरिक्त अनाज कई गुना बढ़ सके। देश के सामने दो रास्ते : या तो बड़े

पैमाने की पूंजीवादी खेती करे, जिससे किसान–जनता तबाह हो जाती, मजदूर और किसानों का सहयोग टूट जाता, कुलक–शक्ति बढ़ जाती और देहातों में समाजवाद का पतन हो जाता; या फिर छोटे–छोटे खेतों को बड़े समाजवादी खेतों, पंचायती खेतों में मिला लिया जाता, जिसे अनाज की खेती को तेजी से बढ़ाने के लिये और बाज़ार के लिये अतिरिक्त अनाज की तादाद में तुंरत वृद्धि करने के लिये ट्रैक्टर और दूसरी आधुनिक मशीनें काम में लाई जा सकतीं।

स्पष्ट है कि बोल्शेविक पार्टी और सोवियत राज्य दूसरी राह पर ही, खेती को बढ़ाने की पंचायती राह पर ही चल सकते थे।

इस मामले में, पार्टी का निर्देश लेनिन की यह सीख करती थी, जो उन्होंने छोटे पैमाने की खेती से बड़े पैमाने की सहकारी,पंचायती खेती की तरफ़ बढ़ने की ज़रूरत के बारे में दी थी :

(क) "छोटे खेतों के लिये ग़रीबी से बचने का कोई भी रास्ता नहीं है।" (***लेनिन ग्रंथावली,*** रू•सं• खं• 24, पृष्ठ 540)।

(ख) "अगर हम स्वाधीन भूमि पर स्वाधीन नागरिकों की तरह भी पुराने ढंग से अपने छोटे खेतों पर किसानी करते रहें, तो भी तबाही लाज़िमी होगी।" (**लेनिन ग्रंथावली,** रू•सं•, खं• 20, पृ• 417)।

(ग) "अगर किसानों की खेती को आगे बढ़ाना है, तो हमें दूसरी मंज़िल की तरफ़ उसकी बढ़ती को भी पक्का कर लेना चाहिये। लाज़िमी तौर से, यह दूसरी मंज़िल ऐसी होगी जिसमें छोटे, अलग–थलग खेत, सबसे कम लाभदायी और सबसे पिछड़े हुए खेत धीरे–धीरे घुलमिल कर बड़े पैमाने के पंचायती खेत बन जायेंगे।" (***लेनिन ग्रंथावली,*** रू•सं•, खं• 26, पृ• 299)।

(घ) "अगर हम अमल में किसानों को समझा सकें कि जमींन को मिलजुलकर पंचायती, सहकारी संघ के तरीके से जोतने–बोने में क्या फ़ायदा है अगर हम सहकारी या संघ की खेती के ज़रिये किसानों की मदद कर सकें, तो मज़दूर वर्ग, जिसके हाथ में राज्य–सत्ता है, सचमुच किसानों को समझा सकेगा कि उसकी नीति सही है और लाखों किसानों का सच्चा और पक्का समर्थन पा सकेगा।" (***लेनिन, सं•ग्रं•,*** **अं•सं•, मास्को,** 1947, खं• 2, पृ• 539)।

पन्द्रहवीं पार्टी कांग्रेस से पहले हालत यही थी।

2 दिसम्बर 1927 को, पन्द्रहवीं पार्टी कांग्रेस शुरू हुई। इसमें 8,87,233 पार्टी सदस्यों और 3,48,957,उम्मीदवार सदस्यों की तरफ़ से, 898 प्रतिनिधि वोट देनेवाले और 771 प्रतिनिधि बोलने वाले लेकिन वोट न दे सकने वाले शामिल हुए।

केन्द्रीय समिति की तरफ़ से अपनी रिर्पोट में, कॉमरेड स्तालिन ने औद्योगीकरण की सफलताओं और समाजवादी उद्योग–धंधों के तेज़ी से बढ़ने का हवाला दिया और पार्टी के सामने यह काम रखा :

> "शहरों और देहातों की सभी आर्थिक शाखाओं में अपनी समाजवादी अहम स्थिति को दृढ़ करना और राष्ट्रीय अर्थतंत्र से पूंजीवादी तत्वों को निकालने के रास्ते पर चलना।"

उद्योग–धंधों से खेती की तुलना करते हुए और खेती के, खास तौर से अनाज की पैदावार के पिछड़ेपन का ज़िक्र करते हुए, कॉमरेड स्तालिन ने ज़ोर दिया कि खेती की इस दुर्दशा से तमाम राष्ट्रीय अर्थतंत्र खतरे में पड़ रहा था। खेती की यह दशा इसलिए थी कि खेत अलग–थलग थे और उनमें आधुनिक मशीनें इस्तेमाल न की जा सकती थीं।

> कॉमरेड स्तालिन ने पूछा : "इससे निकलने का रास्ता क्या है?" उन्होंने कहा : "निकलने का रास्ता यही है कि बिखरे हुए, छोटे खेतों को बड़े संयुक्त खेत बनाया जाये, जिनका आधार मिली–जुली खेती हो; नये और ज्यादा ऊँचे कौशल के आधार पर जमीन की पंचायती खेती शुरू की जाये। निकलने का रास्ता यही है कि छोटे–छोटे और टुकड़ों जैसे खेतों को धीरे–धीरे, लेकिन निश्चित रूप से, दबाव से नहीं, लेकिन मिसाल से और समझा–बुझाकर, बड़े खेतों में मिलाया जाये। इनका आधार खेती की मशीनों और ट्रैक्टरों से और घनी खेती करने के वैज्ञानिक तरीकों से मिली–जुली सहकारी, पंचायती खेती हो। निकलने का और कोई रास्ता नहीं है।"

पन्द्रहवीं कांग्रेस ने खेती के ***पंचायतीकरण*** को ज्यादा से ज्यादा बढ़ाने का बुलावा देते हुए प्रस्ताव पास किया। कांग्रेस ने पंचायती खेतों और सरकारी खेतों का विस्तार करने और उन्हें मज़बूत करने की एक योजना स्वीकार की। खेती के पंचायतीकरण के संघर्ष में किन तरीकों से काम लिया जायेगा, इसके बारे में कांग्रेस ने स्पष्ट निर्देश किये।

इसके साथ ही, कांग्रेस ने यह भी निर्देश किया :

> "कुलक–विरोधी हमले को आगे बढ़ाया जाये और कई ऐसे नये उपाय किये

जायें जिनसे देहातों में पूंजीवाद के विकास पर रोक लगे और छोटी किसानी करनेवालों को समाजवाद की तरफ़ बढ़ाया जा सके।" *(सो•सं•क•पा•(बो) के प्रस्ताव,* रू•सं•, खं• 2, पृ• 260)।

अंत में, यह देखते हुए कि आर्थिक नियोजन की जड़ जम चुकी है और इस उद्देश्य से कि सारे आर्थिक मोर्चे पर पूंजीवादी तत्वों के खिलाफ समाजवाद का बाक़ायदा हमला संगठित करना है, कांग्रेस ने उपयुक्त संस्थाओं को आज्ञा दी कि राष्ट्रीय अर्थतंत्र के विकास के लिये ***पहली पंचवर्षीय योजना*** बनायी जाये।

समाजवादी निर्माण की समस्याओं पर फ़ैसले लेने के बाद, कांग्रेस ने त्रात्स्कीवादियों और ज़िनोवियेवपंथियों के गुट को खत्म करने के सवाल पर बहस करनी शुरू की।

कांग्रेस इस नतीजे पर पहुंची कि "विचारधारा में, विरोधी लेनिनवाद से नाता तोड़ चुके हैं। वे पतित होकर एक मेन्शेविक गुट बन गये हैं। उन्होंने देशीय और अंतर्राष्ट्रीय पूंजीपतियों की शक्ति के सामने घुटने टेकने का रास्ता अपना लिया है और वे वस्तुगत रूप से सर्वहारा डिक्टेटरशिप की व्यवस्था के खिलाफ़ क्रान्ति–विरोध का हथियार बन चुके हैं।" *(सो•सं•क•पा•(बो•) के प्रस्ताव,* रू•सं•, खं• 2, पृ• 232)।

कांग्रेस ने देखा कि पार्टी और विरोधी दल के भेद कार्यक्रम के भेद बन गये हैं और त्रात्स्की के विरोधी दल ने सोवियत सत्ता के खिलाफ़ संघर्ष का रास्ता अपनाया है। इसलिये, कांग्रेस ने घोषित किया कि त्रात्स्की के विरोधी दल का साथ देना और उसके मत का प्रचार करना बोल्शेविक पार्टी की सदस्यता के साथ नहीं चल सकता।

कांग्रेस ने केन्द्रीय समिति और केन्द्रीय कंट्रोल–कमीशन की संयुक्त बैठक द्वारा, त्रात्स्की और ज़िनोवियेव को पार्टी से निकालने के बारे में प्रस्ताव को अनुमोदन किया। कांग्रेस ने फ़ैसला किया कि त्रात्स्कीवादियों और ज़िनोवियेवपंथियों के गुट के सभी सक्रिय सदस्यों को निकाल दिया जाये, जैसे कि रादेक, प्रेयोब्रजेन्स्की, रकोव्स्की, प्याताकोव, सेरेब्रियाकोव, ई• स्मिरनोव, कामेनेव, सारकिस, साफ़ारोव, लिफ़शित्स, म्दीवानी, स्मिल्गा और पूरा 'जनवादी केन्द्रवादी गुट' (साप्रोनोव, व• स्मिरनोव बोगुस्लाव्स्की, द्रोबनिस इत्यादि)।

सैद्धान्तिक रूप से हार कर और संगठनात्मक रूप से खदेड़े जाकर, त्रात्स्कीवादियों और ज़िनोवियेवपंथियों के गुट के अनुयायियों ने जनता में अपना बचा–खुचा असर भी खो दिया।

पन्द्रहवीं पार्टी कांग्रेस के तुरंत बाद ही, निकाले हुऐ लेनिनवाद–विरोधी लोग बयान दाखिल करने लगे, जिनमें उन्होंने त्रात्स्कीवाद को तिलांजलि देने की बात कही और पार्टी में फिर से लिये जाने की प्रार्थना की। यह सही है कि उस समय पार्टी अभी यह न जान सकी थी कि त्रात्स्की, रकोव्स्की, रादेक, क्रिस्तिान्स्की, सोकोल्निकोव, इत्यादि बहुत दिनों से जनता के दुश्मन हैं, विदेशी जासूस–विभागों के भर्ती किये हुए दलाल हैं, और कामेनेव, जिनोवियेव, प्यापाकोव, वगैरह अभी भी पूंजीवादी देशों के सोवियत–शत्रुओं से सम्बन्ध स्थापित कर रहे हैं, जिससे कि सोवियत जनता के खिलाफ़ वे उनसे 'सहयोग' कायम कर सकें। लेकिन, अनुभव ने पार्टी को सिखा दिया था कि इन लोगों से, जिन्होंने लेनिन और लेनिनवादी पार्टी पर बहुत ही नाजुक मौक़ों पर हमला किया था, हर तरह की बदमाशी की उम्मीद की जा सकती है। इसलिये पार्टी में फिर से दाखिल होने के लिये, उन्होंने अपनी अर्जियों में जो बयान दिये थे, पार्टी उन्हें सन्देह की निगाह से देखती थी। उनकी सच्चाई की पहली कसौटी के रूप में, पार्टी में उनको फिर से दाखिल करने के लिये ये शर्तें रखी गयीं :

(क) वे खुल्लमखुल्ला त्रात्स्कीवाद को बोल्शेविक–विरोधी और सोवियत–विरोधी विचारधारा कहकर उसकी निन्दा करें।

(ख) वे खुल्ल्मखुल्ला पार्टी नीति को एकमात्र सही नीति स्वीकार करें

(ग) वे बिना किसी शर्त के पार्टी और उसकी संस्थाओं के फैसलों को मानें।

(घ) वे कुछ समय परीक्षा का बितायें, जिसमें पार्टी उन्हें परखेगी। यह समय खत्म होने पर, परीक्षा–फल के अनुसार, पार्टी हरेक प्रार्थी की भर्ती के सवाल पर अलग–अलग विचार करेगी।

पार्टी का विचार था कि निकाले हुए लोग खुल्लमखुल्ला इन बातों को स्वीकार करेंगे तो इससे पार्टी का भला ही होगा। इससे त्रात्स्कीवादियों, ज़िनोवियेवपंथियों की पांति की एकता टूट जायेगी, उनकी हिम्मत पस्त होगी, सबको मालूम होगा कि पार्टी सही है और समर्थ है और अगर प्रार्थी ईमानदार हुए तो पार्टी अपने भूतपूर्व कार्यकर्त्ताओं को अपनी पांति में ले लेगी। अगर वे ईमानदार न हुए, तो जनता के सामने उनका पर्दाफ़ाश किया जायेगा। सबको मालूम हो जायेगा कि ये कुछ भटके हुए लोग नहीं हैं, बल्कि सिद्धान्तहीन, पैसा–कमाऊ लोग हैं, मजदूर वर्ग को धोखा देने वाले हैं और कभी न सुधरनेवाले दग़ेबाज हैं।

अधिकांश निकाले हुओं ने भर्ती होने की शर्तें मान ली और अख़बारों में इसी आशय के खुले बयान दिये।

उनसे दया का व्यवहार करने के लिये, और फिर पार्टी तथा मज़दूर वर्ग के कार्यकर्त्ता बनने का अवसर उन्हें न देने में अनिच्छुक होकर, पार्टी ने उन्हें फिर अपनी पांति में ले लिया।

लेकिन, वक्त ने दिखा दिया कि कुछ अपवाद छोड़कर त्रात्स्वीवादियों और ज़िनोवियेवपंथियों के 'सरदारों' ने जो ग़लतियाँ मानी थीं, वे आदि से अंत तक झूठी और धूर्ततापूर्ण थीं।

आगे चलकर, मालूम हुआ कि अपनी अर्जियाँ देने के पहले ही ये सज्जन किसी रानजीतिक प्रवृति के नुमायन्दे न रह गये थे, जो जनता के सामने अपने मत का समर्थन करने के लिये तैयार रहते। वे पैसा–कमाऊ लोगों का सिद्धान्तहीन गुट बन चुके थे, जो सरेआम अपने ही विचारों के अवशेषों को पैरों तले रौंदने को तैयार थे, सरेआम पार्टी के मत के तारीफ करने के लिये तैयार थे, जो मत उनके लिये गैर था। वे गिरगिट की तरह हर रंग बदलने के लिये तैयार थे, बशर्ते कि वह पार्टी और मज़दूर वर्ग की पांति में बने रह सकें और उन्हें मज़दूर वर्ग तथा उसकी पार्टी का अहित करने का मौका मिल सके।

त्रात्स्वीवादियों और ज़िनोवियेवपंथियों के गुट के 'सरदार' राजनीतिक धोखेबाज, राजनीतिक दग़ेबाज साबित हुए।

राजनीतिक दग़ेबाज आम तौर से धोख़ेबाज़ी से शुरू करते हैं और जनता को, मज़दूर वर्ग को और मज़दूर वर्ग की पार्टी को धोखा देकर अपने नीच उद्देश्य हासिल करने की कोशिश करते हैं। लेकिन, राजनीतिक धोखेबाजों को धोखे की टट्टी भर न समझना चाहिये। राजनीतिक धोखेबाज राजनीतिक कमाऊ–खाऊ लोगों का सिद्धान्तहीन गिरोह होते हैं। जनता का विश्वास कभी का गँवाकर, वे धोखा देकर, गिरगिटों की तरह रंग बदल कर, प्रपंच करके, किसी भी उपाय से, बशर्ते कि उनकी राजनीतिक हस्ती बनी रहे, फिर जनता का विश्वास हासिल करने की कोशिश करते हैं। राजनीतिक दग़ेबाज राजनीतिक कमाऊ–खाऊ लोगों का सिद्धान्तहीन गिरोह होते हैं, जो कहीं भी, जरायमपेशा लोगों में भी, समाज के सबसे पतित लोगों में भी, जनता के कट्टर शत्रुओं में भी, अपने सहायक ढूंढने के लिये तैयार रहते हैं; बशर्ते कि किसी 'शुभ' घड़ी में वे फिर राजनीतिक मंच पर आ कूदें और जनता के 'शासक' बनकर उसकी पीठ पर लद जायें।

त्रात्स्वीवादियों और ज़िनोवियेवपंथियों के गुट के 'सरदार' इसी तरह के राजनीतिक दग़ेबाज थे।

3. कुलक–विरोधी हमला। पार्टी–विरोधी बुखारिन–राइकोव गुट। पहली पंचवर्षीय योजना की स्वीकृति। समाजवादी होड़। आम पंचायती खेती के आन्दोलन की शुरूआत।

एक तरफ तो त्रात्स्वीवादियों और ज़िनोवियेवपंथियों ने पार्टी–नीति के खिलाफ़, समाजवाद के निर्माण के खिलाफ़ और पंचायतीकरण के खिलाफ़ आन्देलन किया। दूसरी तरफ़, बुख़ारिनपंथियों ने प्रचार किया कि पंचायती खेतों से कुछ न बनेगा, कुलकों को अलग छोड़ देना चाहिये क्योंकि खुद 'बढ़ते हुए' वे समाजवाद में आ जायेंगे और पूंजीपतियों का धनी होना समाजवाद के लिये कोई ख़तरा न होगा। इन सब बातों का देश के पूंजीवादी लोगों ने, और सबसे ज्यादा कुलकों ने स्वागत किया। अख़बारों की टीका–टिप्पणी से, कुलक समझ गये कि वे अकेले नहीं हैं, उनके हिमायती और वकील त्रात्स्की, जिनोवियेव, कामेनेव, बुखारिन, राइकोव, वग़ैरह के रूप में मौजूद हैं। यह स्वाभाविक ही था कि सोवियत सरकार की नीति के खिलाफ़ कुलकों की विरोध भावना और दृढ़ हो जाये। और सचमुच, कुलकों का विरोध अधिकाधिक दृढ़ होता गया। उनके पास अतिरिक्त अन्न के काफ़ी गोदाम थे, लेकिन उन्होंने सामूहिक रूप से इन्हें सोवियत सरकार को बेचने से इन्कार कर दिया। पंचायती खेतों के किसानों, पार्टी के कार्यकर्त्ताओं और देहातों के सरकारी कर्मचारियों के खिलाफ़ उन्होंने आंतक शुरू किया और पंचायती खेत और सरकारी खलिहान जला दिये।

पार्टी ने महसूस किया कि जब तक कुलक–विरोध न तोड़ा जायेगा, जब तक तमाम किसानों के देखते हुए वे खुली लड़ाई में हराये न जायेंगे, तब तक मज़दूर वर्ग और लाल फ़ौज को अन्न की कमी बनी रहेगी और पंचायतीकरण का आन्दोलन किसानों में सामूहिक रूप न ले सकेगा।

पन्द्रहवीं पार्टी कांग्रेस के निर्देशों का पालन करते हुए, पार्टी ने जमकर कुलक–विरोधी मुहीम शुरू की। उसने इस नारे को अमली रूप दिया : मज़बूती से ग़रीब किसानों का सहारा लो, मध्यम किसानों से सहयोग मज़बूत करो और कुलकों से जम कर लड़ो। अतिरिक्त अन्न निश्चित भाव से राज्य को बेचने से कुलकों ने जब इन्कार किया, तो पार्टी और सरकार ने कुलकों के खिलाफ़ कई संकटकालीन उपाय करके इसका जवाब दिया। दण्ड–विधान की 107 वीं धारा लागू की गयी, जिससे अदालतें सरकार को निश्चित मूल्य पर अनाज न बेचने पर कुलकों और मुनाफ़ाखोरों का अतिरिक्त अन्न जब्त कर सकती थी। ग़रीब किसानों को कई विशेषाधिकार दिये गये, जिनके अनुसार जब्त किये हुए कुलकों के अनाज का चौथाई हिस्सा उनके काम के लिये दे दिया जाता।

इन संकटकालीन उपायों का फल निकला : गरीब और मध्यम किसान कुलक–विरोधी लड़ाई में जुट गये। कुलक अकेले पड़ गये। मुनाफ़ाखोरों और कुलकों का विरोध तोड़ दिया गया। 1928 के अंत तक ही सोवियत राज्य के पास खरचने के लिये काफ़ी ग़ल्ला इकट्ठा हो गया और पंचायती खेती का आन्दोलन और भी निश्चित डगें भरता हुआ आगे बढ़ चला।

उसी साल, कोयले की खानों वाले दोन्येत्स प्रदेश के शाख्ती जिले में तोड़–फोड़ करने वालों के एक बड़े संगठन का पता लगा। इसमें पूंजीवादी विशेषज्ञ थे। शाख्ती जिले के तोड़–फोड़ करने वाले खानों के भूतपूर्व मालिकों – रूसी और विदेशी पूंजीपतियों – से सांठ–गांठ किये थे, और कई विदेशी सैनिक जासूस–विभागों से उनका सम्बंध था। उनका उद्देश्य था कि समाजवादी उद्योग–धंधों के विकास को अव्यवस्थित कर दिया जाये और सोवियत संघ में पूंजीवाद को बहाल करने में सहायता दी जाये। तोड़–फोड़ करने वालों ने कोयले की पैदावार कम करने के लिये जानबूझ कर खानों की बदइंतज़ामी की थी, मशीने और हवा देने वाले यंत्रों को खराब किया था; खानों, कारखानों और बिजली घरों में आग लगा दी थी। तोड़–फोड़ करने वालों ने जानबूझ कर मज़दूरों की हालत सुधारने में बाधा डाली थी और सोवियत के श्रम–रक्षा कानूनों को तोड़ा था।

तोड़–फोड़ करने वालों पर मुकदमा चला, और उन्हें अपने किये की सज़ा मिली।

पार्टी की केन्द्रीय समिति ने सभी पार्टी–संगठनों को निर्देश किया कि शाख़्ती मुक़दमे से आवश्यक नतीजे निकाले। कॉमरेड स्तालिन ने कहा कि बोल्शेविक प्रबंधकों को खुद पैदावार के कौशल में विशेषज्ञ बनना चाहिये, जिससे कि पुराने पूंजीवादी विशेषज्ञों में से तोड़–फोड़ करनेवालों के झाँसे में वे न आयें, और मज़दूर वर्ग की पांति से आनेवाले कौशल के नये जानकारों की शिक्षा के काम को बढ़ाना चाहिये।

केन्द्रीय समिति के एक फैसले के अनुसार, टेक्नीकल कालेजों में नौजवान विशेषज्ञों की शिक्षा का काम सुधारा गया। हजारों पार्टी सदस्य नौजवान कम्युनिस्ट सभा के सदस्य और मज़दूर वर्ग के पक्ष के प्रति वफ़ादार गैर पार्टी लोग शिक्षा के लिये बटोरे गये।

कुलकों के खिलाफ़ पार्टी का हमला शुरू होने से पहले और जब पार्टी त्रात्स्कीवादियों और ज़िनोवियेवपंथियों के गुट को खत्म करने में लगी हुई थी, बुखारिन–राइकोव गुट बहुत कुछ चुप पड़ा हुआ था। खुल कर त्रात्स्कीवादियों की मदद करने की हिम्मत न कर सकता था, बल्कि अपने को पार्टी–विरोधी शक्तियों का

रिज़र्व बनाये हुए था और कभी–कभी त्रात्स्कीवादियों के खिलाफ़ पार्टी के साथ भी क़दम उठाता था। लेकिन, जब पार्टी ने कुलक–विरोधी मुहीम शुरू की और कुलकों के खिलाफ़ संकटकालीन उपाय किये, तो बुखारिन–राइकोव गुट ने अपनी नक़ाब उतार फेंकी और पार्टी की नीति पर सरेआम हमला करने लगा। बुखारिन–राइकोव गुट की कुलक आत्मा उस पर हावी हो गयी, और वे लोग खुल कर कुलकों की हिमायत करने लगे। उन्होंने मांग की कि संकटकालीन उपाय खत्म कर दिये जायें। उन्होंने सीधे–सादे लोगों को इस तर्क से डराया कि खेती का 'पतन' होने लगेगा और यह दावा तक करने लगे कि यह सिलसिला शुरू भी हो गया है। कृषि–संगठन के बेहतर रूपों, पंचायती खेतों और सरकारी खेतों की बढ़ती की तरफ आंखें बन्द करके और कुलक खेती को घटते देखकर, उन्होंने इस घटती को खेती की ही घटती कहना शुरू कर दिया। अपने दावे को सिद्धान्त का सहारा देने के लिये, उन्होंने बेसिरपैर का 'वर्ग–संघर्ष के मद्धिम पड़ने का सिद्धान्त' भी गढ़ डाला। इस सिद्धान्त के आधार पर, उनका कहना था कि पूंजीवादी तत्वों के खिलाफ़ समाजवाद की हर विजय से वर्ग–संघर्ष मद्धिम पड़ता जायेगा, जल्द ही वर्ग–संघर्ष बिल्कुल ठंडा पड़ जायेगा और वर्ग–शत्रु अपनी तमाम जगहें बिना लड़े ही छोड़ देगा, और इसलिए कुलक–विरोधी मुहीम की ज़रूरत न थी। इस तरह, उन्होंने अपने नंगे–बूचे पूंजीवादी सिद्धान्त को फिर सजाने की कोशिश की कि कुलक शान्तिमय उपायों से आगे बढ़ते हुए समाजवाद में पहुँच जायेंगे। लेनिनवाद की इस सुपरिचित सैद्धान्तिक स्थापना को वे कुचलते गये कि जैसे–जैसे समाजवाद की प्रगति से वर्ग–शत्रु के पैरों के नीचे से ज़मीन खिसकेगी, वैसे–वैसे वर्ग–शत्रु का विरोध और तीव्र रूप धारण करता जायेगा और वर्ग–संघर्ष तभी 'ठडा' पड़ेगा जब वर्ग–शत्रु का नाश कर दिया जायेगा।

यह देखना आसान है कि **बुखारिन–राइकोव** गुट के रूप में पार्टी के सामने एक दक्षिणपंथी अवसरवादियों का गुट था। यह गुट त्रात्स्कीवादियों और ज़िनोवियेवपंथियों के गुट से सिर्फ़ देखने में ही भिन्न था, सिर्फ़ इस बात में भिन्न था कि त्रात्स्कीवादी और ज़िनोवियेवपंथी समर्पणवादियों को 'स्थायी क्रान्ति के बारे में' वामपंथी क्रान्तिकारी लफ्फाजी से अपनी असलियत छिपाने का थोड़ा अवसर मिला था, जबकि बुखारिन–राइकोव गुट जो कुलक–विरोधी मुहीम के लिये पार्टी पर हमला करता था, अपना समर्पणवादी रूप छिपा न सकता था और उसे हमारे देश की प्रतिक्रियावादी शक्तियों, खास तौर से कुलकों की हिमायत खुल कर, बिना नक़ाब या पर्दे के करनी पड़ती थी।

पार्टी समझ गयी कि बुखारिन–राइकोव गुट पार्टी–विरोधी संयुक्त कार्यवाही के लिये त्रात्स्कीवादियों और ज़िनोवियेवंपथियों के गुट के बचे–खुचे लोगों से ज़रूर आगे–पीछे मिल जायेगा।

अपनी राजनीतिक विज्ञप्तियों के साथ–साथ, बुखारिन–राइकोव गुट अपने अनुयायियों को बटोरने और संगठित करने का 'काम करता रहा'। बुखारिन के ज़रिये, उन्होंने नये पूंजीवादी लोगों को इकट्ठा किया, जैसे कि स्लेपकोव, मेरित्स्की, आइखिनवाल्ड, गोल्डनबर्ग; तोम्स्की के ज़रिये, मज़दूर सभाओं के ऊँचे नौकरशाहों को इकट्ठा किया (मेल्नीचान्स्की, दोगादोव, वगैरह); राइकोव के ज़रिये, ऊँचे पस्त सोवियत कर्मचारियों को इकट्ठा किया (अ• स्मिर्नोव, आइसमोन्त, व• श्मित, वग़ैरह)। इस गुट की तरफ़ वे लोग आसानी से खिंच आये जिनका राजनीतिक रूप से पतन हो गया था और जो अपनी समर्पणवादी भावना को छिपाते न थे।

लगभग इसी समय, बुखारिन–राइकोव गुट को मास्को पार्टी–संगठन के ऊँचे कार्यकर्त्ताओं का समर्थन मिल गया था (उगलानोव, कोतोव, ऊखानोव, रियूतिन, यागोदा पलोन्स्की, वगैरह)। दक्षिणपंथियों का एक हिस्सा आड़ में रहा और उसने पार्टी नीति पर खुला हमला न किया। मास्को के पार्टी–प्रेस और पार्टी मीटिंगों में, कहा जाता था कि कुलकों के साथ रियायतें तो करनी ही चाहिये, कुलकों पर भारी टैक्स लगाना उचित नहीं है, औद्योगीकरण जनता के लिये बोझ बन रहा है और भारी उद्योग–धंधों का निर्माण असामयिक है। उगलानोव ने द्नीपर पन–बिजली योजना का विरोध किया और मांग की कि भारी उद्योग–धंधों से पैसा हटा कर हल्के उद्योग–धंधों में लगाया जाये। उगलानोव और दूसरे दक्षिणपंथी समर्पणवादियों का कहना था कि मास्को हल्के उद्योग–धंधों का शहर रहा है और रहेगा, और मास्को में इंजीनियरिंग के कारख़ाने बनाना ज़रूरी नहीं हैं।

मास्को पार्टी–संगठन ने उगलानोव और उसके अनुयायियों का पर्दाफ़ाश किया, उन्हें अंतिम चेतावनी दी और पार्टी की केन्द्रीय समिति के चारों और पहले से भी ज़्यादा निकट खिंच आया। 1928 में, सो•सं•क•पा• (बो•) की मास्को–कमिटी की प्लेनरी बैठक में, कॉमरेड स्तालिन ने कहा कि दो मोर्चों पर लड़ाई चलानी चाहिये और मुख्य वार दक्षिणपंथी भटकाव पर होना चाहिये कॉमरेड स्तालिन ने कहा कि पार्टी के अन्दर दक्षिणपंथी कुलकों के दलाल हैं।

कॉमरेड स्तालिन ने कहा था :

> "हमारी पार्टी में दक्षिणपंथी भटकाव की जीत से पूंजीवाद की शक्तियों को छूट मिलेगी, सर्वहारा की क्रान्तिकारी जगहें कमज़ोर पड़ जायेंगी और हमारे देश में पूंजीवाद को बहाल करने का अवसर बढ़ जायेगा।" (***स्तालिन, लेनिनवाद की समस्यायें,*** अं•सं•, मास्को, 1947, पृ• 233)।

1929 के आरंभ में, पता लगा कि दक्षिणपंथी समर्पणवादियों की आज्ञा से बुख़ारिन ने कामेनेव के ज़रिये त्रात्स्कीवादियों से साठगाँठ की है और पार्टी के खिलाफ़ संयुक्त लड़ाई चलाने के लिये उनसे समझौते की बातचीत कर रहा है। केन्द्रीय समिति ने दक्षिणपंथी समर्पणवादियों की मुज़रिमाना हरकतों का पर्दाफ़ाश किया और उन्हें चेतावनी दी कि बुखारिन, राइकोव, तोम्स्की, वग़ैरह के लिये इसका शोचनीय परिणाम हो सकता है। लेकिन, दक्षिणपंथी समर्पणवादी चेतावनी सुनने के लिये तैयार न थे। केन्द्रीय समिति की एक बैठक में, एक घोषणा के रूप में उन्होंने नयी पार्टी–विरोधी नीति रखी, जिसका केन्द्रीय समिति ने खण्डन किया। उसने उन्हें फिर चेतावनी दी और याद दिलाया कि त्रात्स्कीवादियों और ज़िनोवियेवपंथियों के गुट का हश्र क्या हुआ। इसके बावजूद, बुखारिन–राइकोव गुट अपनी पार्टी–विरोधी कार्यवाही में लगा ही रहा। राइकोव, तोम्स्की और बुखारिन ने केन्द्रीय समिति को अपने इस्तीफ़े दे दिये। उन्हें उम्मीद थी कि वे इस तरह पार्टी को डरा देंगे। केन्द्रीय समिति ने इस्तीफ़े देने की इस तोड़–फोड़ वाली नीति की निन्दा की। अंत में, नवम्बर 1929 में, केन्द्रीय समिति के प्लेनम ने घोषित किया कि दक्षिणपंथी अवसरवादियों के मत के प्रचार के साथ पार्टी सदस्यता नहीं चल सकती। उसने फ़ैसला किया कि दक्षिणपंथी समर्पणवादियों को उकसाने वाले और उनके नेता बुखारिन को केन्द्रीय समिति की पोलिटिकल ब्यूरो से निकाल दिया जाये और उसने राइकोव, तोम्स्की और दक्षिणपंथी विरोधी दल के दूसरे सदस्यों को गंभीर चेतावनी दी।

यह देखकर कि मामला बिगड़ रहा है, दक्षिणपंथी समर्पणवादियों के सरदारों ने एक बयान दिया, जिसमें उन्होंने अपनी भूलें स्वीकार कीं और पार्टी की राजनीतिक नीति को सही माना। दक्षिणपंथी समर्पणवादियों ने तय किया कि कुछ समय के लिये पीछे हटें, जिससे अपनी पांति को टूटकर बिखरने से बचाया जा सके।

दक्षिणपंथी समर्पणवादियों के खिलाफ़ पार्टी की लड़ाई की पहली मंजिल यहां समप्ता हुई।

पार्टी के भीतर के नये मतभेद सोवियत संघ के बाहरी दुश्मनों का ध्यान खींचे बिना न रहे। यह समझ कर कि पार्टी के अन्दर 'नये मतभेद' उसकी कमज़ोरी का चिन्ह हैं, उन्होंने सोवियत संघ को फिर युद्ध में उलझाने की कोशिश की और औद्योगीकरण का काम पूरी तरह चालू हो जाने से पहले ही उसे रोकने की कोशिश की। 1929 की गर्मियों में, साम्राज्यवादियों ने चीन और सोवियत संघ के बीच झगड़ा पैदा करा दिया और चीनी पूर्वी रेलवे पर (जो सोवियत संघ की थी) कब्जा करने के लिये चीन के फ़ौजी सरदारों को भड़काया और हमारे सुदूर पूर्वी सीमान्त पर चीनी ग़द्दारों की फ़ौजों को हमला करने के लिये उकसाया। लेकिन, चीन के फ़ौजी सरदारों

का यह हमला तुरंत ही कुचल दिया गया। लाल फ़ौज से खदेड़े जाकर, फौजी सरदार पीछे हटे और संघर्ष का अंत मंचूरिया के अधिकारियों के साथ शान्ति–संधि पर दस्तख़त करने में हुआ।

सभी अड़चनों के सामने, बाहरी शत्रुओं की साज़िशों और पार्टी के भीतर 'मतभेदों' के बावजूद, सोवियत संघ की शान्ति की नीति फिर विजयी हुई।

इसके बाद शीघ्र ही, ब्रिटेन से सोवियत संघ के व्यापारिक और कूटनीतिक सम्बन्ध फिर क़ायम हो गये, जिन्हें अंग्रेज कंजरवेटिवों ने तोड़ दिया था।

देशी और विदेशी दुश्मनों के हमलों को सफलता से विफ़ल करते हुए, पार्टी भारी उद्योग–धंधों को विकसित करने में, समाजवादी प्रतियोगिता संगठित करने में, सरकारी और पंचायती खेतों के निर्माण में और अंत में राष्ट्रीय अर्थतंत्र के विकास के लिये पहली पंचवर्षीय योजना को मंजूर करने और उसे अमल में लाने ज़मीन तैयार करने में ज़ोरशोर से लगी हुई थी।

अप्रैल 1929 में, पार्टी की सोलहवीं कान्फ्रेंस हुई, जिसमें विचार करने के लिये मुख्य एजेण्डा पहली पंचवर्षीय योजना थी। कान्फ्रेंस ने पहली पंचवर्षीय योजना के दक्षिणपंथी अवसरवादियों द्वारा समर्थित 'अल्पतम' रूप को ठुकरा दिया और 'महत्तम' रूप को मंजूर किया, जिसे हर हालत में मान्य समझा गया।

इस तरह, पार्टी ने समाजवाद के निर्माण के लिये प्रसिद्ध पहली पंचवर्षीय योजना स्वीकार की।

पंचवर्षीय योजना ने तय किया कि 1928–'33 की अवधि में 64 अरब 60 करोड़ रूबल पूंजी राष्ट्रीय अर्थतंत्र में लगायी जाये। इस धन में से, 19 अरब 50 करोड़ रूबल उद्योग–धंधों और बिजली के विकास में लगाने थे, 10 अरब रूबल यातायात के साधनों के विकास में, और 23 अरब 20 करोड़ रूबल खेती के विकास में लगाने थे।

सेवियत संघ के उद्योग–धंधों और खेती को आधुनिक कौशल से लैस करने के लिये, यह एक भगीरथ योजना थी।

कॉमरेड स्तालिन ने कहा था :

"पंचवर्षीय योजना का बुनियादी काम यह है कि हमारे देश में ऐसे उद्योग–धंधों का निर्माण करे जो समाजवाद के आधार पर न सिर्फ़ तमाम उद्योग–धंधों को ही फिर से सुसज्जित और संगठित करें, बल्कि यातायात और खेती को भी

सुसज्जित और पुनर्संगठित करें।" (***स्तालिन, लेनिनवाद की समस्यायें,*** *अं•सं•, मास्को,* 1947 पृष्ठ 317)।

इस योजना की विशालता से बोल्शेविक चकित या विचलित न हुए। औद्योगीकरण और पंचायतीकरण की तमाम प्रगति ने उसके लिये रास्त तैयार किया था, और उससे पहले श्रम सम्बंधी उत्साह की एक लहर आयी थी, जिसने मज़दूरों और किसानों को अपने में समेट लिया था और जो ***समाजवादी होड़*** **के रूप में प्रकट हुई थी।**

सोलहवीं पार्टी कान्फ्रेंस ने तमाम श्रमिक जनता के नाम एक अपील मंजूर की, जिसमें समाजवादी होड़ को और बढ़ाने के लिये बुलावा दिया गया।

समाजवादी होड़ ने आदर्श मेहनत और श्रम की तरफ़ एक नये रुख़ की बहुत सी मिसालें पैदा कीं। बहुत से कारख़ानों, पंचायती खेतों और सरकारी खेतों में मज़दूरों और पंचायती किसानों ने अपनी **प्रतियोजनायें** बनायीं, जिनमें सरकारी योजनाओं में दी हुई पैदावार से ज्यादा पैदावार का लक्ष्य रखा गया। उन्होंने मेहनत में वीरता दिखाई। पार्टी और सरकार ने समाजवादी विकास के लिये जो योजनायें बनायी थीं उनको उन्होंने पूरा ही न किया, बल्कि उनसे आगे भी बढ़ गये। श्रम की तरफ़ रुख बदल गया था। पूंजीवाद में मेहनत बेगार और क़ैद की तरह थी। उसके बदले, अब मेहनत करना "सम्मान की बात थी, गौरव की बात थी, शूरता और वीरता की बात थी"। **(स्तालिन)।**

तमाम देश में एक विराट पैमाने पर नया औद्योगीकरण निर्माण चल रहा था। द्नीपर की पन–बिजली योजना पूरे ज़ोरों पर थी। क्रामातोर्स्क और गोरलोव्का के लोहे और इस्पात के कारख़ानों को बनाने और लुगान्स्क के मोटर के कारख़ानों को फिर से बनाने का काम दोन्–प्रदेश में शुरू हो गया था। कोयले की नयी खानें और नये ढलाईघर बन गये थे। यूराल में, यूराल मशीन बिल्डिग कारखाने ओर बेरेज़िनकी और सोलिकाम्स्क के रसायन के कारखाने बनाये जा रहे थे। मागनितोगोर्स्क की लोहे और इस्पात की मिलों के निर्माण का काम शुरू हो गया था। मास्को और गोर्की में बड़े मोटर के कारख़ाने बनाने का काम अच्छी तरह चालू हो गया था। दोन नदी के तट पर रोस्तोव में विशाल ट्रैक्टर के कारखाने, हारवेस्टर कम्बाइन के कारखाने और खेती की मशीनें बनाने के एक विराट कारखाने के निर्माण का काम भी अच्छी तरह चालू हो गया था। सोवियत संघ को कोयला देने वाली दूसरे नम्बर की कुज्नेत्स्क खानों का भी विस्तार किया जा रहा था। ग्यारह महीनों में ही, स्तालिनग्राद के पास के मैदानों में ट्रैक्टर के विशाल कारखाने खड़े हो गये। द्नीपर पन–बिजली स्टेशन और स्तालिनग्राद के कारखाने बनाने में, मज़दूरों ने श्रम की उत्पादकता के विश्व–रिकार्ड तोड़ दिये।

ऐसे विराट पैमाने पर औद्योगीकरण निर्माण, नये विकास के लिये ऐसा उत्साह, करोड़ों मज़दूरों में ऐसी श्रम सम्बन्धी वीरता इतिहास के लिये अनूठी थी।

यह दरअसल श्रम सम्बन्धी उत्साह की उठान थी, जिसे समाजवादी होड़ ने पैदा किया और बढ़ावा दिया था।

इस बार, किसान मज़दूरों से पीछे न रहे। देहातों में भी यह श्रम सम्बन्धी उत्साह आम किसानों में फैल गया, जो अपने पंचायती खेत संगठित कर रहे थे। आम किसान जनता निश्चित रूप से पंचायती खेती की तरफ़ बढ़ने लगी। इसमें सरकारी खेतों और मशीन–और–ट्रैक्टर स्टेशनों ने भारी पार्ट अदा किया। झुण्ड के झुण्ड किसान सरकारी खेतों और मशीन–और–ट्रैक्टर स्टेशनों में इसलिये आते थे कि ट्रैक्टर और खेती की दूसरी मशीनों का चलना देखें, वे उनके चलने की तारीफ़ करते थे और वहीं पर और उसी समय वे फ़ैसला करते थे : 'आओ, हम भी पंचायती खेती में शामिल हों।' किसान अभी तक अलग–थलग और बिखरे हुए थे। हरेक अपने छोटे से, टूकड़ों जैसे खेत पर अकेले काम करता था। उनके पास काम देने वाले औज़ार या ट्रैक्टरों जैसी चीजें थी ही नहीं। नयी धरती को जोतने–बोने के लिये, उनके पास कोई साधन न था। अपने खेतों को उन्नत करने के लिये कोई संभावना न दिखाई देती थी। ग़रीबी से वे तबाह थे, और अकेले पड़ कर किसी तरह अपनी तरक़ीबों से काम लेते थे। आखिर, किसानों को बाहर निकालने का रास्ता मिल गया था, एक सुन्दर जीवन की राह मिल गयी थी। वह राह यह थी कि वे अपने छोटे खेतों को मिलाकर सहकारी योजनायें, पंचायती खेत चलायें। उन्हें ट्रैक्टर मिल गये, जो अब किसी भी 'कठोर भूमि', किसी भी नयी धरती को तोड़ सकते थे। अब उन्हें राज्य से मशीन, धन, जन और सलाह के रूप में मदद मिलती थी। उन्हें अब कुलक–गुलामी से मुक्त होने का अवसर मिला था। सोवियत सरकार ने अभी हाल में कुलकों को हरा दिया था और उन्हें धुल चाटने पर मज़बूर किया था, जिससे लाखों किसानों को खुशी हुई।

इसी आधार पर, पंचायती खेती का सामूहिक आन्दोलन शुरू हुआ जो आगे चलकर, खास तौर से 1929 के खत्म होते–होते, तेज़ी से आगे बढ़ा। उसकी रफ़्तार अभूतपूर्व थी, और हमारे समाजवादी उद्योग–धंधों के लिये भी नयी थी।

1928 में, पंचायती खेतों की काश्त का पूरा इलाका 13,90,000 हेक्तार था; 1929 में वह 42,62,000 हेक्तार हुआ, और 1930 में पंचायती खेतों की ही जोती जानेवाली ज़मीन की योजना में 1,50,00,000 हेक्तार ज़मीन आ चुकी थी।

"महान् परिवर्तन का एक वर्ष" (1929) नाम के अपने लेख में, कॉमरेड स्तालिन ने पंचायती खेतों की बढ़ती की रफ़्तार के सिलसिले में कहा था :

"मानना होगा कि विकास का ऐसा प्रबल वेग हमारे अपने समाज की सम्पत्ति बने हुए बड़े पैमाने के उद्योग–धंधों के लिये भी अभूतपूर्व है, जो आम तौर से विकास की अपनी विशेष गति के लिये प्रसिद्ध है।"

पंचायती खेती के आन्दोलन की प्रगति में यह एक मोड़ थी।
यह पंचायती खेतों के सामूहिक आन्दोलन की शुरूआत थी।

"महान् परिवर्तन का एक वर्ष" नाम के अपने लेख में, कॉमरेड स्तालिन ने पूछा :

"मौजूदा पंचायती खेती के आन्दोलन की **नयी** विशेषता क्या है?"

और उन्होंने जवाब दिया :

"मौजूदा पंचायती खेती के आन्दोलन की नयी और निर्णायक विशेषता यह है कि किसान पंचायती खेतों में अलग–थलग गुटों में शामिल नहीं हो रहे, जैसा कि पहले होता था, बल्कि समूचे गाँवों में, समूचे बोलोस्तों (देहाती मण्डलों), तमाम जिलों और समूचे प्रदेशों तक में एक साथ शामिल हो रहे हैं। इसका मललब क्या है ? इसका मतलब यह है कि **मध्यम किसान पंचायती खेती के आन्दोलन में शामिल हो गया है!** और, खेती के विकास में बुनियादी तब्दीली का यही आधार है जो सोवियत सत्ता की सबसे महत्वपूर्ण सफलता है।..."

इसका मतलब यह था कि समय आ रहा था, या आ ही गया था, जबकि ठोस पंचायतीकरण के आधार पर एक वर्ग रूप में कुलकों को खत्म कर दिया जाये।

सारांश

1926–'29 के दौर में, देश के समाजवादी औद्योगीकरण के लिये संघर्ष में देशी और विदेशी मोर्चों पर पार्टी ने महान् कठिनाइयों का सामन किया और उन पर विजय प्राप्त की। पार्टी और मज़दूर वर्ग की कोशिशों का अंत समाजवादी औद्योगीकरण की नीति की विजय में हुआ।

मुख्य रूप से, औद्योगीकरण की एक बहुत ही कठिन समस्या, यानी भारी उद्योग–धंधों के निर्माण के लिये धन इकट्ठा करने की समस्या हल की जा चुकी थी। समूचे राष्ट्रीय अर्थतंत्र को फिर से सुसज्जित कर सकने योग्य भारी उद्योग–धंधों की नींव डाल दी गयी।

समाजवादी निर्माण की पहली पंचवर्षीय योजना स्वीकृत हुई। नये कारख़ानों, सरकारी और पंचायती खेतों के निर्माण का काम बहुत बड़े पैमाने पर बढ़ा।

समाजवाद की ओर इस प्रगति के साथ, देहातों में वर्ग–संघर्ष तीख़ा हुआ, और पार्टी का अन्दरूनी संघर्ष भी तेज़ हुआ। इस संघर्ष के मुख्य नतीजे ये थे : कुलक–विरोध दबा दिया गया, त्रात्स्कीवादी और ज़िनोवियेवपंथी समर्पणवादियों के गुट का भंडाफोड़ हो गया कि वह सोवियत–विरोधी गुट है, दक्षिणपंथी समर्पणवादियों का पर्दाफाश हुआ कि वे कुलकों के दलाल हैं, त्रात्स्कीवादी पार्टी से निकाल दिये गये और यह घोषित किया गया कि त्रात्स्कीवादियों और दक्षिणवपंथी अवसरवादियों के मत सो•सं•क•पा• (बो) की सदस्यता के साथ नहीं चल सकते।

बोल्शेवक पार्टी द्वारा सैद्धान्तिक रूप से हराये जाकर और मज़दूर वर्ग में पूरी तरह समर्थन खोकर, त्रात्स्कीवादी एक राजनीतिक रुझान न रह गये। वे एक राजनीतिक धोखेबाजों का सिद्धान्तहीन, कमाऊ–खाऊ गिरोह, राजनीतिक दग़ाबाजों का गिरोह भर रह गये।

भारी उद्योग–धंधों की नींव डालने के बाद, पार्टी ने सोवियत संघ के समाजवादी पुनर्संगठन की पहली पंचवर्षीय योजना को पूरी करने के लिये मज़दूर वर्ग और किसानों को बटोरा । समूचे देश में, करोड़ों श्रमिक जनता के अन्दर समाजवादी होड़ बढ़ी। जिससे श्रम सम्बन्धी उत्साह की एक विशाल लहर पैदा हुई और श्रम सम्बन्धी नये अनुशासन का जन्म हुआ।

इस दौर का अन्त महान् परिवर्तन के वर्ष से हुआ। उस साल की विशेषता यह थी कि उद्योग–धंधों में समाजवाद की भारी जीत हुई, खेती में पहली महत्वपूर्ण सफलतायें मिली, मध्यम किसान पंचायती खेती की तरफ़ झुका और पंचायती खेती के सामूहिक आन्दोलन की शुरूआत हुई।

ग्यारहवां अध्याय

खेती के पंचायतीकरण के लिये संघर्ष में बोल्शेविक पार्टी (1930–1934)

1. 1930–'34 में अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति। पूंजीवादी देशों में आर्थिक संकट। जापान का मंचूरिया हड़पना। जर्मनी में राज्य–सत्ता पर फ़ासिस्ट अधिकार। युद्ध के दो केन्द्र।

सोवियत संघ में देश के समाजवादी औद्योगीकरण में महत्वपूर्ण प्रगित हुई थी और उद्योग–धंधे तेज़ी से आगे बढ़ रहे थे। उधर पूंजीवादी देशों पर 1929 के अंत में एक अभूतपूर्व पैमाने पर सत्यानाशी विश्व आर्थिक संकट फट पड़ा और अगले तीन वर्षो में बराबर तीव्र होता गया। उद्योग–धंधों का संकट खेती के संकट के साथ मिला हुआ था, जिससे कि पूंजीवादी देशों की हालत और भी खराब हो गयी।

1930–'33 में, आर्थिक संकट के इन तीन वर्षो में, अमरीका की औद्योगीक पैदावार घट कर 65 फ़ीसदी रह गयी; ब्रिटेन की 86 फ़ीसदी, जर्मनी की 66 फ़ीसदी और फ्रांस 77 फ़ीसदी रह गयी। पैदावार की यह फ़ीसदी घटती 1929 की तुलना में थी। लेकिन, इसी बीच सोवियत संघ की औद्योगिक पैदावार दुगुनी से ज्यादा हो गयी, और 1929 से 1933 में 201 फ़ीसदी बढ़ गयी। समाजवादी आर्थिक व्यवस्था पूंजीवादी आर्थिक व्यवस्था से श्रेष्ठ है, उसका यह एक और सबूत था। इससे पता लगता था कि संसार में समाजवाद का देश ही ऐसा देश है जो आर्थिक संकटों से मुक्त है।

विश्व आर्थिक संकट ने 2 करोड़ 40 लाख बेकारों को भुखमरी, ग़रीबी और तबाही का शिकार बना दिया। खेती के संकट से लाखों किसान मुसीबत में पड़ गये।

विश्व आर्थिक संकट से साम्राज्यवादी देशों का अंतर्विरोध बढ़ गया, विजेता और विजित देशों का विरोध, साम्राज्यवादी रियासतों और उपनिवेशों और पराधीन देशों का विरोध, मज़दूरों और पूंजीपतियों का विरोध, किसानों और ज़मींदारों का विरोध और बढ़ गया।

सोलहवीं पार्टी कांग्रेस में केन्द्रीय समिति की ओर से रिर्पोट देते हुए, कॉमरेड स्तालिन ने बताया कि पूंजीपति आर्थिक संकट से निकलने के लिये एक तरफ तो फ़ासिस्ट तानाशाही क़ायम करेंगे, मज़दूर वर्ग को कुचलने की कोशिश करेंगे, यानी सबसे प्रतिक्रियावादी, घोर अंधराष्ट्रवादी, सबसे साम्राज्यवादी पूंजीपतियों की तानाशाही क़ायम करने की कोशिश करेंगे, और दूसरी तरफ़ अरक्षित देशों की बलि देकर उपनिवेशों और प्रभाव–क्षेत्रों का फिर से बंटवारा करने के लिये युद्ध भड़काने की कोशिश करेंगे।

ठीक यही हुआ भी।

1932 में, जापान ने युद्ध के ख़तरे को बढ़ा दिया। यह देखकर कि आर्थिक संकट की वजह से यूरोप के राज्य और संयुक्त राष्ट्र अमरीका अपने घरेलू मामलों में पूरी तरह उलझे हुए हैं, जापानी साम्राज्यवादियों ने तय किया कि इस मौक़े से लाभ उठायें और अरक्षित चीन पर दबाव डालें, जिससे कि उसे जीत सकें और वहाँ जाकर राज करें। 'स्थानीय घटनायें', जिन्हें जापानी साम्राज्यवादियों ने ही भड़काया था, बेइमानी से उनसे फ़ायदा उठाते हुए, डाकूओं की तरह चीन से युद्ध का ऐलान किये बिना, उन्होंने अपनी फ़ौजें मंचूरिया में भेज दी। जापानी सैनिकों ने तमाम मंचूरिया पर अधिकार कर लिया और इस तरह वहां एक सुविधाजनक फ़ौजी अड्डा बना लिया, जहां से वह उत्तरी चीन को जीत सकें और सोवियत संघ पर हमला कर सकें। अपने हाथ खुले रखने के लिये, जापान लीग ऑफ नेशन्स से निकल आया और बड़ी सरगर्मी से हथियारबन्दी करने लगा।

इससे अमरीका, ब्रिटेन और फ्रांस को सुदूर पूर्व में अपनी जल–सेना को मज़बूत करने की प्रेरणा मिली। स्पष्ट था कि जापान चीन को जीतना चाहता है और उस देश से यूरोप और अमरीका की साम्राज्यवादी ताक़तों को निकालना चाहता है। इसका जवाब उन्होंने अपनी हथियारबन्दी बढ़ाकर दिया।

लेकिन, जापान का एक और उद्देश्य भी था यानी सोवियत सुदूर पूर्व पर क़ब्जा करना। स्वाभाविक था कि सोवियत संघ इस खतरे की तरफ आँखें बन्द न कर सकता था और वह अपने सुदूरपूर्वी राज्य की सुरक्षा को ज़ोरों से दृढ़ करने लगा।

इस तरह, सुदूर पूर्व में जापानी फ़ासिस्ट साम्राज्यवादियों की बदौलत पहला युद्ध केन्द्र बना।

लेकिन, आर्थिक संकट ने सुदूर पूर्व में ही पूंजीवाद के अंतर्विरोधों को न बढ़ाया; उसने उन्हें यूरोप में भी बढ़ाया। उद्योग–धंधों और खेती के लम्बे संकट ने, भारी बेकारी ने और ग़रीब वर्गों की रोज़ी का दिन पर दिन ठिकाना न रहने से, मज़दूरों और किसानों का असंतोष बढ़ता गया। मज़दूर वर्ग के असंतोष ने क्रान्तिकारी विरोध का रूप लिया। यह बात खास तौर से जर्मनी में हुई, जो आर्थिक रूप से युद्ध से, अंग्रेज और फ्रांसीसी विजेताओं को हर्जाना देने से और आर्थिक संकट से चूर हो गया था। जर्मन मज़दूर वर्ग दुहरी गुलामी में तड़प रहा था, देशी और विदेशी, अंग्रेज और फ्रांसीसी पूंजीपतियों की गुलामी में। यह असंतोष कितना बढ़ गया था, यह इस बात से साफ़ जाहिर होता था कि सत्ता पर फ़ासिस्ट अधिकार होने से पहले पिछले राइखस्टाग के चुनाव में जर्मन कम्युनिस्ट पार्टी को 60 लाख वोट मिले थे। जर्मन पूंजीपतियों ने देखा कि जर्मनी में जो पूंजीवादी स्वाधीनता क़ायम है, उससे उनका नुक़सान हो सकता है और मज़दूर वर्ग क्रान्तिकारी आन्दोलन को बढ़ाने के लिये इस स्वाधीनता का उपयोग कर सकता है। इसलिये, उन्होंने फ़ैसला किया कि जर्मनी में पूंजीपतियों की सत्ता बनाये रखने का एक ही तरीका है और वह यह कि पूंजीवादी स्वाधीनता खत्म कर दी जाये, राइखस्टाग को शून्य के बराबर कर दिया जाये, और एक आतंकवादी–राष्ट्रवादी तानाशाही क़ायम की जाये, जो मज़दूर वर्ग का दमन कर सके और उन निम्नपूंजीवादियों को अपना आधार बनाये जो युद्ध में जर्मनी की हार का बदला लेना चाहते थे। और इसलिये, उन्होंने फ़ासिस्ट पार्टी को सत्ता सौंफी। जनता को धोखा देने के लिये, यह पार्टी अपने को राष्ट्रीय ***समाजवादी पार्टी*** कहती थी। पूंजीपति अच्छी तरह जानते थे कि फ़ासिस्ट पार्टी सबसे पहले उन साम्राज्यवादी पूंजीपतियों की प्रतिनिधि है जो सबसे प्रतिक्रियावादी और मज़दूर वर्ग से सबसे ज्यादा शत्रु–भाव रखने वाले हैं। दूसरे, वे जानते थे कि बदला लेने वालों की यह सबसे खुली पार्टी है जो लाखों राष्ट्रवादी रुझान रखने वाले मध्यवित्त लोगों को बरगला सकती है। इस काम में, मज़दूर वर्ग से ग़द्दारी करने वालों, जर्मन सोशल–डेमोक्रैटिक पार्टी के नेताओं ने उनकी मदद की और अपनी समझौते की नीति से फ़ासिस्टवाद का रास्ता साफ़ कर दिया।

ऐसी ही परिस्थिति में, जर्मन फ़ासिस्ट 1933 में सत्तारूढ़ हो सके।

17वीं पार्टी कांग्रेस को अपनी रिपोर्ट देते हुए, कॉमरेड स्तालिन ने जर्मनी की घटनाओं का विश्लेषण करते हुए कहा था :

"जर्मनी में फ़ाासिस्टवाद की जीत को मज़दूर वर्ग की कमजोरी का चिन्ह और सोशल–डेमोक्रिटिक पार्टी द्वारा, जिसने फ़ासिस्टवाद का रास्ता साफ़ किया, मज़दूर वर्ग के प्रति विश्वासघात का नतीजा ही न समझना चाहिये। उसे पूंजीपतियों की कमज़ोरी का चिन्ह भी समझना चाहिये, उसे इस बात का चिन्ह भी समझना चाहिये कि पूंजीपति अब पार्लियामेंटशाही और पूंजीवादी जनतंत्र के पुराने तरीकों से राज्य न कर सकते थे, इसलिये उन्हें अपनी घरेलू नीति में राज करने के आतंकवादी तरीक़ों से काम लेना पड़ता है...।" (***स्तालिन, लेनिनवाद की समस्यायें*** ,अं•सं•, मास्को, 1947, पृष्ठ 461)।

जर्मन फ़ासिस्टों ने राइखस्टाग में आग लगा कर, निर्दयता से मज़दूर वर्ग का दमन करके, उसके संगठन तोड़ कर और पूंजीवादी–जनवादी स्वाधीनता खत्म करके, अपनी घरेलू नीति का श्रीगणेश किया। उन्होंने लीग ऑफ नेशन्स से हट कर और यूरोप के राज्यों के सीमान्तों को जर्मनी के हित में **बलपूर्वक** संशोधित करने के लिये सरेआम युद्ध की तैयारी करके, अपनी वैदेशिक नीति का श्रीगणेश किया।

इस तरह, मध्य यूरोप में जर्मन फ़ासिस्टों की बदौलत दूसरा युद्ध–केन्द्र बना।

यह स्वाभाविक था कि सोवियत संघ ऐसी गंभीर घटना की तरफ़ अपनी आँखें बन्द करके न रह सकता था। वह पिच्छम के घटना–क्रम को सावधानी से देखने और पच्छिमी सीमान्तों पर अपनी सुरक्षा को दृढ़ करने लगा।

2. कुलकों को नियंत्रित करने की नीति से, वर्ग रूप में कुलकों को खत्म करने की नीति की तरफ़ आना। पंचायती खेती के आन्दोलन में पार्टी की नीति को तोड़ने–मरोड़ने के ख़िलाफ़ संघर्ष। तमाम मोर्चे पर पूंजीवादी तत्वों के ख़िलाफ़ हमला। सोलहवीं पार्टी कांग्रेस।

1929 और 1930 में, किसानों का सामूहिक रूप से पंचायती खेतों में आना पार्टी और सरकार के तमाम पिछले काम का नतीजा था। समाजवादी उद्योग–धंधे, जो खेती के लिये ट्रैक्टर और मशीनें सामूहिक पैमाने पर बनाने लगे थे, बढ़े। 1928 और 1929 में, ग़ल्ला खरीदने के आन्दोलन के दौर में, कुलकों के ख़िलाफ ज़ोरदार क़दम उठाये गये। खेती की सहकारी समितियाँ, जिन्होंने धीरे–धीरे किसानों को पंचायती खेती का आदी बनाया, फैलीं। पहले पंचायती खेतों और सहकारी खेतों को अच्छी सफलतायें मिलीं। इन सभी बातों से, दृढ़ पंचायतीकरण के लिये रास्ता साफ़ हुआ जबकि समूचे गाँवों, जिलों और प्रदेशों के किसान पंचायती खेतों में शामिल हुए।

दृढ़ पंचायतीकरण कोई शान्तिमय सिलसिला न था। ऐसा न होता था कि किसानों की बहुतायत पंचायती खेतों में भर्ती होती चली जाती हो। यह कुलकों के खिलाफ़ आम किसान जनता का संघर्ष था। दृढ़ पंचायतीकरण का मतलब था कि जिस गाँव के इलाकों में पंचायती खेत बनता था, वहां की तमाम ज़मीन पंचायती खेत की हो जाती थी। लेकिन, इस ज़मीन का काफी हिस्सा कुलकों के हाथ में होता था। इसलिये, किसान उनकी ज़मीन छीन लेते थे, खेतों से उन्हें भगा देते थे, उनके गाय–बैल और मशीनें ले लेते थे और मांग करते थे कि उन्हें गिरफ़्तार किया जाये और सोवियत अधिकारी उन्हें ज़िले से निकाल दें।

इसलिए, दृढ़ पंचायतीकरण का मतलब था – कुलकों को खत्म करना।

दृढ़ पंचायतीकरण के आधार पर, यह वर्ग रूप में कुलकों को खत्म करने की नीति थी।

इस समय तक, सोवियत संघ के पास काफ़ी मज़बूत भौतिक आधार हो गया था जिससे कि कुलकों का खात्मा किया जा सके, उनका विरोध तोड़ा जा सके, वर्ग रूप में उन्हें खत्म किया जा सके और कुलक खेती की जगह पंचायती और सरकारी खेती ले सके।

1927 में, कुलक 60 करोड़ पूड से ऊपर अनाज पैदा करते थे, जिसमें से 13 करोड़ पूड बिकाऊ होता था। उसी साल, पंचायती और सरकारी खेतों से 3 करोड़ 50 लाख पूड ही बिकाऊ अनाज निकला। बोल्शेविक पार्टी ने सरकारी और पंचायती खेतों को विकसित करने की दृढ़ नीति का पालन किया, और साथ ही ट्रैक्टरों और खेती की मशीनों से देहात की मदद करने में समाजवादी उद्योग–धंधों ने प्रगति की। इन कारणों से, 1929 में, पंचायती खेत और सरकारी खेत एक महत्वपूर्ण जगह बना चुके थे। उस साल, पंचायती और सरकारी खेतों ने 40 करोड़ पूड से कम अनाज पैदा न किया, जिसमें से 13 करोड़ पूड से ऊपर अनाज बेचा गया। 1927 में, कुलकों ने जितना अनाज बेचा था, यह राशि उससे ज्यादा थी। 1930 में, पंचायती और सरकारी खेतों को बाज़ार के लिये 40 करोड़ पूड से ऊपर अनाज पैदा करना था, और सचमुच उन्होंने इतना पैदा किया। 1927 में, कुलकों ने जितना बिकाऊ अनाज पैदा किया था, यह राशि उससे कहीं ज्यादा थी।

इस तरह, देश के आर्थिक जीवन में वर्ग–शक्तियों का परस्पर सम्बन्ध बदल गया। कुलकों के फ़ालतू अनाज के बदले, पंचायती और सरकारी खेतों की उपज से काम लेने को जरूरी भौतिक आधार बन गया था। इसलिये, बोल्शेविक पार्टी कुलकों को **नियंत्रित** करने की नीति से एक नयी नीति, **वर्ग रूप में उन्हें खत्म करने** की नीति की तरफ़ बढ़ सकी। इस नयी नीति का आधार दृढ़ पंचायतीकरण था।

1929 से पहले, **सोवियत सत्ता कुलकों** को नियंत्रित करने की नीति पर चलती थी। उसने कुलकों पर भारी टैक्स लगाये थे और उन्हें बाध्य किया था कि निश्चित भाव पर राज्य को अनाज बेचें। लगान पर ज़मीन उठाने के कानून से, उसने एक हद तक उठायी जाने वाली ज़मीन को नियंत्रित कर दिया था। निजी खेतों में किराये पर मज़दूरी के बारे में क़ानून बना कर, उसने कुलक खेतों को सीमित कर दिया था। लेकिन, सोवियत सरकार ने अभी कुलकों को खत्म करने की नीति शुरू न की थी। ज़मीन को उठाने और भाड़े पर मज़दूरी कराने के कानून से, कुलक अपना काम कर सकते थे। उनकी सम्पत्ति जब्त करने के बारे में मनाही का क़ानून होने से, उन्हें इस तरफ़ से एक हद तक गारंटी भी मिली हुई थी। इस नीति का फल यह हुआ कि कुलक वर्ग की बढ़ती रुकी। उस वर्ग के कुछ हिस्से इन रोकों का दबाव न सह कर अपने धंधे से अलग जा पड़े और तबाह हो गये। लेकिन, इस नीति ने वर्ग रूप में कुलकों की आर्थिक बुनियाद का नाश न किया था और न उनका खात्मा किया था। यह नीति उन्हें नियंत्रित करने की थी, न कि उन्हें खत्म करने की। यह नीति एक समय तक बहुत ज़रूरी थी, यानी तब तक जब तक कि पंचायती और सरकारी खेत कमज़ोर थे और अनाज की पैदावार में कुलकों की जगह न ले सकते थे।

1929 के अंत में, पंचायती और सरकारी खेती की बढ़ती होने के बाद, सोवियत सत्ता इस नीति से तेज़ी से मुड़ कर, कुलकों को खत्म करने की नीति, वर्ग रूप में उनका नाश करने की नीति की तरफ़ बढ़ी। उसने ज़मीन को उठाने और भाड़े पर मज़दूरी कराने के क़ानून रद्द कर दिये, और इस तरह, कुलकों को ज़मीन और भाड़े के मज़दूर दोनों से वंचित कर दिया। कुलकों की सम्पत्ति ज़ब्त करने पर जो पाबन्दी लगी थी, वह उठा दी गयी। किसानों को पंचायती खेतों के लाभ के लिये कुलकों के जानवर, मशीनें और खेत की दूसरी और सम्पत्ति ज़ब्त करने की आज्ञा मिल गयी। कुलकों की सम्पत्ति जब्त कर ली गयी। उनकी सम्पत्ति वैसे ही ज़ब्त की गयी जेसे 1918 में उद्योग–धंधों के क्षेत्र में पूंजीपतियों की संपत्ति ज़ब्त कर ली गयी थी। अंतर इतना था कि कुलकों के पैदावार के साधन राज्य के हाथ में न आये, बल्कि पंचायती खेती में मिले हुए किसानों के हाथ में गये।

यह एक गंभीर क्रान्ति थी, समाज की पुरानी गुणात्मक दशा से एक नयी गुणात्मक दशा की तरफ़ छलांग थी, जिसके परिणाम अक्तूबर 1917 की क्रान्ति जैसे ही थे।

इस क्रान्ति की अपनी विशेषता यह थी कि वह **ऊपर** से राज्य की पहलक़दमी से की गयी थी और लाखों किसानों ने **नीचे से** उसका सीधा समर्थन किया था। ये किसान कुलक–गुलामी से मुक्ति पाने के लिये लड़ रहे थे और पंचायती खेतों में आज़ादी से रहना चाहते थे।

इस क्रान्ति ने एक ही वार में समाजवादी निर्माण की तीन मूल समस्याओं को हल कर दिया :

(क) उसने हमारे गाँवों के सबसे बहुसंख्यक शोषक वर्ग, पूंजीवाद को बहाल करने के मुख्य आधार, कुलक वर्ग को खत्म कर दिया;

(ख) उसने हमारे देश के सबसे बहुसंख्यक मेहनतकश वर्ग, किसान वर्ग को पूंजीवाद को पनपाने वाली व्यक्तिगत खेती की राह से सहकारी पंचायती, समाजवादी खेती की राह पर लगा दिया;

(ग) उसने सोवियत व्यवस्था को खेती में एक समाजवादी आधार दिया। खेती राष्ट्रीय अर्थतंत्र की सबसे बड़ी और बहुत ही आवश्यक, लेकिन सबसे कम विकसित शाखा थी।

उसने पूंजीवाद को बहाल करने के लिये देश के अंतिम मुख्य आधार को खत्म कर दिया और साथ ही समाजवादी आर्थिक व्यवस्था रचने के लिये नयी और निर्णायक परिस्थितियाँ पैदा कर दीं।

वर्ग रूप में कुलकों को खत्म करने की नीति के कारणों की व्याख्या करते हुए और दृढ़ पंचायतीकरण के लिये किसानों के सामूहिक आन्दोलन के नतीजों का सारांश देते हुए, कॉमरेड स्तालिन ने 1929 में लिखा था :

> "सभी देशों के पूंजीपति सोवियत संघ में पूंजीवाद को बहाल करने, 'व्यक्तिगत सम्पत्ति के पवित्र सिद्धान्त' को बहाल करने का सपना देख रहे हैं। उनकी अंतिम आशा पर पानी फिर रहा है, और उनका सपना टूट रहा है। वे समझते थे कि पूंजीवाद के लिये ज़मीन में खाद का काम देने के लिये किसान हैं। वे ही किसान अब सामूहिक रूप से 'व्यक्तिगत सम्पत्ति' का प्रशंसित झण्डा छोड़ रहे हैं और पंचायती खेती का रास्ता, समाजवाद का रास्ता अपना रहे हैं। पूंजीवाद को बहाल करने की अंतिम आशा खत्म हो रही है।" (***स्तालिन, लेनिनवाद की समस्यायें,*** अं•सं•, मास्को, 1947, पृष्ठ 298)।

5 जनवरी 1930 को, सो•सं•क•पा•(बो•) की केन्द्रीय समिति ने एक ऐतिहासिक प्रस्ताव पास किया – "पंचायती करण की रफ़्तार और पंचायती खेतों के विकास में मदद देने के लिये सरकारी उपाय"। इस प्रस्ताव में, वर्ग रूप में कुलकों को खत्म करने की नीति रखी गयी थी। इस फ़ैसले में, इस बात का पूरी तरह ध्यान रखा गया था कि सोवियत संघ के विभिन्न ज़िलों में हालत अलग–अगल है और विविध इलाके पंचायती करण के लिये अलग–अलग सीमाओं तक तैयार हैं।

पंचायतीकरण की अलग–अलग रफ़्तारें क़ायम की गयीं। इस उद्देश्य के लिये, सो•सं•क•पा•(बो•) की केन्द्रीय समिति ने सोवियत संघ के इलाकों को तीन भागों में बांट दिया।

पहले भाग में प्रमुख अनाज उपजाने वाले इलाके थे, यानी उत्तरी **कॉकेशस** (कूबान, दोन् और तेरेक), मध्य वोल्गा और निम्न वोल्गा, जो पंचायतीकरण के लिये सबसे ज्यादा तैयार थे, क्योंकि उनके पास सबसे ज़्यादा ट्रैक्टर थे, सबसे ज़्यादा सरकारी खेत थे और पिछले गल्ला ख़रीदने के आन्दोलनों में कुलकों से लड़ने का उन्हें सबसे ज़्यादा तजुर्बा था। केन्द्रीय समिति ने प्रस्ताव किया कि अनाज पैदा करने वाले प्रदेशों के इस भाग में पंचायतीकरण मुख्य रूप से 1931 के वसन्त तक पूरा हो जाना चाहिये।

दूसरा भाग इन अनाज उपजाने वाले इलाकों का था – उक्रैन, काली मिट्टी का मध्य प्रदेश, साइबेरिया, यूराल, कजाकिस्तान, वग़ैरह। यहाँ पर मुख्य रूप से पंचायतीकरण का काम 1932 के वसंत तक पूरा हो सकता था।

दूसरे प्रदेश, मण्डल, **और प्रजातंत्र** (मास्को प्रदेश, ट्रांस कॉकेशिया, मध्य एशियायी प्रजातंत्र, वग़ैरह) पंचवर्षीय योजना के अंत तक, यानी 1933 तक पंचायतीकरण का सिलसिला जारी रख सकते थे।

पंचायतीकरण की बढ़ती हुई रफ़्तार ध्यान में रखते हुए, पार्टी की केन्द्रीय समिति ने ज़रूरी समझा कि ट्रैक्टर, हार्वेस्टर कम्बाइन, ट्रैक्टर से खिंचनेवाली मशीनें आदि बनाने वाले कारखानों के निर्माण का काम और तेज किया जाये। इसके साथ ही, केन्द्रीय समिति ने माँग की कि :"पंचायती खेती के आन्दोलन की मौजूदा मंजिल में घोड़ों से काम लेने के महत्व को जो कम करके आँकने की प्रवृति है और जिससे घोड़े बेतहाशा बेचे जा रहे थे या निकाले जा रहे थे, उसको दृढ़ता से रोका जाये।"

1929–'30 के लिये, मूल योजना में पंचायती खेतों को जो सरकारी रक़म उधार दी जाने वाली थी, वह दुगुनी (50 करोड़ रूबल) कर दी गयी।

पंचायती खेतों की ज़मीन नापने और उसकी हदबन्दी का खर्च सरकार बर्दाश्त करती।

प्रस्ताव में एक बहुत ही महत्वपूर्ण निर्देश यह था कि मौजूदा मंजिल में पंचायती खेती के आन्दोलन का **मुख्य रूप** कृषि संघ ही होगा, जिसमें सिर्फ़ पैदावार के **मुख्य** साधनों का पंचायतीकरण होता है।

केन्द्रीय समिति ने पार्टी–संगठनों को बहुत गंभीर चेतावनी दी कि "वे ऊपर से 'आज्ञा–पत्र' निकाल कर, ज़बर्दस्ती पंचायती खेती के आन्दोलन को बढ़ाने की कोई भी कोशिश न करें। इससे यह खतरा पैदा हो सकता था कि पंचायती खेतों के संगठन में सच्ची समाजवादी होड़ के बदले नकली पंचायतीकरण चालू हो जाये।"(***सो॰सं॰क॰पा॰(बो॰) के प्रस्ताव,*** रू॰सं॰, भाग 2, पृष्ठ 662)।

इस प्रस्ताव में, केन्द्रीय समिति ने स्पष्ट कर दिया कि पार्टी की नयी नीति को देहातों में कैसे लागू करना चाहिये।

वर्ग रूप में कुलकों को खत्म करने और दृढ़ पंचायतीकरण की नीति से, एक शक्तिशाली पंचायती खेती के आन्दोलन को बढ़ावा मिला। समूचे गाँवों और जिलों के किसान पंचायती खेतों में शामिल हो गये। उन्होंने कुलकों को अपने रास्ते से खदेड़ दिया और कुलक गुलामी से अपने को मुक्त कर लिया।

पंचायतीकरण की इस अपूर्व प्रगति के साथ–साथ, पार्टी के कार्यकर्त्ताओं के कुछ दोष, पंचायती खेती के विकास में पार्टी की नीति को तोड़ने–मरोड़ने की बातें जल्द ही सामने आयीं। हालाँकि केन्द्रीय समिति ने पार्टी के कार्यकर्त्ताओं को सावधान कर दिया था कि पंचायतीकरण की सफलता से होश न खो बैठें, फिर भी उनमें से बहुत से नक़ली तौर पर पंचायतीकरण की रफ़्तार तेज़ करने लगे और उन्होंने देश–काल की परिस्थितियों का ध्यान न रखा और इस बात का विचार न किया कि किस हद तक किसान पंचायती खेतों में शामिल होने के लिये तैयार हैं।

पता लगा कि **स्वेच्छा** से पंचायती खेत बनाने का उसूल तोड़ा जा रहा है और कई ज़िलों में किसानों को यह धमकी देकर कि उनकी सम्पत्ति ज़ब्त कर ली जायेगी, उनके अधिकार छीन लिये जायेंगे वगैरह, **जबर्दस्ती** पंचायती खेतों में भर्ती किया जा रहा है।

कई जिलों में, पंचायतीकरण के बारे में पार्टी की नीति के बुनियादी उसूलों को धीरज के साथ समझाने और तैयारी का काम करने के बदले, ऊपर से नौकरशाही तरीक़े पर हुकुमनामे भेजे जा रहे थे, पंचायती खेत बनाने के बारे में अतिरंजित और झूठे आँकड़े दिये जा रहे थे और पंचायतीकरण की औसत दर को नक़ली तौर से बढ़ा कर दिखाया जा रहा था।

हालाँकि केन्द्रीय समिति ने स्पष्ट कर दिया था कि पंचायती खेती के आन्दोलन का मुख्य रूप कृषि संघ होना चाहिये, जिसमें सिर्फ़ पैदावार के मुख्य साधनों का पंचायतीकरण होगा, फिर भी कई जगह कृषि संघ को लांघने और सीधे कम्यून में पहुंच

जाने की महत्वपूर्ण कोशिशें की गयीं। मकान, दुध देनेवाली गायें, छोटे जानवर, मुर्गियाँ, वग़ैरह, जो बाज़ार के काम न आयीं थीं, उन सबका पंचायतीकरण हो गया था।

पंचायतीकरण की प्राथमिक सफलता से बदहवास होकर, कई प्रदेशों के अधिकारियों ने पंचायतीकरण की रफ़्तार और मियाद के बारे में केन्द्रीय समिति की स्पष्ट आज्ञाओं का उल्लंघन किया। भारी आँकड़े देने के उत्साह में, मास्को प्रदेश के नेतृत्व ने अपने मातहतों को राह दिखा दी कि 1930 के वसन्त तक पंचायतीकरण पूरा कर डालें, हालाँकि इसके लिये उनके पास तीन साल से कम समय नहीं था (1932 के अंत तक)। ट्रांस कॉकेशिया और मध्य एशिया में इससे भी ज़्यादा भौंडे रूप में केन्द्रीय समिति के निर्देश तोड़े गये।

अपने ही उकसावा पैदा करने वाले उद्देश्यों के लिये, नीति के इस तोड़ने–मरोड़ने से फ़ायदा उठा कर, कुलक और उनके गुर्गे खुद ही सुझाते थे कि कृषि संघों के बदले कम्यून बना लिये जायें और तुरंत ही मकान, छोटे–मोटे जानवर और मुर्गी–बत्तखें भी पंचायती बना ली जायें। इसके अलावा, कुलक किसानों को सिखाते थे कि पंचायती खेतों में शामिल होने से पहले अपने जानवर मार डालो क्योंकि 'आखिर तो वे हाथ से निकल ही जायेंगे।'

वर्ग–शत्रु ने हिसाब लगाया था कि पंचायतीकरण के सिलसिले में स्थानीय संगठनों ने जो ग़लतियाँ की हैं और पार्टी की नीति को तोड़ा–मरोड़ा है, उससे किसान भड़क जायेंगे और सोवियत सत्ता से बग़ाकत कर बैठेंगे।

पार्टी–संगठनों की ग़लतियों के फलस्वरूप और वर्ग–शत्रु की सीधी भड़काने वाली कार्यवाही के कारण, पंचायतीकरण की आम निश्चित सफलताओं के बावजूद, फरवरी 1930 के दूसरे पखवारे में कई ज़िलों के किसानों में गंभीर असंतोष के ख़तरनाक चिन्ह दिखाई दिये। जहाँ–तहाँ कुलक और उनके गुर्गे सीधी सोवियत–विरोधी कार्यवाही कराने के लिये किसानों को भड़काने में सफल भी हुए।

पार्टी की नीति के तोड़ने–मरोड़ने से पंचायतीकरण ख़तरे में पड़ सकता है, इसके कई भयंकर चिन्ह देखकर पार्टी की केन्द्रीय समिति ने तुरंत ही हालत सुधारने, जितनी जल्द हो सके ग़लतियाँ सुधारने का काम पार्टी के कार्यकर्त्ताओं के सामने रखने का क़दम उठाया। 2 मार्च 1930 को, केन्द्रीय समिति के फ़ैसले से, कॉमरेड स्तालिन का लेख – "सफलता से उन्मत" – छपा। यह लेख उन सबके लिये चेतावनी था जिन्होंने पंचायतीकरण की सफलता से बदहवास होकर भारी ग़लतियाँ की थीं और पार्टी की नीति से अलग हट गये थे, जो पंचायती खेतों में शामिल होने के लिये

किसानों से ज़ोर–ज़बर्दस्ती करने की कोशिश कर रहे थे। लेख में, सबसे ज़्यादा ज़ोर इस बात पर दिया गया कि पंचायती खेतों का निर्माण स्वेच्छा से होना चाहिये और जब पंचायतीकरण की रफ़्तार और तरीक़े निश्चित किये जायें, तब सोवियत संघ के विभिन्न ज़िलों की अलग–अगल हालतों का ध्यान रखना ज़रूरी है। कॉमरेड स्तालिन ने इस बात को दुहराया कि पंचायती खेती के आन्दोलन का मुख्य रूप कृषि संघ है, जिसमें सिर्फ़ पैदावार के मुख्य साधन, मुख्यतः वे जो अनाज पैदा करने में काम आते हैं, पंचायती बनाये जायें, लेकिन घरेलू ज़मीन, मकान, दूध देने वाले मवेशी, छोटे–मोटे जानवर, मुर्ग़ी–बत्तखें, वग़ैरह पंचायती न बनायी जायेंगी।

कॉमरेड स्तालिन का लेख बहुत ही राजनीतिक महत्व का था। उसने पार्टी–संगठनों को अपनी ग़लतियाँ सुधारने में मदद दी और सोवियत सत्ता के दुश्मनों पर भारी वार किया जो उम्मीद कर रहे थे कि सोवियत सत्ता से किसानों को भिड़ा देने के लिये पार्टी की नीति के तोड़ने–मोड़ने के लिये फ़ायदा उठायेंगे। आम किसान जनता ने देख लिया कि स्थानीय अधिकारियों ने पार्टी की नीति को जिस मूर्खतापूर्ण 'वामपंथी' तरीक़े से तोड़ा–मरोड़ा था, उससे बोल्शेविक पार्टी की नीति का कोई सम्बन्ध नहीं है। लेख से किसानों का चित्त शान्त हुआ।

पार्टी की नीति के तोड़ने–मरोड़ने और ग़लतियों को सुधारने के लिये कॉमरेड स्तालिन के लेख ने जो काम शुरू किया था, उसे पूरा करने के लिये सो•सं•क•पा•(बो•) की केन्द्रीय समिति ने उन पर दूसरा वार करने का फ़ैसला किया। 24 मार्च 1930 को, उसने "पंचायती खेती–आन्दोलन में पार्टी की नीति का तोड़ना–मरोड़ना खत्म करने के उपाय" नाम का प्रस्ताव पास किया।

प्रस्ताव ने, जो ग़लतियाँ हुई थीं, उनकी विस्तार से छानबीन की और दिखलाया कि वह पार्टी की लेनिनवादी–स्तालिनवादी नीति से हटने का नतीजा है, पार्टी के निर्देशों को खुलकर तोड़ने का नतीजा है।

केन्द्रीय समिति ने बताया कि यह 'वामपंथी' तोड़–मरोड़ सीधे वर्ग–शत्रु की सहायता करती है।

केन्द्रीय समिति ने निर्देश दिये कि "जो लोग पार्टी की नीति की तोड़–मरोड़ का सच्चाई से मुकाबिला करने के लिये तैयार नहीं हैं, या मुक़ाबिला नहीं कर सकते, वे अपनी जगह से **हटा दिये जायें,** और उनकी जगह **दूसरे आदमी रखे जायें"**। (***सो•सं•क•पा•(बो•) के प्रस्ताव,*** भाग 2, पृ•663)।

केन्द्रीय समिति ने कुछ मण्डल और प्रादेशिक पार्टी–संगठनों के नेतृत्व बदल दिये (मास्को प्रदेश, ट्रांस कॉकेशिया), जिन्होंने राजनीतिक ग़लतियाँ की थीं और उन्हें सुधारने में अपने को असमर्थ साबित किया था।

3 अप्रैल 1930 को, कॉमरेड स्तालिन का लेख – "पंचायती खेती में काम करने वाले साथियों को उत्तर" – प्रकाशित हुआ। इसमें किसान समस्या पर ग़लतियों का **मूल कारण** बतलाया गया और पंचायती खेती–आन्दोलन में जो बड़ी भूलें हुई थीं, उनकी जड़ बतलाई गई। मूल कारण ये थे – मध्यम किसान की तरफ़ ग़लत रवैया; इस लेनिनवादी उसूल को तोड़ना कि पंचायती खेतों का निर्माण स्वेच्छा से ही होना चाहिये, इस लेनिनवादी उसूल को तोड़ना कि सोवियत संघ के विभिन्न जिलों के अलग–अगल हालात का ध्यान रखना चाहिये और कृषि संघ की मंजिल लांघ कर सीधे **कम्यून में पहुंच जाने की कोशिशें**।

इन उपायों का फल यह हुआ कि कई जिलों में स्थानीय पार्टी के कार्यकर्त्ताओं ने पार्टी की नीति को जो तोड़ा–मरोड़ा था, पार्टी ने उसका सुधार कर दिया।

ऐसे पार्टी के कार्यकर्त्ता जो सफलता से बदहवास होकर पार्टी की नीति से जल्दी–जल्दी दूर चले जा रहे थे, काफ़ी थे। इन्हें तुरंत सुधारने के लिये **धारा के खिलाफ़** चलने में केन्द्रीय समिति ने अपने को समर्थ दिखाया और उसे बहुत ही दृढ़ता से काम लेना पड़ा।

पंचायती खेती–आन्दोलन में, पार्टी की नीति की तोड़–मरोड़ को सुधारने में पार्टी सफल हुई।

इससे पंचायती खेती के आन्दोलन की सफलता को मज़बूत करना मुमकिन हुआ।

इससे पंचायती खेती के आन्दोलन की नयी और शक्तिशाली प्रगति करना भी संभव हुआ।

वर्गरूप में कुलकों को खत्म करने की पार्टी की नीति अपनाने से पहले, मुख्यतः शहरों में औद्योगीक मोर्चे पर पूंजीवादी तत्व खत्म करने के लिये उनके खिलाफ़ ज़ोरदार मुहीम शुरू की गयी थी। अभी तक देहात और खेती, शहरों और उद्योग–धंधों के पीछे घिसट रहे थे। इसलिये, वह मुहीम चौमुखा, आम और सम्पूर्ण रूप धारण न कर सकी थी। लेकिन, अब देहात का पिछड़ापन बीते ज़माने की बात हो रहा था, अब कुलक वर्ग को खत्म करने के लिये किसान–संघर्ष ने स्पष्ट रूप ले लिया था और पार्टी ने कुलक वर्ग को ख़त्म करने

की नीति अपनायी थी। इसलिये, पूंजीवादी तत्वों के खिलाफ़ हमले ने आम रूप धारण कर लिया; आंशिक हमला समूचे मोर्चे पर हमला बन गया। जिस समय सोलहवीं पार्टी कांग्रेस बुलायी गयी, उस समय पूंजीवादी तत्वों के खिलाफ़ हमला समूचे मोर्चे पर चालू था।

सोलहवीं पार्टी कांग्रेस 26 जून, 1930 को शुरू हुई। इसमें 12,60,8794 पार्टी सदस्यों और 7,11,609 उम्मीदवार सदस्यों की तरफ से, 1,268 वोट देने वाले प्रतिनिधि और 891 बोलने वाले लेकिन वोट न दे सकने वाले प्रतिनिधि आये।

पार्टी के इतिहास में, सोलहवीं पार्टी कांग्रेस "पूरे मोर्चे पर समाजवाद के भारी हमले की कांग्रेस, वर्ग रूप में कुलकों को खत्म करने की और दृढ़ पंचायतीकरण को अमल में लाने की कांग्रेस" **(स्तालिन)** कहलाती है।

केन्द्रीय समिति की राजनीतिक रिपोर्ट पेश करते हुए, कॉमरेड स्तालिन ने बताया कि समाजवादी मुहीम बढ़ाते हुए बोल्शेविक पार्टी ने कौन सी महान् सफलतायें हासिल की हैं।

अब तक समाजवादी औद्योगीकरण इतना बढ़ चुका था कि देश की कुछ पैदावार में उद्योग–धंधों का हिस्सा खेती से बढ़ गया था। 1929–'30 के आर्थिक साल में, देश की समूची पैदावार पर 53 फ़ीसदी हिस्सा उद्योग–धंधों की उपज बन गया था, जबकि खेती का हिस्सा 87 फ़ीसदी के लगभग था।

1926–'27 के आर्थिक साल में, 15वीं पार्टी कांग्रेस के समय, उद्योग–धंधों की **पूरी** उपज युद्ध के पूर्व की पैदावार की सिर्फ़ 102.5 फ़ीसदी थी। 1929–'30 के साल में, सोहलवीं कांग्रेस के समय, यह उपज लगभग 180 **फ़ीसदी** तक पहुंच गयी थी।

भारी उद्योग–धंधों – पैदावार के साधनों का निर्माण, मशीनें बनाना – निश्चित रूप से शक्ति में बढ़ते जाते थे।

कॉमरेड स्तालिन ने कांग्रेस में हार्दिक हर्षध्वनि के बीच, कहा :

"...हम अपने देश के **खेतिहर** से **औद्योगिक** देश बनने **की देहरी पर** हैं।"

फिर भी, कॉमरेड स्तालिन ने बताया कि औद्योगिक विकास की ऊँची **रफ्तार** का मलतब औद्योगिक विकास की सतह नहीं है। समाजवादी उद्योग–धंधों के विकास की अपूर्व गति के बावजूद, जहाँ तक औद्योगिक विकास की **सतह** का सवाल था, हम अब भी आगे बढ़े हुये पूंजीवादी देशों से **बहुत ही पीछे** थे। यह बात बिजली के बारे में थी, हालाँकि सोवियत संघ में बिजली लगाने के काम में अभूतपूर्व प्रगति हुई थीं। यही बात

धातुओं के बारे में सही थी। योजना के अनुसार, 1929–'30 के साल में सोवियत संघ में कच्चे लोहे की पैदावार 55 लाख टन होनी थी, लेकिल 1929 में जर्मनी में कच्चे लोहे की पैदावार 1 करोड़ 34 लाख टन थी और फ्रांस में 1 करोड़ 4 लाख 50 हजार टन थी। कम से कम समय में अपना आर्थिक और कौशल सम्बन्धी पिछड़ापन दूर करने के लिये, यह ज़रूरी था कि औद्योगिक विकास की हमारी गति और तेज़ की जाये और उन अवसरवादियों के खिलाफ़ बहुत ही दृढ़ता से संघर्ष किया जाये जो समाजवादी उद्योग–धंधों के विकास की रफ़्तार को घटाने की कोशिश कर रहे थे।

कॉमरेड स्तालिन ने कहा :

"...जो लोग हमारे उद्योग–धंधों के विकास की रफ़्तार को घटाने की ज़रूरत की बातें करते हैं, वे समाजवाद के दुश्मन हैं, वर्ग–शत्रुओं के दलाल हैं।" (स्तालिन, ***लेनिनवाद – की समस्यायें,*** रू•सं•, पृष्ठ 369)।

जब पहली पंचवर्षीय योजना के पहले साल का कार्यक्रम सफलता से पूरा हो गया और उससे आगे भी लोग बढ़ गये, तब आम जनता में एक नया नारा पैदा हुआ : **'पंचवर्षीय योजना चार वर्षो में पूरी करो।'** उद्योग–धंधों की कई शाखायें (तेल, पीट, आम मशीनें बनाने का काम, खेती की मशीनें, बिजली का सामान) अपनी योजनायें इतनी सफलता से पूरी कर रही थीं कि उनकी पंचवर्षीय योजनायें ढाई या तीन साल में पूरी हो सकती थीं। इससे साबित होता था कि 'पंचवर्षीय योजना चार वर्षो में' – यह नारा बिल्कुल सुगम था, और इस तरह जो इसे शक की निगाह से देखते थे उनके अवसरवाद का पर्दाफाश हो गया।

सोलहवीं कांग्रेस ने पार्टी की केन्द्रीय समिति को निर्देश दिया कि वह "इस बात को निश्चित करे कि समाजवादी निर्माण की **उत्साही बोल्शेविक रफ़्तार** बनी रहे और **पंचवर्षीय योजना सचमुच चार साल में पूरी हो जाये।**

जिस समय सोलहवीं पार्टी कांग्रेस हुई, उस समय तक सोवियत संघ की खेती के विकास में महत्वपूर्ण तब्दीली हो चुकी थी। आम किसान जनता समाजवाद की तरफ़ मुड़ चुकी थी। 1 मई 1930 तक, मुख्य अनाज उपजाने वाले इलाकों में 40–50 फ़ीसदी किसान परिवार पंचायतीकरण में शामिल हो चुके थे (जबकि वसन्त 1928 तक 2–3 फ़ीसदी तक ही शामिल हुए थे)। पंचायती खेतों की काश्त की ज़मीन 3 करोड़ 60 लाख हेक्टेयर तक पहुंच गयी।

केन्द्रीय समिति ने 5 जनवरी 1930 के प्रस्ताव में जो कार्यक्रम बढ़ाकर (3 करोड़ हेक्टेयर) रखा था, वह सीमा से ज़्यादा पूरा हो गया था। दो साल की अवधि में, पंचायती खेती के विकास का पंचवर्षीय कार्यक्रम डेढ़ गुना पूरा हो चुका था।

तीन साल में, पंचायती खेतों ने जो बाज़र में उपज भेजी थी, वह 40 गुनी से ज़्यादा बढ़ चुकी थीं। 1930 में ही, बाज़ार के लिये जितना ग़ल्ला आता था उसका आधे से ज़्यादा पंचायती खेतों से आया था, और इसमें सरकारी खेतों के अनाज की बिल्कुल गिनती न थी।

इसका मतलब यह था कि अबसे खेती के भाग्य का निपटारा किसानों के अलग–थलग खेत न करेंगे बल्कि पंचायती और सरकारी खेत करेंगे।

आम किसानों के पंचायती खेतों में शामिल होने से पहले सोवियत सत्ता मुख्यतः समाजवादी उद्योग–धंधों पर निर्भर रहती थी, लेकिन अब वह तेज़ी से बढ़ते हुए खेती के समाजवादी नाके पर, पंचायती और सरकारी खेतों पर भी निर्भर रहने लगी।

जैसा कि 16वीं पार्टी कांग्रेस ने अपने एक प्रस्ताव में कहा था, पंचायती खेतों के किसान 'सोवियत सत्ता के वास्तविक और दृढ़ स्तम्भ' बन गये थे।

3. राष्ट्रीय अर्थतंत्र की सभी शाखाओं के पुनर्संगठन की नीति। कौशल का महत्व। पंचायती खेती के आन्दोलन का और भी प्रसार। मशीन और ट्रैक्टर स्टेशनों के राजनीतिक विभाग। चार साल में पंचवर्षीय योजना पूरी करने के नतीजे। समूचे मोर्चे पर समाजवाद की विजय। सत्रहवीं पार्टी कांग्रेस।

जब भारी उद्योग–धंधे, और खास तौर से मशीन बनाने वाले धंधे, निर्मित हो गये और मज़बूती से अपने पैरों पर खड़े हो गये, और इसके सिवा यह भी स्पष्ट हो गया कि उनका विकास काफ़ी तेज़ रफ़्तार से हो रहा है, तब पार्टी के सामने दूसरा काम यह आया कि राष्ट्रीय अर्थतंत्र की सभी शाखाओं को आधुनिकतम तरीक़े से अप–टू–डेट लाइन पर पुनर्संगठित करे। ईधन के उद्योग–धंधों, धातुओं के उद्योग–धंधों, हल्के उद्योग–धंधों, अन्न के उद्योग–धंधों, लकड़ी के उद्योग–धंधों, लड़ाई का सामान बनाने वाले उद्योग–धंधों, यातायात की व्यवस्था और खेती को आधुनिक कौशल, आधुनिकतम मशीनों से सुसज्जित करे। खेतों की उपज और तैयार माल की माँग में ज़बर्दस्त बढ़ती को देखते हुए, यह ज़रूरी था कि पैदावार की सभी शाखाओं की उपज को दुगुना

और तिगुना बढ़ाया जाये। लेकिन, यह तब तक नहीं हो सकता था जब तक कि मिलें और कारखाने, सरकारी और पंचायती खेत पर्याप्त रूप से अप–टू–डेट सामान से लैस न किये जायें। कारण यह कि उपज की आवश्यक बढ़ती पुराने साज़–सामान से न हो सकती थी।

जब तक राष्ट्रीय अर्थतंत्र की मुख्य शाखाओं को पुनर्संगठित न किया जाये, तब तक देश और उसकी आर्थिक व्यवस्था की नयी और बराबर बढ़ती हुई माँगों को पूरा करना असंभव था।

पुनर्संगठन के बिना, समूचे मोर्चे पर समाजवाद के हमले को पूरा करना असंभव होगा। कारण यह कि शहर और देहात के पूंजीवादी तत्वों से न सिर्फ़ श्रम और सम्पत्ति के नये संगठन द्वारा लड़ना और उन्हें हराना था, बल्कि नये कौशल द्वारा, कौशल की श्रेष्ठता द्वारा भी लड़ना और उन्हें हराना था।

पुनर्संगठन के बिना, आर्थिक रूप से और कौशल में आगे बढ़े हुए पूंजीवादी देशों के बराबर पहुँचना और आगे निकल जाना असंभव होगा। कारण यह कि सोवियत संघ औद्योगिक विकास की रफ़्तार में तो पूंजीवादी देशों से आगे निकल गया था, लेकिन औद्योगिक विकास की सतह में, औद्योगिक उपज की तादाद में वह उनसे अब भी बहुत पीछे था।

हम उनके बराबर पहुँच जायें, इसके लिए ज़रूरी था कि पैदावार की हर शाखा नये कौशल से लैस की जाये और कौशल की सबसे अप–टू–डेट लाइन पर पुनर्संगठित की जाये।

इस तरह, कौशल का सवाल निर्णायक महत्व का सवाल बन गया था।

हमारे मशीनें बनाने वाले उद्योग–धंधों आधुनिक ढंग का सामान दे सकते थे, इसलिये इस काम में मुख्य बाधा आधुनिक मशीनों और कलपुर्जों का अभाव इतनी न थी जितनी कि हमारे प्रबंधकों का कौशल के प्रति ग़लत रवैया, पुनर्संगठन के दौर में कौशल के महत्व को कम करके आँकने और उसे घृणा से देखने की प्रवृति थी। उनकी राय में कौशल की बातें 'विशेषज्ञों' के लिये थीं, वे गौण महत्व की चीजें थीं, जिन्हें 'पूंजीवाद विशेषज्ञों' के हाथ में छोड़ा जा सकता था। उनका विचार था कि कम्युनिस्ट प्रबंधकों को पैदावार के कौशल सम्बन्धी पहलू में दखल न देना चाहिये और उन्हें अधिक महत्वपूर्ण पहलू यानी उद्योग–धंधों के 'आम' प्रबंध की तरफ़ ध्यान देना चाहिये।

इसलिये पैदावार के मामले में, पूंजीवादी 'विशेषज्ञों' को पूरी छूट मिली हुई थी और कम्युनिस्ट प्रबंधकों ने अपने लिये 'आम' संचालक का काम, **काग़जों** पर दस्तख़त करने का काम रख छोड़ा था।

कहना न होगा कि इस तरह का रवैया होने पर 'आम' संचालन लाज़िमी तौर पर संचालन का मखौल भर रह जाता था, काग़जों पर थोथी दस्तख़तबाजी, काग़जों का निरर्थक उलटफेर भर रह जाता था।

यह स्पष्ट है कि अगर कम्युनिस्ट प्रबंधक कौशल के मामलों की तरफ़ यह घृणा का रवैया बनाये ही रहते तो आगे बढ़े हुए पूंजीवादी देशों से आगे निकलना तो दरकिनार हम उनके बराबर भी न पहुँच पाते। इस तरह का रवैया, खास तौर से पुनर्संगठन के दौर में, हमारे देश को पिछड़ा बना रहने के लिये मज़बूर करता और विकास की हमारी रफ़्तार घटा देता। हक़ीक़त यह थी कि कौशल सम्बन्धी मामलों की तरफ़ यह रवैया कम्युनिस्ट प्रबंधकों के एक हिस्से की इस गुप्त इच्छा के लिये एक नक़ाब, एक पर्दा था कि वे औद्योगिक विकास की रफ़्तार को घटा दें, रोक दें, जिससे कि उनका 'काम आसान रहे' और पैदावार की जिम्मेदारी वे 'विशेषज्ञों' पर डाल सकें।

यह ज़रूरी था कि कम्युनिस्ट प्रबंधकों का ध्यान कौशल सम्बन्धी मामलों की तरफ़ खींचा जाये,. उनके अन्दर कौशल का शौक़ पैदा किया जाये। उन्हें यह बताना ज़रूरी था कि बोल्शेविक प्रबंधकों के लिये आधुनिक कौशल पर हावी होना एकदम ज़रूरी है, वर्ना हम इस खतरे का सामना करेंगे कि अपने देश को पिछड़ेपन और ठहराव की दशा में रहने के लिये मज़बूर करे दें।

जब तक यह समस्या हल न होती थी तब तक आगे प्रगति असंभव थी।

इस सिलसिले में, औद्योगिक प्रबंधकों की पहली कान्फ्रेंस (फरवरी 1931) में कॉमरेड स्तालिन का भाषण बहुत ही महत्वपूर्ण था।

कॉमरेड स्तालिन ने कहा था :

"कभी–कभी यह पूछा जाता है कि रफ़्तार को थोड़ा कम कर देना, प्रगति पर थोड़ी रोक लगाना क्या संभव नहीं है। नहीं साथियों, यह संभव नहीं है। रफ़्तार कम न करनी चाहिये! ...रफ़्तार कम करने का मतलब होगा, पीछे रह जाना। और जो पीछे रह जाते हैं, वे मार खाते हैं। लेकिन, हम मार नहीं खाना चाहते। नहीं, मार खाना हमें क़तई मंजूर नहीं।

"पुराने रूस के इतिहास की एक विशेषता यह थी कि पीछे रहने की वजह से, अपने पिछड़ेपन की वजह से उसने बार–बार मार खाई। मंगोल खानों ने उसे पीटा। तुर्क सरदारों ने उसे पीटा। स्वीडन के सामन्तों ने उसे पीटा। पोलैण्ड और लिथुआनिया के ज़मींदारों ने उसे पीटा। ब्रिटेन और फ्रांस के पूंजीपतियों ने उसे पीटा। जापानी जागीरदारों ने उसे पीटा। सबने उसे पीटा – उसके पिछड़ेपन की वजह से।...

"आगे बढ़े हुए देशों से हम पचास या सौ साल पीछे हैं। यह फ़ासला हमें दस साल में तय करना है। या तो हम उसे तय करते हैं, या वे हमे कुचल डालेंगे।

"ज्यादा से ज्यादा दस साल में, हम आगे बढ़े हुए पूंजीवादी देशों से जितना पीछे हैं उतना, फ़ासला हमें तय करना है। हमारे पास ऐसा करने के लिये सभी 'वस्तुगत' अवसर मौजूद हैं। एक ही चीज़ की क़मी है – इन अवसरों से ठीक फ़ायदा उठाने की योग्यता। और यह हम निर्भर है। **सिर्फ़** हम पर। वक्त आ गया है कि हम इन अवसरों से काम लेना सीखें। वक़्त आ गया है कि पैदावार में दखल न देने की सड़ी हुई नीति को हम खत्म करें। वक्त आ गया है कि हम एक नयी नीति, एक समयानुकूल नीति, हर चीज़ में दख़ल देने की नीति अपनायें। अगर तुम कारखाने के मैनेजर हो तो कारखाने के सभी मामलों में दख़ल दो। हर चीज देखो–भालो, कोई चीज़ भी आँख से ओझल न होने दो; सीखो और फिर सीखो। बोल्शेविकों को चाहिये कि कौशल पर हावी हों। वक़्त आ गया है कि बोल्शेविक ही खुद विशेषज्ञ बनें। **पुनर्संगठन के दौर में हर चीज का फ़ैसला कौशल पर निर्भर है।"** (स्तालिन ***लेनिनवाद की समस्यायें,*** अं•सं•, मास्को, 1947, पृष्ठ 355–58)।

कॉमरेड स्तालिन के भाषण का ऐतिहासिक महत्व इस बात में है कि उसने कौशल की तरफ़ कम्युनिस्ट प्रबंधकों के नफ़रत के रवैये को खत्म कर दिया, उसने उन्हें कौशल के सवाल से आँखें चार करने पर मज़बूर किया, उसने खुद बोल्शेविकों द्वारा कौशल पर हावी होने के संघर्ष का नया दौर शुरू किया, और इस तरह आर्थिक पुनर्संगठन के काम को आगे बढ़ाने में मदद दी।

इसके बाद से, कौशल का ज्ञान पूंजीवादी 'विशेषज्ञों' का इजारा न रह गया और खुद बोल्शेविक प्रबंधकों के लिये बहुत ही महत्व की बात हो गया। और, 'विशेषज्ञ' शब्द लोगों को नीचा दिखाने के लिये नहीं रहा बल्कि खुद उन बोल्शेविकों का गौरववाचक सम्बोधन हो गया जो कौशल पर हावी हो गये थे।

इसके बाद, हज़ारों लाल विशेषज्ञों की पलटनें की पलटनें तैयार होनी थीं, और हुईं, जो कौशल पर हावी हो चुकी थीं और जो उद्योग–धंधों का संचालन कर सकती थीं।

ये कौशल जानने वाले, नये सोवियत बुद्धिजीवी थे, मज़दूर वर्ग और किसानों के बुद्धिजीवी थे। हमारे उद्योग–धंधों के प्रबंध में अब वे मुख्य शक्ति हैं।

इन सबसे आर्थिक पुनर्संगठन का काम आगे बढ़ता था, और वह आगे बढ़ा।

पुनर्संगठन का काम उद्योग–धंधों और यातायात तक समिति न रहा। वह खेती में और भी तेज़ी से बढ़ा। इसका कारण ढूंढ़ने दूर न जाना पड़ेगा। दूसरी शाखाओं के मुक़ाबिले में, खेती में मशीनें कम चलीं थीं और यहाँ पर आधुनिक मशीनों की ज़रूरत दूसरी जगहों से ज़्यादा महसूस होती थी। अब यह एकदम ज़रूरी था कि आधुनिक खेती की मशीनों को ज़्यादा–से–ज़्यादा भेजा जाये क्योंकि पंचायती खेती की संख्या माह–दर–माह और हफ़्ते–दर–हफ़्ते बढ़ रही थी, और उसके साथ हजारों ही ट्रैक्टरों और खेती की दूसरी मशीनों की माँग बढ़ रही थी।

1931 के साल में, पंचायती खेती के आन्दोलन की और भी प्रगति देखी गयी। अनाज उपजाने वाले मुख्य जिलों में, 80 फ़ीसदी से ऊपर किसानों के निजी खेत मिलकर पंचायती खेत बन चुके थे। यहाँ पर मुख्य रूप से अभी भी पंचायतीकरण पूरा हो चुका था। कम महत्व के अनाज पैदा करने वाले जिलों में और उन जिलों में जो औद्योगिक फ़सलें पैदा करते थे, 50 फ़ीसदी से ऊपर निजी खेती करने वाले किसान पंचायती खेतों में शामिल हो चुके थे। अब तक दो लाख पंचायती खेत थे और चार हजार सरकारी खेत थे, जो देश की कुल काश्त का दो–तिहाई भाग जोतते–बोते थे; नीजि खेती करने वाले किसान सिर्फ़ एक–तिहाई भाग जोतते–बोते थे।

देहात में समाजवाद के लिये यह बहुत बड़ी विजय थी।

लेनिक, पंचायती खेती के आन्दोलन की प्रगति अभी गहराई के मुक़ाबिले में चौड़ाई में ही ज्यादा नापी जा सकती थी। पंचायती खेत तादाद में बढ़ रहे थे और एक ज़िले से दूसरे ज़िले में फैल रहे थे, लेकिन पंचायती खेतों के काम में या उनके कार्यकर्त्ताओं के कौशल में उतनी ही उन्नति न हुई थी। इसका सबब यह था कि पंचायती खेतों के प्रमुख कार्यकर्त्ताओं और शिक्षित आदमियों की बढ़ती खुद पंचायती खेतों की तादाद की बढ़ती का साथ न दे पा रही थी। इसका नतीजा यह हुआ कि नये पंचायती खेतों का काम हमेशा संतोषजनक न होता था, और खुद पंचायती खेत अभी कमज़ोर थे। देहात में पंचायती खेतों के लिये अनिवार्य रूप से आवश्यक शिक्षित आदमी (हिसाव रखने वाले, स्टोर मैनेजर, मंत्री, वग़ैरह) कम थे, और किसान बड़े पैमाने के पंचायती धंधों का

प्रबंध करने में अनुभवहीन थे। इन कारणों से भी, पंचायती खेतों की प्रगति रुकती थी। पंचायती खेतों के किसान कल तक निजी खेती करने वाले किसान थे। उन्हें छोटे खेतों में किसानी का तजुर्बा था, लेकिन बड़े, पंचायती खेतों का प्रबंध करने का कोई तजुर्बा न था। यह तजुर्बा एक दिन में हासिल न हो सकता था।

इसलिये, पंचायती खेती के काम की शुरू की मंजिलों में गंभीर दोष पाये गये। यह देखा गया कि पंचायती खेतों में काम का संगठन अब भी बुरा है। श्रम सम्बन्धी अनुशासन ढीला है। बहुत से पंचायती खेतों में आमदनी का बँटवारा काम के दिनों के हिसाब से नहीं होता, बल्कि कुनबे में खाने वालों की तादाद के हिसाब से होता था। अक्सर ऐसा होता था कि ईमानदारी से सख्त मेहनत करने वाले पंचायती किसानों के मुक़ाबिले में ढील डालने वाले ज्यादा हिस्सा पाते थे। पंचायती खेतों के प्रबंध के इन दोषों से, उनके सदस्यों की पहल–क़दमी घटती थी। बहुत बार ऐसा होता था कि ऐन मौसिम के दिनों में भी पंचायती खेतों के सदस्य काम से ग़ैरहाजिर हो जाते थे और फ़सल का एक हिस्सा ठंड में बर्फ़ गिरने तक भी बिना काटे पड़ा रहने देते थे, और कटाई का काम इतनी लापरवाही से होता था कि बहुत सा ग़ल्ला बरबाद हो जाता था। मशीनों, घोड़ों और आम तौर से काम के बारे में व्यक्तिगत ज़िम्मेदारी न होने से, पंचायती खेत कमज़ोर हो जाते थे और उनकी आमदनी कम हो जाती थी।

हालत खास तौर पर तब खराब होती थी जब कुलक या उनके गुर्गे पंचायती खेतों में घुस आते थे और वहाँ विश्वास की जगहें पा जाते थे। यह बात अनूठी न थी कि कुलक उन ज़िलों में चले जायें जहाँ लोग उन्हें जानते न थे, और वहाँ पंचायती खेतों में तोड़–फोड़ करने और शरारत करने के निश्चित इरादे से उनमें घुस जायें। कभी–कभी पार्टी कार्यकर्त्ताओं और सोवियत कर्मचारियों की चौकसी के अभाव में, कुलक अपने ही जिलों के पंचायती खेतों में पैठ जाते थे। पंचायती खेतों में भूतपूर्व कुलकों का घुसना इसलिये आसान हो गया कि उन्होंने अपने दाँव–पेच बुनियादी तौर से बदल दिये थे। पहले वे पंचायती खेतों से खुलकर लड़े थे, उन्होंने पंचायती खेतों के प्रमुख कार्यकर्त्ताओं और सबसे आगे बढ़े हुए पंचायती किसानों पर निर्दयता से जुल्म किये थे, नीचता से उनकी हत्या की थी, उनके घर और खलिहान जला दिये थे। उन्होंने सोचा था कि इन तरीकों से वे आम किसानों को डरा देंगे और उन्हें पंचायती खेतों में शामिल होने से रोक लेंगे। पंचायती खेतों के खिलाफ़ उनकी यह खुली लड़ाई असफल हो गयी थी, इसलिये उन्होंने अपने दाँव–पेच बदल दिये थे। उन्होंने अपनी भरी हुई बंदूकें अगल रख दी थीं और ऐसे सीधे–सादे, भोले–भाले बन गये जो चींटी पर भी पाँव न रखें। वे सोवियतों के वफ़ादार समर्थक बनने का बहाना करने लगे। एक बार पंचायती खेतों में घुस आने पर, वे चोरी–चोरी तोड़–फोड़ करते रहते थे। वे कोशिश करते थे कि पंचायती खेतों को भीतर

से तोड़ें, श्रम सम्बन्धी अनुसाशन कमज़ोर करें और फ़सल का हिसाब–किताब गड़बड़ करें, और जो काम किया जाये, उसका हिसाब बिगाड़ दें। उनकी नीच योजना का यह एक अंग था कि पंचायती खेतों के घोड़ों में गलतोड़, खाज और दूसरी छूत की बीमारियां लगाकर उन्हें मार डालें, या उनकी देखभाल न करके या ऐसे ही दूसरे उपायों से उन्हें अपाहिज़ कर दें। इन कामों में, वे अक्सर सफल भी होते थे। उन्होंने ट्रैक्टरों और खेतों की मशीनों को नुकसान पहुँचाया।

कुलक अक्सर पंचायती खेतों के किसानों को इसलिये धोखा दे लेते थे और बिना सजा पाये तोड़–फोड़ कर जाते थे कि पंचायती खेत अब भी कमज़ोर थे और उनके कर्मचारी अभी अनुभवहीन थे।

कुलकों की तोड़–फोड़ खत्म करने के लिये और पंचायती खेतों को जल्द मज़बूत करने के लिये, उन्हें आदमी, सलाह और नेतृत्व के रूप में तुरंत ही कारगर मदद देनी ज़रूरी थी।

यह मदद बोल्शेविक पार्टी से मिलने वाली थी।

पार्टी के केन्द्रीय समिति ने जनवरी 1933 में, पंचायती खेतों के लिये काम करने वाले मशीन और ट्रैक्टर स्टेशनों में **राजनीतिक विभाग** संगठित करने का फ़ौसला किया। लगभग 17,000 पार्टी कार्यकर्त्ता इन राजनीतिक विभागों में काम करने के लिये और पंचायती खेतों की सहायता करने के लिये देहात भेजे गये।

यह सहायता बहुत ही कारगर हुई।

दो वर्षों (1933 और 1934) में, मशीन और ट्रैक्टर स्टेशनों के राजनीतिक विभागों ने पंचायती किसानों का एक सक्रिय दल बनाने में, पंचायती खेतों के काम के दोष दूर करने में, उन्हें मज़बूत करने में और कुलक शत्रुओं और तोड़–फोड़ करने वालों से उन्हें मुक्त करने में बहुत सा काम किया।

राजनीतिक विभागों ने अपना काम सम्मान सहित पूरा किया। उन्होंने संगठन और योग्यता, दोनों ही तरह से पंचायती खेतों को मज़बूत किया, उनके लिये कुशल कार्यकर्त्ता तैयार किये, उनका प्रबंध सुधारा और पंचायती खेतों के सदस्यों की राजनीतिक सतह ऊंची की।

पंचायती खेतों को मज़बूत करने में, पंचायती किसानों को प्रेरणा देने में, पंचायती खेतों के अग्रिम कार्यकर्त्ताओं की पहली अखिल संघीय कांग्रेस (फ़रवरी 1933), और इस कांग्रेस में कॉमरेड स्तालिन के भाषण का बहुत महत्व था।

देहात की पुरानी, पंचायती खेतों से पहले की व्यवस्था की नयी, पंचायती खेतों की व्यवथा से तुलना करते हुए, कॉमरेड स्तालिन ने कहा था :

"पुरानी व्यवस्था में, हर किसान अलग–थलग काम करता था, अपने बाप–दादों के पुराने तरीकों पर ही चलता था और मेहनत के पुराने पड़ चुके औज़ार इस्तेमाल करता था। वह ज़मींदारों और पूंजीपतियों के लिये, कुलकों और मुनाफ़ाखारों के लिये काम करता था और दूसरों को अमीर बनाते हुए, ग़रीबी में दिन काटता था। नयी, पंचायती खेती की व्यवस्था में, किसान मिलजुल कर, परस्पर सहयोग से काम करते हैं, आधुनिक औज़ारों – ट्रैक्टरों और खेती की मशीनों – की मदद से काम करते हैं। वे अपने लिये और पंचायती खेतों के लिये काम करते हैं। वे पूंजीपतियों और ज़मींदारों के बिना, कुलकों और मुनाफ़ाखोरों के बिना रहते हैं। वे अपनी खुशहाली और संस्कृति का स्तर दिन प्रतिदिन ऊँचा करने के उद्देश्य से काम करते हैं।" (स्तालिन, ***लेनिनवाद की समस्यायें,*** अं•सं•, मास्को, 1947, पृष्ठ 443)।

कॉमरेड स्तालिन ने अपने भाषण में बतलाया कि पंचायती खेती का रास्ता अपनाने से किसानों ने क्या पाया है। बोल्शेविक पार्टी ने लाखों ग़रीब किसानों की मदद की थी कि वे पंचायती खेतों में शामिल हों और कुलक–दासता से बच सकें। पंचायती खेतों में शामिल होकर और काम के लिये सबसे बढ़िया ज़मीनें और पैदावार के सबसे अच्छे साधन इस्तेमाल करके, वे लाखों ग़रीब किसान जो पहले ग़रीबी में दिन काटते थे, अब पंचायती किसान बनकर मध्यम किसानों की सतह तक उठ आये थे, और अब उन्हें रोटी–रोज़ी की चिन्ता न रह गयी थी।

पंचायती खेतों के विकास में यह पहला कदम था, पहली सफलता थी।

कॉमरेड स्तालिन ने कहा कि दूसरा क़दम यह है कि पंचायती किसानों को – पहले के ग़रीब किसानों और पहले के मध्यम किसानों, **दोनों** को ही – और भी ऊँचे स्तर तक उठाया जाये, सभी पंचायती किसानों को खुशहाल और सभी पंचायती खेतों को बोल्शेविक बनाया जाये।

कॉमरेड स्तालिन ने कहा :

"पंचायती किसानों को खुशहाल बनाने के लिये सिर्फ़ एक चीज़ करना ज़रूरी है और वह यह कि वे पंचायती खेतों में पूरी ईमानदारी से काम करें, वे ट्रैक्टरों और मशीनों से योग्यतापूर्वक काम लें, काश्त के जानवरों का योग्यता से इस्तेमाल करें, योग्यता से ज़मीन जोतें–बोयें और पंचायती खेतों की सम्पति की देखभाल करें।" (***उपर्युक्त*** पृष्ठ 448)।

लाखों पंचायती किसानों पर कॉमरेड स्तालिन के भाषण का गहरा असर पड़ा, और वपह पंचायती खेतों के लिये एक अमली कार्यक्रम बन गया।

1934 के आखिर तक पंचायती खेत सबल और अजेय शक्ति बन गये। सोवियत संघ के तीन–चौथाई किसान परिवार अभी भी उनमें शामिल थे और कुल खेती की 90 फिसदी ज़मीन अब तक उनमें आ चुकी थी।

1934 में ही, सोवियत गाँवों में 2,81,000 ट्रैक्टर और 32,000 हार्वेस्टर कम्बाइन मशीनें काम करती थीं। उस साल, चैत की बुवाई 1933 के मुक़ाबिल में 15–20 दिन पहले पूरी हो गयी, और 1932 के मुक़ाबिले में 30–40 दिन पहले पूरी हो गयी। राज्य को ग़ल्ला देने की योजना 1932 से तीन महीने पहले ही पूरी हो गयी।

इससे ज़ाहिर होता था कि पार्टी से और मज़दूर–किसान राज्य से भारी सहायता मिलने की बदौलत दो साल में पंचायती खेत कितनी मज़बूती से क़ायम हो गये थे।

पंचायती खेती की व्यवस्था की पक्की जीत से और उसके साथ होने वाले खेती के सुधार से, सोवियत सरकार अन्न और दूसरी तमाम उपज का राशन खत्म कर सकी और खाद्य–सामग्री की बेरोक बिक्री चालू कर सकी।

मशीनों और ट्रैक्टर स्टेशनों के राजनीतिक विभाग जिस काम के लिये अस्थायी रूप से बनाये गये थे वह पूरा हो गया था। इसलिये, केन्द्रीय समिति ने फ़ैसला किया कि अपनी–अपनी जगह ज़िला पार्टी समितियों में मिलाकर, उन्हें साधारण पार्टी संस्थाएँ बना दिया जाये।

खेती और उद्योग–धंधे, दोनों ही में यह सभी सफलतायें इसी वजह से हुई कि पंचवर्षीय योजना क़ामयाबी से पूरी की जा चूकी थीं।

1933 के आरम्भ होने तक, यह स्पष्ट हो गया था कि पहली पंचवर्षीय योजना समय से पहले पूरी हो चुकी है, 4 साल 3 महीने में पूरी हो चुकी है।

सोवियत संघ के मज़दूर वर्ग और किसानों के लिये, यह एक महान् और युगान्तरकारी विजय थी।

जनवरी 1933 में, केन्द्रीय समिति और पार्टी के केन्द्रीय कन्ट्रोल–कमीशन की प्लीनरी बैठक में रिपोर्ट देते हुए, कॉमरेड स्तालिन ने पहली पंचवर्षीय योजना के नतीजों का सिंहावलोकन किया। रिपोर्ट ने यह बात साफ कर दी कि पहली पंचवर्षीय

योजना को पूरा करने की अवधि में, पार्टी और सोवियत सरकार ने नीचे लिखे हुए बड़े नतीजे हासिल किय थे :

(क) सोवियत संघ खेतिहर देश से औद्योगिक देश बनाया जा चुका था, क्योंकि औद्योगिक उपज देश की तमाम पैदावार की 70 फ़ीसदी तक पहुँच गयी थी।

(ख) समाजवादी आर्थिक व्यवस्था ने उद्योग–धंधों के क्षेत्र में पूंजीवादी तत्वों को खत्म कर दिया था, और अब वह उद्योग–धंधों में एकमात्र आर्थिक व्यवस्था रह गयी थी।

(ग) समाजवादी आर्थिक व्यवस्था ने 'वर्ग रूप' में कुलकों को खेती के क्षेत्र से बाहर कर दिया था और वह खेती में प्रमुख शक्ति बन गयी थी।

(घ) पंचायती खेती की व्यवस्था ने गाँव में दरिद्रता और अभाव खत्म कर दिया था और लाखों ग़रीब किसान रोजी–रोटी की चिन्ता से मुक्त होने की सतह तक आ गये थे।

(ड.) उद्योग–धंधों में, समाजवादी व्यवस्था ने बेकारी खत्म कर दी थी और कई शाखाओं में आठ घंटे का दिन क़ायम रखते हुए, बाक़ी तमाम धंधों में सात घंटे का दिन और अस्वास्थ्यकर कामों में छः घंटे का दिन चालू कर दिया था।

(च) राष्ट्रीय अर्थतंत्र की सभी शाखाओं में, समाजवाद की जीत ने मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण को खत्म कर दिया था।

पहली पंचवर्षीय योजना की सफलताओं का सार–तत्व यह था कि उन्होंने मज़दूरों और किसानों को शोषण के जुएं से पूरी तरह आज़ाद कर दिया था, और सोवियत संघ में सभी कामकाजी जनता के लिये खुशहाल और सुसंस्कृत जीवन का दरवाजा खोल दिया था।

जनवरी 1934 में, पार्टी ने सत्रहवीं कांग्रेस की। इसमें 18,74,488 पार्टी सदस्यों और 9,35,298 उम्मीदवार सदस्यों की तरफ़ से 1,225 वोट देने वाले प्रतिनिधि और 736 बोलने लेकिन वोट न दे सकने वाले प्रतिनिधि शामिल हुए।

पिछली कांग्रेस से अब तक पार्टी ने जो काम किया था, कांग्रेस ने उसका लेखा–जोखा लिया। आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन के सभी अंगों में समाजवाद ने जो निर्णायक सफलतायें पायी थीं, कांग्रेस ने उन्हें नोट किया और यह बात भी दर्ज की कि पार्टी की आम नीति सारे मोर्चे पर विजयी हुई है।

इतिहास में, सत्रहवीं पार्टी कांग्रेस 'विजेताओं की कांग्रेस' कहलाती है। केन्द्रीय समिति के काम की रिपोर्ट देते हुए, कॉमरेड स्तालिन ने बताया कि जिस दौर का लेखा–जोखा लिया जा रहा है उसमें सोवियत संघ के अन्दर कौन से बुनियादी परिवर्तन हुए हैं :

> "इस दौर में, सोवियत संघ मूल रूप से बदला जा चुका है और पिछड़ेपन और मध्य काल की केंचुल उतार कर फेंक चुका है। खेतिहर देश से, अब वह औद्योगिक देश बन गया है। छोटे पैमाने की निजी खेती के देश से, वह पंचायती, मशीनों से होने वाली बड़े पैमाने की खेती का देश बन गया है। एक अपढ़, अज्ञानी और असंस्कृत देश से, वह शिक्षित और सुसंस्कृत देश बन गया है – या कहना चाहिये बन रहा है – जिसमें उच्च, माध्यमिक और प्राथमिक स्कूलों का एक विशाल जाल बिछा हुआ है, जो सोवियत संघ की जातियों की भाषाओं में शिक्षा देते हैं।" (स्तालिन, ***लेनिनवाद की समस्यायें,*** अं•सं•, मास्को, 1947, पृष्ठ 470)।

इस समय तक, देश के 99 फ़ीसदी उद्योग–धंधे समाजवादी हो चुके थे। समाजवादी खेती – पंचायती और सरकारी खेतों – में, देश की कुल खेती की भूमि का 90 फ़ीसदी हिस्सा आ गया था। जहाँ तक व्यापार का सवाल था, इस क्षेत्र से पूंजीवादी तत्व पूरी तरह निकाले जा चुके थे।

जब नयी आर्थिक नीति शुरू की जा रही थी, तब लेनिन ने कहा था कि हमारे देश में पांच सामाजिक आर्थिक रूपों के तत्व हैं। पहला रूप दादापंथी आर्थिक व्यवस्था का था, जो बहुत करके आर्थिक व्यवस्था का कुदरती रूप था, यानी जिसमें प्रायः कुछ भी व्यापार न होता था। दूसरा रूप छोटे पैमाने के बिकाऊ माल की पैदावार का था। यह रूप अधिकांश खेतों में देखा जाता था, जो अपनी खेती की उपज बेचते थे और कारीगरों के रूप में भी यह व्यवस्था देखी जाती थी। नेप के पहले वर्षों में, अधिकांश आबादी इसी आर्थिक रूप में शामिल थीं। तीसरा रूप व्यक्तिगत पूंजीवाद का था, जो नेप के प्रारंभिक दौर में फिर जागने लगा था। चौथा रूप रियासती पूंजीवाद का था, मुख्यतः रियायतों की शक्ल में, जो काफ़ी हद तक विकसित न हुआ था। पांचवां रूप समाजवाद का था : समाजवादी उद्योग–धंधे जो अभी कमज़ोर थे, सरकारी और पंचायती खेत, जो नेप के आरम्भ में आर्थिक दृष्टि से नगण्य थे, सरकारी व्यापार और सहकार समितियाँ, जो उस समय कमज़ोर थीं।

लेनिन ने कहा था कि इन सभी रूपों में समाजवादी रूप को सबसे आगे आना चाहिये।

नयी आर्थिक नीति यों बनायी गयी थी कि आर्थिक व्यवस्था के समाजवादी रूपों की पूरी जीत हो।

सत्रहवीं पार्टी कांग्रेस के समय तक, यह उद्देश्य पूरा भी हो चुका था।

कॉमरेड स्तालिन ने कहा था :

"हम अब कह सकते हैं कि पहला, तीसरा और चौथा सामाजिक आर्थिक रूप अब नहीं है। दूसरा सामाजिक आर्थिक रूप गौण जगह ठेल दिया गया है, और पाँचवां सामाजिक आर्थिक रूप – समाजवादी रूप – अव सर्वेसर्वा बन गया है, और समूचे राष्ट्रीय अर्थतंत्र में एकमात्र प्रभावशाली शक्ति बन गया है।" (*उप०,* पृष्ट 472)।

कॉमरेड स्तालिन की रिपोर्ट में, सैद्धान्तिक–राजनीतिक नेतृत्व के सवाल को अहम जगह दी गयी थी। उन्होंने पार्टी को चेतावनी दी थी कि हालाँकि उसके दुश्मन, सभी रंग–रूप के अवसरवादी और राष्ट्रवादी भटकाव वाले हराये जा चुके हैं, लेकिन उनकी विचारधारा के अवशेष अब भी कुछ पार्टी सदस्यों के दिमाग़ में बाक़ी हैं, और अक्सर आगे आ जाते हैं। आर्थिक जीवन में और खास तौर से लोगों के दिमाग में, पूंजीवाद के अवशेष एक ऐसी उपजाऊ भूमि है जहाँ हारे हुए लेनिनवाद–विरोधी गुटों की विचारधारा पनपती है। लोगों की जहनियत उनकी आर्थिक हालत के विकास के साथ नहीं बढ़ती चलती। नतीजा यह होता है कि पूंजीवादी विचारों के अवशेष लोगों के दिमाग़ में फिर भी थे, और तब भी रहेंगे जबकि पूंजीवाद आर्थिक जीवन से खत्म भी कर दिया जायेगा। यह भी ध्यान रखना चाहिये कि चारों तरफ़ की पूंजीवादी दुनिया, जिसके खिलाफ़ हमें अपनी तलवार का पानी बनाये रखना है, इन अवशेषों को जगाने और पालने–पोसने की कोशिश कर रही थी।

कॉमरेड स्तालिन ने जातियों के सवाल पर लोगों के दिमाग़ में जो पूंजीवाद के अवशेष थे और जहाँ उनकी जड़ें खास तौर से मज़बूत थीं, उनकी भी चर्चा की। बोल्शेविक पार्टी दो मोर्चो पर लड़ रही थी, वृहत् रूसी अंधराष्ट्रवाद के खिलाफ़ और स्थानीय राष्ट्रवाद के ख़िलाफ, दोनों ही भटकावों से लड़ रही थी। कई प्रजातंत्रों में (उक्रैन, बेलोरूसिया, वगैरह में) पार्टी–संगठनों ने स्थानीय राष्ट्रवाद के खिलाफ़ संघर्ष ढीला कर दिया था और उसे इस हद तक बढ़ जाने दिया था कि वह जन विरोधी शक्तियों से, हस्तक्षेप की शक्तियों से मिल गया था और राज्य के लिये खतरा बन गया था। जातियों के सवाल पर कौन सा भटकाव ज़्यादा खतरनाक है, इस सवाल का जवाब देते हुए, कॉमरेड स्तालिन ने कहा था :

"ज्यादा खतरनाक भटकाव वह है जिसके ख़िलाफ़ हमने लड़ना बन्द कर दिया है, और इस तरह उसे राज्य के लिये खतरा बन जाने दिया है।" (*उप०,* पृष्ठ 507)

कॉमरेड स्तालिन ने पार्टी का आह्वान किया कि वह सैद्धान्तिक–राजनीतिक काम में और सक्रिय हो, विरोधी वर्गों की विचारधारा और उसके अवशेषों का और लेनिनवाद के विरोधी रुझानों का बाक़ायदे पर्दाफाश करें।

उन्होंने अपनी रिपोर्ट में, आगे बताया कि सही फ़ैसले लेने से ही सफलता पक्की नहीं हो जाती। सफलता पक्की करने के लिये, यह ज़रूरी है कि **ठीक आदमी ठीक जगह पर रखे जायें,** ऐसे आदमी जो प्रमुख संस्थाओं के फ़ैसलों को अमल में ला सकें और फ़ैसले **पूरे करने की निगरानी** कर सकें। इन संगठनात्मक उपायों के बिना, यह खतरा था कि फ़ैसले अमली जीवन से जुदा रह कर काग़ज के टुकड़े भर बने रहें। इस बात के समर्थन में, कॉमरेड स्तालिन ने लेनिन की इस प्रसिद्ध उक्ति का हवाला दिया कि संगठन के काम में मुख्य बात **आदमियों का चुनाव और फ़ैसले पूरे करने की निगरानी** है। कॉमरेड स्तालिन ने कहा कि जो फ़ैसले लिये जाते हैं और उन्हें अमल में लाने के लिये और उन्हें पूरा करने की निगरानी रखने के लिये जो संगठनात्मक काम किया जाता है, उनके बीच की दरार हमारे अमली काम का मुख्य दोष है।

पार्टी और हुकूमत के फ़ैसलों को पूरा करने की और उनकी अच्छी देखभाल रखने के लिये, सत्रहवीं पार्टी कांग्रेस ने सो•सं•क•पा•(बो•) के आधीन एक पार्टी कन्ट्रोल–कमीशन बनाया और सोवियत संघ की जन–कमिसार समिति के आधीन एक सोवियत कंट्रोल–कमिसन बनाया। इन्होंने मज़दूर–किसान निगरानी और केन्द्रीय कन्ट्रोल–कमीशन की संयुक्त संस्था की जगह ली। बारहवीं पार्टी कांग्रेस ने जिस काम के लिये यह संस्था बनायी थी, वह काम पूरा हो चुका था।

कॉमरेड स्तालिन ने नयी मंजिल में पार्टी के संगठनात्मक कामों की रूप–रेखा इस तरह समाने रखी थीं :

(1) हमारा संगठनात्मक काम पार्टी की राजनीतिक नीति की ज़रूरतों के अनुकूल होना चाहिये;

(2) संगठनात्मक नेतृत्व को राजनीतिक नेतृत्व की सतह तक उठाना चाहिये;

(3) संगठनात्मक नेतृत्व को पूरी तरह इस योग्य बनाना चाहिये कि वह पार्टी के राजनीतिक नारों और फ़ैसलों को निश्चित रूप से अमल में ला सकें।

अंत में, कॉमरेड स्तालिन ने पार्टी को सावधान किया कि हालाँकि समाजवाद ने भारी सफलताएँ प्राप्त की हैं, ऐसी सफलतायें जिन पर हम सही गर्व कर सकते हैं, लेकिन इससे हमें बदहवास न होना चाहिये, अपना 'सिर न फिर जाने देना चाहिये', सफलता पर पाँव फैलाकर सो न जाना चाहिये।

कॉमरेड स्तालिन ने कहा :

"...हमें पार्टी को थपकी देकर सुलाना न चाहिये, बल्कि उसकी चौकसी तेज करनी चाहिये; उसे थपकी देकर सुलाना न चाहिये, बल्कि काम करने के लिये उसे तैयार रखना चाहिये; उसे निहत्थी न करना चाहिये, बल्कि हथियारबन्द करना चाहिये; उसे भंग न करना चाहिये, बल्कि दूसरी पंचवर्षीय योजना पूरी करने के लिये उसे मुस्तैद रखना चाहिये।"(***उप.***, पृष्ठ 517)

राष्ट्रीय अर्थतंत्र के विकास के लिये, दूसरी पंचवर्षीय योजना पर सत्रहवीं कांग्रेस ने कॉमरेड मोलोतोव और कुइविशेव की रिपोर्टें सुनीं। दूसरी पंचवर्षीय योजना का कार्यक्रम पहली पंचवर्षीय योजना से भी बड़ा था। 1937 में, दूसरी पंचवर्षीय योजना पूरी होने तक युद्ध–पूर्व के मुक़ाबिले में, औद्योगिक उपज लगभग आठ गुनी बढ़ानी थीं। दूसरी पंचवर्षीय योजना के दौर में, सभी शाखाओं में लगायी हुई पूंजी 1 खरब 33 अरब रूबल होनी थी, जबकि पहली पंचवर्षीय योजना के दौर में 64 अरब रूबल से कुछ ही अधिक पूंजी लगी थी।,

बड़े पैमाने के इस नये निर्माण–कार्य का विशाल दायरा यह बात निश्चित करता था कि राष्ट्रीय अर्थतंत्र की सभी शाखायें फिर पूरी तरह कौशल से लैस हो जायें।

दूसरी पंचवर्षीय योजना को मुख्यतः खेती में मशीनें लागू करने का काम पूरा करना था। कुल ट्रैक्टर शक्ति 1932 में 22 लाख 50 हजार हॉर्स पावर से बढ़कर, 1937 में 80 लाख हॉर्स पावर से ऊपर पहुँचानी थी। इस योजना में, खेती के वैज्ञानिक तरीक़ों का विस्तार से प्रयोग करने का ख्याल रखा गया था (फ़सलों की सही (अदल–बदल), चुने हुए बीज का प्रयोग, शरद् में जुताई, वग़ैरह)।

यातायात और चिट्ठी–पत्री के साधनों को कौशल से पुनर्संगठित करने के लिये, एक विशाल योजना बनायी गयी।

दूसरी पंचवर्षीय योजना में, मज़दूरों और किसानों के भौतिक और सांस्कृतिक जीवन–स्तर को और उन्नत करने के लिये एक विस्तृत कार्यक्रम बनाया गया।

सत्रहवीं कांग्रेस ने संगठन की बातों पर बहुत ध्यान दिया, और कॉमरेड कगानोविच की रिपोर्ट के सिलसिले में पार्टी और सोवियतों के काम पर फ़ैसले मंजूर किये। अब, जबकि पार्टी की आम नीति विजयी हो चुकी थी और पार्टी की नीति लाखों मज़दूरों और किसानों के तजुर्बे से परखी और कसी जा चुकी थी, तब संगठन का सवाल और भी महत्वपूर्ण हो गया था। दूसरी पंचवर्षीय योजना के नये और पेचीदा काम पूरे करने के लिये, यह ज़रूरी था कि सभी क्षेत्रों में काम का स्तर ऊँचा किया जाये।

संगठनात्मक सवालों पर कांग्रेस के फ़ैसलों में कहा गया था :

"दूसरी पंचवर्षीय योजना के मुख्य काम यह हैं – पूंजीवादी तत्वों को पूरी तरह खत्म करना, आर्थिक जीवन और लोगों के दिमाग़ से पूंजीवाद के अवशेष खत्म करना, आधुनिकतम कौशल के अनुसार सारे राष्ट्रीय अर्थतंत्र को पूरी तरह पुनर्संगठित करना, नये कौशल के सामान और नये धंधों का उपयोग करना सीखना, खेती में मशीनें चालू करना और उसकी पैदावार बढ़ाना। यह काम हमारे सामने बार–बार और जोरों से यह समस्या पेश करते हैं कि **सभी क्षेत्रों में काम सुधारा जाये, और सबसे पहले अमली संगठनात्मक नेतृत्व का काम सुधारा जाये।**" (***सो•सं•क•पा•(बो•) के प्रस्ताव,*** रू•सं•, भाग 2, पृष्ठ 591)।

सत्रहवीं कांग्रेस ने नयी पार्टी नियमावली मंजूर की। यह नियमावली पहले की नियमावली से सबसे पहले इस बात में भिन्न थी कि इसमें एक भूमिका थी। इस भूमिका में, कम्युनिस्ट पार्टी की थोड़े में व्याख्या की गयी है और सर्वहारा संघर्ष में उसकी भूमिका और सर्वहारा डिक्टेटरशिप की व्यवस्था में उसकी जगह की व्याख्या की गयी है। नयी नियमावली में, विस्तार से पार्टी सदस्यों के कर्त्तव्य बताये गये हैं। नये सदस्यों को भर्ती करने के बारे में नियम और कठोर कर दिये गये और हमदर्दों के गुटों के बारे में एक धारा जोड़ दी गयी। इस नयी नियमावली से, पार्टी–संगठन की बनावट की विस्तृत व्याख्या मिलती थी। इसमें पार्टी केन्द्रों, या जैसा कि सत्रहवीं पार्टी कांग्रेस के बाद उनका नाम पड़ गया है, प्राथमिक संगठनों के बारे में धारायें फिर से लिखी गयी थीं। पार्टी के अन्दरूनी जनवाद और पार्टी अनुशासन से सम्बन्धित धाराओं को भी फिर से लिखा गया था।

4. बुखारिनपंथियों का राजनीतिक दगेबाजी तक उतरना। त्रात्स्कीपंथी दगे़बाजों का हत्यारों और जासूसों का एक गद्दार गुट बनना। स.म. किरोव की नीच हत्या। बोल्शेविक चौकसी बढ़ाने के लिये पार्टी के उपाय।

हमारे देश में समाजवाद की सफलताओं से, न सिर्फ पार्टी को खुशी हुई, न सिर्फ़ मज़दूरों और पंचायती किसानों को खुशी हुई, बल्कि सोवियत बुद्धिजीवियों को और सोवियत संघ के सभी ईमानदार नागरिकों को भी खुशी हुई।

लेकिन, हराये हुए शोषक वर्गों के बचे–खुचे लोगों को इनसे खुशी न हुई, उल्टे जैसे–जैसे समय बीतता गया वे और भी जलभून कर राख होते गये।

पराजित वर्गों के पिट्ठू, बुखारिन और त्रात्स्की के अनुयायियों में से बचे–खुचे टुटपुँजिये आपे से बाहर होते गये।

ये लोग मज़दूरों और पंचायती किसानों की सफलताओं का मूल्य जनता के हितों को ध्यान में रखकर न आँकत थे। जनता हर सफलता का हर्ष से अभिनन्दन करती थी। ये लोग इन सफलताओं का मूल्यांकन उस पतित और सड़े–गले गुट को ध्यान में रखकर करते थे जिसका जीवन की वास्तविकता से कोई सम्बन्ध न रह गया था। हमारे देश में, समाजवाद की सफलताओं का मतलब था – पार्टी नीति की जीत और इन लोगों की नीति का निरा दिवालियापन। इसलिये, ये सज्जन खुली हक़ीकत को मानने और सार्वजनिक उद्देश्य में मिलकर आगे बढ़ने के बदले पार्टी और जनता से अपनी असफलता का, अपने दिवालियेपन का बदला लेने लगे। मज़दूरों और पंचायती किसानों के उद्देश्य के खिलाफ़ वे तोड़–फोड़ और कमीनी हरक़तें करने लगे; खानों को बारूद से उड़ाने, कारखानों में आग लगाने और पंचायती और सरकारी खेतों में तोड़–फोड़ के काम करने लगे। उनका उद्देश्य यह था कि मज़दूरों और पंचायती किसानों की सफलताओं को नाकाम कर दिया जाये और सोवियत सरकार के खिलाफ़ जनता का असंतोष उभारा जाये। यह सब करते हुए, अपने पिद्दी गुट को भंडाफोड़ और सत्यानाश से बचाने के लिये, वे पार्टी के प्रति वफ़ादार होने का स्वांग करते थे, उसके तलुवे चाटते थे, उसकी तारीफ़ें करते थे, उसके सामने नाक रगड़ते थे और हक़ीकत में मज़दूरों और किसानों के खिलाफ़ चोरी से तोड़–फोड़ का काम किये चले जा रहे थे।

सत्रहवीं पार्टी कांग्रेस में, बुखारिन, राइकोव और तोम्स्की ने पश्चाताप प्रकट करते हुए भाषण दिये, पार्टी की प्रशंसा की और उसकी सफलताओं की तारीफ़ के पुल बांध दिये। लेकिन, कांग्रेस ने देखा कि उनके भाषणों में बेईमानी और दगे़बाजी का स्वर

छिपा हुआ है। पार्टी अपने सदस्यों से यह उम्मीद नहीं करती कि उसकी तारीफ़ों के पुल बाँधे और उसकी सफलताओं की प्रशंसा के गीत गायें, बल्कि यह उम्मीद करती है कि वे समाजवादी मोर्चे पर ईमानदारी से काम करें। और, बुखारिनपंथियों ने ऐसा करने का बहुत दिन से कोई ढंग ही न दिखाया था। पार्टी ने देखा कि इन सज्जनों के थोथे व्याख्यान दरअसल कांग्रेस से बाहर उनके समर्थकों के लिये हैं, जिससे कि वे दग़ेबाजी में सबक़ सीखें और साथ ही हथियार भी न डालें।

सत्रहवीं कांग्रेस में, जिनोवियेव और कामेनेव ने भी भाषण दिये। उन्होंने ग़लतियों के लिये अपनी बेहद लानत–मलामत की और पार्टी की सफलताओं के लिये उसकी बेहद तारीफ़ की। लेकिन, कांग्रेस से यह छिपा न रहा कि उनकी उबा देने वाली लानत–मलामत और पार्टी की उनके द्वारा खुशामदी तारीफ़ उनकी बेचैन और बेईमान आत्मा को छिपाने के लिये ही थी। फिर भी, पार्टी अभी यह न जानती थी और न उसे यह शक था कि कांग्रेस में अपने मीठे–मीठे भाषण करने वाले यह लोग तभी स•म• किरोव के जीवन के खिलाफ़ एक नीच षड्यंत्र भी रच रहे थे।

1 दिसम्बर 1934 को, स•म• किरोव लेनिनग्राद में, स्मोल्नी में पिस्तौल की गोली से नीचतापूर्वक मारे गये।

हत्यारा अपना काम करते हुए ही पकड़ लिया गया। वह एक गुप्त क्रान्ति–विरोधी गुट का सदस्य निकला। इस गुट के लोग लेनिनग्राद में ज़िनोवियेवपंथियों के एक सोवियत–विरोधी गुट के सदस्य थे।

स•म• किरोव को पार्टी और मज़दूर वर्ग प्यार करते थे। उनकी हत्या से, जनता में भारी हलचल हुई। सारे देश में, गुस्से और भारी क्षोभ की लहर फैल गई।

जाँच–पड़ताल से मालूम हुआ कि 1933 और 1934 में लेनिनग्राद में एक गुप्त क्रान्ति–विरोधी आतंकवादी गुट कायम हुआ था। इसमें ज़िनोवियेव–विरोध के भूतपूर्व सदस्य थे, और इनके सिरे पर तथाकथित 'लेनिनग्राद केन्द्र' था। इस गुट का उद्देश्य कम्युनिस्ट पार्टी के नेताओं की हत्या करना था। उन्होंने अपना पहला शिकार स•म• किरोव को चुना। इस क्रान्ति–विरोधी गुट के सदस्यों की गवाही से पता चला कि उनका सम्बन्ध विदेशी पूंजीवादी रियासतों के प्रतिनिधियों से है, और उनसे उन्हें पैसा मिलता है।

सोवियत संघ की प्रधान अदालत के फौजी न्यायालय ने इस संगठन के उन सदस्यों को सबसे बड़ा दण्ड, गोली मारने का दण्ड दिया, जिनका पर्दाफ़ाश हो चुका था।

कुछ दिन बाद ही, 'मास्को केन्द्र' नाम के एक गुप्त क्रान्ति–विरोधी संगठन की हक़ीकत का पता चला। शुरू की ही जाँच–पड़ताल और मुक़दमे से, पता चला कि ज़िनोवियेव, कामेनेव, येवदोकिमोव और इस संगठन के दूसरे नेताओं ने अपने अनुयायियों में आतंकवादी ज़हनियत पैदा करने और पार्टी की केन्द्रीय समिति और सोवियत सरकार के सदस्यों की हत्या का षड्यंत्र रचने में नीचतापूर्ण भूमिका अदा की है।ये लोग दग़ेबाजी और पाजीपन की इस सतह तक उतर आये थे कि ज़िनोवियेव ने, जोकिरोव की हत्या का एक संगठनकर्त्ता और उकसानेवाला था और जिसने हत्यारे से जल्द ही अपना काम करने को कहा था, किरोव की मृत्यु पर उनकी बहुत तारीफ़ करते हुए एक संवेदनापूर्ण लेख लिखा था और यह माँग की थी कि वह प्रकाशित किया जाये।

ज़िनोवियेवपंथियों ने अदालत में पश्चाताप करने का स्वाँग किया, लेकिन कठघरे में भी वे अपनी दुरंगी चालों से बाज न जाये। उन्होंने त्रात्स्की से अपना सम्बन्ध छिपाया। उन्होंने यह बात छिपायी कि त्रात्स्कीवादियों के साथ उन्होंने भी अपने को फ़ासिस्ट जासूस–विभागों के हाथ बेच दिया है। उन्होंने अदालत से यह बात छिपायी कि बुखारिनपंथियों से उनका सम्बन्ध है और फ़ासिस्ट गुर्गों का एक संयुक्त त्रात्स्की–बुखारिन गुट बना हुआ है।

जैसा कि आगे पता चला, कॉमरेड किरोव की हत्या इस संयुक्त त्रात्स्की–बुखारिन गुट का काम था।

फिर भी, 1935 में, यह साफ हो गया था कि जिनोवियेव गुट एक छिपा हुआ ग़द्दार संगठन है, जिसके सदस्यों के साथ ग़द्दारों जैसा व्यवहार करना बिल्कुल उचित होगा।

एक साल बाद, पता चला कि किरोव की हत्या के सही–सही, वास्तविक और सीधे संगठनकर्ता त्रात्स्की, ज़िनोवियेव, कामेनेव, और उनके साथी–संघाती थे और उन्होंने केन्द्रीय समिति के दूसरे सदस्यों की भी हत्या करने की तैयारी की थी। ज़िनोवियेव, कामेनेव, बकायेव, येवदोकिमोव, पिकेल, इ•न• स्मिरनोव, म्राचकोव्स्की, तेस्वगन्यान, राइनगोल्ड, वग़ैरह पर मुक़दमा चला। प्रत्यक्ष सबूत सामने होने पर, उन्हें सरेआम खुली अदालत में मंजूर करना पड़ा कि उन्होंने किरोव की हत्या का ही संगठन न किया था बल्कि पार्टी और हुकूमत के तमाम दूसरे नेताओं की हत्या की भी योजना बना रहे थे। बाद की जाँच–पड़ताल से, यह बात निश्चित हुई कि ये गुण्डे जासूसी के काम और तोड़–फोड़ के काम संगठित करने में लगे हुए थे। मास्को में, 1936 में जो मुक़दमा हुआ, उससे पता चला कि इन लोगों का कैसा भीषण नैतिक और राजनीतिक पतन

हुआ है, इनकी घृणित गुण्डागीरी और ग़द्दारी क्या है, जिसे पार्टी के प्रति वफ़ादारी की झूठी क़समें खाकर उन्होंने छिपाया था।

हत्यारों और जासूसों के इस गिरोह का सरगना और खास भड़काने वाला जूडास (विश्वासघाती) त्रात्स्की था। त्रात्स्की के क्रान्ति–विरोधी हुक्मों को अमल में लाने वाले उसके सहायक और दलाल ज़िनोवियेव, कामेनेव और उनके त्रात्स्कीवादी गुर्गे थे। वे इस बात की तैयारी कर रहे थे कि साम्राज्यवादी देश हमला करें तो सोवियत संघ को हरा दिया जाये। जहाँ तक कि मज़दूरों और किसानों के राज्य का सवाल था, वे पराजयवादी हो चुके थे। वे जर्मन और जापानी फ़ासिस्टों के घृणित चाकर और दलाल बन चुके थे।

स•म• किरोव की नीच हत्या के लिये जिन लोगों पर मुक़दमें चले थे, उन से पार्टी–संगठनों को यह मुख्य सबक़ लेना था कि वे अपने राजनीतिक अंधेपन और राजनीतिक लापरवाही को दूर करें, और अपनी चौकसी तथा तमाम पार्टी सदस्यों की चौकसी बढ़ायें।

पार्टी–संगठनों के नाम स•म• किरोव की नीच हत्या के विषय पर, एक गश्ती चिट्ठी में, पार्टी की केन्द्रीय समिति ने कहा था :

" (क) एक ग़लत धारणा बन गयी है कि हम जैसे मज़बूत होते जायेंगे, वैसे ही दुश्मन और भी पालतू और ज्यादा निर्दोष होता जायेगा। इससे जो अवसरवादी आत्मसंतोष की भावना पैदा होती है, हमें उसे खत्म करना चाहिये। यह धारणा बिल्कुल झूठी है। यह दक्षिणपंथी भटकाव का फिर से जागना है। यह भटकाव सभी को यक़ीन दिलाता था कि हमारे दुश्मन धीरे–धीरे समाजवाद की तरफ़ घिसट आयेंगे और अंत में सच्चे समाजवादी बन जायेंगे। बोल्शेविकों को अपनी सफलताओं पर संतोष करके हरगिज न बैठे रहना चाहिये। उन्हें अपनी तैनाती की जगह पर हरगिज न सोना चाहिये। हमें आत्मसंतोष नहीं चाहिये, बल्कि चौकसी सच्ची बोल्शेविक क्रान्तिकारी चौकसी चाहिये। यह याद रखना चाहिये कि दुश्मनों की हालत जितनी ही निराशाजनक होगी उतनी ही आतुरता से वे उग्र क़दम उठायेंगे, क्योंकि इसी को वे सोवित सत्ता के ख़िलाफ मौत का वारंट पाने वालों की लड़ाई का एकमात्र चारा समझेंगे। हमें यह याद रखना चाहिये और चौकस रहना चाहिये।

"(ख) हमें इस बात का उचित संगठन करना चाहिये कि पार्टी सदस्यों को पार्टी इतिहास की शिक्षा दी जा सके, हमारी पार्टी के इतिहास में सभी

पार्टी–विरोधी गुटों और पार्टी नीति से लड़ने के उनके तरीकों उनके दाँव–पेच और उससे भी ज्यादा पार्टी–विरोधी गुटों से लड़ने में हमारी पार्टी के दाँव–पेच और तरीकों के इतिहास का अध्ययन कराना चाहिये; उन तरीकों और दाँव–पेचों का अध्ययन कराना चाहिये जिनसे कि हमारी पार्टी इन गुटों को परास्त कर सकी और उनका नाश कर सकी। पार्टी सदस्यों को यही न जानना चाहिये कि किस तरह पार्टी ने कॉन्स्टीट्यूशनल डेमोक्रैटों, समाजवादी क्रान्तिकारियों, मेन्शेविकों और अराजकतावादियों का मुक़ाबिला किया और उन्हें परास्त किया, बल्कि यह भी कि उसने कैसे त्रात्स्कीवादियों, 'जनवादी–केन्द्रवादियों', 'मज़दूर–विरोध', ज़िनोवियेवपंथियों, दक्षिणपंथी भटकाव वालों और दक्षिणवामपंथी अजूबों, वग़ैरह का मुक़ाबिला किया और उन्हें परास्त किया। यह कभी न भूलना चाहिये कि पार्टी सदस्यों की क्रान्तिकारी चौकसी पक्की करने के लिये हमारी पार्टी के इतिहास की जानकारी और समझ एक बहुत ही महत्वपूर्ण और ज़रूरी साधन है।"

1933 में, पार्टी की पांति से फ़ालतू और ऐरे–ग़ैरे लोगों को निकालना शुरू हुआ। यह शुद्धि बहुत ही महत्वपूर्ण थी। खास तौर से पार्टी सदस्यों के रिकार्ड को सावधानी से जाँचा गया, और स•म• किरोव की नीच हत्या के बाद, पुराने पार्टी कार्डो के बदले नये कार्ड दिये गये। इसका बहुत ही महत्व था।

पार्टी सदस्यों के रिकार्ड की जाँच के पहले, बहुत से पार्टी–संगठनों में पार्टी कार्डों में बहुत ही लापरवाही और ग़ैरजिम्मेदारी बर्ती जाती थीं। कई संगठनों में पता चला कि **कम्युनिस्टों की रजिस्ट्री करने में अराजकता** एकदम असहनीय हो गयी है। इस तरह की हालत से, दुश्मन अपना नीच उद्देश्य साधते थे। पार्टी कार्ड लेकर वह उसे जासूसी, तोड़–फोड़, वग़ैरह के लिये पर्दे की तरह काम में लाते थे। पार्टी–संगठनों के बहुत से नेताओं ने नये सदस्य भर्ती करने और पार्टी कार्ड देने का काम छोटी जगहों के लोगों को दे रखा था और कभी–कभी उन पार्टी सदस्यों तक को दे रखा था जिनके विश्वासपात्र होने की परीक्षा भी न हुई थी।

13 मई 1935 को, पार्टी कार्डों की रजिस्ट्री, सुरक्षा और वितरण के बारे में तमाम संगठनों के नाम एक गश्ती चिट्ठी में, केन्द्रीय समिति ने उन्हें निर्देश किया कि सावधानी से पार्टी सदस्यों के रिकार्ड की जाँच करें और 'खुद अपनी पार्टी – अपने घर – में बोल्शेविक व्यवस्था क़ायम करें।'

पार्टी सदस्यों के रिकार्ड की जाँच बहुत ही राजनीतिक महत्व की बात थी। पार्टी सदस्यों के रिकार्ड की जाँच के नतीजों के सिलसिले में, पार्टी की केन्द्रीय समिति की प्लीनरी बैठक ने 25 दिसम्बर 1935 को एक प्रस्ताव पास किया, जिसमें कहा गया

कि यह जाँच सो•सं•क•पा•(बो•) की पाँति को मज़बूत करने में बहुत ही महत्वपूर्ण राजनीतिक और संगठनात्मक क़दम है।

पार्टी सदस्यों के रिकार्ड की जाँच और पार्टी कार्डो की तब्दीली के बाद, पार्टी में नये सदस्यों की भर्ती फिर शुरू हुई। इस सिलसिले में, सो•सं•क•पा•(बो•) की केन्द्रीय समिति ने माँग की कि पार्टी में नये सदस्य दल के दल न भर्ती किये जायें, बल्कि सख्ती के साथ उनकी अलग–अलग भर्ती हो, और भर्ती में इस बात का ध्यान रखा जाये कि वही लोग आयें "जो सचमूच आगे बढ़े हुए हैं और मज़दूर वर्ग के उद्देश्य के प्रति सचमुच वफ़ादार हैं। देश के सबसे अच्छे लोग, मुख्यतः मज़दूरों, किसानों और सक्रिय बुद्धिजीवियों में से भी, जो समाजवाद के लिये संघर्ष के विभिन्न मोर्चों पर परखे और कसे जा चुके हैं।"

पार्टी में नये सदस्यों की भर्ती फिर शुरू करने में केन्द्रीय समिति ने पार्टी–संगठनों को निर्देश दिया कि वे इस बात का ध्यान रखें कि विरोधी लोग सो•सं•क•पा•(बो•) की पाँति में घुस आने के लिये बराबर कोशिशें करते रहेंगे। इसलिये :

> "हर पार्टी संगठन का काम है कि बोल्शेविक चौकसी ज्यादा से ज्यादा बढ़ायें, लेनिनवादी पार्टी का झंडा ऊंचा रखें और विरोधी, ग़ैर और फ़ालतू लोगों के भीतर घुस आने से पार्टी की पांति की रक्षा करें।" **(सो•सं•क•पा•*(बो•) की केन्द्रीय समिति का प्रस्ताव,*** 29 सितम्बर 1936, **प्राव्दा,** अंक 270, 1936 में प्रकाशित)।

बोल्शेविक पार्टी ने अपनी पांति को शुद्ध किया और मज़बूत किया, पार्टी के शत्रुओं का नाश किया और निर्ममता से पार्टी नीति की तोड़–मरोड़ का मुकाबिला किया। इस तरह, बोल्शेविक पार्टी अपनी केन्द्रीय समिति के चारों तरफ़ और भी सिमट आयी, जिसके नेतृत्व में पार्टी और सोवितय देश ने एक नयी मंजिल में प्रवेश किया – एक वर्गहीन, सोशलिस्ट समाज के निर्माण को पूरा करने की मंजिल में प्रवेश किया।

सारांश

1930–'34 के दौर में, सत्ता हासिल करने के बाद सर्वहारा क्रान्ति की सबसे कठिन ऐतिहासिक समस्या को बोल्शेविक पार्टी ने हल किया, यानी लाखों निजी खेती करने वाले किसानों को पंचायती खेती की राह पर, समाजवाद की राह पर लाने की समस्या को हल किया।

शोषक वर्गों में सबसे बहुसंख्यक कुलकों के खात्में से और अधिकांश किसानों द्वारा पंचायती खेती का रास्ता अपनाने से, देश में पूंजीवाद की आखिरी जड़ें उखड़ गयीं, खेती में समाजवाद की आखिरी जीत हुई, और देहात में सोवियत सत्ता पूरी तरह मज़बूत हुई।

संगठन सम्बंधी कई कठिनाइयाँ दूर करने के बाद, पंचायती खेत मज़बूती से क़ायम हो गये और खुशहाली की राह पर आगे बढ़ने लगे।

पहली पंचवर्षीय योजना का फल यह हुआ कि प्रथम क्षेणी के समाजवादी उद्योग–धंधों के रूप में और मशीनों से होनेवाली पंचायती खेती के रूप में, हमारे देश में समाजवादी आर्थिक व्यवस्था की अडिग नींव डाली गयी, बेकारी खत्म की गयी, मनुष्य द्वारा मनुष्य का शोषण खत्म किया गया और हमारी श्रमिक जनता का भौतिक और सांस्कृतिक जीवन–स्तर बराबर ऊँचा करने के लिये परिस्थितियाँ रची गयीं।

ये विराट सफलतायें मज़दूर वर्ग ने, पंचायती किसानों और हमारे देश की आम मेहनतकश जनता ने पार्टी और सरकार की साहसी, क्रान्तिकारी और बुद्धिमान नीति की बदौलत हासिल कीं।

चारों तरफ़ की पूंजीवादी दुनिया सोवियत संघ की ताक़त तोड़ने और कमज़ोर करने की कोशिशें कर रही थीं। वह सोवियत संघ में तोड़–फोड़ करने वालों, हत्यारों और जासूसों के गिरोह संगठित करने में दूने ज़ोरशोर से लग गयी। जर्मनी और जापान में फ़ासिज्म के सत्तारूढ़ होने पर, पूंजीवादी घेरे की यह विरोधी कार्यवाही खास तौर से उभर कर सामने आयी। त्रात्स्कीवादियों और ज़िनोवियेवपंथियों में फ़ासिज्म को वफ़ादार चाकर मिले, जो जासूसी, तोड़–फोड़, आतंक और भड़काने के काम करने के लिये तैयार थे और पूंजीवाद को बहाल करने के लिये, सोवियत संघ की पराजय के लिये काम करने को तैयार थे

सोवियत सरकार ने इन पतित लोगों को फ़ौलादी हाथ से दंड दिया और जनता के शत्रुओं और देश के प्रति ग़द्दारों के साथ निर्ममता से व्यवहार किया।

बारहवाँ अध्याय

सोशलिस्ट समाज के निर्माण को पूरा करने के संघर्ष में बोल्शेविक पार्टी। नये विधान का प्रचलन।

(1935–1937)

1. 1935–'37 में अंतर्राष्ट्रीय परिस्थिति। अस्थायी रूप से आर्थिक संकट का कम होना। नये आर्थिक संकट की शुरूआत। इटली का अबीसीनिया हड़पना। स्पेन में जर्मनी और इटली का हस्तेक्षप। मध्य चीन पर जापानी हमला। दूसरे साम्राज्यवादी युद्ध की शुरूआत।

1929 को उत्तरार्द्ध में पूंजीवादी देशों में जो आर्थिक संकट फूट पड़ा था, वह 1933 तक चला। उसके बाद उद्योग–धंधों का पतन बन्द हुआ, संकट के बाद ठहराव का दौर आया और उसके बाद, एक हद तक उद्योग–धंधों में नयी जान आयी, एक हद तक उनकी गति आगे को हुई। लेकिन, यह प्रगति ऐसी न थी जो एक नयी और ऊँची सतह पर औद्योगिक खुशहाली का दौर शुरू करती। विश्व पूंजीवाद के उद्योग–धंधे 1929 की सतह तक भी न पहुंच पाये। 1937 के मध्य तक, वह उसके 95–96 फ़ीसदी तक ही पहुँच पाये। 1937 के पूर्वार्द्ध में ही, एक नया आर्थिक संकट शुरू हुआ, जिसका असर सबसे पहले संयुक्त राष्ट्र अमरीका पर पड़ा। 1937 के आख़ीर तक, अमरीका में बेकारों की तादाद एक करोड़ तक पहुँच गयी थी। ब्रिटेन में भी बेकारी तेज़ी से बढ़ रही थी।

इस तरह, पूंजीवादी देश अभी पिछले आर्थिक संकट की तबाही से संभल न पाये थे कि उन्होंने अपने सामने नया आर्थिक संकट देखा।

नतीजा यह हुआ कि साम्राज्यवादी देशों के परस्पर विरोध और वैसे ही पूंजीपतियों और सर्वहारा के अंतर्विरोध और तेज़ हुए। इसके फलस्वरूप, हमलावर रियासतों के घर में आर्थिक संकट से जो क्षति हुई थी, उसे पूर्ण करने के लिये उन्होंने दूसरे अरक्षित देशों को हड़पने की तैयारी और ज़ोरशोर से शुरू कर दी। इस समय तक, दो मशहूर हमलावर रियासतों, जर्मनी और जापान, के साथ एक तीसरी रियासत इटली भी मिल गयी।

1935 में, फासिस्ट इटली ने अबीसीनिया पर हमला किया और उस पर अधिकार कर लिया। 'अंतर्राष्ट्रीय क़ानून' के अनुसार बिना किसी सफ़ाई या सबब के, उसने ऐसा किया। बिना लड़ाई का ऐलान किये, उसने अबीसीनिया पर डाकू की तरह हमला किया, जिसका अब फ़ासिस्टों में चलन हो गया है। यह अबीसीनिया पर ही प्रहार न था, बल्कि ब्रिटेन पर भी था; यूरोप से हिन्दुस्तान और आम तौर से एशिया को आने वाले उसके समुद्री मार्गों पर प्रहार था। ब्रिटेन ने अबीसीनिया में इटली को पैर जमाने से रोकने की विफल कोशिशें कीं। आगे चल कर, इटली लीग ऑफ नेशन्स से अलग हो गया, जिससे कि उसके हाथ खाली रहें और वह जोरों से हथियारबन्दी करने लगा।

इस तरह, यूरोप और एशिया के बीच सबसे छोटे जल–मार्गों पर लड़ाई की एक नयी गिरह पड़ गयी।

फ़ासिस्ट जर्मनी ने एकतरफ़ा कार्यवाही करके, वार्सायी की शांति–संधि को रद्द कर दिया और यूरोप के मानचित्र का **बलपूर्वक** संशोधन करने के लिये एक योजना स्वीकार की। जर्मन फ़ासिस्ट इस बात को छिपाते न थे कि वे पास–पड़ौस की रियासतों पर क़ब्जा करना चाहते थे, या कम–से–कम उनके ऐसे इलाकों को हड़पना चाहते थे जहां जर्मन रहते थे। इसलिये, उन्होंने पहले आस्ट्रिया को हड़पने की योजना बनायी और उसके बाद चैकोस्लोवाकिया पर हमला करने और उसके बाद हो सकता है कि पोलैंड पर हमला करने का विचार किया। पोलैंड में भी एक ऐसा गठा हुआ इलाका है जहाँ जर्मन रहते हैं और जो जर्मनी के सीमान्त पर है। और उसके बाद, ...खैर, उसके बाद "देखा जायेगा"।

1936 की गर्मियों में, जर्मनी और इटली ने स्पेन के प्रजातंत्र में फ़ौजी हस्तक्षेप शुरू किया। स्पेन के फ़ासिस्टों की मदद करने के बहाने, उन्होंने इस बात का मौक़ा

ढूंढ लिया कि चोरी से स्पेन की धरती पर, फ्रांस के पृष्ठभाग में अपनी फ़ौजें उतार दें, और स्पेन के समुद्र में – वालीरिक द्वीपों और जिब्राल्टर के भागों में दक्षिण से, अटलांटिक समुद्र में पच्छिम से, विस्के की खाड़ी में उत्तर से – अपने जहाजी बेड़े तैनात कर दें। 1937 के आरम्भ में जर्मन फ़ासिस्टों ने ऑस्ट्रिया पर क़ब्जा कर लिया। और इस तरह, दैन्यूब नदी के मध्य भाग में पैर जमा लिये और दक्षिण यूरोप में ऐड्रियाटिक समुद्र की तरफ़ पसरने लगे।

जर्मन और इटालियन फ़ासिस्टों ने स्पेन में अपना हस्तक्षेप बढ़ाया और साथ ही दुनिया को भरोसा दिलाते रहे कि वे स्पेन के 'कम्युनिस्टों' से लड़ रहे हैं और उसका दूसरा कोई मंसूबा नहीं है। लेकिन यह छिछला और भौंडा बहाना था, जिससे सीधे–सादे लोग बहलाये जा सकें। वास्तव में, वे ब्रिटेन और फ्रांस के समुद्री मार्गो पर पैर जमा कर – जिनके अफ्रीका और एशिया में बड़े–बड़े उपनिवेश थे – इन देशों पर ही प्रहार कर रहे थे।

जहाँ तक ऑस्ट्रिया को हड़पने का सवाल था, कम–से–कम इसे यह न कहा जा सकता था कि यह वार्सायी संधि–पत्र के खिलाफ़ संघर्ष है, कि पहले साम्राज्यवादी युद्ध में खोये हुए प्रदेश को लौटा कर जर्मनी के 'जातीय' हितों की रक्षा करने का प्रयत्न है। ऑस्ट्रिया न तो युद्ध के पहले और न उसके बाद जर्मनी का हिस्सा रहा था। ऑस्ट्रिया का बलपूर्वक अपहरण, विदेशी भूमि के साम्राज्यवादी हड़पने की बहुत जीती–जागती मिसाल था। इससे फ़ासिस्ट जर्मनी के मंसूबों के बारे में कोई शक न रहा कि वह पच्छिमी यूरोप के महाद्वीप में प्रभुत्व की जगह बनाना चाहता है।

सबसे बढ़ कर, यह फ्रांस और ब्रिटेन के हितों पर प्रहार था।

इस तरह, यूरोप के दक्षिण में, ऑस्ट्रिया और ऐड्रियाटिक के कटिबंध में, और यूरोप के धूर पच्छिम में, स्पेन और उसके सीमान्त छूने वाले समुद्रों के कटिबंध में युद्ध की नयी गिरहें लगाई जा रही थीं।

1937 में, जापानी फ़ासिस्ट सैन्यवादियों ने पीपिंग पर क़ब्जा कर लिया, मध्य चीन पर हमाला किया और शंघाई ले लिया। कई साल पहले, मंचूरिया पर जापानी हमले की तरह, मध्यचीन पर भी जापानियों ने अपने प्रचलित ढंग से हमला किया। उन्होंने खुद अपनी तरफ़ से उकसाई हुई विभिन्न 'स्थानीय घटनाओं' को बेईमानी से इस्तेमाल करके और सभी 'अंतर्राष्ट्रीय नियमों', संधियों, समझौतों, वगैरह को तोड़कर, डाकुओं की तरह यह हमला किया। तिन्चिन् और शंघाई पर कब्ज़ा होने से, चीन के विशाल बाज़ार का दरवाज़ा जापान के लिये खुल गया। जब तक तिन्चिन् और शंघाई जापान के हाथ में

हैं, तब तक वह कभी भी मध्यचीन से ब्रिटेन और अमरीका को निकाल सकता है जहाँ उनकी भारी पूंजी लगी हुई है।

इसमें सन्देह नहीं कि चीन में जापानी साम्राज्यवादियों का कोई भविष्य नहीं है, और न कभी होगा। कारण यह कि जापानी हमलावरों के खिलाफ़ चीनी जनता और उसकी फ़ौज ने वीरता से युद्ध किया है। चीन में विशाल जातीय नवजागरण हुआ है। उसके पास जनशक्ति और धरती के विराट साधन हैं। और अंत में, चीनी राष्ट्रीय सरकार का निश्चय है कि अंत तक मुक्तियुद्ध किया जाये जब तक कि चीनी भूमि से हमलावर पूरी तरह से निकाल नहीं दिये जाते। इन सब बातों से जरा भी संदेह नहीं रह जाता है कि चीन में जापानी साम्राज्यवादियों का न तो कोई भविष्य है, न होगा।

फ़िर भी, यह सच है कि फ़िलहाल चीन में व्यापार की कुंजी जापान के हाथ में है और चीन के खिलाफ़ उसका युद्ध ब्रिटेन और अमरीका के हितों पर एक बहुत बड़ा प्रहार है।

इस तरह, प्रशान्त महासागर में, चीन के कटि–बन्ध में , युद्ध की एक और गिरह लगी।

इन सभी बातों से ज़ाहिर होता है कि एक दूसरा साम्राज्यवादी युद्ध सचमुच शुरू हो गया है। बिना लड़ाई का ऐलान किये, यह चोरी से शुरू हुआ है। जातियाँ और रियासतें, प्रायः अनजाने ही दूसरे साम्राज्यवादी युद्ध की लपेट में आ गयीं। तीन हमलावर रियासतों ने – जर्मनी, इटली और जापान के फ़ासिस्ट शासक–दल ने – संसार के विभिन्न हिस्सों में युद्ध शुरू किया। यह युद्ध जिब्राल्टर से शंघाई तक फैले हुए एक विराट प्रदेश में चल रहा है। अभी भी, उसमें पचास करोड़ से ऊपर लोग सिमट आये हैं। आखिरी छानबीन में, यही पता चलता है कि यह युद्ध ब्रिटेन, फ्रांस और अमरीका के पूंजीवादी हितों के खिलाफ़ चालू हैं, क्योंकि इसका उद्देश्य हमलावर देशों के हितों में और तथाकथित जनवादी राज्यों के हितों को बलि देकर प्रभाव–क्षेत्रों और संसार का फिर से बँटवारा करना है।

दूसरे साम्राज्यवादी युद्ध की एक अपनी विशेषता यह है कि इसे हमलावर शक्तियां चला रही हैं, और फैला रही हैं; जबकि दूसरी शक्तियां, 'जनवादी' शक्तियां जिसके खिलाफ़ युद्ध चलाया जा रहा है, बनती हैं कि जैसे युद्ध से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है, वे सफाई देती हैं, पीछे हटती हैं, शान्ति–प्रेम की डींग हाँकती हैं, फ़ासिस्ट हमलावरों को फटकारती हैं, और...थोड़ी–थोड़ी करके हमलावरों को अपनी जगहें सौंपती जाती हैं; साथ ही, यह भी कहती जाती हैं कि हम मुक़ाबिले की तैयारी कर रही हैं।

साबित यह होगा कि इस युद्ध की एक विचित्र और एकतरफ़ा विशेषता है। लेकिन, इससे यह बात खत्म नहीं होती कि यह बेरोक दूसरों की ज़मीन हड़पने का बर्बर युद्ध है, जो अबीसीनिया, स्पेन और चीन की अरक्षित जनता के हितों की बलि देकर चलाया जा रहा है।

यह कहना ग़लत होगा कि युद्ध की इस एकतरफा विशेषता का कारण 'जनवादी' राज्यों की सैनिक या आर्थिक कमजोरी है। अवश्य ही, 'जनवादी'' राज्य फ़ासिस्ट राज्यों से ज़्यादा ताकतवर हैं। इस बढ़ते हुये विश्व युद्ध की एकतरफ़ा विशेषता इस वजह से है कि फ़ासिस्ट ताक़तों के खिलाफ़ जनवादी राज्यों का कोई संयुक्त मोर्चा नहीं है। तथाकथित जनवादी राज्य फ़ासिस्ट रियासतों की 'ज़्यादतियाँ' ज़रूर पसन्द नहीं करते और उनकी ताक़त बढ़ने से डरते हैं। लेकिन, यूरोप में मज़दूर आन्दोलन से और एशिया में राष्ट्रीय स्वाधीनता के आन्दोलन से वे और भी डरते हैं, और इन 'खतरनाक' आन्दोलनों के लिये फ़ासिस्टवाद को 'बहुत बढ़िया दवा' समझते हैं। इसलिये 'जनवादी' राज्यों का शासक दल, खास तौर से ब्रिटेन का कंजरवेटिव शासक दल, अपने को इसी नीति तक सीमित रखता है कि गुरूर भरे फ़ासिस्ट शासकों से 'ज्यादतियाँ न करने' की प्रार्थना करता रहे और साथ–साथ उन्हें यह भी समझने दे कि वह मज़दूर आन्दोलनों और राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन की तरफ़ उनकी प्रतिक्रियावादी नीति को 'पूरी तरह समझता है', और कुल मिलाकर उससे हमदर्दी भी रखता है। इस मामले में , ब्रिटेन का शासक दल मोटे तौर से उसी नीति पर चल रहा है जिस नीति पर ज़ारशाही में रूस के उदारपंथी–साम्राट्वादी पूंजीपति चलते थे। ये जिस पूंजीपति ज़ार की नीति की 'ज्यादतियों' से तो डरते ही थे, लेकिन जनता से और भी डरते थे और इसीलिये, उन्होंने ज़ार से प्रार्थना करने की नीति अपनाई और फलतः जनता के खिलाफ़ ज़ार से **षड़यंत्र करने** की नीति अपनाई। और जैसा कि हम जानते हैं, इसके लिये रूस के उदारपंथी–सम्राट्वादी पूंजीपतियों को इस दुमुँही नीति की भारी क़ीमत चुकानी पड़ी थी। यह बात मानी जा सकती है कि इतिहास ब्रिटेन के शासक दल से और फ्रांस और अमरीका में उनके दोस्तों से इसका बदला लेगा।

स्पष्ट है कि सोवियत संघ अंतर्राष्ट्रीय परिस्थिति में इस तरह की तब्दीली की तरफ से आँखें बन्द न कर सकता था और न इन अशुभ घटनाओं को भुला सकता था। कोई भी युद्ध, कितना ही छोटा क्यों न हो, हमलावरों के छेड़ने पर वह शान्ति–प्रेमी देशों के लिये खतरा बन जाता है। दूसरा साम्राज्यवादी युद्ध जो ऐसे 'अजाने' ढंग से, राष्ट्रों पर चोरी से छा गया है और जिसने पचास करोड़ से ऊपर जनता को समेट लिया है, निस्संदेह सभी राष्ट्रों के लिये और सबसे पहले सोवियत संघ के लिये बहुत बड़ा खतरा है। यह बात जर्मनी, इटली और जापान द्वारा 'कम्युनिस्ट–विरोधी गुट' बनाने से बहुत अच्छी तरह

प्रकट होती है। इसलिये शान्ति की नीति पर चलते हुए, हमारे देश ने अपने सीमान्तों की सुरक्षा को और भी मज़बूत करना और लाल फौज और जल–सेना की लड़ाकू योग्यता को और बढ़ाना शुरू किया। 1934 के खत्म होते–होते, सोवियत संघ लीग ऑफ नेशन्स में शामिल हुआ। उसने यह जानते हुए ऐसा किया कि अपनी कमज़ोरी के बावजूद लीग हमलावरों का पर्दाफ़ाश करने की जगह का काम दे सकती है। और कितना ही कमज़ोर सही, वह शान्ति का एक साधन बन सकती है, जो युद्ध छिड़ने को रोक सके। सोवियत संघ का विचार था कि ऐसे समय में लीग ऑफ नेशन्स जैसे कमज़ोर अंतर्राष्ट्रीय संगठन को भी भुलाना न चाहिए। मई, 1935 में, फ्रांस और सोवियत संघ ने हमलावरों के संभावित आक्रमण के खिलाफ़ परस्पर सहयोग की संधि की। उसके साथ ही, सोवियत संघ और चैकोस्लोवाकिया में वैसी ही संधि की गयी। मार्च 1936 में , सोवियत संघ ने मंगोलिया के जन–प्रजातंत्र से परस्पर सहयोग की संधि की; और अगस्त 1937 में चीन के प्रजातन्त्र के साथ एक–दूसरे पर हमला न करने की संधि की।

2. सोवियत संघ में उद्योग–धंधों और खेती की और अधिक प्रगति। दूसरी पंचवर्षीय योजना का समय से पहले पूरी होना। खेती के पुनर्संगठन और पंचायतीकरण का पूरा होना। कार्यकर्ताओं का महत्व। स्ताखानोव आन्दोलन। खुशहाली का ऊँचा होता हुआ स्तर। ऊंचा होता हुआ सांस्कृतिक स्तर। सोवियत क्रान्ति की शक्ति।

1930–33 के आर्थिक संकट के तीन साल बाद, पूंजीवादी देशों में तो नया आर्थिक संकट पैदा हुआ, लेकिन इस समूचे दौर में सोवियत संघ के उद्योग–धंधे बराबर प्रगति करते रहे। 1937 के मध्य से, पहले विश्व पूंजीवाद में उद्योग–धंधे कुल मिलाकर मुश्किल से 1929 की पैदाबर की सतह के 95–96 फ़ीसदी हो पाये थे, और तभी 1936 के उत्तरार्द्ध में, वे एक नये संकट की गिरफ्त में आ गये। लेकिन, सोवियत संघ के उद्योग–धंधे अपनी लगातार संपूर्ण प्रगति से 1937 के आखिर तक, 1929 की उपज के 428 फ़ीसदी या युद्ध–पूर्व की पैदावार के 700 फ़ीसदी तक पहुँच गये थे।

ये सफ़लतायें पुनर्संगठन की उस नीति का सीधा नतीजा थीं जिस पर पार्टी और सरकार इतना जम कर चली थीं।

इन सफलताओं का परिणाम यह हुआ कि दूसरी पंचवर्षीय योजना समय से पहले ही पूरी हो गयी। चार साल तीन महीने में 1 अप्रैल 1937 तक, वह पूरी हो गयी थी। समाजवाद के लिये, यह बहुत ही महत्वपूर्ण विजय थी।

खेती की प्रगति का भी बहुत कुछ यही हाल था। सभी फ़सलों की कुल भूमि 1913 (युद्ध–पूर्व) में 10 करोड़ पचास लाख हेक्टेयर थी; 1937 में यह भूमि बढ़ कर 13 करोड़ 50 लाख हेक्टेयर हो गयी। 1913 में, अनाज की फ़सल 4 अरब 80 करोड़ पूड थी; 1937 में यह फ़सल बढ़ कर 6 अरब 80 करोड़ पूड हो गयी। इसी बीच, कपास की फ़सल 4 करोड़ 40 लाख पूड से बढ़ कर 15 करोड़ 40 लाख पूड हुई; सन की फ़सल (रेशे) 1 करोड़ 90 लाख पूड से, 3 करोड़ 10 लाख पूड हुई; चुकन्दर की फ़सल 65 करोड़ 40 लाख पूड से बढ़ कर, 1 अरब 31 करोड़ 10 लाख पूड हुई; और तिलहन की फ़सल 12 करोड़ 90 लाख से बढ़कर 30 करोड़ 60 लाख पूड हुई।

यहाँ पर यह कह देना चाहिये कि 1937 में अकेले पंचायती खेतों ने (सरकारी खेत छोड़ कर) बाजार के लिये 1 अरब 70 करोड़ पूड गल्ला पैदा किया। 1913 में, ज़मींदारों, कुलकों और किसानों ने मिलकर जितना ग़ल्ला बाज़ार भेजा था, उससे यह राशि कम से कम 40 करोड़ पूड ज्यादा थी।

खेती की सिर्फ एक शाखा – पशु–प्रजनन – अब भी युद्ध–पूर्व की सतह से पीछे थी और ज़्यादा धीमी रफ्तार से प्रगति कर रही थी।

जहाँ तक खेती में पंचायतीकरण का सवाल था, उसे पूरा हुआ समझा जा सकता था। 1937 तक जिन किसान परिवारों ने पंचायती खेतों में भाग लिया था, उनकी संख्या 1 करोड़ 85 लाख, या कुल किसान परिवारों कि 93 फ़ीसदी थी। उधर पंचायती खेतों का अनाज की फ़सल का इलाका किसानों की कुल अनाज की फ़सल के इलाके का 99 फ़ीसदी था।

खेती के पुनर्संगठन और खेती के लिये ट्रैक्टरों और मशीनों को बड़ी तादाद में देने का क्या फल हुआ, यह अब स्पष्ट हो गया।

उद्योग–धंधो और खेती का पुनर्संगठन पूरा होने से, राष्ट्रीय अर्थतंत्र के पास अब पहले दर्जे के कौशल की बहुतायत हो गयी। उद्योग–धंधों, खेती, यातायात व्यवस्था और फ़ौज को आधुनिकतम कौशल का भारी सामान मिला था – उन्हें मशीनें और कलपुर्जे, ट्रैक्टर और खेती की मशीनें, इंजन और जहाज, तोपें और टैंक, हवाई जहाज और युद्ध–पोत मिले थे। कौशल सीखे हुए लाखों आदमियों की ज़रूरत थी, जो इस तमाम कौशल का उपयोग कर सकें और उससे ज्यादा से ज्यादा फ़ायदा पहुंचा सकें। इसके बिना, कौशल को जानने–बूझने वाले काफ़ी आदमियों के बिना, यह खतरा था कि यह सब कौशल मुर्दा और बेकार लोहा–लक्कड़ सा ही रह जाये। यह भारी खतरा था और इस वजह से पैदा हुआ था कि कौशल सीखे हुए आदमियों, कौशल का पूरी

तरह उपयोग कर सकने और इससे फ़ायदा उठा सकने वाले कार्यकर्ताओं की संख्या **वैसे ही न बढ़ रही थी** जैसे कि कौशल, बल्कि उससे **बहुत पीछे घिसट रही थी**। परिस्थिति इस कारण और भी उलझ गयी थी कि हमारे काफ़ी औद्योगिक प्रबंधक इस खतरे को महसूस न करते थे, और समझते थे कि कौशल से 'सब कुछ अपने–आप हो जायेगा!' पहले उन्होंने कौशल के महत्व को कम करके आंका था और उसे नफ़रत की निगाह से देखा था, अब वे उसका मूल्य बहुत बढ़ा कर आंकने लगे और उसे जादू समझने लगे। वे यह न समझते थे कि कौशल को जानने–बुझने वाले आदमियों के बिना कौशल मुर्दा है। वे यह न समझते थे कि कौशल से पैदावार खूब बढ़ाई जाये, इसके लिये कौशल को जानने–बूझने वाले आदमियों की ज़रूरत थी।

इस तरह, कौशल को जानने–बूझने वाले कार्यकर्ताओं की समस्या सबसे ज्यदा महत्वपूर्ण हो गयी।

यह जरूरी था कि जिन प्रबंधकों ने कौशल के लिये बहुत ज्यादा जोश दिखलाया था और इसके फलस्वरूप ट्रेनिंग पाये हुए आदमियों के महत्व को, कार्यकर्ताओं के महत्व को कम करके आंका था, उनका ध्यान कौशल का अध्ययन करने और उसमें उस्तादी हासिल करने की तरफ खींचा जाये, उनका ध्यान इस ज़रूरत की तरफ़ खींचा जाये कि कौशल का उपयोग कर सकने वाले और उससे भरसक लाभ उठा सकने वाले बहुत से कार्यकर्ताओं को शिक्षित करने के लिये कुछ भी न उठा रखा जाये।

पहले, जब पुनर्संगठन का दौर शुरू हो रहा था, जब देश में कौशल की कमी थी, तब पार्टी ने नारा दिया था : "पुनर्संगठन के दौर में सारा दारोमदार कौशल पर है;" अब जबकि कौशल की बहुतायत थी, जबकि पुनर्संगठन का काम मुख्यतः पूरा हो चुका था और कार्यकर्ताओं की भारी कमी महसूस हो रही थी, तब पार्टी के लिये नया नारा देना लाज़िमी हो गया, ऐसा नारा जो इतना कौशल पर नहीं बल्कि आदमियों पर, कौशल का भरसक उपयोग कर सकने वाले कार्यकर्ताओं पर ध्यान केन्द्रित करे।

इस दृष्टि से, मई 1935 में, कॉमरेड स्तालिन ने लाल सेना के विद्यालय के स्नातकों के सामने जो भाषण दिया उसका भारी महत्व था।

कॉमरेड स्तालिन ने कहा :

"पहले हम कहा करते थे कि 'सब कुछ कौशल पर निर्भर है'। इस नारे से, कौशल की कमी को खत्म करने और कार्यवाही के हर क्षेत्र में प्रथम श्रेणी के कौशल से अपनी जनता को लैस करने के लिये एक विशाल कौशल का आधार रचने में हमें मदद मिली। यह बहुत अच्छा है। लेकिन इतना काफी नहीं है, काफी हद तक

यह काफी नहीं है। कौशल को चालू करने के लिये और उससे अधिकतम फायदा उठाने के लिये, हमें ऐसे आदमी चाहिये जो कौशल पर हावी हो चुके हों, हमें ऐसे कार्यकर्ता चाहिये, जो उस पर हावी हो सकते हों और इस कौशल को उसके तमाम नियम–क़ायदों के अनुसार इस्तेमाल कर सकते हों। ऐसे आदमियों के बिना, जो कौशल पर हावी हो चुके हों, कौशल मुर्दा है। ऐसे लोगों के हाथ में, जो कौशल पर हावी हो चुके हों, कौशल चमत्कार कर सकता है और उसे करना चाहिये। अगर हमारी प्रथम श्रेणी की मिलों और कारखानों में, हमारे सरकारी और पंचायती खेतों में, हमारी यातायात–व्यवस्था में और लाल फ़ौज में हमारे पास ऐसे काफी कार्यकर्ता होते जो इस कौशल से काम ले सकते, तो हमारा देश आज से तिगुनी और चौगुनी ज्यादा सफलता पा सकता। यही सबब है कि अब आदमियों पर, कार्यकर्ताओं पर, उन मज़दूरों पर जो कौशल पर हावी हो चुके हों, जोर देना चाहिये। पुराना नारा 'सब कुछ कौशल पर निर्भर है', एक बीते हुए और का प्रतिबिम्ब है, ऐसे दौर का जिसमें हमारे पास कौशल की कमी थी। लेकिन उस नारे की जगह, अब नया नारा, यह नारा कि **'सब कुछ कार्यकर्ताओं पर निर्भर है'** देना चाहिये। मुख्य चीज अब यही है। ...

"वक्त आ गया है कि हम समझें कि दुनिया के पास जो सबसे मूल्यवान पूंजी है, उसमें सबसे मूल्यवान और सबसे निर्णायक पूंजी आदमी है, कार्यकर्ता हैं। यह समझना चाहिये कि हमारी आज की हालत में 'सब कुछ कार्यकर्ताओं पर निर्भर है'। अगर उद्योग–धंधों में, खेती, यातायात और सेना में हमारे पास अच्छे और बहुत से कार्यकर्ता हों तो हमारा देश अजेय हो जायेगा। अगर हमारे पास ऐसे कार्यकर्ता न होंगे, तो हम दोनों पैरों से लंगड़े रहेंगे।" (तुलना कीजिये, स्तालिन, ***लेनिनवाद की समस्यायें*** अं• सं•, मास्को, 1947, पृ• 523–24, – **सम्पादक, अंग्रेजी संस्करण)।**

इस तरह, अब मुख्य काम यह था कि कौशल जानने वाले कार्यकर्ताओं को ट्रेनिंग देने का काम बढ़ाया जाये और श्रम की उत्पादकता बराबर बढ़ाते रहने के लिये नये कौशल पर जल्द हावी हों।

ऐसे कार्यकर्ताओं की बढ़ती की सबसे जीती–जागती मिसाल, हमारी जनता द्वारा नये कौशल पर हावी होने और श्रम की उत्पादकता के बराबर बढ़ते रहने की ठोस जीती–जागती मिसाल स्ताखानोव आन्दोलन था। इस आन्दोलन का जन्म दोन्येत्स प्रदेश के कोयले के धंधों में हुआ, और वहां वह बढ़ा। वहां से वह उद्योग–धंधों की दूसरी शाखाओं, रेलों और उसके बाद, खेती में फैला। इसका नाम स्ताखानोव आन्दोलन उसके जन्मदाता अलैक्सी स्ताखानोव के कारण पड़ा। वह केन्द्रीय इर्मीनो

कोयले की खान (दोन्येन्स प्रदेश) में कोयला निकालने का काम करता था। स्ताखानोव से पहले, निकिताईजोतोव ने कोयला निकालने के सभी पूर्व रिकार्ड तोड़ दिये थे। 31 अगस्त 1935 को, स्ताखानोव ने एक ही पाली में 102 टन कोयला काटा और इस तरह, खुदाई के उस समय के मानदण्ड से चौदह गुना ज्यदा कोयला निकाला। इससे उपज का स्तर ऊंचा करने के लिये, श्रम की उत्पादकता में नयी प्रगति करने के लिये, मज़दूरों और पंचायती किसानों के एक सामूहिक आन्दोलन की शुरूआत हुई। मोटर के धंधों में बुसीगिन, जूतों के धंधों में स्मेतानिन, रेलों के किवोनोस, लकड़ी के धंधों में मुसिन्स्की, सूती उद्योग–धंधों में एव्दोकिया विनोग्रादोवा और मारिया विनोग्रादोवा, खेती में मारिया देमचैंको, मरीना ग्नातेंको, प• अंजेलिना, पोलागुतिन, कोलेसोव, कोवार्दाक और बोरिन – स्ताखानोव आन्दोलन के ये पहले अग्रदूत थे।

इनके बाद, दूसरे आगे बढ़ने वाले कार्यकर्ता आये। उनकी पलटनें की पलटनें आगे आयीं, जिन्होंने पहले के अग्रदूतों के श्रम की उत्पादकता को पीछे छोड़ दिया।

नवम्बर 1935 में, क्रेमलिन में स्ताखानोववादियों की पहली अखिल संघिय कान्फ्रेन्स हुई। उसमें कॉमेरेड स्तालिन ने भाषण दिया। इनसे स्ताखानोव आन्दोलन को जबर्दस्त प्रोत्साहन मिला।

कॉमरेड स्तालिन ने अपने भाषण में कहा :

"स्ताखानोव आन्दोलन... समाजवादी होड़ की नयी लहर की अभिव्यक्ति है, समाजवादी होड़ की नयी और उंची मंजिल की अभिव्यक्ति है। ... पिछले दिनों, लगभग तीन साल पहले समाजवादी होड़ की पहली मंजिल के दौर में यह ज़रूरी नहीं था कि समाजवादी होड़ का सम्बन्ध आधुनिक कौशल से हो। दरअसल, उस समय आधुनिक कौशल जैसी चीज हमारे पास मुश्किल से थी। इसके विपरीत, समाजवादी होड़ की वर्तमान मंजिल, स्ताखानोव आन्दोलन, का सम्बन्ध आवश्यक रूप से आधुनिक कौशल से है। नये और उच्चतर कौशल के बिना, स्ताखानोव आंदोलन की कल्पना नहीं की जा सकती। हमारे पास कामरेड स्ताखानोव, बुसीगिन, स्मेतानिन, क्रिवोनोस, प्रोनिन, दोनों विनोग्रादोवा और दूसरे बहुत से लोग हैं। ऐसे नये आदमी, मेहनत करने वाले स्त्री और पुरुष जिन्होंने अपने धंधों के कौशल में उस्तादी हासिल की है, उससे काम लिया है और आगे बढ़ गये हैं। तीन साल पहले, ऐसे आदमी थे ही नहीं या मुश्किल से थे।... स्ताखानोव आन्दोलन का महत्व इस बात में है कि यह ऐसा आन्दोलन है जो कौशल के पुराने मान–दंड तोड़ रहा है, क्योंकि वे नाकाफ़ी हैं। कई जगह तो वह सबसे आगे बढ़े हुए पूंजीवादी देशों की श्रम की उत्पादकता से भी आगे बढ़ रहा है।

इस तरह, यह आन्दोलन इस बात की अमली संभावना पैदा कर रहा है कि हमारे देश में समाजवाद को और दृढ़ किया जाये, यह संभावना पैदा कर रहा है कि हम अपने देश को दुनिया में सबसे समृद्ध देश बना सकें।" (**उप•**, पृष्ठ 526–27)

स्ताखानोववादियों के काम करने के तरीके बताते हुए और देश के भविष्य के लिये स्ताखानोव आन्दोलन का भारी महत्व प्रकट करते हुए, कॉमरेड स्तालिन ने आगे कहा :

"हमारे साथियों, स्ताखानोववादियों को और नजदीक से देखिये। ये किस तरह के लोग हैं? ये लोग ज्यादातर नौजवान, या अधेड़ उम्र के मज़दूर स्त्री और पुरुष हैं, ऐसे लोग हैं जिनके पास संस्कृति और कौशल का ज्ञान है, जो अपने काम में अचूक और नपे–तुले कार्य की मिसालें देते हैं, जो काम में समय का महत्व समझते हैं और जिन्होंने मिनटों का ही नहीं सैकिंडों का भी हिसाब रखना सीखा है। इनमें से अधिकांश ने कौशल का अल्पतम[1] कोर्स पूरा किया है और अपनी कौशल की शिक्षा जारी किये हुए हैं। इनमें कुछ इंजिनियरों, टैक्नीशियनों और प्रबंधकों की तरह, पुरातन से प्रेम और ठहराव नहीं है। ये कौशल के पुराने पड़ चुके मान–दंडों को चर करते हुए और नये और उच्चतर मान–दंड रचते हुए, हिम्मत से आगे बढ़ते जा रहे हैं। हमारे उद्योग–धंधों के नेताओं ने जो आर्थिक योजनायें बनायी हैं और योग्यता का जो हिसाब लगाया है, उनमें ये संशोधन करते जाते हैं। अक्सर इंजिनियर और टैक्नीशियन जो कहते हैं : उसे ये सुधार देते हैं और उसमें नयी चीज जोड़ देते हैं, उन्हें ये अक्सर शिक्षा देते हैं और आगे बढ़ने की प्रेरणा देते हैं। कारण यह कि ये ऐसे लोग हैं जो अपने धंधों के कौशल पर पूरी तरह हावी हो चुके हैं और कौशल से जो अधिकतम फ़ायदा उठाया जा सकता है, उसे उठाते हैं स्ताखानोववादियों की संख्या अभी कम है, लेकिन इसमें किसे संदेह हो सकता है कि कल उनकी संख्या दस गुनी बढ़ जायेगी? क्या यह स्पष्ट नहीं है कि स्ताखानोववादी उद्योग–धंधों में नये परिवर्तन करने वाले हैं, स्ताखानोव आन्दोलन हमारे उद्योग–धंधों के भविष्य का दर्पण है, उसमें मज़दूर वर्ग के सांस्कृतिक और कौशल सम्बन्धी स्तर के ऊंचे उठने के बीज हैं, वह हमारे सामने ऐसा रास्ता खोलता है जिस रास्ते से ही श्रम की उत्पादकता के वे ऊंचे आंकड़े हासिल हो सकते हैं जो समाजवाद से कम्युनिज्म की तरफ़ बढ़ने के लिये अनिवार्य हैं, और जो मानसिक श्रम और शरीरिक श्रम का भेद मिटाने के लिये अनिवार्य है?" (**उप•**, पृष्ठ 529)।

---

1. **कौशल का अल्पतम – समाजवादी उद्योग–धंधों में मज़दूरों के लिये आवश्यक कौशल संबंधी ज्ञान का अल्पतम स्तर – अं• अनु•**

स्ताखानोव आन्दोलन के फैलने से और समय से पहले दूसरी पंचवर्षीय योजना पूरी हो जाने से, ऐसी परिस्थितियां पैदा हुईं जिनमें श्रमिक जनता की खुशहाली और संस्कृति का स्तर एक नये सिरे से ऊंचा उठ सके।

दूसरी पंचवर्षीय योजना के दौर में, मजदूरों और दफ्तर के कर्मचारियों की वास्तविक तनख्वाह दुगुनी से ज्यादा बढ़ चुकी थी। 1933 में, कुल तनख्वाह 34 अरब रूबल दी जाती थी। 1937 में, यह तनख्वाह बढ़ कर 81 अरब रूबल हो गयी। राज्य का सामाजिक बीमा–फण्ड 4 अरब 60 करोड़ रूबल से, 5 अरब 60 करोड़ रूबल तक बढ़ा। अकेले 1937 में, मज़दूरों और कर्मचारियों के राज्य द्वारा होने वाले बीमें पर, जीवन की परिस्थितियां सुधारने और सांस्कृतिक जरूरतें पूरी करने पर, स्वास्थ्य–गृहों, विश्राम–गृहों, सेनेटोरियमों और औषधि–व्यवस्था पर, लगभग 10 अरब रूबल खर्च किये गये थे।

देहात में, पंचायती खेती की व्यवस्था निश्चित रूप से दृढ़ की जा चुकी थी। इस काम में, ***कृषि–संघों की नियमावली*** से बड़ी सहायता मिली। यह नियमावली फ़रवरी 1935 में होने वाली पंचायती खेतों के आगे बढ़े हुए कार्यकर्ताओं की दूसरी कांग्रेस में स्वीकार की गयी थी। पंचायती खेत जो जमीन जोतते–बोते थे, वह उन्हें **हमेशा बनाये रखने के लिये** दी गयी थी, इससे भी पंचायती खेती को दृढ़ करने में बड़ी सहायता मिली। पंचायती खेती की व्यवस्था के मज़बूत होने से, ग्रामीण जनता की ग़रीबी और रोटी–रोजी के अनिश्चित होने का खात्मा हो गया। पहले, लगभग तीन साल पहले, पंचायती किसानों को हर काम के दिन के लिये एक या दो किलोग्राम अनाज मिलता था। अनाज पैदा करने वाले इलाकों में, अब अधिकांश पंचायती किसानों को पांच से बारह किलोग्राम तक अनाज मिलता था और बहुतों को काम के फ़ी दिन के लिये बीस किलोग्राम तक अनाज मिलता था, जिसमें दूसरी तरह की उपज और पैसे की आमदनी की गिनती न थी। अब अनाज पैदा करने वाले इलाकों में, ऐसे लाखों पंचायती किसान परिवार थे जिनकी सालाना आमदनी 500 से 1500 पूड अनाज तक थी; और चुकन्दर, कपास, सन, पशु–प्रजनन, अंगुर, साइट्रस, साग और फल पैदा करने वाले इलाकों में जिनकी सालाना आमदनी लाखों रूबल थी। पंचायती खेत समृद्ध हो गये थे। पंचायती किसान परिवारों का मुख्य ध्यान अनाज की नयी खत्तियां और नये गोदाम बनाने की तरफ़ ही मुख्य रूप से था, क्योंकि पुराने गोदाम बहुत थोड़ी सी सालाना आमदनी के लिये बनाये गये थे और उनसे परिवार की दस फ़ीसदी जरूरतें भी पूरी न होती थीं।

1936 में, लोगों की खुशहाली के बढ़ते हुए स्तर के विचार से, सरकार ने गर्भपात बन्द करने का कानून पास किया। इसके साथ ही, जच्चाखाने, शिशुगृह, दूध पिलाने के केन्द्र और किण्डरगार्टन बनाने के लिये विस्तृत कार्यक्रम मंजूर किया। 1936 में,

इन सबके लिये 2,17,40,00,000 रूबल नियत किये गये; जबकि 1935 में इनके लिये 87 करोड़ 50 लाख रूबल नियत किये गये थे। बड़े परिवारों को काफ़ी भत्ता देने के लिये, एक कानून बनाया गया। इस कानून के मातहत, 1933 में 1 अरब रूबल से ऊपर भत्ता दिया गया।

सार्वजनिक अनिवार्य शिक्षा लागू करने से और नये स्कूल बनाने से, जनता की सांस्कृतिक प्रगति तेजी से हुई। सारे देश में, भारी संख्या में स्कूल बनाये गये। प्राथमिक और माध्यमिक स्कूलों में 1914 में 80 लाख विद्यार्थी थे; 1936–37 में उनकी तादाद 2 करोड़ 80 लाख हो गयी। इसी बीच, कृषि विद्यालयों के विद्यार्थियों की संख्या 1,12,000 से 5,42,000 तक बढ़ गयी।

सचमुच ही यह सांस्कृतिक क्रांति थी।

आम जनता की खुशहाली और संस्कृति की सतह ऊंची होने से, सोवियत क्रांति की शक्ति, उसके बल और अजेयता का पता लगता था। पुराने जमाने में, क्रांतियां इसलिये नाकाम हुई थीं कि जनता को आजादी देने पर भी वे उसकी भौतिक और सांस्कृतिक हालत में कोई गहरा सुधार न कर सकी थीं। उनकी मुख्य कमजोरी यही थी। सभी क्रांतियों से हमारी क्रांति इसी बात में भिन्न थी कि उसने जनता को ज़ारशाही और पूंजीवाद से मुक्त ही नहीं किया, बल्कि जनता की खुशहाली और सांस्कृतिक हालत में बुनियादी सुधार किया। उसकी शक्ति और अजेयता इसी बात में है।

स्ताखानोववादियों की पहली अखिल संघीय कान्फ्रेंस में, कॉमरेड स्तालिन ने कहा थ :

"दुनिया में हमारी सर्वहारा क्रांति ही ऐसी क्रांति है जिसे जनता को न सिर्फ़ राजनीतिक परिणाम, बल्कि भौतिक परिणाम भी दिखाने का मौका मिला है। तमाम मजदूरों की क्रांतियों में, हम एक ही ऐसी क्रांति जानते हैं जो सत्ता ले सकी थी। वह थी – पैरिस कम्यून। लेकिन, वह ज्यादा दिन न चली। यह सही है कि उसने पूंजीवाद की बेडियां चूर करने की कोशिश की; लेकिन उन्हें चूर कर डालने का उसे काफ़ी समय न मिला और जनता को क्रांति के लाभदायी भौतिक परिणाम दिखाने का और भी कम समय मिला था। हमारी क्रांति ही ऐसी क्रांति है कि जिसने पूंजीवाद की बेड़ियां ही नहीं तोड़ीं और जनता के लिये आजादी ही नहीं लायी, बल्कि वह जनता की खुशहाल जिन्दगी के लिये भौतिक परिस्थितियां निर्मित करने में भी सफल हुई है। हमारी क्रांति की शक्ति और अजेयता इसी बात में है।"(*उप०*, पृष्ठ 532)

3. सोवियतों की आठवीं कांग्रेस। सोवियत संघ के नये विधान की स्वीकृति।

फ़रवरी 1935 में, सोवियत समाजवादी प्रजातंत्र संघ की सोवियतों की सातवीं कांग्रेस ने एक प्रस्ताव पास किया कि सोवियत संघ का 1924 में स्वीकृत किया हुआ विधान बदल दिया जाये। सोवियत संघ के जीवन में जो विराट परिवर्तन हुए थे, उनसे विधान बदलना जरूरी था; क्योंकि सोवियत संघ का पहला विधान 1924 में मंजूर किया गया था। इस दौर में, देश की वर्ग–शक्तियों का परस्पर सम्बन्ध बिल्कुल बदल गया था। नये समावादी उद्योग–धंधे निर्मित हुए थे। कुलकों का विध्वंस हो चुका था। पंचायती खेती की जीत हुई थी। सोवियत समाज के आधार के रूप में, राष्ट्रीय अर्थतंत्र की हर शाखा में पैदावार के साधनों की समाजवादी मिल्कियत क़ायम की गयी थी। समाजवाद की जीत से, मुमकिन हुआ कि चुनाव की व्यवथा को और भी जनवादी बनाया जाये और गुप्त मतदान के साथ सार्वजनिक, समान और प्रत्यक्ष निर्वाचन–प्रथा चालू की जाये!

कॉमरेड स्तालिन के सभापतित्व में, विधान का मसौदा तैयार करने के लिये एक विधान–कमीशन बनाया गया था और उसने सोवियत संघ के नये विधान का मसौदा तैयार किया। मसौदा सारे देश के सामने बहस के लिये रखा गया; और यह बहस साढ़े पांच महीने चलती रही। उसके बाद, वह सोवियतों की असाधारण आठवीं कांग्रेस के सामने पेश किया गया।

सोवियतों की आठवीं कांग्रेस सोवियत संघ के नये विधान का मसौदा मंजूर या नामंजूर करने के लिये खास तौर से बुलायी गयी थी। यह कांग्रेस नवम्बर 1936 में हुई।

कांग्रेस के सामने नयेविधान के मसौदे पर रिपोर्ट देते हुए, कॉमरेड स्तालिन ने बताया कि सोवियत संघ में 1924 का विधान मंजूर होने के बाद कौन सी मुख्य तब्दीलियां हुई हैं।

1924 का विधान नेप के शुरू के दिनों में बना था। उस समय तक, सोवियत सरकार समाजवाद के विकास के साथ–साथ पूंजीवाद के विकास की भी अनुमति देती थी। सोवियत सरकार ने योजना बनायी थी कि दोनों व्यवस्थाओं–पूंजीवादी व्यवस्था और समाजवादी व्यवस्था – के बीच होड़ चलने के दौर में आर्थिक क्षेत्र में पूंजीवाद पर समाजवाद की विजय संगठित और निश्चित की जायेगी। 'कौन जीतेगा?' – इस सवाल का अभी फ़ैसला न हुआ था। उस समय के उद्योग–धंधे कौशल के पुराने और

नाकाफ़ी सामान से लैस थे। वे अभी युद्ध–पूर्व की सतह तक ही न पहुंच पाये थे। खेती की हालत इससे भी गयी–बीती थी। किसानों के निजी खेत एक अपार सागर थे और सरकारी तथा पंचायती खेत उसके छोटे–छोटे टापू। उस समय, सवाल कुलकों को खत्म करने का नहीं, सिर्फ़ उन्हें नियंत्रित करने का था। समाजवादी नाके पर, देश का सिर्फ 50 फ़ीसदी व्यापार होता था।

1936 में, सोवियत संघ की तस्वीर बिल्कुल ही दूसरी थी। उस समय तक, देश का आर्थिक जीवन पूरी तरह बदल गया था और आर्थिक जीवन के सभी क्षेत्रों में समाजवादी व्यवस्था की जीत हुई थी। अब शक्तिशाली समाजवादी उद्योग–धंधे थे, जिन्होंने युद्ध–पूर्व की उपज से सात गुनी पैदावार बढ़ा ली थी और व्यक्तिगत उद्योग–धंधों को पूरी तरह निकाल बाहर किया था। खेती में, पंचायती और सहकारी खेतों के रूप में, अप–टू–डेट मशीनों से लैस और दुनिया में सबसे बड़े पैमाने पर चलने वाली यंत्र–सज्जित समाजवादी खेती की जीत हुई थी। 1936 तक, कुलक वर्ग रूप में पूरी तरह खत्म किये जा चुके थे और निजी खेती करने वाले किसान देश के आर्थिक जीवन में कोई महत्वपूर्ण भूमिका अदा न करते थे। व्यापार पूरी तरह राज्य और सहकारी समितियों के हाथ में था। मनुष्य द्वारा मनुष्य का शोषण सदा के लिये खत्म किया जा चुका था। आर्थिक जीवन की सभी शाखाओं में, नयी समाजवादी व्यवस्था की अडिग बुनियाद के तौर पर पैदावार के साधनों की सार्वजनिक, समाजवादी मिल्कियत मजबूती से क़ायम हो चुकी थी। नये सोशलिस्ट समाज से ग़रीबी, बेकारी, संकट और मुफ़लिसी हमेशा के लिये बिदा हो चुके थे। सोवियत समाज के सभी सदस्यों की खुशहाल और सांस्कृतिक जिन्दगी के लिये परिस्थितियां रची जा चुकी थीं।

कामरेड स्तालिन ने अपनी रिपोर्ट में कहा कि सोवियत संघ में वैसे ही आबादी की वर्ग–बनावट भी बदल गयी है। गृह–युद्ध के दौर में भी, जमींदार वर्ग और पुराने बड़े साम्राज्यवादी पूंजीपतियों का खात्मा हो चुका था। समाजवादी निर्माण के वर्षों में, सभी शोषक तत्व – पूंजीपति, सौदागर, कुलक और मुनाफेखोर – मिटा दिये गये थे। मिटाये हुए शोषक वर्गों के सिर्फ़ नगण्य अवशेष रह गये थे, और उन्हें पूरी तरह से मिटाना बहुत ही निकट भविष्य की बात थी।

समाजवादी रचना के दौर में, सोवियत संघ की श्रमिक जनता में – मजदूरों, किसानों और बुद्धिजीवियों में – गहरी तब्दीली हुई थी।

मज़दूर वर्ग अब शोषित वर्ग न था, जैसा कि पूंजीवाद में पैदावार के साधनों से हीन वह होता है। उसने पूंजीवाद को निर्मूल कर दिया था, पूंजीपतियों से पैदावार के साधन ले लिये थे और उन्हें जन–सम्पत्ति बना दिया था। वह 'सर्वहारा' शब्द के

पुराने और सही अर्थ में सर्वहारा न रह गया था। सोवियत संघ के सर्वहारा वर्ग के पास राज्य–सत्ता थी, और वह बिल्कुल नये वर्ग में तब्दील हो गया था। वह ऐसा मज़दूर वर्ग हो गया था शोषण से मुक्त था, ऐसा मज़दूर वर्ग जिसने पूंजीवादी आर्थिक व्यवस्था मिटा दी थी और पैदावार के साधनों की समाजवादी मिल्कियत क़ायम की थी। इसलिये, यह ऐसा मज़दूर वर्ग था जैसा मनुष्य जाति के इतिहास ने पहले कभी भी न देखा था।

सोवियत संघ के किसानों की हालत में भी कम गहरे परिवर्तन न हुए थे। पुराने जमाने में, दो करोड़ से ऊपर निजी खेती करने वाले छोटे और मध्यम किसान परिवार अलग–अलग बाबा आदम के जमाने के औजारों से अपने छोटे–छोटे खेत जोतते–बोते रहे थे। जमींदार, कुलक, सौदागर, मुनाफेखोर, सूदखोर, वगैरह उनका शोषण करते थे। अब सोवियत संघ में बिल्कुल नयी तरह के किसान बन चुके थे। किसानों का शोषण करने के लिये अब जमींदार, कुलक, सौदागर और सूदखोर न थे। किसान परिवारों की भारी बहुसंख्या पंचायती खेतों में शामिल हो चुकी थी। इन पंचायती खेतों का आधार पैदावार के साधनों की निजी मिल्कियत न थी, बल्कि पंचायती मिल्कियत थी; ऐसी पंचायती मिल्कियत जो पंचायती मेहनत से पैदा हुई थी। ये नयी तरह के किसान थे, ऐसे किसान जो शोषण से मुक्त थे। ये ऐसे किसान थे जैसे मनुष्य जाति के इतिहास ने पहले कभी भी न देखे थे।

सोवियत संघ के बुद्धिजीवियों में भी तब्दीली हुई थी। अधिकांश में, ये बिल्कुल नये बुद्धिजीवी बन गये थे। बुद्धिजीवी वर्ग के अधिकांश सदस्य मज़दूरों और किसानों की पांति से आये थे। यह वर्ग पुराने बुद्धिजीवियों की तरह पूंजीवाद की सेवा न करता था; वह समाजवाद की सेवा करता था। वह सोशलिस्ट समाज का बराबरी के दर्जे वाला सदस्य था। मज़दूरों और किसानों के साथ, वह नये सोशलिस्ट समाज का निर्माण कर रहा था। यह नयी तरह का बुद्धिजीवी वर्ग था, जो जनता की सेवा करता था और सभी तरह के शोषण से मुक्त था। यह ऐसा बुद्धिजीवी वर्ग था जैसा मनुष्य जाति के इतिहास ने पहले कभी भी न देखा था।

इस तरह, सोवियत संघ की श्रमिक जनता में पुराने वर्ग–विभाजन की रेखायें मिट रही थीं, वर्गों का पुराना अकेलापन मिट रहा था। मज़दूरों, किसानों और बुद्धिजीवियों के आर्थिक और राजनीतिक अंतर्विरोध मुरझा रहे थे और मिट रहे थे। समाज की नैतिक और राजनीतिक एकता की बुनियाद रखी जा चुकी थी।

सोवियत संघ के जीवन में ये गम्भीर परिवर्तन, सोवियत संघ में समाजवाद की ये निर्णायक सफलतायें नये विधान में प्रतिबिम्बित हुई।

नये विधान के अनुसार, सोवियत समाज में दो मित्र वर्ग हैं – मज़दूर और किसान। इन दोनों का वर्ग–विभेद अभी बना हुआ है। सोवियत समाजवादी प्रजातंत्र संघ मजदूरों और किसानों का समाजवादी राज्य है।

श्रमिक जनता के प्रतिनिधियों की सोवियतें सोवियत संघ की राजनीतिक बुनियाद हैं। जमींदारों और पूंजीपतियों की सत्ता खत्म करने और सर्वहारा डिक्टेटरशिप हासिल करने के फलस्वरूप, ये सोवियतें विकसित और मज़बूत हुई हैं।

सोवियत संघ में, सभी सत्ता श्रमिक जनता के प्रतिनिधियों की सोवियतों के रूप में शहर और देहात की श्रमिक जनता के हाथ में है।

सोवियत संघ में, राज्य–शक्ति का सबसे ऊंचा संगठन सोवियत संघ की सर्वोच्च (सुप्रिम) सोवियत है।

सोवियत संघ की सर्वोच्च सोवियत में, समान अधिकार वाले दो सदन हैं – संघ की सोवियत और जातियों की सोवियत। गुप्त मतदान से सार्वजनिक, समान और प्रत्यक्ष निर्वाचन के आधार पर, चार साल के लिये सोवियत संघ के नागरिकों द्वारा सर्वोच्च सोवियत चुनी जाती है।

श्रमिक जनता के प्रतिनिधियों की सभी सोवियतों की तरह, सोवियत संघ की सर्वोच्च सोवियत के चुनाव **सार्वजनिक** हैं। इसका मतलब यह है कि सोवियत संघ के सभी नागरिक जो 18 साल के हो चुके हों, नस्ल, जाति, धर्म, शिक्षा का स्तर, निवास–स्थान, सामाजिक उद्गम, सम्पत्ति की स्थिति, या पिछली कार्यवाही का विचार किये बिना, प्रतिनिधियों के चुनाव में वोट दे सकते हैं और स्वयं चुने जा सकते हैं। जो आदमी पागल हैं, या जिन्हें अदालतों ने ऐसी सजाएं दी हैं जिनमें निर्वाचन के अधिकार खोना शामिल हैं, इस नियम के अपवाद हैं।

प्रतिनिधियों का निर्वाचन समान रूप से होता है। इसका मतलब यह है कि हर नागरिक का एक वोट है और सभी नागरिक बराबरी की हैसियत से चुनाव में हिस्सा लेते हैं।

प्रतिनिधियों का चुनाव **प्रत्यक्ष** होता है। इसका मतलब यह है कि श्रमिक जनता के प्रतिनिधियों की देहाती और शहरी सोवियतों से लेकर सोवियतसंघ की सर्वोच्च सोवियत तक और उसे मिला कर श्रमिक जनता के प्रतिनिधियों की सभी सोवियतें नागरिकों द्वारा प्रत्यक्ष वोट से चुनी जाती हैं।

सोवियत संघ की सर्वोच्च सोवियत दोनों सदनों की मिलीजुली बैठक में अपना सभापति–मंडल और सोवियत संघ के जन–कमीसारों की समिति चुनती है।

सोवियत संघ की आर्थिक बुनियाद अर्थतंत्र की समाजवादी व्यवस्था और पैदावार के साधनों की समाजवादी मिल्कियत है। सोवियत संघ में, यह समाजवादी उसूल चरितार्थ होता है – "हर एक से उसकी योग्यता के अनुसार, हर एक को उसके काम के अनुसार।"

सोवियत संघ के सभी नागरिकों को काम करने के अधिकार की गारण्टी है; आराम करने और अवकाश भोगने के अधिकार, शिक्षा पाने के अधिकार, बुढ़ापे में और बीमारी, या अपाहिज होने पर परवरिश के अधिकार की गारंटी है।

जीवन के सभी क्षेत्रों में, स्त्रियों को पुरुषों के बराबर अधिकार दिये गये हैं।

सोवियत संघ के नागरिकों की समानता, उनकी जाति या नस्ल का भेद किये बिना, एक अटूट विधान है।

सभी नागरिकों के लिये, अंतःकरण की स्वाधीनता और धर्म–विरोधी प्रचार की स्वाधीनता स्वीकृत है।

सोशलिस्ट समाज को मजबूत करने के लिये, भाषण, प्रकाशन और सभा–संगठन की आज़ादी की गारण्टी विधान करता है; सार्वजनिक संगठनों में एक होने के अधिकार, व्यक्ति की सुरक्षा, निवास और पत्र–व्यवहार के गुप्त रहने की सुरक्षा; श्रमिक जनता के हितों की रक्षा करने के लिये, या अपनी वैज्ञानिक कार्यवाही के लिये, या राष्ट्रीय स्वाधीनता के लिये अपने संघर्ष के कारण सताये हुए विदेशी नागरिकों के शरण पाने के अधिकार की गारंटी करता है।

नये विधान ने सोवियत संघ के सभी नागरिकों के लिये गम्भीर कर्तव्य भी निश्चित किये हैं : कानून पालना, श्रम–अनुशासन पर चलना, ईमानदारी से सार्वजनिक कर्तव्य–पालन करना, सोशलिस्ट समाज के नियमों का आदर करना, सार्वजनिक, समाजवादी सम्पत्ति की रक्षा करना और उसे मज़बूत करना, और समाजवादी पितृभूमि की रक्षा करना।

"पितृभूमि की रक्षा करना, सोवियत संघ के हर नागरिक का पवित्र कर्तव्य है।"

विभिन्न सभाओं में नागरिकों के इकट्ठे होने के अधिकार की चर्चा करते हुए, विधान के एक नियम में कहा गया है :

" मज़दूर वर्ग की पांति में से, और श्रमिक जनता के दूसरे हिस्सों से, सबसे सक्रिय और राजनीतिक रूप से सचेत नागरिक सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) में एकजुट होते हैं। यह पार्टी समाजवादी व्यवस्था को मज़बूत करने और विकसित करने के लिये मज़दूर वर्ग के संघर्ष में उसकी हिरावल है और श्रमिक जनता के सभी सार्वजनिक और सरकारी संगठनों की मेरुदंड है।"

सोवियतों की आठवीं कांग्रेस ने एकमत से सोवियत संघ के नये विधान के मसौदे का अनुमोदन किया और उसे स्वीकृत किया।

इस तरह, सोवियत देश ने एक नया विधान पाया, ऐसा विधान जिसमें समाजवाद और मज़दूरों तथा किसानों के जनतंत्र की विजय निहित थी।

इस तरह, विधान ने इस युगान्तरकारी तथ्य को वैधानिक रूप दिया कि सोवियत संघ ने विकास की नयी मंजिल में प्रवेश किया है, ऐसी मंजिल जिसमें सोशलिस्ट समाज की रचना पूरी हो चुकी है और कम्युनिस्ट समाज की तरफ़ क्रमशः बढ़ने का काम शुरू हो गया है, जहां सामाजिक जीवन का पथ–दर्शक सिद्धांत यह कम्युनिस्ट उसूल होगा : "हर एक से उसकी योग्यता के अनुसार, हर एक को उसकी आवश्यकता के अनुसार।"

4. जासूसों, तोड़–फोड़ करने वालों और देश के गद्दारों के बुखारिन–त्रात्स्की गिरोह के अवशेषों का खात्मा। सोवियत संघ की सर्वोच्च सोवियत के चुनाव की तैयारियां। पार्टी के भीतर व्यापक जनवाद – पार्टी का रास्ता। सोवियत संघ की सर्वोच्च सोवियत के चुनाव।

1937 में, बुखारिन–त्रात्स्की गिरोह के राक्षसी कारनामों के बारे में नयी बातों का पता चला। प्याताकोव, रादेक आदि के मुकदमें से, तुखाचेव्स्की, याकिर आदि के मुकदमें से, और अंत में बुखारिन, राइकोव, क्रेस्तिन्स्की, रोजेनगोल्ज, वगैरह के मुकदमें से पता चला कि बुखारिनपंथी और त्रात्स्कीवादी बहुत पहले मिलकर जनता के शत्रुओं का एक मिलाजुला दल बना चुके थे, जो 'दक्षिणपंथियों और त्रात्स्कीवादियों के गुट' के रूप मे काम करता था।

मुकदमों से पता चला कि अक्तूबर समाजवादी क्रांति के प्रारम्भिक दिनों से ही मनुष्य जाति के इन कृमि–कीटों ने त्रात्स्की, जिनोवियेव और कामेनेव जैसे जनता के शत्रुओं के साथ मिल कर, लेनिन, पार्टी और सोवियत राज्य के खिलाफ़ षड़यंत्र

किया था। 1918 के आरम्भ में, ब्रेस्ट–लिटोव्स्क की शांति न होने देने का नीच प्रयत्न, लेनिन के खिलाफ़ षड़यंत्र और 1918 के बसन्त में लेनिन, स्तालिन और स्वेर्दलोव की गिरफ्तारी और हत्या के लिये 'वामपंथी' समाजवादी क्रांतिकारियों के साथ षड़यंत्र और 1918 की गर्मियों में लेनिन पर पैशाचिक हमला, जब पिस्तौल की गोली से लेनिन घायल हुए थे, 1918 की गर्मियों में 'वामपंथी' समाजवादी क्रांतिकारियों का विद्रोह, पार्टी के भीतर लेनिन के नेतृत्व की जड़ काटने और उसे खत्म करने के उद्देश्य से 1921 में पार्टी के मतभेदों को जानबूझ कर बढ़ाना, लेनिन की बीमारी के समय और उनकी मृत्यु के बाद पार्टी–नेतृत्व को खत्म करने की कोशिशें, विदेशी जासूस–विभागों को राज्य के भेद बताना और जासूसी किस्म की सूचनायें भेजना, किरोव की नीच हत्या, तोड़–फोड़, उकसावे के काम और विस्फोट, मेंजिंस्की, कुईविशेव और गोर्की की हत्या – पता लगा कि ये और ऐसे ही राक्षसी काम बीस साल तक पूंजीवादी राज्यों के जासूस–विभागों की आज्ञा से त्रात्स्की, जिनोवियेव, कामेनेव, बुखारिन, राइकोव और उनके गुर्गों ने अपनी देख–रेख में कराये थे, या उनमें हिस्सा लिया था।

मुकदमों से पता चला कि त्रात्स्की–बुखारिन गुट के इन राक्षसों ने अपने मालिकों–विदेशी रियासतों के जासूस–विभागों – की आज्ञा से पार्टी और सोवियत राज्य का नाश करने का बीड़ा उठाया था; देश की सुरक्षा–शक्ति को कमजोर करने, विदेशी सैनिक हस्तक्षेप की सहायता करने, लाल फ़ौज की हार के लिये रास्ता साफ़ करने, सोवियत संघ का विभाजन करने, जापानियों को सोवियत समुद्री इलाका देने, पोलों को सोवियत बेलोरूसिया और जर्मनों को सोवियत उक्रैन देने, मज़दूरों और पंचायती किसानों की सफलतायें मिटाने और सोवियत संघ में पूंजीवादी गुलामी बहाल करने का बीड़ा उठाया था।

ये पिद्दी जैसे गद्दार, जिनकी ताकत चींटी से ज्यादा न थी, यह समझ बैठे थे कि वे देश के मालिक हैं और ख़्वाब देखने लगे थे कि उक्रैन, बेलोरूसिया और समुद्री इलाका बेचना, या दे देना सचमुच उनके हाथ में है।

ये गद्दार कीड़े भूल गये थे कि सोवियत देश की सच्ची मालिक सोवियत जनता है, और उसने इन राइकोवों, बुखारिनों, जिनोवियेवों और कामेनेवों को राज्य के केवल अस्थायी कर्मचारी ही बनाया है, जिन्हें किसी समय भी वह अपने दफ्तरों से कूड़े के ढेर की तरह बाहर फेंक सकती है।

फ़ासिस्टों के यह घृणित चाकर भूल गये कि सोवियत जनता के सिर्फ़ उंगली भर उठाने की देर है और इनका कहीं निशान बाक़ी नहीं रहेगा।

सोवियत अदालत ने बुखारिन–त्रात्स्की गिरोह के राक्षसों को गोली से उड़ा देने की सज़ा दी।

घरेलू मामलों की जन–कमीसार–समिति ने प्राणदंड पूरा किया।

सोवियत जनता ने बुखारिन–त्रात्स्की गिरोह के नाश का अनुमोदन किया और फिर अपने आगे के कामों में लग गयी।

और, अगला काम यह था कि सोवियत संघ की सर्वोच्च सोवियत के चुनाव की तैयारी की जाये और उसे संगठित रूप में किया जाये।

पार्टी ने चुनाव की तैयारियों में अपनी सारी शक्ति लगा दी। उसका विचार था कि सोवियत संघ के नये विधान को अमल में लाना देश के राजनीतिक जीवन में एक मोड़ है। इस मोड़ का मतलब था – चुनाव की व्यवस्था को पूरी तरह जनतांत्रिक बनाना, सीमित निर्वाचन की जगह सार्वजनिक निर्वाचन चालू करना, पूरी तरह से समान न होने वाले मताधिकार की जगह समान मताधिकार चालू करना, अप्रत्यक्ष चुनाव के बदले प्रत्यक्ष चुनाव जारी करना, और खुले मतदान के बदले गुप्त मतदान का चलन करना।

नये विधान के चलन के पहले पुजारियों, भूतपूर्व ग़दारों, भूतपूर्व कुलकों और सामाजिक रूप से उपयोगी धंधों में न लगे हुए आदमियों के मताधिकारों पर रोक थी। नये विधान ने प्रतिनिधियों का चुनाव सार्वजनिक करके निर्वाचन की सभी पाबन्दियों को खत्म कर दिया, जो इस तरह के नागरिकों पर लगी थीं।

पहले, प्रतिनिधियों का चुनाव असमान होता था, क्योंकि शहरी और देहाती आबादी के चुनाव के आधार अलग–अलग थे। लेकिन, अब निर्वाचन की समानता पर पाबन्दी लगाने की कोई ज़रूरत न रह गयी थी और सभी नागरिकों को चुनाव में समानता के आधार पर हिस्सा लेने का अधिकार दिया गया था।

पहले, सोवियत सत्ता की बीच वाली और ऊंची संस्थाओं के चुनाव अप्रत्यक्ष होते थे। लेकिन अब नये विधान के अनुसार, शहरी और देहाती सोवियतों से लेकर सर्वोच्च सोवियत तक सभी सोवियतों का चुनाव नागरिकों द्वारा प्रत्यक्ष रूप से होना था।

पहले सोवियतों के प्रतिनिधि खुले मतदान से चुने जाते थे और उम्मीदवारों की सूचियों पर वोट पड़ते थे। लेकिन, अब प्रतिनिधियों के लिये वोट गुप्त मतदान से दिये जाते थे, और सूचियों को नहीं बल्कि हर निर्वाचन–क्षेत्र के लिये अलग–अलग नामजद व्यक्तिगत उम्मीदवारों को दिये जाते थे।

देश के राजनीतिक जीवन में, यह एक निश्चित मोड़ था।

नयी निर्वाचन–प्रथा का यह फल निकलना था, और दरअसल निकला कि जनता की राजनीतिक कार्यवाही और बढ़ी, सोवियत सत्ता की संस्थाओं पर आम जनता का ज्यादा नियंत्रण हुआ और जनता के प्रति सोवियत सत्ता की संस्थाओं की जिम्मेदारी और बढ़ी।

इस मोड़ के लिये पूरी तरह तैयार रहने के लिये, पार्टी को उसकी प्रेरक शक्ति बनना था और अगले चुनाव में उसकी प्रमुख भूमिका पूरी तरह निश्चित करनी थी। लेकिन, यह तभी हो सकता था जब खुद पार्टी–संगठन अपने रोजमर्रा के काम में पूरी तरह जनतांत्रिक हो जायें, जब वे पूरी तरह अपने अन्दरूनी पार्टी–जीवन में जनवादी–केन्द्रीयता के उसूलों पर चलें, जैसा कि पार्टी नियमावली का तक़ाजा था, जब पार्टी की सभी संस्थायें निर्वाचित हों, जब पार्टी में आलोचना और आत्मालोचना पूरी तरह विकसित हो, जब पार्टी के सदस्यों के प्रति पार्टी–संस्थाओं की पूरी–पूरी जिम्मेदारी हो, और जब खुद पार्टी सदस्य पूरी तरह से सक्रिय हों।

फ़रवरी 1937 में, कॉमरेड ज्दानोव ने केन्द्रीय समिति की प्लीनम में सोवियत संघ की सर्वोच्च सोवियत के चुनाव के लिये पार्टी–संगठनों को तैयार करने के विषय पर एक रिपोर्ट दी। उस रिपोर्ट से पता चला कि कई पार्टी संगठन बाक़ायदा पार्टी–नियमावली तोड़ रहे थे और अपने रोज़मर्रा के काम में जनतांत्रिक केन्द्रीयता के उसूल ठुकराते थे, चुनाव के बदले सदस्यों को कोआप्ट करते थे, अलग–अलग उम्मीदवारों को चुनने के बदले सूचियों को वोट देते थे, गुप्त मतदान के बदले, खुले मतदान से काम लेते थे, वगैरह। ज़ाहिर था कि जिन संगठनों में इस तरह का व्यवहार चल रहा था वे सही तौर पर सर्वोच्च सोवियत के चुनाव में अपना काम पूरा न कर सकते थे। इसलिये, सबसे पहले ज़रूरी था कि पार्टी–संगठनों में ऐसी जनतंत्र–विरोधी हरकतें बन्द की जायें और व्यापक जनवादी तरीके से पार्टी कार्य को संगठित किया जाये।

इसलिये कॉमरेड ज्दानोव की रिपोर्ट सुनने के बाद, केन्द्रीय समिति की प्लीनम ने फ़ैसला किया :

"(क) पार्टी नियमावली के अनुसार, पार्टी के अन्दरूनी जनतंत्र के उसूलों के बिना शर्त और पूरी तरह पालन करने के आधार पर पार्टी कार्य पुनर्संगठित किया जाये।

"(ख) पार्टी–कमिटियों में सदस्य कोऑप्ट करने का चलन बन्द किया जाये और पार्टी–नियमावली के अनुसार, पार्टी–संगठनों की निर्देशक संस्थाओं के चुनाव का सिद्धांत बहाल किया जाये।

"(ग) पार्टी–संस्थाओं के चुनाव में, सूचियों पर वोट देने की मनाही की जाये; वोट अलग–अलग व्यक्तिगत उम्मीदवारों को दिये जायें और पार्टी के सभी सदस्यों का उम्मीदवारों को चुनौती देने और उनकी आलोचना करने का अनियंत्रित अधिकार सुरक्षित किया जाये।

"(घ) पार्टी–संस्थाओं के चुनाव में गुप्त मतदान का चलन किया जाये।

"(ड.) प्राथमिक पार्टी–संगठनों की पार्टी–कमिटियों से लेकर मण्डल और प्रदेश कमिटियों तक सभी पार्टी–संगठनों की पार्टी–संस्थाओं और जातीय कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समितियों के चुनाव किये जायें। ये चुनाव 20 मई तक पूरे हो जायें।

"(च) पार्टी–संगठनों को आज्ञा दी जाये कि पार्टी–संस्थाओं के काम की मियाद के बारे में पार्टी नियमावली की धारायें सख्ती से मानी जायें, यानी प्राथमिक पार्टी–संगठनों में सालाना चुनाव करना, जिले और शहर के संगठनों में सालाना चुनाव करना और मण्डल, प्रदेश और प्रजातंत्रों के संगठनों में हर अठारहवें महीने चुनाव करना।

"(छ) यह निश्चित करना कि प्राथमिक पार्टी–संगठन इस नियम का सख्ती से पालन करें कि आम फैक्टरी सभाओं में पार्टी–कमिटियां चुनी जायें और प्रतिनिधियों के सम्मेलन उनकी जगह न ले लें।

"(ज) कई प्राथमिक पार्टी–संगठनों के इस चलन का खात्मा करना कि आम मीटिंगें प्रायः खत्म करके, उनकी जगह विभाग–मीटिंगें और प्रतिनिधि–सम्मेलन किये जायें।"

इस तरह, पार्टी ने आगामी चुनाव की तैयारियां शुरू कीं।

केंद्रीय समिति का यह फ़ैसला भारी राजनीतिक महत्व का था। इसका महत्व इसी बात में न था कि उससे सोवियत संघ की सर्वोच्च सोवियत के चुनाव के लिये पार्टी आन्दोलन शुरू हुआ, बल्कि इसमें भी, और सबसे पहले इसी में था कि उसने पार्टी–संगठनों को अपना काम पुनर्संगठित करने में मदद दी, पार्टी के अन्दरूनी

जनतंत्र का उसूल लागू करने में और पूरी तैयारी के साथ सर्वोच्च सोवियत के चुनावों का सामना करने में मदद दी।

पार्टी ने फ़ैसला किया कि कम्युनिस्टों और ग़ैरपार्टी जनता के संयुक्त निर्वाचन–दल को चुनाव आन्दोलन चलाने में अपनी नीति की धुरी बनाया जाये। पार्टी ने चुनाव–क्षेत्रों में ग़ैरपार्टी जनता के साथ मिलेजुले उम्मीदवार खड़े करने का फ़ैसला करके एक संयुक्त दल में, ग़ैरपार्टी जनता के सहयोग से, चुनावों में प्रवेश किया। पूंजीवादी देशों के चुनावों के लिये यह बिल्कुल अभूतपूर्व और असम्भव सी चीज थी, लेकिन हमारे देश में कम्युनिस्टों और ग़ैरपार्टी जनता का संयुक्त दल बिल्कुल स्वाभाविक सी चीज थी, क्योंकि यहां विरोधी वर्ग बिल्कुल न रह गये थे और जनता के सभी हिस्सों की नैतिक और राजनीतिक एकता एक असन्दिग्ध सत्य है।

7 दिसम्बर 1937 को, पार्टी की केन्द्रीय समिति ने निर्वाचकों के नाम एक घोषणापत्र निकाला, जिसमें कहा गया था :

"12 दिसम्बर 1937 को, हमारे समाजवादी विधान के अनुसार, सोवियत संघ की श्रमिक जनता देश की सर्वोच्च सोवियत के प्रतिनिधियों का चुनाव करेगी। बोल्शेविक पार्टी गैरपार्टी मजदूरों, किसानों दफ्तर के कर्मचारियों और बुद्धिजीवियों के **सहयोग से, संयुक्त दल** में, चुनावों में प्रवेश करती है। बोल्शेविक पार्टी दीवाल खड़ी करके ग़ैरपार्टी जनता से अपने–आपको दूर नहीं रखती, बल्कि इसके विपरित, गैरपार्टी जनता के साथ सहयोग से, संयुक्त दल में, मजदूर सभाओं और दफ्तरों के कर्मचारियों के ट्रेड यूनियनों, नौजवान कम्युनिस्ट सभाओं और दूसरे गैरपार्टी–संगठनों और सभाओं के साथ संयुक्त दल में चुनावों में प्रवेश करती है। इसलिये, उम्मीदवार कम्युनिस्टों और ग़ैरपार्टी जनता के मिलेजुले उम्मीदवार होंगे; हर ग़ैरपार्टी प्रतिनिधि कम्युनिस्टों का भी प्रतिनिधि होगा, ठीक जैसे कि हर कम्युनिस्ट प्रतिनिधि ग़ैरपार्टी जनता का भी प्रतिनिधि होगा।"

केंद्रीय समिति के घोषणापत्र के अंत में, निर्वाचकों से यह अपील की गयी थी :

"सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) की केन्द्रीय समिति तमाम कम्युनिस्टों और हमदर्दों का आह्वान करती है कि वे गैरपार्टी उम्मीदवारों के लिये वैसे ही एकमत होकर वोट दें जैसे वे कम्युनिस्ट उम्मीदवारों को वोट देते हैं।

"सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) की केन्द्रीय समिति तमाम गैरपार्टी निर्वाचकों का आह्वान करती है कि वे कम्युनिस्ट उम्मीदवारों के लिये वैसे ही एकमत होकर वोट दें जैसे कि वे गैरपार्टी उम्मीदवारों के लिये देंगे।

"सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) की केन्द्रीय समिति सभी निर्वाचकों का आह्वान करती है कि वे 12 दिसम्बर 1937 को एक साथ निर्वाचन केन्द्रों में संघीय सोवियत और जातियों की सोवियत के प्रतिनिधि चुनने के लिये आयें।

"ऐसा एक भी निर्वाचक न होना चाहिये कि जो सोवियत राज्य की सर्वोच्च संस्था के प्रतिनिधि चुनने के गौरवपूर्ण अधिकार का उपयोग न करे।

"ऐसा एक भी सक्रिय नागरिक न होना चाहिये कि जो इस बात में मदद देना अपना नागरिक कर्तव्य न समझे कि सभी निर्वाचक, बिना किसी अपवाद के, सर्वोच्च सोवियत के चुनावों में हिस्सा लें।

"12 दिसम्बर 1937 का दिन एक महान् त्योहार होना चाहिये, जिसमें लेनिन और स्तालिन के विजयी झण्डे के चारों तरफ़ सोवियत संघ की सभी जातियों की श्रमिक जनता के संघ–बद्ध होने का उत्सव मनाया जाये।"

11 दिसम्बर 1937 को, चुनाव से एक दिन पहले, कॉमरेड स्तालिन ने जिस इलाके में वे नामजद हुए थे, वहां के निर्वाचकों के सामने भाषण दिया। इसमें उन्होंने बताया कि जनता जिन सार्वजनिक कार्यकर्ताओं को चुनेगी और सोवियत संघ की सर्वोच्च सोवियत का प्रतिनिधि बनायेगी, वे किस तरह के होने चाहिये। कॉमरेड **स्तालिन** ने कहा :

"निर्वाचकों को यह **मांग करनी** चाहिये कि उनके प्रतिनिधि अपने काम के योग्य बने रहें; अपने काम में वे राजनीतिक मूढ़मतियों की सतह तक न फिसल जायें, अपनी जगह वे लेनिन की तरह के राजनीतिक कार्यकर्ता बनें रहें, सार्वजनिक कार्यकर्ताओं के रूप में उनकी रूप–रेखा वैसी ही साफ़–सुथरी और निश्चित हो जैसी लेनिन की थी, वे लड़ाई में वैसे ही निडर हों और जनता के शत्रुओं की तरफ़ वैसे ही निर्मम हों जैसे लेनिन थे, वे सभी तरह की बदहवासी से, बदहवासी जैसी चीज से भी, मुक्त रहें और जब परिस्थिति उलझने लगे और क्षितिज पर कोई खतरा दिखाई दे तो वे हर तरह के भय से वैसे ही मुक्त हों जैसे लेनिन थे; पेचीदा समस्याओं को सुलझाने में, जहां समझ–बूझकर दृष्टिकोण बनाना होता है और पक्ष और विपक्ष की बात अच्छी तरह तौलनी होती है, वे वैसे ही समझ–बूझकर और बुद्धिमानी से काम करें जैसे लेनिन करते थे, वे वैसे ही सच्चे और ईमानदार हों जैसे लेनिन थे, वे अपनी जनता से वैसे ही प्रेम करें जैसे लेनिन करते थे।"

12 दिसम्बर को, सोवियत संघ की सर्वोच्च सोवियत के चुनाव भारी उत्साह के साथ समाप्त हुए। ये चुनाव से बढ़ कर कुछ और भी थे। ये एक महान त्योहार थे, जिसमें सोवियत जनता की विजय का उत्सव मनाया गया था, वे सोवियत संघ की जनता की विशाल मैत्री का प्रदर्शन थे।

कुल 9 करोड़ 40 लाख निर्वाचकों में से, 9 करोड़ 10 लाख से ऊपर ने, या 96.8 फ़ीसदी ने वोट डाले। इनमें से 8,98,44,000 या 98.6 फ़ीसदी ने कम्युनिस्टों और ग़ैरपार्टी जनता के संयुक्त दल के उम्मीदवारों के लिये वोट दिये। सिर्फ़ 6,32,000 या 1 फ़ीसदी से कुछ कम ने कम्युनिस्टों और ग़ैरपार्टी जनता के संयुक्त दल के उम्मीदवारों के खिलाफ़ वोट दिये। संयुक्त दल के सभी उम्मीदवार बिना किसी अपवाद के चुने गये।

इस तरह, 9 करोड़ लोगों ने एक राय होकर अपने वोटों से सोवियत संघ में समाजवाद की जीत को पक्का किया।

कम्युनिस्टों और ग़ैरपार्टी जनता के संयुक्त दल के लिये, यह उल्लेखनीय विजय थी।

यह बोल्शेविक पार्टी की विजय थी।

अक्तूबर क्रांति की 20वीं वार्षिकी पर, अपने ऐतिहासिक भाषण में कॉमरेड मालोतोव ने सोवियत जनता की जिस नैतिक और राजनीतिक एकता का हवाला दिया था, यह चुनाव उसका ज्वलंत प्रमाण था।

उपसंहार

बोल्शेविक पार्टी ने जो ऐतिहासिक मार्ग तय किया है, उससे कौन से मुख्य परिणाम निकलते हैं?

सो•सं•क•पा• (बो•) के इतिहास से हमें कौन सी शिक्षा मिलती है?

(1) पार्टी के इतिहास से सबसे पहले हमें यह शिक्षा मिलती है कि सर्वहारा क्रान्ति की विजय, सर्वहारा डिक्टेटरशिप की विजय सर्वहारा की क्रान्तिकारी पार्टी के बिना अंसभव है; ऐसी पार्टी के बिना असंभव है जो अवसरवाद से मुक्त हो, जो समझौतावादियों और समपर्णवादियों का ज़रा भी मुलाहिजा न करती हो और पूंजीपतियों और उनकी राज्य–सत्ता की तरफ़ क्रान्तिकारी रुख अपनाती हो।

पार्टी के इतिहास से हमें यह शिक्षा मिलती है कि सर्वहारा वर्ग को ऐसी पार्टी के बिना छोड़ देने का मतलब है – उसे क्रान्तिकारी नेतृत्व के बिना छोड़ देना, और उसे क्रान्तिकारी नेतृत्व के बिना छोड़ने का मतलब है – सर्वहारा क्रान्ति के उद्देश्य को चौपट कर देना।

पार्टी के इतिहास से हमें यह शिक्षा मिलती है कि पच्छिमी यूरोप के ढंग की, साधारण सोशल–डेमोक्रैटिक पार्टी – जो घरेलू शान्ति की हालत में बढ़ी हो, अवसरवादियों के पीछे घिसटती हो, 'सामाजिक सुधारों' का सपना देखती हो और सामाजिक क्रान्ति से भय खाती हो – ऐसी पार्टी नहीं हो सकती।

पार्टी का इतिहास हमें यह शिक्षा देता है कि सिर्फ़ नयी तरह की पार्टी मार्क्सवादी–लेनिनवादी पार्टी, सामाजिक क्रान्ति की पार्टी, पूंजीपतियों के खिलाफ़ निर्णायक युद्ध के लिये सर्वहारा को तैयार कर सकने वाली और सर्वहारा क्रान्ति की विजय संगठित कर सकने वाली पार्टी ही ऐसी पार्टी हो सकती है।

सोवितय संघ की बोल्शेविक पार्टी ऐसी ही पार्टी है।

कॉमरेड स्तालिन कहते हैं :

"क्रान्ति से पूर्व के दिनों में, बहुत कुछ शान्तिमय विकास के दिनों में, जब दूसरी इन्टरनेशनल की पार्टियां मज़दूर आन्दोलन में प्रमुख शक्ति थीं और संघर्ष के पार्लियामेंटरी रूप मुख्य रूप समझे जाते थे, तब पार्टी का वह निर्णायक और भारी महत्व न था, और न हो सकता था, जो आगे चल कर खुले क्रान्तिकारी संघर्ष की परिस्थितियों में हुआ। दूसरी इन्टरनेशनल पर होने वाले हमलों से

उसकी रक्षा करते हुए, कॉटस्की कहता है कि दूसरी इन्टरनेशनल की पार्टियां शान्ति का साधन हैं न कि युद्ध का, और इसीलिये युद्ध के दिनों में, सर्वहारा की क्रान्तिकारी कार्यवाही के दिनों में कोई महत्वपूर्ण क़दम उठाने में वे असमर्थ थीं। यह बिल्कुल ठीक है। लेकिन, इसका मतलब क्या है ? इसका मतलब यह है कि दूसरी इन्टरनेशल की पार्टियां सर्वहारा वर्ग के क्रान्तिकारी संघर्ष के अयोग्य हैं, वे सर्वहारा वर्ग की लड़ाकू पार्टियां नहीं हैं, जो मज़दूरों को सत्तारूढ़ करने में उनकी अगुआई कर सकें बल्कि चुनाव की मशीनें हैं, जो पार्लियामेंटरी चुनाव और पार्लियामेंटरी संघर्ष के लिये रची गयी हैं। दरअसल, यही सबब है कि जिन दिनों दूसरी इन्टरनेशनल का अवसरवाद ज़ोरों पर था, तब सर्वहारा वर्ग का मुख्य राजनीतिक संगठन पार्टी न थी बल्कि उसका पार्लियामेंटरी गुट था। इसे सभी लोग जानते हैं कि उस समय पार्टी सचमुच पार्लियामेंटरी गुट का पुछल्ला थी, और उसके मातहत थी। कहना न होगा कि ऐसी हालत में और ऐसी पार्टी के हाथ में बागडोर होने पर, सर्वहारा वर्ग को क्रान्ति के लिये तैयार करने का सवाल ही न उठ सकता था।

"लेकिन, नये दौर के शुरू होते ही परिस्थिति बुनियादी तौर पर बदल गयी। नया दौर खुली वर्ग–टक्करों का दौर है, सर्वहारा की क्रांतिकारी कार्यवाही, सर्वहारा क्रांति का दौर है, ऐसा दौर है जबकि साम्राज्यवाद का तख्ता उलटने के लिये और सर्वहारा के सत्तारूढ़ होने के लिये प्रत्यक्ष शक्ति–संगठन हो रहा है। इस दौर में, सर्वहारा वर्ग के सामने नये काम आते हैं। उसके सामने नयी क्रान्तिकारी नीति पर समूचे पार्टी कार्य को पुनर्संगठित करने के काम आते हैं; सत्ता के लिये क्रान्तिकारी संघर्ष की भावना में मज़दूरों को शिक्षित करने के काम आते हैं; रिजर्व शक्ति तैयार रखने और उसे आगे बढ़ाने के काम आते हैं; पड़ौसी देशों के मजदूरों से सहयोग कायम करने के काम आते हैं; उपनिवेशों और पराधीन देशों के स्वाधीनता आन्दोलन से मज़बूत सम्बन्ध क़ायम करने वग़ैरह–वग़ैरह के काम आते हैं। यह समझना कि पुरानी सोशल–डेमोक्रैटिक पार्टियां, जो पार्लियामेंटशाही की शान्तिमय परिस्थितियों में बढ़ी थीं, ये नये काम कर सकेंगी, अपने को घोर निराशा के दलदल में डालना है और अनिवार्य रूप से पराजित होना है। अगर ऐसे काम सम्भालने की जिम्मेदारी रहते हुए सर्वहारा वर्ग पुरानी पार्टियों के नेतृत्व में रहे, तो वह पूरी तरह निहत्था ही रहेगा। कहना न होगा कि सर्वहारा वर्ग ऐसी हालत में रहना मंजूर न कर सकता था।

"इसीलिये, एक नयी पार्टी, एक लड़ाकू पार्टी, एक क्रान्तिकारी पार्टी की ज़रूरत पैदा हुई, जो इतनी साहसी हो कि सत्ता के लिये संघर्ष में मज़दूरों की

अगुवाई कर सके, जो इतनी अनुभवी हो कि क्रान्तिकारी परिस्थिति के पेचीदा हालात में अपना दिशा–ज्ञान बनाये रख सके और जो इतनी लचीली हो कि मंजिल तक पहुँचने की राह में तमाम छिपी हुई विघ्नबाधाओं से बचती हुई चल सके।

"ऐसी पार्टी के बिना, साम्राज्यवाद का तख्ता उलटने और सर्वहारा डिक्टेटरशिप क़ायम करने की बात सोचना भी बेकार है।

"यह नयी पार्टी लेनिनवाद की पार्टी है।" (***स्तालिन, लेनिनवाद की समस्यायें,*** अं•सं•, मास्को, 1947, पृष्ठ 80–81)।

(2) पार्टी के इतिहास से हमें आगे यह शिक्षा मिलती है कि मज़दूर वर्ग की पार्टी अपनी वर्ग–नेत्री की भूमिका तब तक पूरी नहीं कर सकती, सर्वहारा क्रान्ति की संगठनकर्त्री और नेत्री की भूमिका तब तक पूरी नहीं कर सकती, जब तक कि वह मज़दूर आन्दोलन के आगे बढ़े हुए सिद्धान्त, मार्क्सवादी–लेनिनवादी सिद्धान्त में माहिर नहीं होती।

मार्क्सवादी–लेनिनवादी सिद्धांत की शक्ति इस बात में है कि किसी भी परिस्थिति में सही दिशा पहचानने में वह पार्टी की मदद करती है, सामयिक घटनाओं के भीतरी सम्बन्ध समझने में, उनकी गति को पहले से देखने में और न सिर्फ़ यही समझने में कि ये घटनायें कैसे और किस दिशा में इस समय आगे बढ़ रही हैं, बल्कि कैसे और किस दिशा में वे भविष्य में भी बढ़ेंगी, मदद देती है।

सिर्फ़ ऐसी पार्टी, जो मार्क्सवादी–लेनिनवादी सिद्धांत में माहिर हो चुकी हो, विश्वास के साथ आगे बढ़ सकती है और मज़दूर वर्ग को आगे ले जा सकती है।

दूसरी तरफ़ ऐसी पार्टी जो मार्क्सवादी–लेनिनवादी सिद्धांत में माहिर नहीं है, मजबूरन अंधेरे में रास्ता टटोलती है, अपनी कार्यवाही में विश्वास खो देती है और मज़दूर वर्ग को आगे नहीं ले जा पाती।

ऐसा लग सकता है कि मार्क्सवादी–लेनिनवादी सिद्धांत में माहिर होने के लिये बस इतना ही ज़रूरी है कि मार्क्स, एंगेल्स और लेनिन की रचनाओं से अलग–थलग नतीजे और स्थापनायें मेहनत के साथ रट ली जायें, मौके से उनका उद्धरण देना सीख लिया जाये और बाकी के लिये इस उम्मीद का भरोसा किया जाये कि ऐसे रटे हुए परिणाम और स्थापनायें हर किसी परिस्थिति और अवसर के अनुकूल होंगी। लेकिन, मार्क्सवादी–लेनिनवादी सिद्धांत की तरफ़ ऐसा रवैया बिल्कुल ग़लत है।

मार्क्सवादी–लेनिनवादी सिद्धांत को सूत्रों का संग्रह न समझना चाहिये, कुछ प्रश्नोत्तरों की सूची न समझना चाहिये, कोई धर्म–ग्रंथ न समझना चाहिए, और खुद मार्क्सवादियों को उसका मुल्ला और पंडित न समझना चाहिये। मार्क्सवादी–लेनिनवादी सिद्धांत समाज के विकास का विज्ञान है, मज़दूर आन्दोलन का विज्ञान है, सर्वहारा क्रांति का विज्ञान है, कम्युनिस्ट समाज रचने का विज्ञान है। विज्ञान की हैसियत से, वह एक जगह स्थिर नहीं रहता, न रह सकता है बल्कि विकसित होता है और अपने को पूर्ण बनाता है। यह स्पष्ट है कि अपने विकास में वह ज़रूर ही नये अनुभव और नये ज्ञान से समृद्ध होगा और समय बीतने पर उसकी कुछ स्थापनायें और परिणाम ज़रूर ही बदलेंगे, नयी ऐतिहासिक परिस्थितियों के अनुकूल नयी स्थापनायें और परिणाम ज़रूर ही उनकी जगह लेंगे।

मार्क्सवादी–लेनिनवादी सिद्धांत में माहिर होने का **हरगिज़** यह मतलब नहीं है कि उसके तमाम सूत्रों और परिणामों को रट लिया जाये और उसके हर शब्द से चिपके रहा जाये। मार्क्सवादी–लेनिनवादी सिद्धांत में माहिर होने के लिये; हमें सबसे पहले उसके शब्दों और तत्व में भेद करना सीखना चाहिये।

मार्क्सवादी–लेनिनवादी सिद्धांत में माहिर होने का मतलब है कि उस सिद्धांत के **सार–तत्व** को पचाना और सर्वहारा के वर्ग–संघर्ष की बदलती हुई परिस्थितियों में, क्रांतिकारी आन्दोलन की अमली समस्यायें हल करने में उसका उपयोग सीखना।

मार्क्सवादी–लेनिनवादी सिद्धांत में माहिर होने का मतलब है, इस सिद्धांत को क्रांतिकारी आन्दोलन के नये तजुर्बे से भरा–पूरा बनाना, उसे नयी स्थापनाओं और परिणामों से समृद्ध करना। मार्क्सवादी–लेनिनवादी सिद्धांत में माहिर होने का मतलब है कि उसकी पुरानी पड़ चुकी स्थापनाओं और परिणामों को सिद्धांत के तत्व के अनुसार बदलने में हिचकिचाये बिना, उनकी जगह नयी ऐतिहासिक परिस्थितियों के अनुकूल स्थापनाओं और परिणामों को रख कर, उसे **विकसित करने और बढ़ाने** की योग्यता रखना।

मार्क्सवादी–लेनिनवादी सिद्धांत कठमुल्लापन नहीं है, बल्कि काम करने के लिये एक मार्ग–दर्शक है।

दूसरी रूसी क्रांति (फ़रवरी 1917) से पहले, सभी देशों के मार्क्सवादी यह मानते थे कि पार्लियामेण्टरी जनवादी–प्रजातंत्र ही पूंजीवाद से समाजवाद की तरफ़ बढ़ने के दौर में समाज के राजनीतिक संगठन का सबसे उपयुक्त रूप है। यह सही है कि 1870 के आस–पास मार्क्स ने कहा था कि सर्वहारा डिक्टेटरशिप का सबसे उपयुक्त

रूप पार्लियामेंटरी प्रजातंत्र नहीं है बल्कि पैरिस कम्यून जैसा राजनीतिक संगठन है। लेकिन दुर्भाग्य से, मार्क्स ने अपनी रचनाओं में इस स्थापना को और विकसित न किया था और वह भूला दी गयी थी। इसके सिवाय, 1891 के ***एरफ़ुट प्रोग्राम के मसौदे*** की अपनी आलोचना में, एंगेल्स ने यह अधिकृत बयान दिया था कि "जनवादी प्रजातंत्र ...सर्वहारा डिक्टेटरशिप का अपना निश्चित रूप...है।" इससे कोई संदेह नहीं रह जाता कि जनवादी प्रजातंत्र को ही मार्क्सवादी सर्वहारा डिक्टेटरशिप का राजनीतिक रूप समझते चले आये थे। आगे चलकर, एंगेल्स की यही स्थापना सभी मार्क्सवादियों के लिये, लेनिन के लिये भी, पथ–दर्शक सिद्धांत बन गयी थी। लेकिन, 1905 की रूसी क्रांति ने और खास तौर से फरवरी 1917 की क्रांति ने समाज के राजनीतिक संगठन का एक नया रूप पेश किया – मज़दूर और किसान प्रतिनिधियों की सोवियतें। दोनों रूसी क्रांतियों के तजुर्बे का अध्ययन करके और मार्क्सवाद के सिद्धांत के आधार पर, लेनिन इन नतीजे पर पहुंचे कि सर्वहारा डिक्टेटरशिप के लिये सबसे अच्छा राजनीतिक रूप पार्लियामेंटरी जनवादी प्रजातंत्र नहीं है, बल्कि सोवियतों का प्रजातंत्र है। इस आधार से आगे बढ़ते हुये, अप्रैल 1917 में, पूंजीवादी क्रांति से समाजवादी क्रांति की तरफ बढ़ने के दौर में, लेनिन ने सर्वहारा डिक्टेटरशिप के सबसे अच्छे राजनीतिक रूप के तौर पर सोवियतों के प्रजातंत्र का नारा दिया। सभी देशों के अवसरवादी पार्लियामेंटरी प्रजातंत्र से चिपके रहे और लेनिन पर मार्क्सवाद से हटने और जनतंत्र का नाश करने का दोष लगाते रहे। लेकिन अवश्य ही, सच्चे मार्क्सवादी लेनिन ही थे जो मार्क्सवाद के सिद्धांत में माहिर हो चुके थे, न कि वे अवसरवादी। कारण यह कि लेनिन मार्क्सवादी सिद्धांत को नये अनुभव से समृद्ध करके उसे आगे बढ़ा रहे थे, जबकि अवसरवादी उसे पीछे घसीट रहे थे और उसकी एक स्थापना को कठमुल्लेपन से पकड़े बैठे थे।

हमारी पार्टी, हमारी क्रांति और मार्क्सवाद का क्या हश्र होता अगर लेनिन मार्क्सवाद की शब्दावली से कच्ची खा जाते और उनमें यह हिम्मत न होती कि एंगेल्स की रची हुई मार्क्सवाद की एक पुरानी स्थापना की जगह सोवियतों के प्रजातंत्र के बारे में नयी स्थापना रखें, ऐसी स्थापना जो नयी ऐतिहासिक परिस्थितियों के अनुकूल थी? पार्टी अंधेरे में भटकती रहती, सोवियतें बिखर जातीं, हमारे यहां सोवियत सत्ता न होती और मार्क्सवादी सिद्धांत को भारी धक्का लगता। सर्वहारा वर्ग हार जाता और उसके दुश्मन जीत जाते।

साम्राज्यवाद से पहले के पूंजीवाद का अध्ययन करके, एंगेल्स और मार्क्स इस नतीजे पर पहुंचे थे कि समाजवादी क्रांति अकेले एक देश में विजयी नहीं हो सकती, वह एकबारगी धावा बोल कर ही सभी या अधिकांश सभ्य देशों में विजयी हो सकती

है। यह बात 19वीं सदी के मध्य की है। यह परिणाम आगे चल कर सभी मार्क्सवादियों के लिये मार्ग–दर्शक सिद्धांत बन गया। लेकिन, 20वीं सदी के शुरू होते–होते, साम्राज्यवाद से पहले का पूंजीवाद बढ़ कर साम्राज्यवादी पूंजीवाद हो गया, उभरता हुआ पूंजीवाद गतिरुद्ध पूंजीवाद में बदल गया। साम्राज्यवादी पूंजीवाद का अध्ययन करके, मार्क्सवादी सिद्धांत के आधार पर, लेनिन इस नतीजे पर पहुंचे कि एंगेल्स और मार्क्स का पुराना सूत्र नयी ऐतिहासिक परिस्थितियों के अनुकूल नहीं रह गया है और समाजवादी क्रांति की विजय अकेले एक देश में बिल्कुल सम्भव है। सभी देशों के अवसरवादी एंगेल्स और मार्क्स के पुराने सूत्र से चिपके रहे और लेनिन पर मार्क्सवाद से हटने का दोष मढ़ते रहे। लेकिन, अवश्य ही सच्चे मार्क्सवादी लेनिन ही थे जो मार्क्सवाद के सिद्धांत में माहिर थे, न कि वे अवसरवादी; कारण यह कि लेनिन मार्क्सवादी सिद्धांतों को नये अनुभव से समृद्ध करके उसे आगे बढ़ा रहे थे, जबकि अवसरवादी उसे पीछे घसीट रहे थे और उसको मुर्दा बना रहे थे।

पार्टी, हमारी क्रांति और मार्क्सवाद का क्या हश्र होता अगर लेनिन मार्क्सवाद की शब्दावली से कच्ची खा जाते और उनमें सैद्धांतिक आत्मविश्वास का इतना बल न होता कि मार्क्सवाद के एक पुराने परिणाम को खारिज कर दें और उसकी जगह एक नया परिणाम रखें, जो अकेले एक देश में समाजवाद की विजय की सम्भावना का दावा करता हो, ऐसा परिणाम जो नयी ऐतिहासिक परिस्थितियों के अनुकूल हो? पार्टी अंधेरे में भटकती रहती, सर्वहारा क्रांति नेतृत्व विहीन हो जाती, और मार्क्सवादी सिद्धांत का पतन शुरू हो जाता। सर्वहारा वर्ग हार जाता और उसके दुश्मन जीत जाते।

अवसरवाद का हमेशा यही मतलब नहीं होता कि मार्क्सवादी सिद्धांत या उसकी किन्हीं स्थापनाओं और परिणामों को सीधे–सीधे नामंजूर किया जाये। अवसरवाद कभी–कभी इस कोशिश में भी प्रकट होता है कि मार्क्सवाद की उन स्थापनाओं से चिपका रहे जो पुरानी पड़ चुकी हैं और उन्हें धर्म–सूत्र की तरह बना दिया जाये, जिससे कि मार्क्सवाद का और आगे को विकास रोक दिया जाये और फलतः सर्वहारा वर्ग के क्रांतिकारी आन्दोलन का विकास रोक दिया जाये।

बिना अतिशयोक्ति के भय के, यह कहा जा सकता है कि एंगेल्स की मृत्यु के बाद सिद्धांत में माहिर लेनिन, और लेनिन के बाद, स्तालिन और लेनिन के दूसरे शिष्य ही एकमात्र ऐसे मार्क्सवादी रहे हैं जिन्होंने मार्क्सवादी सिद्धांत को आगे बढ़ाया है और जिन्होंने सर्वहारा के वर्ग–संघर्ष की नयी परिस्थितियों में नये तजुर्बों से उसे समृद्ध किया है।

और, ठीक इसी वजह से कि लेनिन और लेनिनवादियों ने मार्क्सवादी सिद्धांत को आगे बढ़ाया है, लेनिनवाद मार्क्सवाद का अगला विकास है। वह सर्वहारा के वर्ग–संघर्ष की नयी परिस्थितियों का मार्क्सवाद है, साम्राज्यवाद और सर्वहारा क्रांतियों के युग का मार्क्सवाद है, भूमंडल के छठे भाग में समाजवाद की विजय के युग का मार्क्सवाद है।

अक्तूबर 1917 में, बोल्शेविक पार्टी की जीत न हो पाती यदि उसके प्रमुख सदस्य मार्क्सवाद के सिद्धांत में माहिर न हो चुके होते, यदि उन्होंने काम करने के लिये इस सिद्धांत को मार्ग–दर्शक के रूप में देखना न सीखा होता, यदि उन्होंने सर्वहारा के वर्ग–संघर्ष के नये तजुर्बे से समृद्ध करके मार्क्सवादी सिद्धांत को आगे बढ़ाना न सीखा होता।

उन जर्मन मार्क्सवादियों की आलोचना करते हुए, जिन्होंने अमरीका में वहां के मज़दूर आन्दोलन के नेतृत्व का भार संभाला था, एंगेल्स ने लिखा था :

> "जर्मन यह नहीं समझे कि अमरीकी जनता को गतिशील करने के लिये किस तरह सिद्धांत को अस्त्र की तरह इस्तेमाल करना चाहिये। अधिकांश में, वे खुद ही सिद्धांत नहीं समझते और उसके साथ शास्त्रीय और कठमुल्लेपन के ढंग से व्यवहार करते हैं, मानो वह कोई रट लेने की चीज हो और उसके बाद वह बिना हाथ–पैर हिलाये सभी ज़रूरतें पूरी कर देगी। उनके लिये वह धर्मशास्त्र है, न कि काम करने के लिये एक मार्गदर्शक।" ***(जोर्गे के नाम पत्र, 29 नवम्बर 1886)***।

अप्रैल 1917 में, कामेनेव और कुछ दूसरे पुराने बोल्शेविक सर्वहारा और किसानों की क्रांतिकारी–जनवादी डिक्टेटरशिप के पुराने सूत्र से ऐसे समय चिपके हुए थे जबकि क्रांतिकारी आन्दोलन आगे बढ़ चुका था और उसकी मांग थी कि समाजवादी क्रांति की तरफ़ बढ़ा जाये। कामेनेव और इन पुराने बोल्शेविकों की आलोचना करते हुए, लेनिन ने लिखा था :

> "हमारी शिक्षा धर्मशास्त्र नहीं है, बल्कि काम करने के लिये एक मार्ग–दर्शक है। मार्क्स और एंगेल्स हमेशा यही कहते थे। वे ठीक ही 'सूत्रों' को रटने और दुहराने का मजाक उड़ाते थे। ये सूत्र अधिक से अधिक **आम** कार्यों की रूप–रेखा ही बता सकते हैं। लेकिन, ऐतिहासिक क्रम के हर अलग **दौर** का **ठोस** आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों में उनमें तब्दीली होना जरूरी है।... इस अकाट्य सत्य को अच्छी तरह महसूस करना ज़रूरी है कि मार्क्सवादी को वास्तविक जीवन ठोस **हक़ीक़त** पहचाननी चाहिये, और बीते हुए कल के सिद्धांत से चिपके न रह जाना चाहिये।... (***लेनिन ग्रंथावली,*** रू•सं•, खण्ड 20, पृ• 100–01)।

(3) पार्टी के इतिहास से हमें आगे यह शिक्षा मिलती है कि मज़दूर वर्ग की पांति में निम्न पूंजीवादी पार्टियां सक्रिय रहती हैं और मज़दूर वर्ग के पिछड़े हुए हिस्सों को पूंजीपतियों को बाहुपाश में ठेल देती हैं और इस तरह, मज़दूर वर्ग की एकता तोड़ देती हैं; जब तक इस तरह की पार्टियां पछाड़ी नहीं जातीं तब तक सर्वहारा क्रांति की विजय असम्भव होती है।

हमारी पार्टी का इतिहास निम्नपूंजीवादी पार्टियों के खिलाफ़ – समाजवादी क्रांतिकारियों, मेन्शेविकों, अराजकतावादियों और राष्ट्रवादियों के खिलाफ़–संघर्ष का इतिहास और इन पार्टियों को पूरी तरह हराने का इतिहास है। अगर ये पार्टियां पछाड़ी नहीं जातीं। और मज़दूर वर्ग की पांति से निकाली न जातीं तो मज़दूर वर्ग की एकता क़ायम न होती, और अगर मज़दूर वर्ग की एकता क़ायम न होती तो सर्वहारा क्रांति की जीत हासिल करना असंभव होता।

ये पार्टियां जो पहले पूंजीवाद की रक्षा की हिमायत करती थीं और आगे चल कर, अक्तूबर क्रांति के बाद पूंजीवाद को बहाल करने की हिमायत करती थीं, यदि ये पार्टियां पूरी तरह पछाड़ी न जातीं तो सर्वहारा डिक्टेटरशिप को बनाये रखना, विदेशी सैनिक हस्तक्षेप को हराना, और समाजवाद का निर्माण असंभव होता।

यह बात आकस्मिक न समझनी चाहिये कि सभी निम्नपूंजीवादी पार्टियां, जो जनता की आंखों में धूल झोंकने के लिये अपने को 'क्रांतिकारी' और 'समाजवादी' पार्टियां कहती थीं – समाजवादी क्रांतिकारी, मेन्शेविक, अराजकतावादी और राष्ट्रवादी – अक्तूबर समाजवादी क्रांति से पहले ही क्रांति–विरोधी हो गयी थीं और आगे चल कर विदेशी पूंजीपतियों के जासूस–विभागों की दलाल बन गयीं, जासूसों, तोड़–फोड़ करने वालों, भड़काने वालों, हत्यारों और देश के ग़द्दारों का गिरोह बन गयी थीं।

लेनिन कहते हैं :

> "सामाजिक क्रांति के युग में, सर्वहारा वर्ग की एकता सिर्फ मार्क्सवाद की चरम क्रांतिकारी पार्टी ही क़ायम कर सकती है, और वह तमाम दूसरी पार्टियों के खिलाफ़ निर्मम संघर्ष करके ही इसे क़ायम कर सकती है।" (***लेनिन ग्रंथावली,*** रू•सं•, खंड 26, पृ• 50)।

(4) पार्टी का इतिहास आगे हमें यह शिक्षा देता है कि जब तक मज़दूर वर्ग की पार्टी अपनी ही पांति के अवसरवादियों के खिलाफ़ बेमुलाहिज़ा संघर्ष नहीं करती, जब तक अपने ही भीतर के समर्पणवादियों को कुचल नहीं देती, तब तक वह अपनी पांति में एकता और अनुशासन क़ायम नहीं रख सकती। वह सर्वहारा क्रांति की नेत्री और

संगठनकर्त्री की अपनी भूमिका पूरी नहीं कर सकती और न नये समाजवादी समाज की निर्मात्री की अपनी भूमिका पूरी कर सकती है।

हमारी पार्टी के आन्तरिक जीवन के विकास का इतिहास पार्टी के भीतर अवसरवादी गुटों के खिलाफ़ – 'अर्थवादियों', मेन्शेविकों, त्रात्स्कीवादियों, बुखारिनपंथियों और राष्ट्रवादी भटकाव वालों के खिलाफ़ – संघर्ष का इतिहास है, और इन गुटों की पूरी हार का इतिहास है।

हमारी पार्टी का इतिहास हमें यह सिखाता है कि समर्पणवादियों के ये सभी गुट दरअसल पार्टी के अन्दर मेन्शेविज्म के दलाल थे, मेन्शेविज्म की तलछट और उसके कीड़े थे, मेन्शेविज्म को जारी रखने वाले थे। मेन्शेविकों की तरह, वे मज़दूर वर्ग और उसकी पार्टी में पूंजीवादी असर फैलाने के साधन थे। इसलिये, पार्टी में इन गुटों को खत्म करने का संघर्ष मेन्शेविज्म को खत्म करने के संघर्ष का ही एक हिस्सा था।

अगर हम 'अर्थवादियों' और मेन्शेविकों को न पछाड़ते, तो हम पार्टी न बना पाते और मज़दूर वर्ग को सर्वहारा क्रांति की मंजिल तक न ले जा पाते।

अगर हम त्रात्स्कीवादियों और बुखारिनपंथियों को न हराते, तो वे परिस्थितियां पैदा न कर पाते जो समाजवाद के निर्माण के लिये अनिवार्य हैं।

यदि हम सभी रंग–रूपों के राष्ट्रवादी भटकाववालों को न हराते, तो हम जनता को अंतर्राष्ट्रीयता की भावना में शिक्षित न कर पाते, हम सोवियत संघ की जातियों की महान् मैत्री के झण्डे की रक्षा न कर पाते और सोवियत समाजवादी प्रजातंत्रों का संघ न रच पाते।

कुछ लोगों को लग सकता है कि बोल्शेविकों ने पार्टी के भीतर अवसरवादियों के खिलाफ़ संघर्ष में ही बहुत समय लगाया और वह उनके महत्व को बहुत बढ़ा–चढ़ाकर आंकते थे। लेकिन, ऐसा सोचना बिल्कुल ही गलत होगा। हमारे भीतर का अवसरवाद किसी स्वस्थ शरीर में नासूर की तरह है, और उसे कभी तरह न देनी चाहिये। पार्टी मज़दूर वर्ग का प्रमुख दस्ता है, उसका सबसे अगला किला है, उसका सेनापति–विभाग है। सन्देहवादी, अवसरवादी, समर्पणवादी और ग़द्दार मज़दूर वर्ग के संचालक–दल में बर्दास्त नहीं किये जा सकते। यदि पूंजीपतियों से जीवन–मरण की लड़ाई लड़ते हुए खुद मज़दूर वर्ग के संचालक–दल में ही, उसके किले में ही, समर्पणवादी और ग़द्दार रहें तो मज़दूर वर्ग पर दुहरी मार, मोर्चे से और पीछे से भी मार होने लगेगी। ज़ाहिर है कि ऐसे संघर्ष का नतीजा हार ही हो सकता है। किला लेने का सबसे आसान तरीका उस पर भीतर से कब्जा करना है। जीत हासिल करने के लिये मज़दूर वर्ग की

पार्टी से, उसके संचालक–दल से, उसके अगले किले से सबसे पहले समर्पणवादियों, भगोड़ों, गुण्डों और गद्दारों को निकाल बाहर करना चाहिये।

यह बात आकस्मिक ही न समझनी चाहिये कि त्रात्स्कीवादी, बुखारिन पंथी और राष्ट्रवादी भटकाव वाले, जो लेनिन और पार्टी के खिलाफ लड़े थे, उसी मंजिल पर पहुंचे जहां मेन्शेविक और समाजवादी–क्रांतिकारी पार्टियां पहुंची थीं, यानी वे फ़ासिस्ट जासूस–विभागों के दलाल बन गये, तोड़–फोड़ करने वाले, हत्यारे, भड़काने वाले और देश से ग़द्दारी करने वाले बन गये।

लेनिन ने कहा था :

"हमारी पांति में सुधारवादियों, मेंशेविकों के रहते हुए, सर्वहारा क्रांति में जीत हासिल करना **असंभव** है, उस जीत को बनाये रखना **असंभव** है। सिद्धांत रूप में, यह बात स्पष्ट है और रूस तथा हंगरी – दोनों के तजुर्बे से उसका ज्वलंत प्रमाण मिला है।... रूस में, **अनेक बार** ऐसी कठिन परिस्थितियां पैदा हुई हैं जबकि सोवियत व्यवस्था **बिल्कुल निश्चित** रूप से उलट दी जाती अगर हमारी पार्टी में मेन्शेविक, सुधारवादी, और निम्नपूंजीवादी डेमोक्रैट बने रहते...।" (***लेनिन ग्रंथावली,*** रू•सं•, खंड 25, पृष्ठ 462–63)।

कॉमरेड स्तालिन कहते हैं :

"हमारी पार्टी अपनी पांति में अपूर्व दृढ़ता और आन्तरिक एकता मुख्यतः इसलिये कायम कर सकी कि वह समय रहते अवसरवादी कोढ़ से अपने को शुद्ध रख सकी, वह अपनी पांति से विसर्जनवादियों, मेन्शेविकों को निकाल सकी। सर्वहारा पार्टियां अपनी पांति से अवसरवादियों और सुधारवादियों, सामाजिक–साम्राज्यवादियों और सामाजिक–अंधराष्ट्रवादियों, सामाजिक–राष्ट्रभक्तों और सामाजिक–शान्तिवादियों को निकालकर विकसित और मज़बूत होती हैं। पार्टी अपनी पांति से अवसरवादी तत्वों को निकालकर मज़बूत होती है।" (स्तालिन, ***लेनिनवाद की समस्यायें,*** अं• सं•, मास्को, 1947, पृष्ठ 91)।

(5) पार्टी का इतिहास हमें आगे यह शिक्षा देता है कि पार्टी मज़दूर वर्ग की नेत्री की अपनी भूमिका पूरी नहीं कर सकती यदि सफलता से बदहवास होकर उसमें घमंड आ जाये, वह अपने काम में दोष न देखे, अपनी ग़ल्तियां मानने से और समय रहते खुल कर और ईमानदारी से उन्हें सुधारने से डरे।

पार्टी अजेय होती है यदि वह आलोचना और आत्मालोचना से न डरे, यदि वह अपने काम में गलतियों और दोषों को नजरन्दाज न करे, यदि वह पार्टी के काम की ग़लतियों से सबक़ लेकर अपने कार्यकर्ताओं को सिखाये–पढ़ाये, और यदि वह समय रहते अपनी ग़लतियों को सुधारना जाने।

वह पार्टी खत्म हो जाती है जो अपनी ग़लतियों को छिपाती है, जो कठिन समस्याओं को नजरन्दाज करती है, जो सब कुछ ठीक होने का बहाना करके अपनी ग़लतियों पर पर्दा डालती है, जो आलोचना और आत्मालोचना बर्दाश्त नहीं कर सकती, जो आत्मसंतोष और घमंड में फूल जाती है और अपनी सफलताओं पर विश्राम करने लगती है।

लेनिन कहते हैं :

"कोई राजनीतिक पार्टी अपनी ग़लतियों की तरफ़ कैसा रूख़ अपनाती है, यह इस बात को समझने का बहुत ही महत्वपूर्ण और पक्का तरीक़ा है कि वह पार्टी कितनी सच्ची है और **अमल** में वह अपने **वर्ग** और मेहनतकश **जनता** की तरफ़ अपनी जिम्मेदारियां कैसे पूरी करती है। खुलकर ग़लती मानना, उसके कारण निश्चित करना, जिन परिस्थितियों मं ग़लती हुई, उनकी छानबीन करना ओर ग़लती सुधारने के तरीकों पर पूरी तरह विचार करना–एक गंभीर पार्टी की यही निशानी है; इसी तरीक़े से उसे अपना कर्तव्य पालन करना चाहिये, इसी तरीक़े से उसे अपने वर्ग और उसके बाद **जनता** को सिखाना–पढ़ाना चाहिये।" (लेनिन, सं0 ग्रं0, अं0 सं0, मास्को, 1947, खं0 2, पृष्ठ 599)।

और आगेः

"सभी क्रांतिकारी पार्टियां, जो अब तक मिट चुकी हैं, इसीलिये मिटीं कि वे **घमण्ड से भर गयीं**, वे यह न देख पायीं कि उनकी शक्ति कहा है **और अपनी कमजोरियां बताने में डरीं**। लेकिन, हम नहीं मिटेंगे, क्योंकि हम अपनी कमजोरियां बताने से डरते नहीं हैं और उन्हें दूर करना सीखेंगे।" (***लेनिन ग्रन्थावली***, रू•सं•, खं• 27, पृष्ठ 260–61)।

(6) अंत में, पार्टी के इतिहास से हमें यह शिक्षा मिलती है कि जब तक आम जनता से उसका व्यापक सम्पर्क नहीं होता, जब वह इस सम्बन्ध को लगातार मज़बूत नहीं करती, जब तक वह आम जनता की आवाज सुनना और उसकी फौरी ज़रूरतों को समझना नहीं जानती, जब तक आम जनता को सिखाने के ही लिये नहीं बल्कि उससे सीखने के लिये भी तैयार नहीं रहती, तब तक मज़दूर वर्ग की पार्टी सच्ची

जन–पार्टी नहीं हो सकती, जो लाखों मज़दूरों का और तमाम श्रमिक जनता का नेतृत्व कर सके।

पार्टी अजेय होती है अगर वह लेनिन के शब्दों में, "आम मेहनतकश जनता से नाता जोड़ सके, उससे निकट सम्पर्क बनाये रख सके, और चाहें तो कह लीजिये कि एक हद तक उसमें घुलमिल सके और सबसे पहले सर्वहारा के साथ, लेकिन गैरसर्वहारा मेहनतकश अवाम के साथ भी, यह सम्बन्ध क़ायम रख सके।" (लेनिन, सं•ग्रं, अं•सं•, मास्कों 1947, खं• 2, पृष्ठ 524)।

वह पार्टी मिट जाती है जो अपने को अपने छोटे से पार्टी के खोल में बन्द कर लेती है, जो अपने को आम जनता से दूर कर लेती है, जो ऊपर नौकरशाही जंग चढ़ जाने देती है।

कॉमरेड स्तालिन कहते हैं :

"हम इसे नियम के रूप में ग्रहण कर सकते हैं कि जब तक बोल्शेविक आम जनता से सम्बन्ध बनाये रहेंगे, तब तक वे अजेय रहेंगे। और इसके विपरीत, जैसे ही बोल्शेविक आम जनता से नाता तोड़ेंगे और वे अपनी सारी ताक़त खो देंगे और शून्य के बराबर रह जायेंगे।

प्राचीन यूनानियों की दंतकथाओं में एक प्रसिद्ध वीर ऐण्टीयस था। कथा के अनुसार, वह समुद्र के देवता पोसेईडन और धरती की देवी गीया का पुत्र था। ऐण्टीयस अपनी मां को बहुत प्यार करता था, जिसने उसे जन्म दिया था, उसे दूध पिलाया था और पाला–पोसा था। कोई ऐसा वीर न था जिसे ऐण्टीयस ने परास्त न किया हो। वह अजेय वीर समझा जाता था। उसकी शक्ति किस बात में थी? उसकी शक्ति इस बात में थी कि हर बार जब वह शत्रु से लड़ते हुए मुसीबत में होता था तो वह धरती को छू लेता था, उस माता को जिसने उसे जन्म दिया था और दूध पिलाया था, और इससे उसे नयी शक्ति मिल जाती थी। फिर भी उसके लिये हार का खतरा था – यह खतरा कि किसी न किसी तरह वह धरती से अलग न कर दिया जाये। उसके दुश्मन उसकी यह कमजोरी जानते थे और उसकी ताक में थे। एक दिन ऐसा दुश्मन आ गया कि जिसने इस कमजोरी से फ़ायदा उठाया और एण्टीयस को हरा दिया। यह दुश्मन हरकुलीज था। हरकुलीज ने ऐण्टीयस को कैसे हराया? उसने उसे धरती से उठा लिया, अधर में टांगे रखा, उसे धरती न छूने दी और उसका गला घोंट दिया।

"मैं समझता हूं कि बोल्शेविक हमें यूनानी दंतकथाओं के वीर ऐण्टीयस की याद दिलाते हैं। वे भी ऐण्टीयस की तरह इसलिये शक्तिशाली हैं कि वे अपनी माता से, उस जनता से सम्पर्क बनाये रखते हैं जिसने उन्हें जन्म दिया है, दूध पिलाया है और बड़ा किया है। और जब तक वे अपनी माता से, अपनी जनता से सम्पर्क बनाये रहेंगे तब तक अवश्य ही अजेय बने रहेंगे।

"बोल्शेविक नेतृत्व की अजेयता का यही रहस्य है।" (***स्तालिन, पार्टी के काम के दोष***)।

बोल्शेविक पार्टी ने जो ऐतिहासिक मार्ग तय किया है, उससे हमें यही मुख्य शिक्षा मिलती है।